❀ श्री वीतरागाय नमः ❀

श्री-यतिवृषभाचार्य-विरचिता

तिलोय-पण्णत्ती

(त्रिलोकप्रज्ञप्तिः)

(जैन-लोकज्ञान-सिद्धान्तविषयक-प्राचीन प्राकृतग्रन्थ)
प्राचीन कानडी प्रतियो के आधार पर प्रथम बार सम्पादित

[प्रथम खण्ड]

卐

टीकाकर्त्री :

आर्यिका १०५ श्री विशुद्धमती माताजी

卐

सम्पादक :
डॉ० चेतनप्रकाश पाटनी
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर

卐

प्रकाशक :
प्रकाशन विभाग, श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा

श्री यतिवृषभाचार्य विरचिता

तिलोयपण्णत्ती-प्रथम खण्ड

(प्रथम तीन महाधिकार)

❖

पुरोवाक्

डॉ० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य, सागर (म. प्र.)

❖

भाषा टीका

आर्यिका १०५ श्री विशुद्धमती माताजी

❖

सम्पादन :

डॉ० चेतनप्रकाश पाटनी, जोधपुर (राज०)

❖

प्रकाशक :

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा

❖

प्राप्ति स्थान

केन्द्रीय साहित्य भण्डार

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा

३०/३१ नई धान मण्डी, कोटा (राज०)

❖

मूल्य :

इकहत्तर रुपया, ७१) रु०

❖

प्रथम संस्करण :

ई० सन् १९८४]   वीर निर्वाण संवत् २५१०   [वि० सं० २०४०

❖

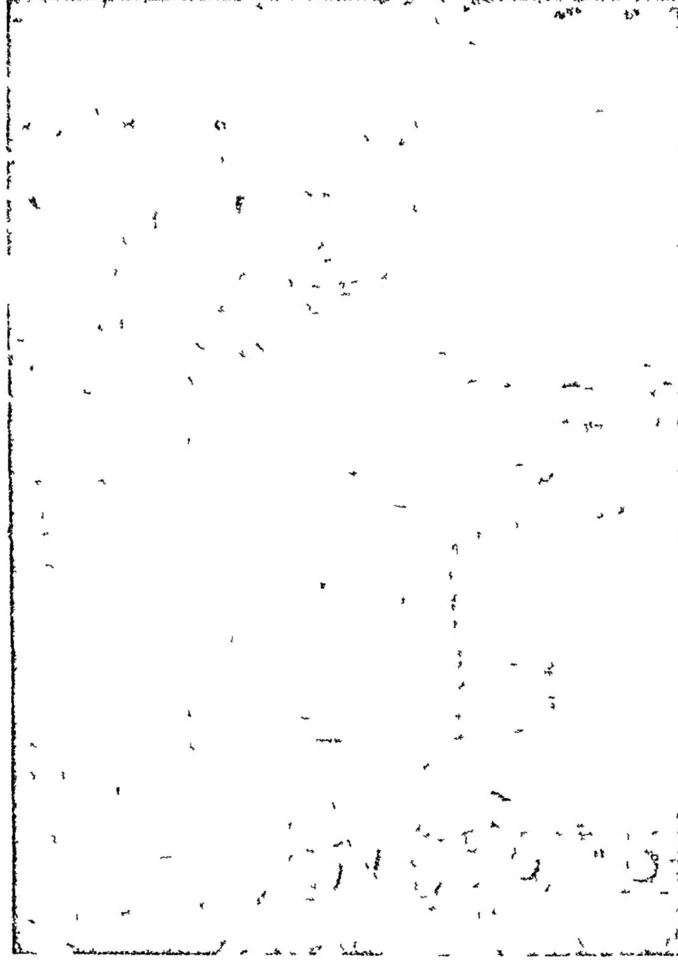
मुद्रक :

पाँचूलाल जैन

कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज–किशनगढ (राज०)

परम पूज्य तपस्वी आचार्यप्रवर

श्री १०८ श्री शिवसागरजी महाराज



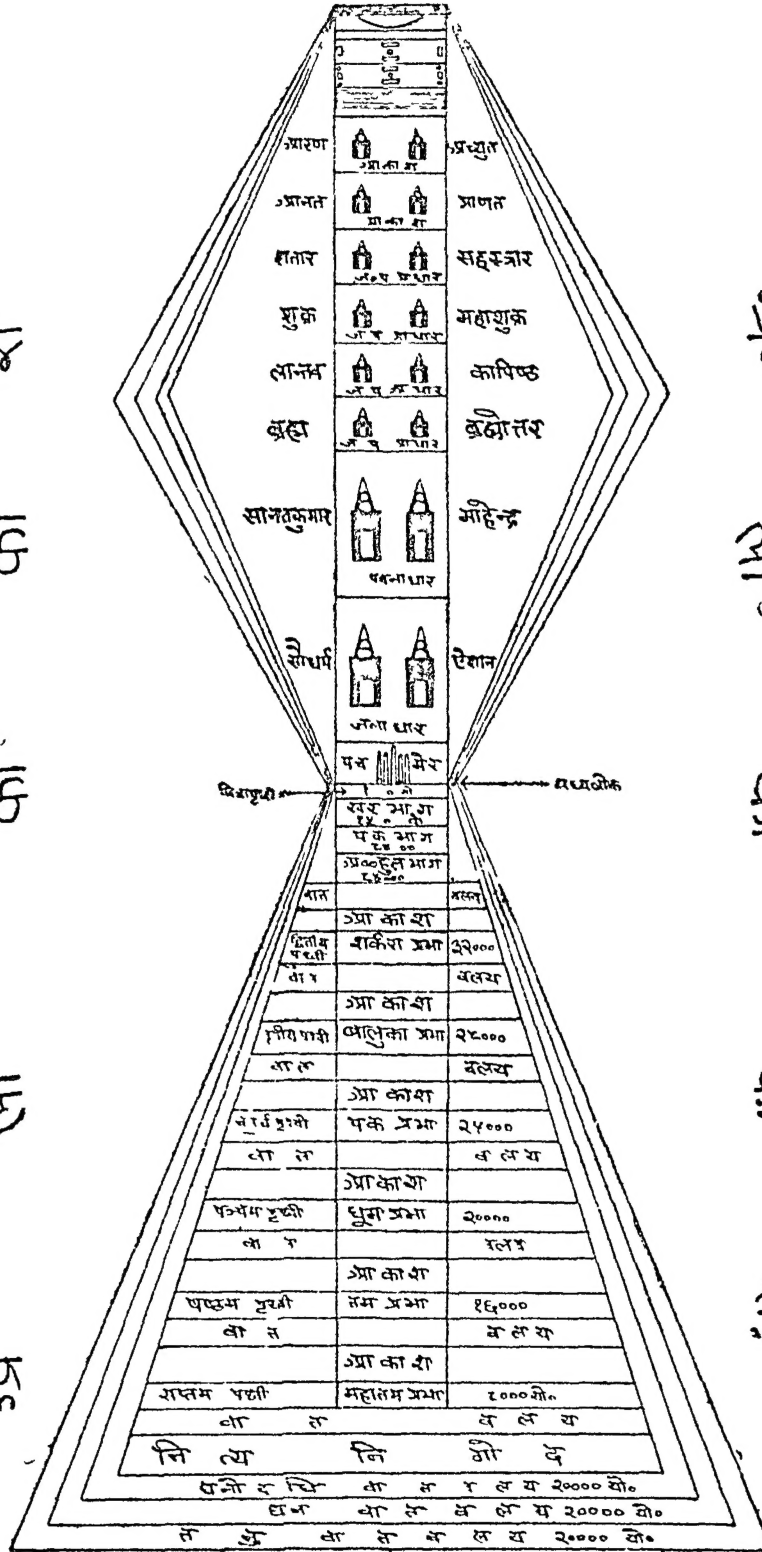
तपस्तपति यो नित्य, कृशागो गुणपीनकः।
शिवसिन्धुगुरु वन्दे, भव्यजीव हितकरम् ॥

जन्म	क्षुल्लकदीक्षा	मुनिदीक्षा	समाधि
वि स १९५८	वि स. २००१	वि स. २००६	फाल्गुन अमावस्या
अडग्राम (महाराष्ट्र)	सिद्धवरकूट	नागौर (राज०)	वि० सं २०२५ श्रीमहावीरजी

卐

त्रिलोकाकृति

卐



आरण
अच्युत
आनत
प्राणत
शतार
सहस्त्रार
शुक्र
महाशुक्र
कापिष्ठ
ब्रह्म
ब्रह्मोत्तर
सानतकुमार
माहेन्द्र
सौधर्म
ऐशान
आकाश
शर्करा प्रभा
बालुका प्रभा
पंक प्रभा
धूम प्रभा
तम प्रभा
महातम प्रभा
निगोद

समर्पण

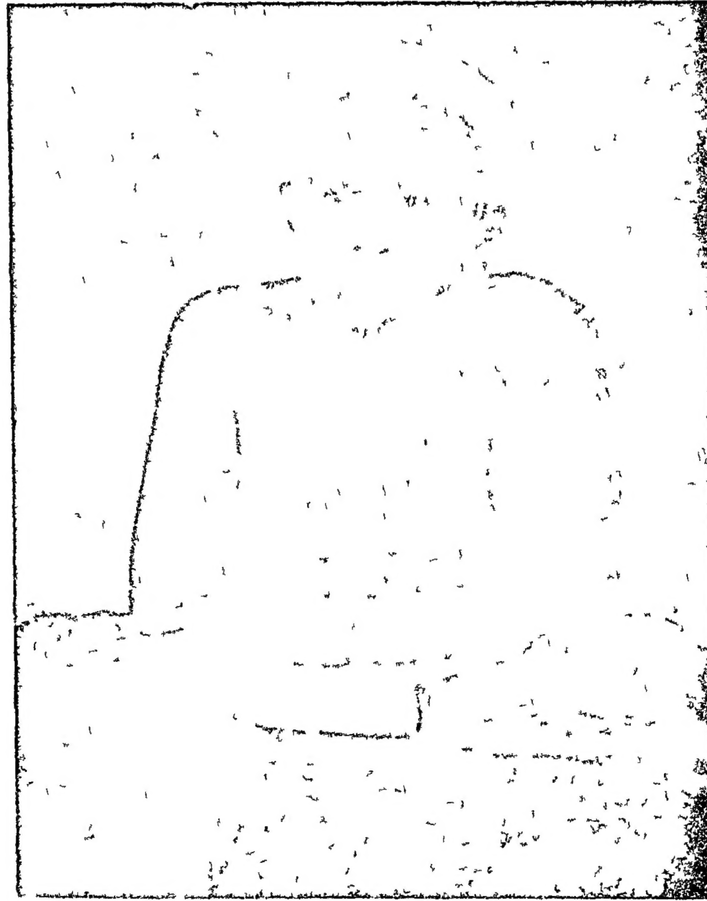
जिन्होंने असंयमरूपी कीचड़ में फंसी हुई मेरी आत्मा को
अपनी उदार एवं वात्सल्यवृत्तिरूपी डोर से बाहर
निकालकर विशुद्ध किया तथा रत्नत्रय का
बीजारोपण कर मोक्षमार्ग पर
चलने की अपूर्व शक्ति प्रदान की
उन्हीं परमोपकारी
दीक्षा गुरु
परम श्रद्धेय
प्रातः स्मरणीय यतीन्द्रवन्द्य
चारित्रचूडामणि दि० जैनाचार्य
श्री १०८ स्व० शिवसागरजी महाराज की
पन्द्रहवीं पुण्यतिथि के अवसर पर आपके ही
पट्टाधीशाचार्य परम तपस्वी जगद्वन्द्य चारित्र शिरोमणि
प० पू० धर्मदिवाकर प्रशममूर्ति आचार्य श्री १०८ धर्मसागरजी
महाराज के पुनीत कर-कमलों में अनन्य श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक
सादर समर्पित

—आर्यिका विशुद्धमती

तिलोयपण्णत्ती : प्रथम खण्ड

परम पूज्य धर्मदिवाकर

श्री १०८ श्री धर्मसागरजी महाराज



जन्म ।	क्षुल्लकदीक्षा '	मुनिदीक्षा ।	आचार्यपद ।
वि स १९७० पौष पू.	चैत्र शुक्ला ७, स. २००१	कार्तिक शु १४, स. २००८	फाल्गुन शु ८, स. २०२५
गम्भीरा (बूंदी)	वालूज	फुलेरा	श्री महावीरजी
राजस्थान	महाराष्ट्र	राजस्थान	राजस्थान

पुरोवाक्

श्री यतिवृषभाचार्य द्वारा विरचित 'तिलोय पण्णत्ती' ग्रथ जैन वाड्मय के अन्तर्गत करणानुयोग का प्राचीन ग्रन्थ है। इसमे लोक प्ररूपणा के साथ अनेक प्रमेयो का दिग्दर्शन उपलब्ध है। (राजवार्तिक, हरिवश पुराण, त्रिलोकसार, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति तथा सिद्धान्तसार दीपक आदि ग्रंथो का यह मूल स्रोत कहा जाता है)। इसका पहली बार प्रकाशन डा० हीरालालजी, डा० ए० एन० उपाध्ये के संपादकत्व मे प० बालचन्द्रजी शास्त्री कृत हिन्दी अनुवाद के साथ जीवराज ग्रन्थमाला सोलापुर से हुआ था, जो अब अप्राप्य है। इस सस्करण मे गणित सम्बन्धी कुछ सदर्भ अस्पष्ट रह गये थे जिन्हे इस सस्करण मे टीकाकर्त्री श्री १०५ आर्यिका विशुद्धमतीजी ने अनेक प्राचीन प्रतियो के आधार पर स्पष्ट किया है।

त्रिलोकसार तथा सिद्धान्तसार दीपक की टीका करने के पश्चात् आपने 'तिलोय पण्णत्ती' को प्राचीन प्रतियो के आधार से सशोधित कर हिन्दी अनुवाद से युक्त किया है तथा प्रसङ्गानुसार आगत अनेक आकृतियो, सदृष्टियो एव विशेषार्थो से अलकृत किया है, यह प्रसन्नता की बात है।

सपूर्ण ग्रन्थ नौ अधिकारो मे विभाजित है जिनमे से प्रारम्भिक तीन अधिकारो का यह प्रथम भाग प्रकाशित किया जा रहा है। चतुर्थ अधिकार को अनुवाद के साथ द्वितीय भाग और शेष अधिकारो को अनुवाद के साथ तृतीय भाग के रूप मे प्रकाशित करने की योजना है। पूज्य माताजी श्री विशुद्धमतीजी अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग वाली आर्यिका है। इनका समग्र समय स्वाध्याय और तत्त्व चिन्तन मे व्यतीत होता है। तपश्चरण के प्रभाव से इनके क्षयोपशम मे आश्चर्यकारक वृद्धि हुई है। इसी क्षयोपशम के कारण आप इन गहन ग्रथो की टीका करने मे सक्षम हो सकी है।

श्री चेतनप्रकाशजी पाटनी ने ग्रन्थ का सपादन बहुत परिश्रम से किया है तथा प्रस्तावना मे सम्बद्ध समस्त विषयो की पर्याप्त जानकारी दी है। गणित के प्रसिद्ध विद्वान् प्रो० लक्ष्मीचन्द्रजी ने 'तिलोय पण्णत्ती और उसका गणित' शीर्षक अपने लेख मे गणित की विविध धाराओ को स्पष्ट किया है। माताजी ने अपने 'आद्यमिताक्षर' मे ग्रन्थ के उपोद्घात का पूर्ण विवरण दिया है। भारतवर्षीय दि० जैन महासभा के उत्साही-कर्मठ अध्यक्ष श्री निर्मलकुमारजी सेठी ने महासभा के प्रकाशन विभाग द्वारा इस महान् ग्रथ का प्रकाशन कर प्रकाशन विभाग को गौरवान्वित किया है।

ग्रंथ के संपादक श्री चेतनप्रकाशजी पाटनी, दिवंगत पूज्य मुनिराज श्री १०८ समतासागरजी के सुपुत्र हैं तथा उन्हें पैतृक सम्पत्ति के रूप में अपार समता तथा श्रुताराधना की अपूर्व अभिरुचि (लगन) प्राप्त हुई है। टीकाकर्त्री माताजी प्रारम्भ में भले ही मेरी शिष्या रही हों पर अब तो मैं उनमें अपने आपको पढ़ा देने की क्षमता देख रहा हूं। टीकाकर्त्री माताजी और संपादक श्री चेतन प्रकाशजी पाटनी के स्वस्थ दीर्घजीवन की कामना करता हुआ अपना पुरोवाक् समाप्त करता हूं।

विनीत
पन्नालाल साहित्याचार्य
सागर



अपनी बात

जीवन मे परिस्थितिजन्य अनुकूलता-प्रतिकूलता तो चलती ही रहती है परन्तु प्रतिकूल परिस्थितियो मे भी उनका अधिकाधिक सदुपयोग कर लेना विशिष्ट प्रतिभाओ की ही विशेषता है। 'तिलोयपण्णत्ती' के प्रस्तुत सस्करण को अपने वर्तमान रूप मे प्रस्तुत करने वाली विदुषी आर्यिका पूज्य १०५ श्री विशुद्धमती माताजी भी उन्ही प्रतिभाओ मे से एक है। जून १९८१ मे सीढियो से गिर जाने के कारण आपको उदयपुर मे ठहरना पडा और तभी ति० प० की टीका का काम प्रारम्भ हुआ। काम सहज नही था परन्तु बुद्धि और श्रम मिलकर क्या नही कर सकते। साधन और सहयोग सकेत मिलते ही जुटने लगे। अनेक हस्तलिखित प्रतिया तथा उनकी फोटो स्टेट कॉपियाँ मगवाने की व्यवस्था की गई। कन्नड की प्राचीन प्रतियो को भी पाठभेद व लिप्यन्तरण के माध्यम से प्राप्त किया गया। डा० उदयचन्दजी जैन (सहायक आचार्य, जैनविद्या एवं प्राकृत विभाग, सुखाडिया विश्व-विद्यालय, उदयपुर) से प्रतियो के पाठभेद ग्रहण करने मे तथा प्राकृतभाषा एवं व्याकरण सम्बन्धी सशोधनो मे सहयोग मिला। इस प्रकार प्रथम चार महाधिकारो की पाण्डुलिपि तैयार करने मे ही अब तक लगभग १३,०००) रुपये व्यय हो चुके है। 'सेठी ट्रस्ट' लखनऊ से यह आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ और महासभा ने इसके प्रकाशन का उत्तरदायित्व वहन किया। श्रीमान् नीरजजी और निर्मल जी जैन ने सतना से प्रेसकापी हेतु न केवल कागज भेजा अपितु वे कई वार प्रत्यक्ष रूप से भी और पत्रो के माध्यम से भी सतत प्रेरणात्मक सहयोग देते रहे। डा० चेतनप्रकाशजी पाटनी ने सम्पादन का गुरुतर भार सभाला और अनेक रूपो मे उनका सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ। यह सव पूज्य माताजी के पुरुषार्थ का ही सुपरिणाम है। पूज्य माताजी 'यथानाम तथा गुण' के अनुसार विशुद्धमति को धारण करने वाली है तभी तो गणित के इस जटिल ग्रथ का प्रस्तुत सरल रूप हमे प्राप्त हो सका है।

पाँवो मे चोट लगने के वाद से पूज्य माताजी प्राय. स्वस्थ नही रहती तथापि अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग प्रवृत्ति से कभी विरत नही होती। सतत परिश्रम करते रहना आपकी अनुपम विशेषता है। आज से ८ वर्ष पूर्व मै माताजी के सम्पर्क मे आया था और यह मेरा सौभाग्य है कि तवसे मुझे पूज्य माताजी का अनवरत सान्निध्य प्राप्त रहा है। माताजी की श्रमशीलता का अनुमान मुझ जैसा कोई उनके निकट रहने वाला व्यक्ति ही कर सकता है। आज उपलब्ध सभी साधनो के वावजूद

मानाजी सम्पूर्ण लेखनकार्य स्वय अपने हाथ मे ही करती हैं—न कभी एक अक्षर टाइप करवानी हैं और न किसी मे लिखवाती हैं। सम्पूर्ण सशोधन-परिष्कारो को भी फिर हाथ से ही लिखकर संयुक्त करती हैं। मैं प्रायः सोचा करता हू कि धन्य है ये जो (आहार मे) इतना अल्प लेकर भी कितना अधिक दे रही हैं। इनकी यह देन चिरकाल तक समाज को समुपलव्ध रहेगी। इस महान् कृति की टीका के अतिरिक्त पूर्व मे आप 'त्रिलोकसार' और 'सिद्धान्तसार दीपक' जैसे वृहत्काय ग्रथो की टीका भी कर चुकी है और लगभग १०–१२ सम्पादित एव मौलिक लघु कृतिया भी आपने प्रस्तुत की हैं।

मैं एक अल्पज्ञ श्रावक हू—अधिक पढा लिखा भी नही हू किन्तु पूर्व पुण्योदय से जो मुझे यह पवित्र समागम प्राप्त हुआ है इसे मैं साक्षात् सरस्वती का ही समागम समझता हू। जिन ग्रंथो के नाम भी मैंने कभी नही सुने थे उनकी सेवा का सुअवसर मुझे पूज्य माताजी के माध्यम से प्राप्त हो रहा है, यह मेरे महान् पुण्य का फल तो है ही किन्तु इसमे आपका अनुग्रहपूर्ण वात्सल्य भी कम नही।

जैसे काष्ठ मे लगी लोहे की कील स्वय भी तर जाती है और दूसरो को भी तरने में सहायक होती है, उसी प्रकार सतत ज्ञानाराधना मे सलग्न पूज्य माताजी भी मेरी दृष्टि मे तरण-तारण हैं। आपके सान्निध्य से मैं भी ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय का सामर्थ्य प्राप्त करूं, यही भावना है।

मै पूज्य माताजी के स्वस्थ एव दीर्घजीवन की कामना करता हू।

विनीत—

ब्र० कजोडीमल कामदार, जोबनेर



आद्यमिताक्षर

जैनधर्म सम्यक् श्रद्धा, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र परक धर्म है इस धर्म के प्रणेता अरहत-देव है। जो वीतराग, सर्वज्ञ और हितोपदेशी होते है। इनकी दिव्य वाणी से प्रवाहित तत्त्वो की सज्ञा आगम है। इन्ही समीचीन तत्त्वो के स्वरूप का प्रसार-प्रचार एव आचरण करने वाले आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठी सच्चे गुरु है।

वर्तमान मे जितना भी आगम उपलब्ध है वह सब हमारे निर्ग्रन्थ गुरुओ की अनुकम्पा एवं धर्म वात्सल्य का ही फल है। यह आगम प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग के नाम से चार भेदो मे विभाजित है।

'त्रिलोकसार' ग्रथ के सस्कृत टीकाकार श्रीमन्माधवचन्द्राचार्य त्रैविद्य देव ने करणानुयोग के विषय मे कहा है कि—"तदर्थ-ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न-पापवर्ज्य-भीरूगुरु-पर्वक्रमेणाव्युच्छिन्नतया प्रवर्तमानमविनष्ट-सूत्रार्थत्वेन केवलज्ञान-समान करणानुयोग-नामान परमागम ..."। अर्थात् जिस अर्थका निरूपण श्री वीतराग सर्वज्ञ वर्धमान स्वामी ने किया था। उसी अर्थ के विद्यमान रहने से वह करणानुयोग परमागम केवलज्ञान के समान है।

आचार्य यतिवृषभ ने भी तिलोय पण्णत्ती के प्रथमाधिकार की गाथा ८६-८७ मे कहा है कि—"पवाह-रूवत्तणेण . . आइरियअणुक्कमाआदं तिलोयपण्णत्ति अह वोच्छामि "। अर्थात् आचार्य-परम्परा से प्रवाह रूप मे आये हुए 'त्रिलोक प्रज्ञप्ति' शास्त्र को मै कहता हू। इसी प्रकार प्रथमाधिकार की गाथा १४८ मे भी कहा है कि—"भणामो णिस्सद दिट्ठिवादादो" अर्थात् मै वैसा ही वर्णन करता हू, जैसा कि दृष्टिवाद अग से निकला है।

आचार्यो की इस वाणी से ग्रन्थ की प्रामाणिकता निर्विवाद सिद्ध है।

वीजारोपण—सन् १९७२ सं० २०२९ आसौज कृ० १३ गुरुवार को अजमेर नगर स्थित छोटे धडा की नशियाँ मे त्रिलोकसार ग्रथ की टीका प्रारम्भ कर स० २०३० ज्येष्ठ शुक्ला शुक्रवार को जयपुर खानियाँ मे पूर्ण हो चुकी थी। ग्रथ का विमोचन भी सन् १९७४ मे हो चुका था। पश्चात् सन् १९७५ के जून माह मे परम पूज्य परमोपकारी शिक्षा गुरु आ० क० १०८ श्री श्रुतसागरजी एवं प० पू० परम श्रद्धेय विद्यागुरु १०८ श्री अजितसागर म० जी के सान्निध्य मे तिलोयपण्णत्ती

ग्रन्थराज का स्वाध्याय प्रारम्भ किया किन्तु १५० गाथा के बाद जगह जगह शकाएँ उत्पन्न होने लगी तथा उनके समाधान न होने के कारण स्वाध्याय मे नीरसता आ गई। फलस्वरूप आत्मा मे निरन्तर यही खरोच लगती रहती कि त्रिलोकसार जैसे ग्रन्थ की टीका करने के बाद तिलोय प० का प्रमेय ज्ञेय नही बन पा रहा. . ।

उसी वर्ष (सन् १९७५ मे) सवाईमाधोपुर मे ससघ वर्षायोग हो रहा था। करणानुयोग के प्रकाण्ड विद्वान सिद्धान्त भूषण स्व० प० रतनचन्दजी मुख्तार सहारनपुर वाले सिद्धातसार दीपक की पाण्डुलिपि देखने हेतु आये। हृदय स्थित शल्य की चर्चा पण्डितजी से की। आपने प्रथमाधिकार की गाथा न० १४०, १४५-४७, १६३, १६८, १६६, १७८-७९, १८०, १८१, १८४ से १६१, १६६-६७, २०० से २१२, २१४ से २३४, २३८ से २६६ तक का विषय स्पष्ट कर समझा दिया जिसे मैने व्यवस्थित कर आकृतियो सहित नोट कर लिया। इसके पश्चात् सन् १९८१ तक इसकी कोई चर्चा नही उठी। कभी कभी मन मे अवश्य यह बात उठती रहती कि यदि ये ८३ गाथाए प्रकाशित हो जावे तो स्वाध्याय प्रेमियो को प्रचुर लाभ हो सकता है। यह बात सन् १९७७ मे जीवराज ग्रथमाला को भी लिखाई थी कि यदि आप तिलोयपण्णत्ती का पुन प्रकाशन करावे तो प्रथमाधिकार की कुछ गाथाओ का गणित हम उसमे देना चाहते है।

अकुरारोपण—श्रीमान् धर्मनिष्ठ मोहनलालजी शातिलालजी भोजन ने उदयपुर मे स्वद्रव्य से श्री महावीर जिन मन्दिर का निर्माण कराया था। जिसकी प्रतिष्ठा हेतु वे मुझे उदयपुर लाये। सन् १९८१ मे प्रतिष्ठा कार्य विशाल सघ के सान्निध्य मे सानन्द सम्पन्न हुआ। पश्चात् वर्षायोग के लिए अन्यत्र विहार होने वाला था किन्तु अनायास सीढियो से गिर जाने के कारण दोनो पैरो की हड्डियो मे खराबी हो गई और चातुर्मास ससघ उदयपुर ही हुआ। एक दिन तिलोयपण्णत्ती की पुरानी फाइल अनायास हाथ मे आ गई। उन गाथाओ को देखकर विकल्प उठा कि जैसे अचानक पैर पगु हो गये है उसी प्रकार एक दिन ये प्राण पखेरु उड जावेगे और यह फाइल बन्द ही पडी रहेगी। अतः इन गाथाओ सहित प्रथमाधिकार के गणित का कुछ विशेष खुलासा कर प्रकाशित करा देना चाहिए। उसी समय श्रीमान् प० पन्नालालजी को सागर पत्र दिलाया। श्री पण्डित सा० का प्रेरणाप्रद उत्तर आया कि आपको पूरे ग्रन्थ की टीका करनी है। श्री धर्मचन्द्रजी शास्त्री भी पीछे पड गये। इसी बीच श्री निर्मलकुमारजी सेठी सघ के दर्शनार्थ यहाँ आये। आप से मेरा परिचय प्रथम ही था। दो-ढाई घण्टे अनेक महत्त्व पूर्ण चर्चाए हुई। इसी बीच आपने कहा कि इस समय आपका लेखन कार्य क्या चल रहा है। मैने कहा लेखन कार्य प्रारम्भ करने की प्रेरणा बहुत प्राप्त हो रही है किन्तु कार्य प्रारम्भ करने का भाव नही है। कारण पूछे जाने पर मैने कहा कि ग्रन्थ लेखनादि के कार्यो मे सलग्न रहना साधु का परम कर्तव्य है किन्तु उसकी व्यवस्था आदि के व्यय की जो आकुलता एव याचना

आदि की प्रवृत्ति होती है उसे देखते हुए तो शास्त्र नही लिखना ही सर्वोत्तम है। यथार्थ मे इस प्रक्रिया से साधु को बहुत दोष लगता है यह बात ध्यान मे आते ही आपने तुरन्त आश्वासन दिया कि आप टीका का कार्य प्रारम्भ कीजिए लेखन कार्य के सिवा आपको अन्य किसी प्रकार की चिन्ता करने का अवसर प्राप्त नही होगा।

इसी बीच परम पूज्य प्रातः स्मरणीय १०८ श्री सन्मतिसागर म० जी ने यम सल्लेखना धारण कर ली। क्रमश. आहार का त्याग करते हुए मात्र जल पर आ चुके थे। शरीर की स्थिति अत्यन्त कमजोर हो चुकी थी। मेरे मन मे अनायास ही भाव जागृत हुए कि यदि तिलोयपण्णत्ती की टीका करनी ही है तो पूज्य महाराज श्री से आशीर्वाद लेकर आपके जीवन काल मे ही कार्य प्रारम्भ कर देना चाहिए। किन्तु दूसरी ओर आगम की आज्ञा सामने थी कि "यदि सघ मे कोई भी साधु समाधिस्थ हो तो सिद्धान्त ग्रन्थों का पठन-पाठन एव लेखनादि कार्य नही करना चाहिए"। इस प्रकार के द्वन्द्व में झूलता हुआ मेरा मन महाराज श्री से आशीर्वाद लेने वाले लोभ का संवरण नहीं कर सका और स० २०३८ मार्गशीर्ष कृष्णा ११ रविवार को हस्त नक्षत्र के उदित रहते ग्रथ प्रारम्भ करने का निश्चय किया तथा प्रातःकाल जाकर महाराज श्री से आशीर्वाद की याचना की। उस समय महाराज श्री का शरीर बहुत कमजोर हो चुका था। जीवन केवल तीन दिन का अवशेष था फिर भी धन्य है आपका साहस और धैर्य। तुरन्त उठ कर बैठ गये, उस समय मुखारविन्द से प्रफुल्लता टपक रही थी, हृदय वात्सल्य रस से उछल रहा था, वाणी से अमृत झर रहा था, उस अनुपम पुण्य वेला मे आपने क्या क्या दिया और मैने क्या लिया यह लिखा नही जा सकता किन्तु इतना अवश्य है कि यदि वह समय मै चूक जाती तो इतने उदारता पूर्ण आशीर्वाद से जीवनपर्यन्त वञ्चित रह जाती तब शायद यह ग्रन्थ हो भी नही पाता। पश्चात् विद्यागुरु १०८ श्री अजितसागर म० जी से आशीर्वाद लेकर हूमडो के नोहरे मे भगवान् जिनेन्द्रदेव के समीप बैठकर ग्रथ का शुभारम्भ किया।

उस समय धन लग्न का उदय था। लाभ भवन का स्वामी शुक्र लग्न मे और लग्नेश गुरु तथा कार्येश बुध लाभ भवन मे बैठकर विद्या भवन को पूर्ण रूपेण देख रहे थे। गुरु पराक्रम और सप्तम भवन को पूर्ण देख रहा था। कन्या राशिस्थ शनि और चन्द्र दशम मे, मगल नवम मे और सूर्य अष्टम भवन मे स्थित थे। इस प्रकार दि० २२-११-१९८१ को ग्रन्थ प्रारम्भ किया और २५-११-८२ बुधवार को णमोकार मन्त्र का उच्चारण करते हुए परमोपकारी महाराज श्री स्वर्ग पधार गये।

तुषारपात—दिनाक ९-१-८२ को प्रथमाधिकार पूर्ण हो चुका था किन्तु इसकी गाथा १३८, १४१-४२, २०८ और २१७ के विषयो का समुचित सदर्भ नही बैठा गा० २३४ का प्रारम्भ तो 'त' पद से हुआ था। अर्थात् इसको ३५ से गुणा करके । किस सख्या को ३५ से गुणित करना है यह बात गा० मे स्पष्ट नही थी। दि० १६-२-८२ को दूसरा अधिकार पूर्ण हो गया किन्तु इसमे भी गाथा

न० ८५, ८६, ९५, १९५, २०२ और २८८ की सदृष्टियों का भाव समझ में नही आया, फिर भी कार्य प्रगति पर रहा और २०-३-८२ को तीसरा अधिकार भी पूर्ण हो गया किन्तु इसमे भी गा० २५, २६, २७ आदि के अर्थ पूर्ण रूपेण बुद्धिगत नही हुए।

इतना होते हुए भी कार्य चालू रहा क्योकि प्रारम्भ मे ही यह निर्णय ले लिया था कि पूर्व सम्पादक द्वय एव हिन्दी कर्ता विद्वानो के अपूर्व श्रम के फल को सुरक्षित रखने के लिए ग्रन्थ का मात्र गणित भाग स्पष्ट करना है। अन्य किन्ही विषयो को स्पर्श नही करना। इसी भावना के साथ चतुर्थाधिकार प्रारम्भ किया जिसमे गा० ५७ और ६४ तो प्रश्न चिह्न युक्त थी ही किन्तु गणित की दृष्टि से गा० ६१ के बाद निश्चित ही एक गाथा छूटी हुई ज्ञात हुई। इसी बीच हस्तलिखित प्रतिया एकत्रित करने की बहुत चेष्टा की किन्तु कही से भी सफलता प्राप्त नही हुई, तब यही भाव उत्पन्न हुआ कि इस प्रकार अशुद्ध कृति लिखने से कोई लाभ नही। अन्ततोगत्वा अनिश्चित समय के लिए टीका का कार्य बन्द कर दिया।

प्रगति का पुरुषार्थ—उत्तर भारत के प्रायः सभी प्रमुख शास्त्र भण्डारो से हस्तलिखित प्रतियो की याचना की। जिनमे मात्र श्री महावीरप्रसाद विश्वम्भरदासजी सर्राफ चादनी चौक दिल्ली, श्रीमान् कस्तूरचन्द्रजी काशलीवाल जयपुर और श्री रतनलालजी सा० व्यवस्थापक श्री १००८ शान्तिनाथ दि० जैन खडेलवाल पचायती दीवान मन्दिर कामा (भरतपुर) के सौजन्य से (१ + २ + १ =) चार प्रतिया प्राप्त हुई। शपथ स्वीकार कर लेने के बाद भी जब अन्य कही से सफलता नही मिली तब उज्जैन और ब्यावर की प्रतियो से केवल चतुर्थाधिकार की फोटो कॉपी करवाई गई। इस प्रकार कुछ प्रतिया प्राप्त अवश्य हुई किन्तु वे सब मुद्रित प्रति के सदृश एक ही परम्परा की लिखी हुई थी। यहा तक कि पूर्व सम्पादको को प्राप्त हुई बम्बई की प्रति ही उज्जैन की प्रति है और इसी की प्रतिलिपि कामा की प्रति है, मात्र प्रतिलिपि के लेखनकाल मे अन्तर है। इस कारण कुछ पाठ भेदो के सिवा गाथाए आदि प्राप्त न होने से गणितादि की गुत्थिया ज्यो की त्यो उलझी ही रही।

उस समय परम पूज्य आचार्यवर्य १०८ विमलसागरजी म० और प० पूज्य १०८ श्री विद्यानन्दजी महाराज दक्षिण प्रान्त मे ही विराज रहे थे। इन युगल गुरुराजो को पत्र लिखे कि मूलबिद्री के शास्त्र भण्डार से कन्नड की प्रति प्राप्त कराने की कृपा कीजिए। महाराज श्री ने तुरन्त श्री भट्टारकजी को पत्र लिखवा दिया और उदयपुर से भी श्रीमान् प० प्यारेलालजी कोठडिया ने पत्र दिया। जिसका उत्तर प देवकुमारजी शास्त्री (वीरवाणी भवन, मूल विद्री) ने दिनाक २१-४-१९८२ को दिया कि यहा तिलोयपण्णत्ती की दो ताडपत्रीय प्राचीन प्रतिया मौजूद है। उनमे से एक प्रति मूलमात्र है और पूर्ण है। दूसरी प्रति मे टीका भी है लेकिन उसमे अन्तिम भाग नही हे पर सख्या की

सद्दृष्टिया वगैरह साफ है" इत्यादि। टीका की बात सुनते ही मन-मयूर नाच उठा। उसके लिए प्रयास भी बहुत किए। किन्तु अन्त मे ज्ञात हुआ कि टीका नही है।

इसी बीच (सन् १९८२ के मई या जून मे) ज्ञानयोगी भट्टारक श्री चारुकीर्तिजी (मूलविद्री) उदयपुर आए। चर्चा हुई और आपने प्रतिलिपि भेजने का विशेष आश्वासन भी दिया किन्तु अन्त मे वहा से चतुर्थाधिकार की गाथा सं० २२३८ पर्यन्त मात्र पाठभेद ही आए। साथ मे सूचना प्राप्त हुई कि 'आगे के पत्र नही है'। एक अन्य प्रति की खोज की गई जिसमे चतुर्थाधिकार की गाथा स० २५२७ से प्रारम्भ होकर पाँचवे अधिकार की गाथा स० २८० तक के पाठभेदो के साथ (चौथा अधिकार भी पूरा नही हुआ, उसमे २८९ गाथाओ के पाठभेद नही आए।) दिनाक २५-२-८३ को सूचना प्राप्त हुई कि ग्रन्थ यहाँ तक आकर अधूरा रह गया है अब आगे कोई पत्र नही है। इस सूचना ने हृदय को कितनी पीडा पहुचाई इसकी अभिव्यञ्जना कराने मे यह जड लेखनी असमर्थ है।

संशोधन—मूलविद्री से प्राप्त पाठभेदो से पूर्व लिखित तीनो अधिकारो का सशोधन कर अर्थात् पाठभेदो के माध्यम से यथोचित परिवर्तन एव परिवर्धन कर प्रेसकॉपी दिनाक १०-६-८३ को प्रेस मे भेज दी और यह निर्णय ले लिया कि इन तीन अधिकारो का ही प्रकाशन होगा, क्योकि पूरी गाथाओ के पाठ भेद न आने के कारण चतुर्थाधिकार शुद्ध हो ही नही सकता।

यहा अशोकनगरस्थ समाधिस्थल पर श्री १००८ शान्तिनाथ जिनालय का निर्माण दि० जैन समाज की ओर से कराया गया था। पुण्ययोग से मन्दिरजी की प्रतिष्ठा हेतु कर्मयोगी भट्टारक श्री चारुकीर्तिजी जैनविद्री वाले मई मास १९८३ मे यहा पधारे। ग्रन्थ के विषय मे विशेष चर्चा हुई। आपने विश्वासपूर्वक आश्वासन दिया कि हमारे यहा एक ही प्रति है और पूर्ण है किन्तु अभी वहा कोई उभय भाषाविज्ञ विद्वान नही है। जिसकी व्यवस्था मै वहा पहुचते ही करूगा और ग्रन्थ का कार्य पूर्ण करने का प्रयास करूगा।

आप कर्मनिष्ठ, सत्यभाषी, गम्भीर और शान्त प्रकृति के है। अपने वचनानुसार सितम्बर माह (१९८३) के प्रथम सप्ताह मे ही प्रथमाधिकार की लिप्यन्तरण गाथाये आ गई और तबसे आज पर्यंत यह कार्य अनवरत चालू है। गाथाएँ आने के तुरन्त बाद प्रेस से प्रेसकॉपी मगाकर उन्हे पुन: सशोधित किया और इस टीका का मूलाधार इसी प्रति को बनाया। इसप्रकार जैनविद्री से स० १२९६ की प्राचीन कन्नडप्रति की देवनागरी प्रतिलिपि प्राप्त हो जाने से और उसमे नवीन अनेक गाथाएँ, पाठभेद और शुद्ध सद्दृष्टियाँ आदि प्राप्त हो जाने से विषय एव भाषा आदि मे स्वयमेव परिवर्तन/परिवर्धन आदि हो गया, जिसके फलस्वरूप ग्रन्थ का नवीनीकरण जैसा ही हो गया है।

अन्तर्वेदना—हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त करने मे कितना सक्लेश और उनके पाठो एव गाथाओ आदि का चयन करने मे कितना श्रम हुआ है, इसका वेदन सम्पादक समाज तो मेरे लिखे

बिना ही अनुभव कर लेगी क्योकि वह भुक्तभोगी है और अन्य भव्यजन लिख देने पर भी उसका अनुभव नही कर सकेगे क्योकि—

न हि वन्ध्या विजानाति पर–प्रसव–वेदनाम् ।

कार्यक्षेत्र—वीरप्रसविनी भीलो की नगरी उदयपुर अपने नगर–उपनगरो मे स्थित लगभग पन्द्रह–सोलह जिनालयो से एव देव–शास्त्र–गुरु भक्त और धर्म–निष्ठ समाज से गौरवान्वित है। नगर के मध्य मण्डी की नाल मे स्थित १००८ श्री पार्श्वनाथ दि० जैन खण्डेलवाल मन्दिर इस ग्रन्थ का रचना क्षेत्र रहा है। यह स्थान सभी साधन सुविधाओ से युक्त है। यही बैठकर ग्रन्थ के तीन महाधिकार पूर्ण होकर प्रथम खण्ड के रूप मे प्रकाशित हो रहे है और चतुर्थ महाधिकार का ¾ कार्य पूर्ण हो चुका है।

सम्बल—इस भव्य जिनालय मे स्थित भूगर्भ प्राप्त, श्याम वर्ण, खड्गासन, लगभग ३' उत्तु ग, अतिशयवान् अति मनोज्ञ १००८ श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ जिनेन्द्र की चरण रज एव हृदयस्थित आपकी अनुपम भक्ति, आगमनिष्ठा और परम पूज्य परम श्रद्धेय साधु परमेष्ठियो का शुभाशीर्वाद रूप वरद हस्त ही मेरा सबल सम्बल रहा है। क्योकि जैसे लकडी के आधार बिना अधा व्यक्ति चल नही सकता वैसे ही देव, शास्त्र, गुरु की भक्ति बिना मै यह महान् कार्य नही कर सकती थी। ऐसे तारण–तरण देव, शास्त्र, गुरु को मेरा कोटिश त्रिकाल नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!!

आधार—प्रो० आदिनाथ उपाध्याय एव प्रो० हीरालालजी द्वारा सम्पादित, प० बालचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री द्वारा हिन्दी भाषानुवादित एव **जीवराज ग्रन्थमाला से प्रकाशित तिलोयपण्णत्ती और जैनविद्री स्थित जैन मठ की कन्नड प्रति से की हुई देवनागरी लिपि** ही इस ग्रन्थ की आधारशिला है। कार्य के प्रारम्भ मे तो मूलविद्री की कन्नड प्रति के पाठभेदो का ही आधार था किन्तु यह प्रति अधूरी ही प्राप्त हुई।

यदि मुद्रित प्रति न होती तो मै अल्पमति इसकी हिन्दी टीका कर ही नही सकती थी और यदि कन्नड प्रतियाँ प्राप्त न होती तो पाठो की शुद्धता, विषयो की सबद्धता तथा ग्रथ की प्रामाणिकता आदि अनेक विशेषताये ग्रन्थ को प्राप्त नही हो सकती थी।

सहयोग—नीव के पत्थर सदृश सर्व प्रथम सहयोग उदयपुर की उन भोली भाली माता-बहिनो का है जो तीन वर्ष के दीर्घकाल से सयम और ज्ञानाराधन के कारणभूत आहारादि दान प्रवृत्ति मे वात्सल्य पूर्वक तत्पर रही है।

(**श्री ज्ञानयोगी भट्टारक चारुकीर्तिजी** एव **पं० श्री देवकुमार शास्त्री, मूलविद्री** तथा श्री **कर्मयोगी भट्टारक चारुकीर्तिजी** एव **प० श्री देवकुमारजी शास्त्री, जैनविद्री** का प्रमुख सहयोग प्राप्त हुआ। प्राचीन कन्नड की देवनागरी लिपि देकर इस ग्रन्थ को शुद्ध बनाने का पूर्ण श्रेय आपको ही है)।

तिलोयपण्णत्ती ग्रन्थ प्राकृत भाषा मे है और यहा प्राकृत भाषाविज्ञ **डा० कमलचन्द्रजी सोगानी, डा० प्रेमसुमनजो जैन और डा० उदयचन्द्रजी जैन** उच्चकोटि के विद्वान है। समय-समय पर आपके सुझाव आदि बराबर प्राप्त होते रहे है। प्रतियो के मिलान एव पाठो के चयन आदि मे **डा० उदयचन्द्रजी** का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है।

सम्पादक श्री चेतनप्रकाशजी पाटनी सौम्य मुद्रा, सरल हृदय, सयमित जीवन और समीचीन ज्ञान भण्डार के धनी है। सम्पादन-कार्य के अतिरिक्त समय-समय पर आपका बहुत सहयोग प्राप्त होता रहा है। आपकी कार्यक्षमता बहुत कुछ अशो मे श्री रतनचन्द्रजी मुख्तार के रिक्त स्थान की पूर्ति मे सक्षम सिद्ध हुई है।

पूर्व अवस्था के विद्यागुरु, अनेक ग्रन्थो के टीकाकार, सरल प्रकृति, सौम्याकृति, अपूर्व विद्वत्ता से परिपूर्ण, विद्वच्छिरोमणि वयोवृद्ध **पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य** की सत्प्रेरणा मुझे निरन्तर मिलती रही है और भविष्य मे भी दीर्घकाल पर्यंत मिलती रहे, ऐसी भावना है।

श्रीमान् उदारचेत्ता दानशील **श्री निर्मलकुमारजी सेठी** इस ज्ञानयज्ञ के प्रमुख यजमान है। वे धर्मकार्यो मे इसी प्रकार अग्रसर रह कर धर्म-उद्योत करने मे निरन्तर प्रयत्नशील बने रहे।

श्रीमान् कजोड़ीमलजी कामदार, श्री धर्मचन्द्रजी शास्त्री, श्रीमान् नीरजजी, ब्र० चंचलबाई, ब्र० कुमारी पकज, प्रेस मालिक श्री पाँचूलालजी, श्री विमलप्रकाशजी ड्राफ्ट्स मेन अजमेर, श्री **रमेशचन्दजी मेहता उदयपुर** और **मुनिभक्त दि० जैन समाज उदयपुर** का पूर्ण सहयोग प्राप्त होने से ही आज यह ग्रन्थ नवीन परिधान मे प्रकाशित हो पाया है।

आशीर्वाद—इस सम्यग्ज्ञान रूपी महायज्ञ मे तन, मन एव धन आदि से जिन-जिन भव्य जीवो ने किञ्चित् भी सहयोग दिया है वे सब परम्पराय शीघ्र ही विशुद्ध ज्ञान को प्राप्त करे। यही मेरा आशीर्वाद है।

अन्तिम—मुझे प्राकृत भाषा का किञ्चित् भी ज्ञान नही है। बुद्धि अल्प होनेसे विषयज्ञान भी न्यूनतम है। स्मरण शक्ति और शारीरिक शक्ति क्षीण होती जा रही है। इस कारण स्वर, व्यजन, पद, अर्थ एव गणित आदि की भूल हो जाना स्वाभाविक है क्योकि—'को न विमुह्यति शास्त्र-समुद्रे'। अत परम पूज्य गुरुजनो से इसके लिए क्षमाप्रार्थी हू। विद्वज्जन ग्रन्थ को शुद्ध करके ही अर्थ ग्रहण करे।

इत्यलम्। भद्र भूयात्।

सं० २०४० — **आर्यिका विशुद्धमती**

वसन्त पचमी — दिनाक ७-२-१९८४

परम पूज्य १०५ आर्यिका श्री विशुद्धमती माताजी

(सक्षिप्त परिचय)



गृहस्थाश्रम का नाम	:	श्री सुमित्राबाई
जन्मस्थान	:	रीठी (जबलपुर) म० प्र०
पिता	:	श्रीमान् सिं० लक्ष्मणलालजी
माता	:	सौ० मथुराबाई
भाई	:	श्री नीरज जैन (गोमटेशगाथा के लेखक)
	:	श्री निर्मल जैन, मु० सतना (म० प्र०)
जाति	:	गोलापूर्व
जन्मतिथि	:	सं० १९८६ चैत्र शुक्ला तृतीया शुक्रवार, दि० १२-४-१९२९ ई०
लौकिकशिक्षा	:	साहित्यरत्न एव विद्यालकार, दो वर्षीय शिक्षकीय ट्रेनिंग।
धार्मिक शिक्षा	:	धर्म विषय मे शास्त्री
धार्मिक शिक्षा गुरु	:	विद्वद्शिरोमणि डॉ० प० पन्नालालजी साहित्याचार्य सागर—म० प्र० (राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त)
कार्यकाल	:	श्री दिगम्बर जैन महिलाश्रम (विधवाश्रम) का सुचारु रीत्या सचालन करते हुए प्रधानाध्यापिका के पद पर करीब १२ वर्ष पर्यन्त कार्य किया एव अपने सद्प्रयत्नो से संस्था मे १००८ श्री पार्श्वनाथ चैत्यालय की स्थापना करवाई।
वैराग्य का कारण	:	परम पूज्य परम श्रद्धेय आचार्य १०८ श्री धर्मसागरजी महाराज के सन् १९६२ सागर (म० प्र०) चातुर्मास मे आपकी परम निरपेक्षवृत्ति और परम शान्त स्वभाव का आकर्षण एवं सघस्थ प० पू० प्रवर वक्ता १०८ श्री सन्मतिसागरजी महाराज के मार्मिक सम्बोधन।
आर्यिका दीक्षा गुरु	:	परम पूज्य तपस्वी, अध्यात्मवेत्ता, चारित्रशिरोमणि, दिगम्बराचार्य १०८ श्री शिवसागरजी महाराज।
शिक्षागुरु	:	परम पूज्य सिद्धान्तवेत्ता आचार्यकल्प १०८ श्री श्रुतसागरजी महाराज।
विद्यागुरु	:	परम पूज्य अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी १०८ श्री अजितसागरजी महाराज।
दीक्षास्थल	:	श्री अतिशयक्षेत्र पपौराजी (म० प्र०)

दीक्षादिवस : सं० २०२१ श्रावण शुक्ला सप्तमी; दि० १४ अगस्त १९६४ ई०

वर्षायोग : पपौरा, श्री अतिशयक्षेत्र श्रीमहावीरजी, कोटा, उदयपुर, प्रतापगढ़, टोडारायसिंह, भिण्डर, उदयपुर, अजमेर, निवाई, रेनवाल (किशनगढ), सवाईमाधोपुर, सीकर, रेनवाल (किशनगढ), निवाई, निवाई, टोडारायसिंह, उदयपुर, उदयपुर, उदयपुर।

साहित्य सृजन :

टीकाएँ : १. श्रीमद् सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य विरचित त्रिलोकसार की सचित्र हिन्दी टीका।

२. भट्टारक सकलकीर्तिविरचित सिद्धान्तसार दीपक अपरनाम त्रैलोक्यसार दीपक की हिन्दी टीका।

३. परमपूज्य यतिवृषभाचार्य विरचित तिलोयपण्णत्ती की सचित्र हिन्दी टीका।

मौलिक रचनाएँ : १. श्रुतनिकुंज के किंचित् प्रसून (व्यवहार रत्नत्रय की उपयोगिता)

२. गुरु गौरव

३. श्रावक सोपान और बारह भावना।

संकलन : १. शिवसागर स्मारिका २. आत्मप्रसून

सम्पादन : १ समाधिदीपक २. श्रमणचर्या ३. दीपावली पूजन विधि ४ श्रावक सुमन सचय।

विशेष धर्मप्रभावना . (१) आपकी प्रखर और मधुर वाणी से प्रभावित होकर श्री दिगम्बर जैन समाज, जोबनेर (जयपुर) ने श्री शान्तिवीर गुरुकुल को स्थायित्व प्रदान करने हेतु श्री दिगम्बर जैन महावीर चैत्यालय का नवीन निर्माण कराया एवं आपके सान्निध्य मे ही वेदी प्रतिष्ठा कराई। (२) जन-धन एव आवागमन आदि अन्य साधन विहीन अलयारी ग्राम स्थित जिनमन्दिर का जीर्णोद्धार, २१/२ फुट ऊँची १००८ श्री चन्द्रप्रभ भगवान की नवीन प्रतिमा तथा सगमरमर की नवीन वेदी की प्राप्ति एवं वेदीप्रतिष्ठा आपके ही सद्प्रयत्नो का फल है। (३) इसीप्रकार अनेक स्थानो पर कलशारोहण महोत्सव हुए, जैन पाठशालाएँ खोली गई; श्री दिगम्बर जैन धर्मशाला टोडारायसिह का नवीनीकरण भी आपकी ही सद्प्रेरणा का फल है।

संयमदान : श्री ब्र० सूरजबाई मु० ड्योढी (जयपुर) की क्षुल्लिका दीक्षा; श्री ब्र० मनफूलबाई मातेश्वरी श्री गुलाबचन्दजी कपूरचन्दजी सर्राफ टोडारायसिह को आठवी प्रतिमा एव श्री कजोड़ीमल कामदार (जोबनेर) आदि को दूसरी प्रतिमा के व्रत आपके करकमलो से प्रदान किए गए।

—कजोड़ीमल कामदार (जोबनेर वाले)

प्रकाशकीय

जदिवसह कृत तिलोयपण्णत्ती प्राकृत भाषा मे जैन करणानुयोग का एक प्राचीन ग्रथ है। प्रसगवश इसमे जैन सिद्धान्त, इतिहास व पुराण सम्बन्धी भी बहुत सी सामग्री उपलब्ध होती है। मुख्यत· इसमे तीन लोक का वर्णन है। (जैन धर्म और जैन वाङ्मय के इतिहास का पूरा ज्ञान प्राप्त करने के लिए लोक विवरण सम्बन्धी ग्रथ भी उतने ही महत्त्वपूर्ण है जितने कोई भी अन्य ग्रन्थ हो सकते है। 'तिलोयपण्णत्ती' इस दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रथ है। इसका प्रथम प्रकाशन जीवराज ग्रन्थमाला, सोलापुर से डा हीरालाल जैन व डा ए एन उपाध्ये के सम्पादकत्व मे प० बालचन्दजी शास्त्रीकृत हिन्दी अनुवाद के साथ हुआ था जो अब अप्राप्य है। गणित सम्बन्धी जटिलता के कारण इस सस्करण मे कुछ सन्दर्भ अस्पष्ट रह गये थे। प्रथमाधिकार के स्वाध्याय के दौरान ही टीकाकर्त्री पूज्य माताजी विशुद्धमतीजी को इस अस्पष्टता की प्रतीति हुई जिसे उन्होंने स्व० प० रतनचन्दजी मुख्तार, सहारनपुर वालो से समझा। अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी पूज्य माताजी इससे पूर्व 'त्रिलोकसार' व 'सिद्धातसार दीपक' जैसे लोक विवरण सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण ग्रथो की हिन्दी टीका कर चुकी थी। उदयपुर मे, उन्होने इस प्राचीन ग्रथ की अन्य हस्तलिखित प्रतियो को आधार बनाकर पाठ सशोधन किया और विषय को चित्रो व सदृष्टियो के माध्यम से सुबोध बना कर भाषा टीका की।)

सयोग से, श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के अध्यक्ष श्री निर्मलकुमारजी सेठी पूज्य माताजी के दर्शनार्थ उदयपुर पधारे। ग्रन्थ के प्रकाशन की चर्चा चली तो माननीय सेठीजी ने इसे महासभा से प्रकाशित करना सहर्ष स्वीकार कर लिया। महासभा का प्रकाशन विभाग अभी दो-तीन वर्षो से ही सक्रिय हुआ है और 'तिलोयपण्णत्ती' जैसे ऐतिहासिक महत्त्व के प्राचीन ग्रन्थ का प्रकाशन कर अपने आपको गौरवान्वित अनुभव करता है। महासभा सच्चे देव शास्त्र गुरु मे अटूट निष्ठा रखने वाले दिगम्बर जैन समाज की लगभग ९० वर्षो से सक्रिय रहने वाली एक प्राचीन सस्था है जिसके कार्यकलापो की जानकारी इसके मुखपत्र "जैन गजट" के माध्यम से पाठको को मिलती रहती है। श्री सेठीजी ने १९८१ मे महासभा की अध्यक्षता ग्रहण की थी तबसे आपके मार्गदर्शन मे यह सस्था निरन्तर अपने उद्देश्यो की पूर्ति मे पूर्णत प्रयत्नशील है।

श्री सेठीजी ने न केवल ग्रन्थ के प्रकाशन की स्वीकृति ही दी है अपितु पारमार्थिक कार्यो के लिए निर्मित अपने 'सेठी ट्रस्ट' से इसके प्रकाशन के लिए उदारतापूर्वक अर्थ सहयोग भी प्रदान किया है, एतदर्थ महासभा का प्रकाशन विभाग आपका अतिशय आभार मानता है और यही कामना करता

है कि देव शास्त्र गुरु मे आपकी भक्ति निरन्तर वृद्धिगत हो। अनेक समितियो, सस्थाओ व क्षेत्रो को आपका उदार सरक्षण प्राप्त है। श्रावकोचित आपकी सभी प्रवृत्तियाँ सराहनीय एव अनुमोदनीय है।

'तिलोयपण्णत्ती' ग्रन्थ नौ अधिकारो का विशालकाय ग्रथ है। आपके हाथो मे तीन अधिकारो का यह पहला खण्ड देते हुए हमे हार्दिक प्रसन्नता है। दूसरा और तीसरा खण्ड भी निकट भविष्य मे हम उदार दातारो के सहयोग से आपके स्वाध्यायार्थ प्रस्तुत कर सकेंगे, ऐसी आशा है।

ग्रथ प्रकाशन एक महदनुष्ठान है जिसमे अनेक लोगो का सहयोग सम्प्राप्त होता है। महासभा का प्रकाशन विभाग अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी प पू १०५ आर्यिका श्री विशुद्धमती माताजी के चरणो मे शतशः नमोस्तु निवेदन करता है जिनके ज्ञान का सुफल इस नवीन हिन्दी टीका के माध्यम से हमे प्राप्त हुआ है। आशा है, पू माताजी की ज्ञानाराधना शीघ्र ही हमे दूसरा व तीसरा खण्ड भी प्रकाशित करने का गौरव प्रदान करेगी।

महासभा का प्रकाशन विभाग ग्रन्थ के सम्पादक डा. चेतनप्रकाशजी पाटनी, गणित के प्रसिद्ध विद्वान् प्रो लक्ष्मीचदजी जैन और पुरोवाक् लेखक—जैन जगत् के वयोवृद्ध सयमी विद्वान् प० पन्नालालजी साहित्याचार्य का भी अतिशय कृतज्ञ है जिनके सहयोग से प्रस्तुत सस्करण अपना वर्तमान रूप पा सका है। लेखन, सम्पादन, सशोधन कार्यो के अतिरिक्त भी ग्रथ प्रकाशन के अनेक कार्य बच रहते है वे भी कम महत्त्वपूर्ण नही होते। समस्त पत्राचार पू माताजी के सघस्थ ब्र० कजोड़ीमलजी कामदार ने किया है और वे ग्रन्थ सृजन मे आने वाली तात्कालिक कठिनाइयो का भी निवारण करते रहे है। श्री सेठीजी से सम्पर्क कर प्रेस को कागज आदि पहुचाने की व्यवस्था के गुरु भार का निर्वाह ब्र० धर्मचदजी जैन शास्त्री ने किया है। महासभा का प्रकाशन विभाग इन दोनो महानुभावो का आभारी है। गणितीय जटिल ग्रथ के सुरुचिपूर्ण मुद्रण के लिए मुद्रक श्री पाँचूलालजी जैन कमल प्रिन्टर्स भी धन्यवाद के पात्र हैं।

आशा है, महासभा का यह गौरवपूर्ण प्रकाशन वीतराग की वाणी के सम्यक् प्रचार मे कृतकार्य होगा। इति शुभम्

राजकुमार सेठी
मत्री : प्रकाशन विभाग
श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा



प्रस्तावना

तिलोयपण्णत्ती : प्रथम खण्ड

(प्रथम तीन महाधिकार)

१. ग्रन्थ-परिचय :

समग्र जैन वाङ्मय प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग और द्रव्यानुयोग रूप से चार अनुयोगो मे व्यवस्थित है। (करणानुयोग के अन्तर्गत जीव और कर्म विषयक साहित्य तथा भूगोल-खगोल विषयक साहित्य गर्भित है।) वैदिक वाङ्मय और बौद्ध वाङ्मय मे भी लोक रचना से सम्बन्धित बातो का समावेश तो है परन्तु जैसे स्वतन्त्र ग्रथ जैन परम्परा मे उपलब्ध हैं वैसे उन परम्पराओ मे नही देखे जाते।

(तिलोयपण्णत्ती (त्रिलोकप्रज्ञप्ति) करणानुयोग के अन्तर्गत लोकविषयक साहित्य की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृति है। यह प्राकृत भाषा मे लिखी गई है। यद्यपि इसका प्रधान विषय लोक-रचना का स्वरूप वर्णन है तथापि प्रसंगवश धर्म, संस्कृति व पुराण-इतिहास से सम्बन्धित अनेक बातो का वर्णन इसमे उपलब्ध है।)

ग्रथकर्त्ता यतिवृषभ ने इस रचना मे परम्परागत प्राचीन ज्ञान का सग्रह किया है न कि किसी नवीन विषय का। ग्रन्थ के प्रारम्भ मे ही ग्रथकार ने लिखा है—

मगलपहुदिच्छक्क वक्खाणिय विविह-गथ-जुत्तीहि ।
जिणवरमुहणिक्कत गणहरदेवेहिं गथित पदमाल ॥८५॥

सासद-पदमावण्ण पवाह-रुवत्तणेण-दोसेहि ।
णिस्सेसेहि विमुक्क आइरिय-अणुक्कमाआदं ॥८६॥

भव्व-जणाणदयरं वोच्छामि अह तिलोयपण्णत्ति ।
णिब्भर-भत्ति-पसादिद-वर-गुरु-चलणाणुभावेण ॥८७॥

रचनाकार ने कई स्थानो पर यह भी स्वीकार किया है कि इस विषय का विवरण और उपदेश उन्हे परम्परा से गुरु द्वारा प्राप्त नही हुआ है अथवा नष्ट हो गया है। इसप्रकार यतिवृषभाचार्य प्राचीन सम्माननीय ग्रथकार है। धवलाकार ने तिलोयपण्णत्ती के अनेक उद्धरण अपनी टीका मे उद्धृत किए है। आचार्य यतिवृषभ ने एकाधिकबार यह उल्लेख किया है कि 'ऐसा दृष्टिवाद अंग मे

निर्दिष्ट है । इय दिट्ठं दिट्ठिवादम्हि (१/६६), 'वास उदय भणामो णिस्सद दिट्ठि-वादादो' (१/१४८) । यह उल्लेख दर्शाता है कि ग्रंथ का स्रोत दृष्टिवाद नामक अंग है । गौतम गणधर ने तीर्थङ्कर महावीर की दिव्यध्वनि सुनकर द्वादशाग रूप जिनवाणी की रचना की थी । इसमें दृष्टिवाद नामका बारहवाँ अग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और विशाल था । इस अग के ५ भेद है १ परिकर्म, २ सूत्र, ३. प्रथमानुयोग, ४ पूर्वगत और ५. चूलिका । परिकर्म के भी ५ भेद है—१. व्याख्याप्रज्ञप्ति, २. द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, ३. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, ४. सूर्यप्रज्ञप्ति और ५ चन्द्रप्रज्ञप्ति । ये सब ग्रथ आज लुप्त है । इनके आधार पर रचित ग्रंथ इनके अभाव की आशिक पूर्ति अवश्य करते है । तिलोयपण्णत्ती ऐसा ही ग्रन्थ है, बाद के अनेक ग्रन्थ इसके आधार से बने प्रतीत होते है । डा० हीरालाल जैन के अनुसार "इसकी प्राचीनता के कारण यह अर्धमागधी श्रुतांग ग्रथो के साथ तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने योग्य है और अन्ततः भारतीय पुरातत्त्व, धर्म एव भाषा के अध्येताओं के लिए इस ग्रथ के विविध विषय और इसकी प्राकृत भाषा रोचकता से रहित नही है ।"

सम्पूर्ण ग्रथ को रचयिता आचार्य ने योजनापूर्वक नौ महाधिकारो मे सँवारा है—

सामण्णजगसरूवं[1] तम्मि ठिय [2]णारयाणलोय च ।
भावण[3]-णर[4]-तिरियाण,[5] वेंतर[6]-जोइसिय[7]-कप्पवासीण[8] ।।८८।।

सिद्धाण[9] लोगो त्ति य, अहियारे पयद-दिट्ठ-णव भेए ।
तम्मि णिबद्धे जीवे, पसिद्ध-वर-वण्णणा-सहिए ।।८९।।

वोच्छामि सयलभेदे, भव्वजणाणद-पसर-सजणण ।
जिणमुहकमलविणिग्गिय - तिलोयपण्णत्ति-णामाए ।।९०।।

उपर्युक्त नौ महाधिकारो मे अनेक अवान्तर अधिकार है । अधिकाश ग्रन्थ पद्यमय है किन्तु गद्यखण्ड भी आये है । प्रारम्भिक मगलाचरण मे पचपरमेष्ठी का स्तवन हुआ है परन्तु सिद्धो का स्तवन पहले है, अरहन्तो का बाद मे । फिर पहले महाधिकार के अन्त से प्रारम्भ कर प्रत्येक महाधिकार के आदि और अन्त मे क्रमश. एक-एक तीर्थंकर को नमस्कार किया गया है और अर से वर्धमान तक तीर्थंकरो को अन्तिम महाधिकार के अन्त मे नमस्कार किया गया है ।

इस ग्रथ का पहली वार सम्पादन दो भागो मे प्रो० हीरालाल जैन व प्रो० ए एन उपाध्ये द्वारा १९४३ व १९५१ मे सम्पन्न हुआ था । प० बालचन्द्रजी सिद्धान्त शास्त्री का मूलानुगामी हिन्दी अनुवाद भी इसमे है । इसका प्रकाशन जैन सस्कृति सरक्षक सघ, शोलापुर से जीवराज जैन ग्रथमाला के प्रथम ग्रथ के रूप मे हुआ था । उस समय सम्पादकद्वय को उत्तर भारत की दो ही महत्त्वपूर्ण प्रतिया सुलभ हुई थी अत॰ उन्हीके आधार पर तथा अपनी तीक्ष्ण मेधा शक्ति के बल पर उन्होने यह

दुष्कर कार्य सम्पन्न किया था । वे कोटि-कोटि बधाई के पात्र है । इन मुद्रित प्रतियो के होने से हमे वर्तमान सस्करण को प्रस्तुत करने मे भरपूर सहायता प्राप्त हुई है, हम उनके अत्यन्त ऋणी हैं । इन मुद्रित प्रतियो मे सम्पूर्ण ग्रन्थ का स्थूल रूप इस प्रकार है—

क्रम स	विषय	अन्तराधिकार	कुल पद्य	गद्य	गाथा के अतिरिक्त छद	मगलाचरण
१.	प्रस्तावना व लोक का सामान्य निरूपण	×	२८३	गद्य		पचपरमेष्ठी/आदि०
२	नारकलोक	१५ अधि०	३६७	×	४ इन्द्रवज्रा १ स्वागता	अजित/सम्भव०
३.	भवनवासीलोक	२४ अधि०	२४३	×	२ इन्द्रवज्रा ४ उपजाति	अभिनदन/सुमति
४.	मनुष्यलोक	१६ अधि०	२९६१	गद्य	७इ.व ,२दोधक २व ति,१शा वि	पद्मप्रभ/सुपार्श्व
५.	तिर्यग्लोक	१६ अधि०	३२१	गद्य	—	चन्द्रप्रभ/पुष्पदन्त
६.	व्यन्तरलोक	१७ अधि०	१०३	×	—	शीतल/श्रेयास
७	ज्योतिर्लोक	१७ अधि०	६१९	गद्य	—	वासुपूज्य/विमल
८	देवलोक	२१ अधि०	७०३	गद्य	१ शार्दूल वि०	अनन्त/धर्मनाथ
९.	सिद्धलोक	५ अधि०	७७	×	१ मालिनी	शाति,कुन्थु/अर से वर्ध.

अपनी सीमाओ के बावजूद इसके प्रथम सम्पादको ने जो श्रम किया है वह नूनमेव स्तुत्य है । सम्भव पाठ, विचारणीय स्थल आदि की योजना कर मूल पाठ को उन्होने अधिकाधिक शुद्ध करने का प्रयास किया है । उनकी निष्ठा और श्रम की जितनी सराहना की जाए कम है ।

२. टीका व सम्पादन का उपक्रम :

आर्यारत्न १०५ श्री विशुद्धमती माताजी अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी विदुषी साध्वी है । आपने त्रिलोकसार (नेमिचन्द्राचार्यकृत) और सिद्धान्तसार दीपक (भट्टारक सकलकीर्ति) जैसे महत्त्वपूर्ण विशालकाय ग्रन्थो की विस्तृत हिन्दी टीका प्रस्तुत की है । ये दोनो ग्रथ क्रमश. भगवान महावीर के २५०० वे परिनिर्वाण वर्ष और बाहुबली सहस्राब्दी प्रतिष्ठापना–महामस्तकाभिषेक महोत्सव वर्ष के

पुण्य प्रसंगों पर प्रकाशित होकर विद्वद्जनो मे समादरणीय हुए है । इन ग्रथो की तैयारियो में कई बार तिलोयपण्णत्ती का अवलोकन करना होता था क्योकि विषय की समानता है और साथ ही तिलोय-पण्णत्ती प्राचीन ग्रन्थ भी है । 'सिद्धातसारदीपक' के प्रकाशन के बाद माताजी की यह भावना बनी कि तिलोयपण्णत्ती की अन्य हस्तलिखित प्रतियाँ जुटा कर एक प्रामाणिक सस्करण विस्तृत हिन्दी टीका सहित प्रकाशित किया जाए । आप तभी से अपने सकल्प को मूर्त रूप देने मे जुट गई और अनेक स्थानो से आपने हस्तलिखित प्रतिया भी मँगवा ली । पर प्रतियो के मिलान करने से ज्ञात हुआ कि उत्तर भारत की लगभग सभी प्रतिया एकसी है । जो कमियाँ दिल्ली और बम्बई की प्रतियो मे है वे ही लगभग सब मे है । अतः कुछ विशेष लाभ नही दिखाई दिया । अब दक्षिण भारत मे प्रतियो के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त करने की कोशिश की गई । (संयोग से मूडबद्री मठ के भट्टारक स्वामी ज्ञानयोगी चारुकीर्तिजी का आगमन हुआ । वे उदयपुर माताजी के दर्शनार्थ भी पधारे । माताजी ने तिलोयपण्णत्ती के सम्बन्ध मे चर्चा की तो वे बोले कि मूडबद्री मे श्रीमती रमारानी जैन शोध सस्थान मे प्रतियाँ है पर वे कन्नड लिपि मे है अत. वही एक विद्वान बैठाकर पाठान्तर भेजने की व्यवस्था करनी होगी । वहाँ जाकर उन्होने पाठभेद भिजवाये भी परन्तु ज्ञात हुआ कि वहाँ की दोनो प्रतियाँ अपूर्ण है । इन पाठान्तरो मे कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, कुछ छूटी हुई गाथाए भी इनमे मिली है अत बडी व्यग्रता थी कि कोई पूर्ण प्रति मिल जाए । खोज के प्रयत्न चलते रहे तभी अशोकनगर उदयपुर मे आयोजित पचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के अवसर पर श्रवणबेलगोला मठ के भट्टारक स्वामी कर्मयोगी चारुकीर्तिजी पधारे । उन्होने बताया कि वहा एक पूर्ण प्रति है, शीघ्र ही लिप्यन्तरण मँगाने की योजना बनी और वहाँ एक विद्वान रख कर लिप्यन्तरण मँगाया गया, यह प्रति काफी शुद्ध, विश्वसनीय और प्राचीन है । फलत· इसी प्रति को प्रस्तुत सस्करण की आधार प्रति बनाया गया है । यो अन्य सभी प्रतियो के पाठ भेद टिप्पण मे दिये है ।)

तिलोयपण्णत्ती विशालकाय ग्रथ है । पहले यह छोटे टाइप मे दो भागो मे छपा है । परतु विस्तृत हिंदी टीका एवं चित्रो के कारण इसकी स्थूलता वहुत बढ गई है अतः अब इसे तीन खण्डो मे प्रकाशित करने की योजना बनी है । प्रस्तुत कृति (तीन महाधिकारो का) प्रथम खंड है । दूसरे खंड मे केवल चौथा अधिकार–लगभग ३००० गाथाओ का होगा । तीसरे अर्थात् अतिम खड मे शेष पाच अधिकार रहेगे ।

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा इसके प्रकाशन का व्ययभार वहन कर रही है, एतदर्थ हम महासभा के अतीव आभारी है ।

पूज्य माताजी का सकल्प आज मूर्त हो रहा है, यह हमारे लिये अत्यत प्रसन्नता का विषय है । पूर्णतया समालोचक दृष्टि से सम्पादित तो नही किंतु अधिकाधिक प्रामाणिकता पूर्वक सम्पादित

सस्करण प्रकाशित करने का हमारा लक्ष्य आज पूरा हो रहा है, यह आत्मसतोष मेरे लिए महार्घ है ।

३. हस्तलिखित प्रतियों का परिचय :

तिलोयपण्णत्ती का प्रस्तुत सस्करण निम्नलिखित प्रतियो के आधार से तैयार किया गया है—

[१] द—दिल्ली से प्राप्त होने के कारण इस प्रति का नाम 'द' प्रति है। इसके मुखपृष्ठ पर 'श्री दिगम्वर जैन सरस्वती भण्डार धर्मपुरा, दिल्ली (लाला हरसुखराय सुगनचदजी) न० आ ८ (क) श्री नवामदिरजी' अकित है। यह १२"×५" आकार की है। कुल २०४ पत्र हैं। प्रत्येक पत्र मे १४ पक्तिया है और प्रति पक्ति मे ५० से ५२ वर्ण है। पूरी प्रति काली स्याही से लिखी गई है। प्रत्येक पृष्ठ का अलकरण है। एक ओर पृष्ठ के मध्यभाग मे लाल रंग का एक वृत्त है, दूसरी ओर तीन वृत्त। एक स्थान पर मध्य मे १६ गाथाये छूट गई है जो अन्त मे एक स्वतन्त्र पत्र पर लिख दी गई है, साथ मे यह टिप्पण है—'इति गाहा १६ त्रैलोक्यप्रज्ञप्तौ पश्चात् प्रक्षिप्ता ।" सम्पूर्ण प्रति बहुत सावधानी से लिखी हुई मालूम होती है तो भी अनेक लिपिदोष तो मिलते ही है। देखने मे यह प्रति बम्बई की प्रति से प्राचीन मालूम पडती है।

आरम्भ मे मङ्गल चिह्न के बाद प्रति इस प्रकार प्रारम्भ होती है—ॐ नम. सिद्धेभ्य.। प्रति के अन्त मे लिपिकार की प्रशस्ति इस प्रकार है—

प्रशस्ति स्वस्ति श्री स० १५१७ वर्षे मार्ग्ग सुदि ५ भौमवारे श्री मूलसघे वलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारकश्रीपद्मनदिदेवास्ततपट्टे भट्टारकश्रीशुभचन्द्रदेवा तत्पट्टालङ्कारभट्टारकश्रीजिनचन्द्रदेवा । मु० श्रीमदनकीर्ति तच्छिष्य ब्रह्मनरस्यघकस्य खडेलवालान्वये पाटणीगोत्रे स० वी धू भार्या बहुश्री तत्पुत्र सा० तिहुणा भार्या तिहुणश्री सुपुत्रा: देवगुरुचरणकमलससेवनमधुकरा: द्वादशव्रतप्रतिपालनतत्परा सा० महिराजभ्रातृ ष्यौ राजसुपुत्रजालप। महिराजभार्या महणश्रीष्यौ राजभार्याष्यौ श्री सहिते त्प एतद् ग्रन्थं त्रैलोक्यप्रज्ञप्तिसिद्धान्त लिखाप्य ब्र० नरस्यघकृते कर्मक्षयनिमित्ते प्रदत्त ।।छ।।

यावज्जिनेन्द्रधर्मोऽय लोलोकेस्मिन् प्रवर्तते ।
यावत्सुरनदीवाहास्तावन्नन्दतु पुस्तक. ।।१।।

इद पुस्तक चिर नद्यात् ।।छ।। शुभमस्तु ।। लिखित प० नरसिंहेन ।।छ।। श्रीझुंझुणुपुरे लिखितमेतत्पुस्तकम् ।।छ।।

(पूर्व सम्पादन भी इसी प्रति से हुआ था।)

[२] क—कामा (भरतपुर) राजस्थान से प्राप्त होने के कारण इस प्रति का नाम 'क' प्रति है। यह कामा के श्री १००८ शान्तिनाथ दिगम्बर जैन खण्डेलवाल पचायती दीवान मन्दिर से प्राप्त हुई है। यह १२½"×७" आकार की है और इसके कुल पत्रो की सख्या ३१६ है। प्रत्येक पत्र मे १३ पंक्तियाँ हैं। प्रति पक्ति मे ३७ से ४० वर्ण हैं। लेखन में काली व लाल स्याही का प्रयोग किया गया है। पानी एव नमी का असर पत्रो पर हुआ दिखाई देता है तथापि प्रति पूर्णत. सुरक्षित और अच्छी स्थिति मे है।

यह बम्बई प्रति की नकल ज्ञात होती है, क्योंकि वही प्रशस्ति ज्यो की त्यो लिखी गई है। लिपिकाल का अन्तर है—

"सवत् १८१४ वर्षे मिती माघ शुक्ला नवम्या गुरुवारे। इद पुस्तक लिपीकृत कामावतीनगर-मध्ये। श्रूत भूयात् ॥ श्री. ॥

❀ ❀ ❀

[३] ठ—इस प्रति का नाम 'ठ' प्रति है। यह डॉ० कस्तूरचन्दजी कासलीवाल के सौजन्य से श्री दिगम्बर जैन सरस्वती भवन, मन्दिरजी ठोलियान, जयपुर से प्राप्त हुई है। इसके वेष्टन पर 'नं० ३३२, श्री त्रिलोकप्रज्ञप्ति प्राकृत' अंकित है। प्रति १२½"×५" आकार की है। कुल पत्र सख्या २८३ है परन्तु पत्र सख्या ८८ से १०३ और १५१ से २५० प्रति में उपलब्ध नही है।

पत्र सख्या १ से ८६ तक की लिपि एक सी है। पत्र ८७ एक ओर ही लिखा गया है। दूसरी ओर बिल्कुल खाली है। इसके हाशिए मे बाये कोने मे १०३ संख्या अकित है और दाये कोने मे नीचे हाशिए मे सख्या ८७ अकित है। यह पृष्ठ अलिखित है।

पत्र सख्या १०४ से १५० और २५१ से २८३ तक के पत्रो की लिपि भी भिन्न भिन्न है। इस प्रकार इस प्रति मे तीन लिपियाँ है। प्रति अच्छी दशा मे है। कागज भी मोटा और अच्छा है। पत्र सख्या १०४ से १५० तक के हाशिये मे बायी तरफ ऊपर 'त्रिलोक प्रज्ञप्ति' लिखा गया है। शेष पत्रो में नही लिखा गया है।

इसका लिपि काल ठीक तरह से नही पढा जाता। उसे काट कर अस्पष्ट कर दिया है, वह १८३० भी पढा जा सकता है और १८३१ भी। प्रशस्ति भी अपूर्ण है—

सवत् १८३१ चतुर्दशीतिथौ रविवासरे··· ··· · ···· ····· · ·······

तैलाद्रक्षेद्जलाद्रक्षेत्, रक्षेद् शिथिलवन्धनात् ।
मूर्खहस्ते न दातव्या, एव वदति पुस्तगा ।।छ।। श्री ……श्री …
श्री …श्री … …श्री… …श्री … श्री… …श्री … ।

❀❀❀

[४] ज—इस प्रति का नाम 'ज' प्रति है। यह भी डॉ० कस्तूरचन्दजी कासलीवाल के सौजन्य से श्री दिगम्बर जैन सरस्वती भवन, मन्दिरजी ठोलियान, जयपुर से प्राप्त हुई है। इसका आकार १३"×५" है। इसमे कुल २०९ पत्र है। १८ वे क्रम के दो पत्र है और २१ वाँ पत्र नही है अतः गाथा सख्या २२६ से २७२ (प्रथम अधिकार) तक नही है। पृष्ठ २२ तक की लिपि एकसी है, फिर भिन्नता है। पत्र सख्या १८२ भी नही है जबकि १८५ सख्या वाले दो पत्र है।

इस प्रति मे प्रशस्ति पत्र नही है।

❀❀❀

[५] य—इस प्रति का नाम 'य' प्रति है। यह श्री दिगम्बर जेन सरस्वती भवन, व्यावर से प्राप्त हुई है। वहाँ इसका वि० न० १०३६ और जन० न० … अंकित है। यह ११½"×६¾" आकार की है। कुल पत्र २४६ है। प्रत्येक पत्र में बारह पक्तियाँ हैं और प्रति पक्ति मे ३८-३९ अक्षर है। पत्रो की दशा ठीक है, अक्षर सुपाठ्य है एव सुन्दरतापूर्वक लिखे गए हैं। 'ॐ नमः सिद्धेभ्य' से ग्रन्थ का प्रारम्भ हुआ है। अन्त मे प्रशस्ति इस प्रकार लिखी गई है—

सवत् १७४५ वर्षे शाके १६१० प्रवर्त्तमाने आपाढ वदि ५ पचमी श्रीशुक्रवासरे। सग्रामपुरेमथेनविद्याविनोदेनालेखि प्रतिरिय समाप्ता । पं० श्रीबिहारीदासशिष्य घासीरामदयाराम पठनार्थम् ।

श्री ऐलक पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवन झालरापाटन इत्यस्यार्थं पन्नालाल सोनीत्यस्य प्रवन्धेन लेखक नेमिचन्द्र माले श्रीपालवासिनालेखि त्रिलोकसार प्रशस्तिरियम्। विक्रमार्के १९९४ तमे वर्षे वैशाखकृष्णपक्षे सप्तम्या तिथौ रविवासरे।

(फोटो कापी करा कर इसका मात्र चतुर्थाधिकार मगाया गया है)

यहाँ तिलोयपण्णत्ति की एक अन्य हस्तलिखित प्रति और भी है जिसका वि० न० ३८९ और जन० न० ४११ है। इसमे ५१८ पत्र है। पत्र का आकार ११"×४" है। प्रत्येक पत्र मे ९ पक्तियाँ है और प्रति पंक्ति मे ३१-३२ अक्षर। पत्र जीर्ण है अक्षर विशेषसुपाठ्य नही हैं। 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' से ग्रन्थ का लेखन प्रारम्भ हुआ है और अन्त मे लिखा है—

संवत् १७४५ वर्षे शाके १६१० प्रवर्त्तमाने आषाढ वदि ५ पचमी श्री शुक्रवासरे। संग्रामपुरे मथेन विद्याविनोदेनालेखि प्रतिरिय समाप्ता।)

प० श्री बिहारीलालशिष्य घासीरामदयारामपठनार्थम्। श्रीरस्तु कल्याणमस्तु।

उपर्युक्त प्रति इसी प्रति की प्रतिलिपि है।

[६] (ब—बम्बई से प्राप्त होने के कारण इस प्रति का नाम 'ब' प्रति है। श्री ऐलक पन्नालाल जैन सरस्वती भवन सुखानन्द धर्मशाला बम्बई के सग्रह की है। यह प्रति देवनागरीलिपि मे देशी पुष्ट कागज पर काली स्याही से लिखी गई है। प्रारम्भिक व समाप्तिसूचक शब्दो, दण्डो, सख्याओ, हाशिए की रेखाओ तथा यत्र-तत्र अधिकारशीर्षको के लिए लाल स्याही का भी उपयोग किया गया है। प्रति सुरक्षित है और हस्तलिपि सर्वत्र एकसी है।

यह प्रति लगभग ६" चौड़ी, १२½" लम्बी तथा लगभग २½" मोटी है। कुल पत्रो की संख्या ३३९ है। प्रथम और अन्तिम पृष्ठ कोरे है। प्रत्येक पृष्ठ मे १० पक्तिया है और प्रतिपक्ति मे लगभग ४०–४५ अक्षर है। हाशिए पर शीर्षक है—त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति। मगलचिह्न के पश्चात् प्रति के प्रारम्भिक शब्द है—ॐ नम. सिद्धेभ्य.। ३३३ वे पत्र पर अन्तिम पुष्पिका है–तिलोयपण्णत्ती समत्ता। इसके बाद सस्कृत के विविध छन्दो मे रचित १२४ श्लोको की एक लम्बी प्रशस्ति है जिसकी पुष्पिका इस प्रकार है—

इति सूरि श्रीजिनचन्द्रान्तेवासिना पण्डितमेधाविना विरचिता प्रशस्ता प्रशस्ति समाप्ता। सवत् १८०३ का मिती आसोजवदि १ लिखित मया सागरश्री सवाईजयपुरनगरे। श्रीरस्तु॰ ।।कल्पा।।

इसके बाद किसी दूसरे या हलके हाथ से लिखा हुआ वाक्य इस प्रकार है—'पोथी त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति की भट्टारकजी ने साधन करवी नै दीनी दुसरी प्रति मीती श्रावण सुदि १३ सवत् १९५६।

इस प्रति के प्रथम ८ पत्रो के हाशिए पर कुछ शब्दो व पक्तिखडो की सस्कृत छाया है। ५ वे पत्र पर टिप्पण मे त्रैलोक्यदीपक से एक पद्य उद्धृत है। आदि के कुछ पत्र शेष पत्रो की अपेक्षा अधिक मलिन है।

लिपि की काफी त्रुटिया है प्रति मे। गद्य भाग का और गाथाओ का भी पाठ बहुत भ्रष्ट है। कुछ गद्यभाग मे गणनाक लिखे है मानो वे गाथाये हो।)

(पूर्व सम्पादन भी इसी प्रति से हुआ था।)

[७] (उ—उज्जैन से प्राप्त होने के कारण इस प्रति का नाम 'उ' प्रति है। इसके मात्र चतुर्थ अधिकार की फोटो कॉपी कराई गई थी। इसका आकार १३½"×८½" है। प्रत्येक पत्र मे

१० पक्तिया और प्रत्येक पक्ति में ४४—४५ वर्ण है। काली स्याही का प्रयोग किया गया है। प्रति पूर्णत सुरक्षित और अच्छी दशा मे है।

यह बम्बई प्रति की ही नकल है क्योकि वही प्रशस्ति ज्यो की त्यो लिखी गई है। लिपिकाल का भी अन्तर नही दिया गया है।)

मूडबिद्री की प्रतियाँ :

ज्ञानयोगी स्वस्तिश्री भट्टारक चारुकीर्ति पण्डिताचार्यवर्य स्वामीजी के सौजन्य से श्रीमती रमारानी जैन शोधसस्थान, श्री दिगम्बर जैन मठ, मूडबिद्री से हमे तिलोयपण्णत्ती की हस्तलिखित कानडी प्रतियो से प० देवकुमारजी जैन शास्त्री ने पाठान्तर भिजवाए थे। उन प्रतियो का परिचय भी उन्होने लिख भेजा है, जो इस प्रकार है—

कन्नड़प्रान्तीय ताड़पत्रीय ग्रन्थसूची पृ० सं० १७०–१७१

विषय लोकविज्ञान

ग्रन्थ सं० ४९८ :

(१) तिलोयपण्णत्ति [त्रिलोक प्रज्ञप्ति]—आचार्य यतिवृषभ। पत्र स० १५१। प्रतिपत्र पक्ति—८। अक्षर प्रतिपक्ति ९९। लिपि-कन्नड। भाषा-प्राकृत। विषय लोकविज्ञान। अपूर्ण प्रति। शुद्ध है, जीर्णदशा है। इसमे सदृष्टियाँ बहुत सुन्दर एव स्पष्ट है। टीका नही है।

ॐ नम सिद्धमर्हतम् ॥ श्री सरस्वत्यै नमः ॥ श्री गणेशाय नम ॥ श्री निर्ग्रन्थविशाल-कीर्तिमुनये नम ॥ इस प्रकार के मगलाचरण से ग्रन्थारम्भ होता है।

इस प्रति के उपलब्ध सभी ताडपत्रो के पाठभेद भेजने के बाद पण्डितजी ने लिखा है—

("यहा तक मुद्रित (शोलापुर) तिलोयपण्णत्ति भाग १ का पाठान्तर कार्य समाप्त होता है। मुद्रित तिलोयपण्णत्ति भाग–२ मे ताडपत्र प्रति पूर्ण नही है, केवल न० १९ से ४३ तक २५ ताडपत्र मात्र मिलते है। शायद बाकी ताडपत्र लुप्त, खण्डित या अन्य ग्रन्थो के साथ मिल गये हो। यह खोज करने की चीज है।")

ग्रन्थ सं० ६४३ :

(२) तिलोयपण्णत्ति (त्रिलोकप्रज्ञप्ति) . आचार्य यतिवृषभ। पत्र संख्या ८८। पक्तिप्रतिपत्र ७। अक्षर प्रतिपक्ति ४०। लिपि कन्नड। भाषा प्राकृत। तिलोयपण्णत्ति का एक विभाग मात्र इसमे है। शुद्ध एव सामान्य प्रति है। इसमे भी सदृष्टिया है।

जैनबद्री (श्रवणबेलगोला) से प्राप्त प्रति का परिचय :

कर्मयोगी स्वस्ति श्री भट्टारक चारुकीर्ति स्वामीजी महाराज के सौजन्य से श्रवणबेलगोला के श्रीमठ के ग्रन्थ भण्डार मे उपलब्ध तिलोयपण्णत्ती की एक मात्र पूर्ण प्रति का देवनागरी लिप्यन्तरण श्रीमान् प० एस० बी० देवकुमार शास्त्री के माध्यम से हमे प्राप्त हुआ है। प्रस्तुत सस्करण की आधार प्रति यही है। प्रति प्रायः शुद्ध है और सद्दृष्टियो से परिपूर्ण है। इस प्रति का पण्डितजी द्वारा प्रेषित परिचय इस प्रकार है—

श्रवणबेलगोला के श्रीमठ के ग्रन्थ भण्डार मे यह प्रति एक ही है। ग्रन्थ ताडपत्रो का है, इसमे अक्षरो को सूचीविशेष से उकेरा न जाकर स्याही से लिख दिया गया है। सीधे पंक्तिवार अक्षर लिखे गए हैं। अक्षर सुन्दर है। कुछ अक्षरो को समान रूप से थोडा सा अन्तर रखकर लिखा गया है। उस अन्तर को ठीक-ठीक समझने मे बडी कठिनाई होती है।

ताडपत्र की इस प्रति मे कुल पत्रसंख्या १७४ है। प्रति पूर्ण है। कही-कही पत्रो को अगल-बगल मे कीड़ो ने खा लिया है या पत्र भी टूट गए है। सात पत्रो मे क्रमसंख्या नही है। उस जगह को कीड़ो ने खा लिया है। पत्र तो मौजूद है, उन पत्रो की संख्या है—१०१, १०९, १३६, १३७, १४६, १५५ और १५६। एक पत्र मे बीच का $\frac{1}{3}$ भाग बचा है। पत्रो की लम्बाई १८ इच और चौड़ाई २$\frac{1}{3}$ इच है। प्रत्येक पत्र मे ९ या १० पक्तियाँ है। प्रत्येक पक्ति मे ७७-७८ अक्षर है। एक पत्र मे करीब ४६ गाथाये है।

कन्नड़ से देवनागरी मे लिप्यन्तरण करते हुए लिप्यन्तरकर्त्ता उक्त पण्डितजी को कई कठिनाइयाँ झेलनी पडी है। कतिपय कठिनाइयो का उल्लेख उन्होने इस प्रकार किया है—

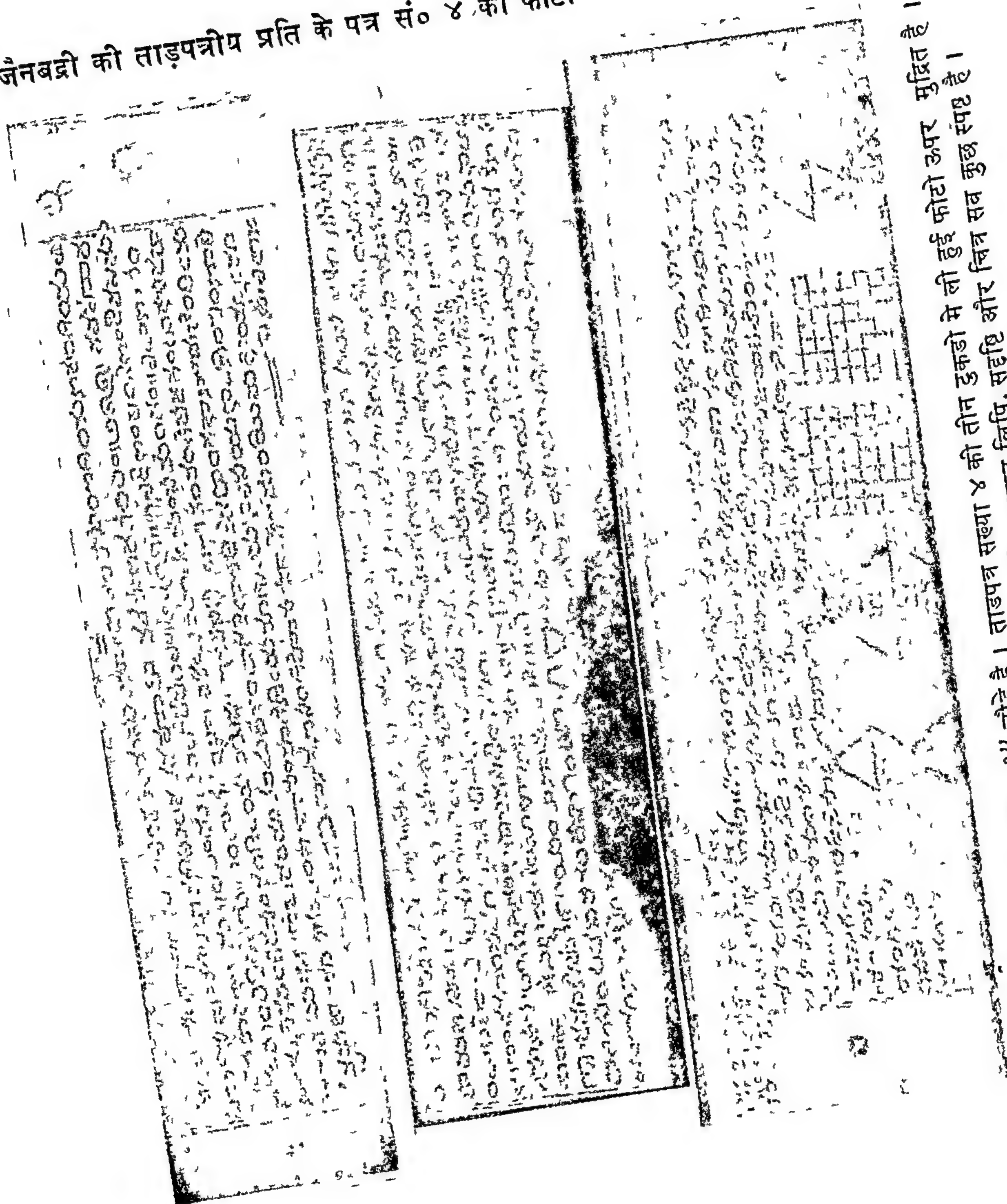
१. 'च' और 'ब' को एक सा लिखते है, सूक्ष्म अन्तर रहता है, इसके निश्चय मे कष्ट होता है।

२. इत्व और ईत्व का कुछ फरक नही करते, ऐसी जगह ह्रस्व दीर्घ का निश्चय करना कठिन होता है।

३ संयुक्ताक्षर लिखना हो तो जिस अक्षर का द्वित्व करना हो तो उस अक्षर के पीछे शून्य लगा देते है; उदाहरणार्थ 'घम्मा' लिखना हो तो 'घमा' ऐसा लिख देते है। जहाँ 'घंमा' ही पढना हो तो कैसे लिखा जाए, इसकी प्रत्येक 'व्यवस्था' ताड़पत्र की लिखावट में नही है। जहाँ 'वसाए' लिखा हो वहाँ 'वस्साए' क्यो न पढा जाए इसकी भी अलग कोई व्यवस्था नही है।

४. मूल प्रति मे किसी भी गाथा की संख्या नही दी गई है।

जैनबद्री की ताड़पत्रीय प्रति के पत्र सं० ४ का फोटो :



सभी ताडपत्र १८" लम्बे और ३⅓" चौड़े है। ताडपत्र सख्या ४ की तीन टुकडो मे ली हुई फोटो ऊपर मुद्रित है। ताडपत्र को मध्य के हिस्से मे कीडो ने खा लिया है। परन्तु लिपि, सद्दष्टि और चित्र सब कुछ स्पष्ट है।

प्रति के अन्तिम पत्र का पाठ इसप्रकार है—

पणमह जिणवरवसह गणहरवसह तहेव गुणहवसहं ।
दुसहपरिसहवसहं, जदिवसहं धम्मसुत्तपाठर वसहं ।।

एवमाइरियपरंपरागय तिलोयपण्णत्तीए सिद्धलोय सरू (व) णिरूवण पण्णत्ती णाम णवमो महाहियारो समत्तो । ❁❁❁❁

मग्गप्पभावणट्ठं पवयणभत्तिप्पचोदिदेण मया ।
भणिदगं . . . . . . वरं सोहतु बहुस्सुदाइरिया ।।१।।
चुण्णिसरूव अट्ठ, करणसरूवपमाण कि ज तं ।
अट्ठसहस्सपमाण, तिलोयपण्णत्तिणामाये ।। २ ।। ❁❁❁
णट्ठपमाद पणट्ठ–अट्ठमद, दिट्ठ सयलपरमट्ठ ।
णिट्ठुरवयणविरुमुक्क, णमामि अमरकित्तिमुणि ।।३।।
वीरमुहकमलणिग्गह, विउलामलसुदसमुद्दवड्ढदल ।
ससधरकरकिरणाभं, णमामि त अमरकित्तिमुणि ।।४।।
पचमहव्वयपुण्ण तिसल्लविरद तिगुत्तिजुत्त च ।
सुयसागरपारगद सुरकित्तिमुणिदमभिवदे ।। ५ ।।
दुद्धरदुम्मतकद्दम सोसणतरणि समत्तसत्तविद ।
सरण वजामि बहुदुक्खसलिलपूरिद संसार समुद्दबुड्डणभएण ।।६।।
मिच्छत्त तिमिर भाणु विगसिदवरभव्व कमल मडलियं ।
सुद्धोपयोगजुत्त, सुरकित्तिमुणीसर वदे ।। ७ ।।

सिरिमदुअखडिदविवहाखडलमडलियमणिमउडमरीचिपिजरिदभगवदरुहप्परमेसरमुहपद्मविणिग्गद-सत्तभगिणीपरवादिपादपमूलं कसवचण सकिलपक्खालिद कम्ममलपंकेहि । णिखिल सत्थ साणोपलकसणसेमुसीमुसित-पुरुहूदपुरोहिद गव्वेहि । दुव्वारवादिपरिसदवलेवपव्वदपाडणपगडिदस्सद्दादवज्जेहिं । उदारदारोदरदरिणिवेसिदासापि-सुणपिसाची वस गदासेस पुरुस परिसदुपरिवेसिद पुरुसत्तमाभासभासिदमिच्छावादाधकारणिरुहरणसहस्सकिरहेहिं । रायराजगुरुमडलाइरिय महावादवादीसर सकल विद्दज्जण-चक्कवट्टि वादिदविसालकित्तियति . . . .
सिरिमदमरकित्तियदीसरपियसिस्सभडारगधम्मभूसणेहि ।

परिपागपेसलं विमलमुत्ताफलसारिच्छ अक्खरेहिं सगवरुस १२६६ दिम स्वभाणुसंवच्छर भद्दपसुद्द ५ सो दिणे सुरताण पातसहा . . .

विजयरज्जे ओडगे अमहापुरे अणतससारविच्छेदणकर अणततित्थयपादमूले
अणवरद अप्पभावणत्थ लिखिदमिद तिलोयपण्णत्तीणाम परमागमं महामुणिमेव्वमाण समत्तो ।। ❁❁

.. . . लं सुबोधकमलं सब्भंगवीचीचयं,
गभीरं णिखिलट्ठुपालिकलित सच्छाधु हसाकुलं ।
पण्णाधीसपडिट्ठ पायगरवगट्ठाणण्णिदजीया–
द्दुगदितापवृद्धिहणण जेणागमक्ख सरो ॥ ८ ॥
जिण णुरु सय धणुप्पमाणो सुद्धफलिहमय ।
हरिपुरणाहं त ससारविसमविसरुक्खमूल उप्पडणणिउणचदप्पह वदे ॥९॥
हरिहरहिरण्यगर्भसत्रासितमदनमदगजवज्राकुशस्तवनकृतार्थीकृतसकलविनेयजनाय हरि .... नमः॥
श्रीमानस्ति समस्तदोषरहित प्रख्याललोकत्रया—
धीशाभ्रं डित पादपद्मयुगल सज्ज्ञानतेजोनिधिः ।
दुर्वारस्मरगर्वपर्वतपविर्मिथ्यादृगधुभ्रमत्—
सत्योद्धारणधीरणैकधिषणो सो सन्मतीशो जिन' ॥१०॥
सकलजगदानदनकर अभिनन्दन णम ॥

(यहाँ ग्रन्थ का अन्त हुआ है ।)

४. सम्पादन विधि :

किसी भी प्राचीन रचना का हस्तलिखित प्रतियो के आधार पर सम्पादन करना कोई आसान काम नही है । मुद्रित प्रति सामने होते हुए भी कई बार पाठान्तरो से निर्णय लेने मे बहुत श्रम और समय लगाना पडा है इसमे, नतमस्तक हू तिलोयपण्णत्ती के प्रथम सम्पादको की बुद्धि एव निष्ठा के समक्ष । सोचता हू उन्हे कितना अपार अथक परिश्रम करना पडा होगा । क्योकि एक तो इसका विषय ही जटिल है, दूसरे उनके सामने तो हस्तलिखित प्रतियो की सामग्री भी कोई बहुत सन्तोष-जनक नही थी । उन्हे किसी टीका, छाया अथवा टिप्पण की भी सहायता सुलभ नही थी । मुझे तो हिन्दी अनुवाद, सम्भवपाठ, विचारणीय स्थल आदि से पूरा मार्गदर्शन मिला है ।

प्रस्तुत सस्करण का मूलाधार श्रवणबेलगोला की ताड़पत्रीय कानडी प्रतिलिपि है। लिप्यन्तरण श्री एस० बी० देवकुमार शास्त्री ने भिजवाए हैं । उसी के आधार पर सारा सम्पादन हुआ है । मूडबिद्री की प्रति भी लगभग इस प्रति जैसी ही है, इसके पाठान्तर श्री देवकुमारजी शास्त्री ने भिजवाए थे ।

तिलोयपण्णत्ती एक महत्त्वपूर्ण धर्मग्रन्थ है और इसके अधिकाश पाठक भी धार्मिक रुचि सम्पन्न श्रावक श्राविका होगे या फिर स्वाध्यायशील मुनि आर्यिका आदि । इन्हे ग्रन्थ के विषय मे अधिक रुचि होगी, ये भाषा की उलझन मे नही पडना चाहेगे, यही सोचकर विषय के अनुरूप सार्थक पाठ

ही स्वीकार करने की दृष्टि रही है सर्वत्र। प्रतियों के पाठान्तर टिप्पण में अंकित कर दिए है। क्योकि हिन्दी टीका के विशेषार्थ मे तो सही पाठ या सशोधित पाठ की ही सगति बैठती है, विकृत पाठ की नही। कही कही सब प्रतियो मे एकसा विकृत पाठ होते हुए भी गाथा मे शुद्ध पाठ ही रखा गया है।

गणित और विषय के अनुसार जो सदृष्टियाँ शुद्ध है उन्हे ही मूल में ग्रहण किया गया है, विकृत पाठ टिप्पणी मे दे दिये है।

पाठालोचन और पाठसशोधन के नियमो के अनुसार ऐसा करना यद्यपि अनुचित है तथापि व्यावहारिक दृष्टि से इसे अतीव उपयोगी जानकर अपनाया गया है।

कानडी लिपि से लिप्यन्तरणकर्त्ता को जिन कठिनाइयो का सामना करना पडा है, उनका उल्लेख प्रति के परिचय मे किया गया है, हमारे समक्ष तो उनकी ताजा लिखी देवनागरी लिपि ही थी।

प्राकृत भाषा प्रभेदपूर्ण है और इसका व्याकरण भी विकसनशील रहा है अत बदलते हुए नियमों के आधार पर सशोधन न कर प्राचीन शुद्ध रूप को ही रखने का प्रयास किया है। इस कार्य मे श्री हरगोविन्द शास्त्री कृत पाइअसद्दमहण्णयो से पर्याप्त सहायता मिली है। यथासम्भव प्रतियो का शुद्ध पाठ ही संरक्षित हुआ है।

प्रथमबार सम्पादित प्रति मे सम्पादकद्वय ने जो सम्भवनीय पाठ सुझाए थे उनमे से कुछ ताडपत्रीय कानड़ी प्रतियो मे ज्यो के त्यो मिल गए हैं। वे तो स्वीकार्य हुए ही है। जिनगाथाओ के छूटने का सकेत सम्पादक द्वय ने किया है, वे भी इन कानडी प्रतियो मे मिली है और उनसे अर्थ प्रवाह की सगति बैठी है। प्रस्तुत संस्करण मे अब कल्पित, सम्भवनीय या विचारणीय स्थल अत्यल्प रह गए है तथापि यह दृढतापूर्वक नही कहा जा सकता कि व्यवस्थित पाठ ही ग्रन्थ का शुद्ध और अन्तिम रूप है। उपलब्ध पाठो के आधार पर अर्थ की सगति को देखते हुए शुद्ध पाठ रखना ही बुद्धि का प्रयास रहा है। आशा है, भाषा शास्त्री और पाठ विवेचक अपने नियम की शिथिलता देख कोसेगे नही अपितु व्यावहारिक उपयोगिता देख उदारतापूर्वक क्षमा करेगे।

५. प्रस्तुत संस्करण की विशेषताएँ :

तिलोयपण्णत्ती के प्रथम तीन अधिकारो का यह पहला खण्ड है। इसमे केवल मूलानुगामी हिन्दी अनुवाद ही नही है अपितु विषय सम्बन्धी विशेष विवरण की जहा भी आवश्यकता पड़ी है वह विस्तारपूर्वक विशेषार्थ मे दिया गया है। गणित सम्बन्धी प्रमेयो को, जहा भी जटिलता दिखाई दी है

पूर्णत' हल करके रखा गया है । सदृष्टियो का भी पूरा खुलासा किया गया है । इस संस्करण मे मूल सदृष्टियो की सख्या हिन्दी अर्थ के बाद अको मे नहीं दी गई है किन्तु उन सख्याओ को तालिकाओ मे दर्शाया गया है । एक अन्य विशेषता यह भी है कि चित्रो और तालिकाओं-सारणियो के माध्यम से विषय को सरलतापूर्वक ग्राह्य बनाने का प्रयत्न किया गया है । पहले अधिकार मे ५० चित्र हैं, दूसरे मे दो और तीसरे मे एक, इस प्रकार कुल ५३ चित्र है ।

पहले अधिकार मे पूर्व प्रकाशित सस्करण मे २८३ गाथाये थी । इसमे तीन नयी गाथाएँ या छूटी हुई गाथाएँ (स० २०६, २१६, २३७) जुड जाने से अब २८६ गाथाये हो गई है । इसी प्रकार दूसरे महाधिकार मे ३६७ गाथाओ की अपेक्षा ३७१ (१६४, ३३१, ३३२, ३६५ जुडी है) और तीसरे महाधिकार मे २४३ गाथाओ की अपेक्षा २५४ गाथाएँ हो गई है । तीसरे अधिकार मे नई जुडी गाथाओ की सख्या इस प्रकार है—१०७, १८६, १८७, २०२, २२२ से २२७ और २३२-३३ । इस प्रकार कुल १९ गाथाओ के जुडने से तीनो अधिकारो की कुल गाथाएँ ८९३ से बढ कर ९१२ हो गई है ।

प्रस्तुत सस्करण मे प्रत्येक गाथा के विषय को निर्दिष्ट करने के लिए उपशीर्षको की योजना की गई है और एतद् अनुसार ही विस्तृत विषयानुक्रमणिका तैयार की गई है ।

(क) प्रथम महाधिकार :

विस्तृत प्रस्तावनापूर्वक लोक का सामान्य निरूपण करने वाला प्रथम महाधिकार पॉच गाथाओ के द्वारा पच परमेष्ठियो की वन्दना से प्रारम्भ होता है किन्तु यहा अरहन्तो के पहले सिद्धो को नमस्कार किया गया है, यह विशेषता है । छठी गाथा मे ग्रथ रचना की प्रतिज्ञा है और ७ से ८१ गाथाओ मे मगल, निमित्त, हेतु, प्रमाण, नाम और कर्त्ता की अपेक्षा विशद प्ररूपणा की गई है । यह प्रकरण श्री वीरसेन स्वामिकृत षट्खण्डागम की धवला टीका (पु० १ पृ० ८-७१) से काफी मिलता जुलता है किन्तु जिस गाथा से इसका निर्देश किया है वह गाथा तिलोयपण्णत्ती से भिन्न है—

मगल-णिमित्त-हेऊ परिमाणं णाम तह य कत्तार ।
वागरिय छप्पि पच्छा, वक्खाणउ सत्थमाइरियो ।।धवला पु० १/पृ० ७

गाथा ८२-८३ मे ज्ञान को प्रमाण, ज्ञाता के अभिप्राय को नय और जीवादि पदार्थो के सव्यवहार के उपाय को निक्षेप कहा है । गाथा ८५-८७ मे ग्रथ प्रतिपादन की प्रतिज्ञा कर ८८-९० मे ग्रन्थ के नव अधिकारो के नाम निर्दिष्ट किये गये हैं ।

गाथा ६१ से १०१ तक उपमा प्रमाण के भेद प्रभेदो से प्रारम्भ कर पल्य, स्कन्ध, देश, प्रदेश, परमाणु आदि के स्वरूप का कथन किया गया है। अनन्तर १०२ से १३३ गाथा तक कहा गया है कि अनन्तानन्त परमाणुओ का उवसन्नासन्न स्कन्ध, आठ उवसन्नासन्नो का सन्नासन्न, आठ सन्नासन्नो का त्रुटिरेणु, आठ त्रुटिरेणुओ का त्रसरेणु, आठ त्रसरेणुओ का रथरेणु, आठ रथरेणुओ का उत्तमभोगभूमिजबालाग्र, इसी प्रकार उत्तरोत्तर आठ-आठ गुणित मध्यभोगभूमिजबालाग्र, जघन्यभोगभूमिजबालाग्र, कर्मभूमिजबालाग्र, लीख, जू, जौ और उत्सेधागुल होता है। पाँच सौ उत्सेधागुलो का एक प्रमाणागुल होता है। भरतऐरावत क्षेत्र मे भिन्न-भिन्न काल मे होने वाले मनुष्यो का अगुल आत्मागुल कहा जाता है। इनमे उत्सेधागुल से नर-नारकादि के शरीर की ऊँचाई और चतुर्निकाय देवो के भवन व नगरादि का प्रमाण जाना जाता है। द्वीप-समुद्र, शैल, वेदी, नदी, कुण्ड, जगती एव क्षेत्रो के विस्तारादि का प्रमाण प्रमाणागुल से ज्ञात होता है। भृगार, कलश, दर्पण, भेरी, हल, मूसल, सिहासन एव मनुष्यो के निवासस्थान व नगरादि तथा उद्यान आदि के विस्तारादि का प्रमाण आत्मागुल से बतलाया जाता है। योजन का प्रमाण इस प्रकार है—६ अगुलो का पाद, २ पादो का वितस्ति, २ वितस्तियो का हाथ, २ हाथ का रिक्कु, २ रिक्कुओ का धनुप, २००० धनुष का कोस और ४ कोस का एक योजन होता है।

उपर्युक्त वर्णन करने के बाद ग्रन्थकार अपने प्रकृतविपय—लोक के सामान्य स्वरूप—का कथन करते है। अनादिनिधन व छह द्रव्यो से व्याप्त लोक—अध मध्य और ऊर्ध्व के भेद से विभक्त है। ग्रंथकार ने इनका आकार-प्रकार, विस्तार, क्षेत्रफल व घनफल आदि विस्तृत रूप मे वर्णित किया है। अधोलोक का आकार वेत्रासन के समान, मध्यलोक का आकार, खडे किये हुये मृदग के ऊर्ध्वभाग के समान और ऊर्ध्वलोक का आकार खडे किये हुए मृदग के समान है। (गा १३०-१३८)। आगे तीनो लोको मे से प्रत्येक के सामान्य, दो चतुरस्र (ऊर्ध्वायत और तिर्यगायत), यव, मुरज, यवमध्य, मन्दर, दूष्य और गिरिकटक ये आठ-आठ भेद करके उनका पृथक्-पृथक् घनफल निकाल कर बतलाया है। यह सम्पूर्ण विषय जटिल गणित से सम्बद्ध है जिसका पूर्ण खुलासा प्रस्तुत सस्करण मे विदुषी टीकाकर्त्री माताजी ने चित्रो के माध्यम से किया है। रुचिशील पाठक के लिए अब यह जटिल नही रह गया है। गाथा ६१ की सदृष्टि (≡ १६ ख ख ख) को विशेषार्थ मे पूर्णत स्पष्ट कर दिया गया है।

महाधिकार के अन्त मे तीन वातवलयो का आकार और भिन्न-भिन्न स्थानो पर उनकी मोटाई का प्रमाण (२७१—२८५) बतलाया गया है। अन्त मे तीन गद्य खण्ड है। प्रथम गद्यखण्ड लोक के पर्यन्तभागो मे स्थित वातवलयो का क्षेत्र प्रमाण बताता है। दूसरे गद्यखण्ड मे आठ पृथिवियो के नीचे स्थित वातक्षेत्रो का घनफल निकाला गया है। तीसरे गद्यखण्ड मे आठ पृथिवियो

का घनफल बतलाया है। वातवलयो की मोटाई दर्शाने के लिए ग्रंथकार ने 'लोकविभाग' ग्रथ से एक पाठान्तर (गा. २८४) भी उद्धृत किया है। अन्त मे कहा है कि वातरुद्ध क्षेत्र और आठ पृथिवियो के घनफल को सम्मिलित कर उसे सम्पूर्ण लोक मे से निकाल देने पर शुद्ध आकाश का प्रमाण प्राप्त होता है। मगलाचरणपूर्वक ग्रन्थ का अत होता है।

इस अधिकार मे ७ करण सूत्रो (गा. ११७, १६५, १७६, १७७, १८१, १६३, १९४) का उल्लेख हुआ हे तथा गा १६८-६६ और २६४-६६ के भावो को सक्षेप में व्यक्त करने वाली दो सारणिया बनाई गई हे।

(मूलविद्री और जैनवद्री मे उपलब्ध ताडपत्रीय प्रतियो मे गाथा १३८ के बाद दो गाथाएँ और मिलती है किंतु इनका प्रसग बुद्धिगम्य न होने से इनका उल्लेख अध्याय के अन्तर्गत नही किया गया है। गाथाएं इस प्रकार है—

वासुच्छेहायाम, सेढि-पमाणेण ठावये खेत्तं।
त मज्झे बहुलादो, एक्कपदेसेण गेण्हिदो पदर ॥ ☰
गहिदूण घवट्ठावि य रज्जू सेढिस्स सत्त भागोत्ति।
तस्स य वासायामो कायव्वा सत्त खडाणि ॥)

(ख) द्वितीय महाधिकार :

नारकलोक नामके इस महाधिकार मे कुल ३७१ पद्य है। गद्य-भाग नही है। चार इन्द्रवज्रा और एक स्वागता छन्द है शेष ३६६ गाथाएँ हैं। मगलाचरण मे अजितनाथ भगवान को नमस्कार कर ग्रथकार ने आगे की चार गाथाओ मे पन्द्रह अन्तराधिकारो का निर्देश किया है।

पूर्वप्रकाशित सस्करण से इस अधिकार मे चार गाथाएँ विशेष है जो द और ब प्रतियो मे नही हैं। ग्रथकार के निर्देशानुसार १५ वे अन्तराधिकार मे नारक जीवो मे योनियो की प्ररूपणा वर्णित है, यह गाथा छूट गई थी। कानडी प्रतियों मे यह उपलब्ध हुई है (गाथा स० ३६५)। इसी प्रकार नरक के दु खो के वर्णन मे भी गाथा स० ३३१ और ३३२ विशेष मिली है।

पूर्व प्रकाशित सस्करण के पृ ८२ पर मुद्रित गाथा १८८ मे अर्ध योजन के छह भागो मे से एक भाग कम श्रेणीबद्ध बिलो का परस्थान अन्तराल कहा गया है। जो गणित की दृष्टि से वैसा नही है। कन्नड प्रति के पाठ भेद से प्रस्तुत सस्करण के पृ० २०८ पर इसे सही रूप मे रखा गया है। छठी पृथ्वी के प्रकीर्णक बिलो के अन्तराल का कथन करने वाली गाथा भी पूर्व सस्करण मे नही थी, वह भी कानडी प्रतियो मे मिली है। (गाथा स० १६४)। इस प्रकार कमियो की पूर्ति होकर यह अधिकार

अब पूर्ण हुआ ऐसा माना जा सकता है । पूर्वमुद्रित सस्करण मे गाथा ३४५ का हिन्दी अनुवाद करते हुए अनुवादक महोदय ने लिखा है कि—"रत्नप्रभा पृथिवी से लेकर अन्तिम पृथिवी पर्यन्त अत्यन्त सडा, अशुभ और उत्तरोत्तर असख्यातगुणा ग्लानिकर अन्न आहार होता है ।" यह अर्थ ग्राह्य नही हो सकता क्योकि नरको मे अन्नाहार है ही नही । प्रस्तुत सस्करण मे टीकाकर्त्री माताजी ने इसका अर्थ 'अन्य प्रकार का ही आहार' (गाथा ३४८) किया है । यह सगत भी है । पूज्य माताजी ने ७ सारणियो और दो चित्रो के माध्यम से इस अधिकार को और सुबोध बनाया है ।

ग्रन्थकर्त्ता आचार्य ने पूरी योजनापूर्वक इस अधिकार का गठन किया है । गाथा ६–७ मे त्रसनाली का निर्देश है । गाथा ७-८ मे प्रकारान्तर से उपपाद और मारणान्तिक समुद्घात मे परिणत त्रस और लोकपूरण समुद्घातगत केवलियो की अपेक्षा समस्तलोक को ही त्रसनाली कहा है । गाथा ९ से १९५ तक नारकियो के निवास क्षेत्र—सातो पृथिवियो मे स्थित इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक विलो के नाम, विन्यास, सख्या, विस्तार, बाहल्य एवं स्वस्थान–परस्थान रूप अन्तराल का प्रमाण निरूपित है । गाथा १९६–२०२ मे नारकियो की सख्या, २०३–२१६ में उनकी आयु, २१७–२७१ मे उनका उत्सेध तथा गाथा २७२ मे उनके अवधिज्ञान का प्रमाण कहा है । गाथा २७३–२८४ मे नारकी जीवो मे सम्भव गुणस्थानादि बीस प्ररूपणाओ का निर्देश है । गाथा २८५–२८७ मे नरकों मे उत्पद्यमान जीवो की व्यवस्था, गाथा २८८ मे जन्म-मरण के अन्तराल का प्रमाण, गाथा २८९ मे एक समय मे जन्म-मरण करने वालो का प्रमाण, गाथा २९०-२९३ मे नरक से निकले हुए जीवो की उत्पत्ति का कथन, गाथा २९४-३०२ मे नरकायु के बन्धक परिणामो का कथन और गा० ३०३ से ३१३ तक नारकियो की जन्मभूमियो का वर्णन है ।

गाथा ३१४ से ३६१ तक नरको के घोर दु:खो का वर्णन है ।

गाथा ३६२–६४ में नरको मे सम्यक्त्वग्रहण के कारणो का निर्देश है और गाथा ३६५ मे नारकियो की योनियो का कथन है । अन्तिम मगलाचरण से पूर्व के पाच छन्दो मे यह बताया गया है कि जो जीव मद्य-मास का सेवन करते है, शिकार करते है, असत्य वचन बोलते है, चोरी करते है, परधनहरण करते है, रात दिन विषय सेवन करते है, निर्लज्जतापूर्वक परदारासक्त होते है, दूसरो को ठगते है वे तीव्र दु ख को उत्पन्न करने वाले नरको मे जाकर महान् कष्ट सहते है ।

अतिम गाथा मे भगवान सम्भवनाथ को नमस्कार किया गया है ।

(ग) तृतीय महाधिकार :

भवनवासी लोकस्वरूप निरूपण प्रज्ञप्ति नामक तीसरे महाधिकार मे पूर्व प्रकाशित सस्करण मे कुल २४३ पद्य है । गाथा सख्या २४ से २७ तक गाथाओ का पाठ इस प्रकार है—

अप्पमहड्ढियमज्झिमभावणदेवाण होति भवणाणि ।
दुगवादालसहस्सा लक्खमधोधो खिदीय गंताउ ॥२४॥
२००० / ४२००० / १०००००

अप्पमहड्ढियमज्झिमभावणदेवाण वासवित्थारो ।
समचउरस्सा भवणा वज्जामयद्वारसज्जिया सव्वे ॥२५॥

बहलत्ते तिसयाणि सखासखेज्ज जोयणा वासे ।
संखेज्जरुदभवणेसु भवणदेवा वसति सखेज्जा ॥२६॥

सखातीदा सेय छत्तीससुरा य होदि सखेज्जा (?)
भवणसरूवा एदे वित्थारा होइ जाणिज्जो ॥२७॥

। भवणवण्णण सम्मत्त ।

कन्नड की ताडपत्रीय प्रतियो मे इस पाठ की सरचना इस प्रकार है जो पूर्णत सही है और इसमे भ्रान्ति (?) की सम्भावना भी नही है। हाँ, इस पाठ से एक गाथा अवश्य कम हो गई है।

अप्प-महड्ढिय-मज्झिम-भावण-देवाण होति भवणाणि ।
दुग-बादाल-सहस्सा लक्खमधोधो खिदीए गंतूण ॥२४॥
२००० / ४२००० / १०००००

॥ अप्पमहड्ढिय-मज्झिम-भावण-देवाण-णिवास-खेत्त समत्त ॥९॥

समचउरस्सा भवणा वज्जमया-दार-वज्जिया सव्वे ।
बहलत्ते ति-सयाणि सखासखेज्ज-जोयणा वासे ॥२५॥

सखेज्ज-रुद-भवणेसु भवणदेवा वसति सखेज्जा ।
सखातीदा वासे अच्छती सुरा असखेज्जा ॥२६॥

भवणसरूव समत्ता ॥१०॥

इस प्रकार कुल २४२ गाथाएँ रह गई है। ताडपत्रीय प्रतियो मे १२ गाथाएँ नवीन मिली हैं अत प्रस्तुत सस्करण मे इस अधिकार मे २४२+१२=२५४ गाथाएँ हुई है।

विशेष ध्यान रखने योग्य :

यो तो इस अधिकार मे कुल २५४ गाथाएँ ही है। परन्तु भूल से 'गाथा स ६४' क्रम मे अकित होने से रह गई है अर्थात् गाथा सख्या ६३ के वाद गाथा सख्या ६५ अकित कर दिया गया है (गाथा नही छूटी है केवल क्रम सख्या ६४ छूट गई है।) और यह भूल अधिकार के अन्त तक चलती रही है जिससे २५४ गाथाओ के स्थान पर कुल गाथाएँ २५५ अकित हुई है। इसी क्रम सख्या को मानने से सारे सन्दर्भ आदि भी इसी प्रकार दिए गये है। अत: पाठको से अनुरोध है कि वे इस भूल को ध्यान मे रखते हुए गाथा स० ६३ को ही ६३-६४ समझे ताकि अन्य सन्दर्भो मे भ्रान्ति न हो तथापि अधिकार मे कुल २५४ गाथाये ही माने।

इस बडी भूल के लिए हम विशेष क्षमाप्रार्थी है।

इस तीसरे महाधिकार मे कुल २५५ पद्य है। इनमे दो इन्द्रवज्रा (छ सं. २४०, २५३) और ४ उपजाति (२१८-१६, २४१, २५४) तथा शेष गाथा छन्द है। पूर्व प्रकाशित (सोलापुर) प्रति के तीसरे अधिकार से प्रस्तुत सस्करण के इस तीसरे अधिकार मे गाथा स० १०७, १८६-१८७, २०२, २२२ से २२७ तथा २३२-२३३ इस प्रकार कुल १२ गाथाएँ नवीन है जिनसे प्रसगानुकूल विषय की पूर्ति हुई है और प्रवाह अवरुद्ध होने से बचा है। गाथा स० १८६ और १८७ केवल मूलविद्री की प्रति मे मिली है अन्य प्रतियो मे नही है। टीकाकर्त्री माताजी ने इस अधिकार को एक चित्र और ७ सारणियो / तालिकाओ से अलकृत किया है। गाथा स ३६ मे कल्पवृक्षो को जीवो की उत्पत्ति एव विनाश का कारण कहा है, यह मन्तव्य बडे प्रयत्न से ही समझ मे आया है।

इस महाधिकार मे २४ अन्तराधिकार है। अधिकार के आरम्भ मे (गाथा १) अभिनन्दन स्वामी को नमस्कार किया गया है और अन्त मे (गाथा २५५) सुमतिनाथ स्वामी को। गाथा २ से ६ मे चौबीस अधिकारो का नाम निर्देश किया गया है। गाथा ७-८ मे भवनवासियो के निवासक्षेत्र, गा ६ मे उनके भेद, गाथा १० मे उनके चिह्न, ११-१२ मे भवनो की सख्या, १३ मे इन्द्रसख्या व १४-१६ मे उनके नाम, १७-१६ मे दक्षिणेन्द्रो और उत्तरेन्द्रो का विभाग, २०-२३ मे भवनो का वर्णन २४ मे अल्पर्द्धिक, महर्द्धिक व मध्यमऋद्धिधारक देवो के भवनो का विस्तार, २५-२६ मे भवनो का विस्तार एव उनमे निवास करने वाले देवो का प्रमाण, २७-३८ मे वेदी, ३६-४१ मे कूट, ४२-५४ मे जिनभवन, ५५-६१ मे प्रासाद, ६२ से १४३ मे इंद्रो की विभूति, १४४ मे सख्या, १४५-१७६ मे

आयु, १७७ मे शरीरोत्सेध, १७८-१८३ मे उनके अवधिज्ञान के क्षेत्र का प्रमाण, १८४ से १९६ मे भवनवासियो के गुणस्थानादिको का वर्णन, १९७ मे एक समय मे उत्पत्ति व मरण का प्रमाण, १९८-२०० मे आगतिनिर्देश व २०१ से २५० मे भवनवासी देवो की आयु के बन्धयोग्य परिणामो का विस्तृत वर्णन हुआ है ।

भवनवासी देव देवियो के शरीर एव स्वभावादि का निरूपण करते हुए आचार्यश्री यतिवृषभ जी ने लिखा है कि "वे सब देव स्वर्ण के समान, मल के ससर्ग से रहित, निर्मलकान्ति के धारक, सुगन्धित निश्वास से सयुक्त, अनुपम रूपरेखा वाले, समचतुरस्र शरीर सस्थान वाले लक्षणो और व्यजनो से युक्त, पूर्ण चन्द्रसदृश सुन्दर महाकान्ति वाले और नित्य ही (युवा) कुमार रहते है, वैसी ही उनकी देविया होती है । (१२६–१२७)

"वे देव-देविया रोग एव जरा से विहीन, अनुपम बलवीर्य से परिपूर्ण, किंचित् लालिमायुक्त हाथ पैरो सहित, कदलीघात से रहित, उत्कृष्ट रत्नो के मुकुट को धारण करने वाले । उत्तमोत्तम विविध प्रकार के आभूषणो से शोभायमान, मास-हड्डी-मेद-लोहू-मज्जा वसा और शुक्र आदि धातुओ से विहीन, हाथो के नख एव बालो से रहित, अनुपम लावण्य तथा दीप्ति से परिपूर्ण और अनेक प्रकार के हाव भावो मे आसक्त रहते है ।" (१२८–१३०)

आयुबन्धक परिणामो के सम्बन्ध मे लिखा है कि—"ज्ञान और चारित्र मे दृढ शका सहित, सक्लेश परिणामो वाले तथा मिथ्यात्वभाव से युक्त कोई जीव भवनवासी देवो सम्बन्धी आयु को बाँधते है । दोषपूर्ण चारित्रवाले, उन्मार्गगामी, निदानभावो से युक्त, पापासक्त, कामिनी के विरह रूपी ज्वर से जर्जरित, कलहप्रिय सज्ञी असज्ञी जीव मिथ्यात्वभाव से सयुक्त होकर भवनवासी देवो मे उत्पन्न होते है । सम्यग्दृष्टि जीव इन देवो मे कदापि उत्पन्न नही होता । असत्यभाषी, हास्यप्रिय एव कामासक्त जीव कन्दर्प देवो मे उत्पन्न होते है । भूतिकर्म, मन्त्राभियोग और कौतूहलादि से सयुक्त तथा लोगो की वचना करने मे प्रवृत्त जीव वाहन देवो मे उत्पन्न होते है । तीर्थंकर, संघ, प्रतिमा एव आगमग्रन्थादिक के विषय मे प्रतिकूल, दुर्विनयी तथा प्रलाप करने वाले जीव किल्विषिक देवो मे

रूप प्राप्त हुई अपनी तुच्छ देवपर्याय के लिए पश्चात्ताप करते है। (२११–२२२) तत्काल मिथ्यात्व भाव का त्याग कर सम्यक्त्वी होकर महाविशुद्धिपूर्वक जिनपूजा का उद्योग करते है। (२२३-२२५) स्नान करके (२२६), आभूषणादि (२२७) से सज्जित होकर व्यवसायपुर मे प्रविष्ट होते है और पूजा व अभिषेक के योग्य द्रव्य लेकर देवदेवियो के साथ जिनभवन को जाते है। (२२८-२९)। वहाँ पहुच कर देवियो के साथ विनीत भाव से प्रदक्षिणापूर्वक जिनप्रतिमाओ का दर्शन कर जय-जय शब्द करते है, स्तोत्र पढते है और मन्त्रोच्चारणपूर्वक जिनाभिषेक करते है। (२३०-२३३)

अभिषेक के वाद उत्तम पटह, शङ्ख, मृदग, घण्टा एव काहलादि बजाते हुए (गा० २३४) वे दिव्य देव झारी, कलश, दर्पण, तीनछत्र और चामरादि से, उत्तम जलधाराओ से, सुगन्धित गोशीर मलयचन्दन और केशर के पको से, अखण्डित तन्दुलो से, पुष्पमालाओ से, दिव्य नैवेद्यो से उज्ज्वल रत्नमयी दीपको से, धूप से और पके हुए कटहल, केला, दाडिम एव दाख आदि फलो से (अष्ट द्रव्य से) जिन पूजा करते है। (२३५-२३८) पूजा के अन्त मे अप्सराओ से सयुक्त होकर नाटक करते है और फिर निजभवनो मे जाकर अनेक सुखो का उपभोग करते है (२३९-२५०)।

अविरत सम्यग्दृष्टि देव तो समस्त कर्मो के क्षय करने मे अद्वितीय कारण समझ कर नित्य ही अनन्तगुनी विशुद्धिपूर्वक जिनपूजा करते है किन्तु मिथ्यादृष्टि देव भी पुराने देवो के उपदेश से जिनप्रतिमाओ को कुलाधिदेवता मान कर नित्य ही नियम से भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करते है। (२४०-२४१)

गाथा २५१-२५२ मे आचार्यश्री ने भवनवासियो मे सम्यक्त्वग्रहण के कारणो का निर्देश किया है और गा० २५३-५४ मे भवनवासियो मे उत्पत्ति के कारण बतलाते हुए लिखा है—"जो कोई अज्ञान तप से युक्त होकर शरीर मे नाना प्रकार के कष्ट उत्पन्न करते है तथा जो पापी सम्यग्ज्ञान से युक्त तप को ग्रहण करके भी दुष्ट विषयो मे आसक्त होकर जला करते है, वे सब विशुद्ध लेश्याओ से पूर्व मे देवायु बाँधकर पश्चात् क्रोधादि कषायो द्वारा उस आयु का घात करते हुए सम्यक्त्वरूप सम्पत्ति से मन को हटा कर भवनवासियो मे उत्पन्न होते है।" (गा० ५३-५४)

गाथा २५५ मे सुमतिनाथ भगवान को नमस्कार कर अधिकार की समाप्ति की गई है।

६. करण-सूत्र :

प्रथम अधिकार	द्वितीय अधिकार	तृतीय अधिकार
तक्खय वड्ढिपमाण १७७/४८	चयदलहदसकलिद ८५/१६७	गच्छसमे गुणयारे ८०/२८७
तक्खय वड्ढिपमाणं १६४/६०	चयहदमिच्छूणपद ६४/१५८	
भुजपडिभुजमिलिदद्ध १८१/५२	चयहदमिट्ठाधियपद ७०/१६१	
भूमीअ मुह सोहिय १७६/४८	दुचयहद सकलिदं ८६/१६८	
भूमीए मुह सोहिय १६३/६०	पददलहदवेकपदा ८४/१६६	
मुह-भू-समासमद्धिय १६५/४३	पददलहिदसकलिद ८३/१६६	
समवट्टवासवग्गे ११७/२५	पदवग्गं चयपहद ७६/१६३	
	पदवग्ग पदरहिद ८१/१६५	

७. प्रस्तुत संस्करण में प्रयुक्त विविध महत्त्वपूर्ण संकेत :

— = श्रेणी
= = प्रतर
≡ = त्रिलोक
१६ = सम्पूर्ण जीवराशि
१६ ख = सम्पूर्ण पुद्गल (की परमाणु) राशि
१६ ख ख = सम्पूर्ण काल (की समय) राशि
१६ ख ख ख = सम्पूर्ण आकाश (की प्रदेश) राशि
5० = ३ शून्य ०००
७ = सख्यात
रि = असख्यात
जो = योजन
| वर्गमूल (गाथा २/२८६) १६६-२०२
उ रज्जु
,ʾ₂ = कुछ कम (गा० २/१६६)

प = पल्योपम
सा = सागरोपम
सू = सूच्यंगुल
प्र = प्रतरागुल
घ = घनागुल
ज = जगच्छ्रेणी
लोय प = लोकप्रतर
भू = भूमि
को = कोस
द = दण्ड
से = शेष
ह = हस्त
अ = अगुल
ध = धनुष

इ = इन्द्रक
सेढी = श्रेणीबद्ध
प्र० = प्रकीर्णक
मु = मुहूर्त
दि = दिन
मा = माह

८. पाठान्तर :

⁂ वातवलयो की मोटाई	१/२८४/११६ (लोकविभाग)
⁂ शर्कराप्रभादि पृथिवियो का बाहल्य	२/२३/१४५

९. चित्र विवरण

क्र० स०	विषय	अधिकार	गाथा सं०	पृष्ठ संख्या
१	लोक की आकृति	१	१३७-१३८	३३
२	अधोलोक की आकृति	१	१३९	३४
३	लोक का उत्सेध और विस्तार	१	१४१-१४३	३५
४	लोकरूप क्षेत्र की मोटाई	१	१४५-१४७	३७
५	लोक की उत्तरदक्षिण मोटाई, पूर्वपश्चिम चौडाई और ऊँचाई	१	१४९-१५०	३८
६	ऊर्ध्वलोक के आकार को अधोलोक के सदृश वेत्रासनाकार करना	१	१६१	४५
७	सात पृथ्वियो के व्यास एव घनफल	१	१७९	५०
८	पूर्व पश्चिम से अधोलोक की आकृति	१	१८०	५१
९	अधोलोक की ऊँचाई की आकृति	१	१८०	५२
१०	अधोलोक मे स्तम्भ-बाह्य छोटी भुजाये	१	१८४	५५
११	ऊर्ध्वलोक के दस क्षेत्रो (के व्यास) की आकृति	१	१९६-१९७	६२
१२	ऊर्ध्वलोक के स्तम्भो की आकृति	१	२००	६४
१३	ऊर्ध्वलोक की आठ क्षुद्र भुजाओ की आकृति	१	२०३-२०७	६७
१४	सामान्य लोक का घनफल	१	२१७	७३

विविध तालिकाये :

११ आभार :

'तिलोयपण्णत्ती' जैसे विशालकाय ग्रन्थ के प्रकाशन की योजना मे अनेक महानुभावो का हमे भरपूर सहयोग और प्रोत्साहन मिला है। प्रथम खण्ड के प्रकाशनावसर पर उन सबका कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करना मेरा नैतिक कर्त्तव्य है।

परम पूज्य आचार्य १०८ श्री धर्मसागरजी महाराज एवं आचार्य कल्प १०८ श्री श्रुतसागरजी महाराज के आशीर्वचन इस सम्पूर्ण महदनुष्ठान मे मुझे प्रेरित करते रहे हैं, मै इन साधु-पुंगवो के चरणो मे सविनय सादर नमोस्तु निवेदन करता हुआ उनके दीर्घ नीरोग जीवन की कामना करता हू।

पूज्य भट्टारक द्वय—मूडबिद्री मठ और श्रवणबेलगोला मठ—को भी सादर वन्दना निवेदित करता हू जिनके सौजन्य से हमे क्रमश पाठान्तर और लिप्यन्तरण प्राप्त हो सके ताडपत्रीय कानडी प्रतियो से पाठान्तर व लिप्यन्तरण भेजने वाले पण्डित द्वय श्री देवकुमारजी शास्त्री, मूडबिद्री व श्री एस बी देवकुमारजी शास्त्री, श्रवणबेलगोला का भी मैं अत्यन्त आभारी हू, उनके सहयोग के बिना तो प्रस्तुत सस्करण को यह रूप कदापि मिल ही नही सकता था।

अन्य हस्तलिखित प्रतिया प्राप्त करने मे डॉ० कस्तूरचदजी कासलीवाल (जयपुर), श्री रतनलालजी कामा (भरतपुर), पं० अरुणकुमारजी शास्त्री (ब्यावर) श्री हरिचन्दजी (उज्जैन) और श्री विशम्बरदास महावीरप्रसाद जैन सर्राफ (दिल्ली) का सहयोग हमे प्राप्त हुआ। मैं इन सब महानुभावो का आभारी हू।

आदरणीय ब्र० कजोडीमलजी कामदार (जोबनेर) पूज्य माताजी के साथ सघ मे ही रहते है। ग्रन्थ के बीजारोपण से लेकर इसके वर्तमानरूप मे प्रस्तुतीकरण की अवधि मे आपने धैर्यपूर्वक सभी व्यवस्थाएँ जुटाकर मेरे भार को काफी हल्का किया है। मै आपके इस उदार सहयोग के लिए आपका अत्यन्त अनुगृहीत हू।

ग्रन्थ का **पुरोवाक्** समाज के वयोवृद्ध विद्वान् श्रद्धेय डॉ पन्नालालजी सा साहित्याचार्य ने लिखकर मुझ पर जो अनुग्रह किया है, इसके लिए मै उनका अत्यन्त आभारी हू। पूज्य पण्डितजी की विद्वत्ता और सरलता से मैं अभिभूत हू, मैं उनके दीर्घायुष्य की कामना करता हू।

प्रो० लक्ष्मीचन्द्रजी जैन, प्राचार्य शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिदवाड़ा (म प्र) ने 'तिलोयपण्णत्ती का गणित' विषय लिख भेजा है, एतदर्थ मै उनका हार्दिक आभार मानता हू। प्रोफेसर सा० जैन गणित के विशेषज्ञ है। जैनागम मे आपकी अटूट आस्था है।

हस्तलिखित प्रतियो से पाठ का मिलान करने मे और निर्णय लेने मे हमे डॉ० उदयचन्दजी जैन, प्राध्यापक प्राकृत विभाग, उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर का भी प्रभूत सहयोग प्राप्त हुआ है। मै उन्हे हार्दिक साधुवाद देता हू।

प्रस्तुत सस्करण मे मुद्रित चित्रो की रचना श्री विमलप्रकाशजी अजमेर और श्री रमेशचन्द्र मेहता उदयपुर ने की है। वे धन्यवाद के पात्र है।

विशेषार्थपूर्वक ग्रथ की सरल एव सुबोध हिंदी टीका करने का श्रम तो पूज्य माताजी १०५ श्री विशुद्धमतीजी ने किया ही है साथ ही इस प्रकाशन-अनुष्ठान के संचालन का गुरुतर भार भी उन्हीने वहन किया है। उनका धैर्य, कष्टसहिष्णुता, त्याग-तप और निष्ठा प्रशसनीय एव अनुकरणीय है। गत दो-ढाई वर्षो से वे ही इस महदनुष्ठान को पूर्ण करने मे जुटी है, अनेक व्यवधानो के बाद यह प्रथम खण्ड (प्रथम तीन अधिकार) आज आपके हाथो मे देकर हमे गौरव का अनुभव हो रहा है। दूसरा खण्ड (चतुर्थ अधिकार) भी प्रेस मे जाने को तैयार है, यदि अनुकूलता रही तो दूसरा और तीसरा दोनो खण्ड अगले दो वर्ष मे प्रस्तुत कर सकेगे। पूज्य माताजी ने इस ग्रथ के सम्पादन का गुरुतर उत्तरदायित्व मुझे सौप कर मुझ पर जो अनुग्रह किया है और मुझे जिनवाणी की सेवा का जो अवसर दिया है, उसके लिए मै पू० आर्यिका श्री का चिरकृतज्ञ हू। सततस्वाध्यायशीला पूज्य माताजी अध्ययन-अध्यापन मे ही अपने समय का सदुपयोग करती है। यद्यपि अब आपका स्वास्थ्य अनुकूल नही रहता है तथापि आप अपने कर्त्तव्यो मे सदैव दृढतापूर्वक सलग्न रहती है। पूज्य माताजी का रत्नत्रय कुशल रहे और स्वास्थ्य भी अनुकूल बने ताकि वे जिनवाणी के हार्द को अधिकाधिक सुबोध रीति से प्रस्तुत कर सके—यही कामना करता हू। पूज्य माताजी के चरणो मे शतश॰ वन्दामि निवेदन करता हू।

ग्रन्थ के प्रकाशन का उत्तरदायित्व श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा ने वहन किया है एतदर्थ मै महासभा के प्रकाशन विभाग एव विशेष रूप से महासभाध्यक्ष श्री निर्मलकुमारजी सेठी को हार्दिक धन्यवाद देता हू।

ग्रन्थ का मुद्रण कमल प्रिन्टर्स मदनगज–किशनगढ मे हुआ है। दूरस्थ होने के कारण प्रूफ मैं स्वय नही देख सका हू अत: यत्किंचित् भूले रह गई है। पाठको से अनुरोध है कि वे स्वाध्याय से पूर्व शुद्धिपत्र के अनुसार आवश्यक सशोधन अवश्य कर ले।

गणितीय ग्रंथो का मुद्रण वस्तुत जटिल कार्य है। अनेक तालिकाये, आकृतियाँ, जोड-बाकी-गुणा-भाग तथा बटा-बटी की विशिष्ट सख्याये आदि सभी इस ग्रथ मे है। प्रेस मालिक श्री पाँचूलालजी धर्मनिष्ठ सुश्रावक है। उन्हे अनेक ग्रंथो के मुद्रण का अनुभव है। उन्होने इस ग्रन्थ के मुद्रण मे पूरी रुचि लेकर इसे बहुत ही सुन्दरतापूर्वक आपके हाथो मे प्रेषित किया है। एतदर्थ वे अतिशय धन्यवाद के पात्र है।

वस्तुत· अपने वर्तमान रूप मे तिलोयपण्णत्ती (प्रथम खण्ड) की जो कुछ उपलब्धि है, वह सब इन्ही श्रमशील पुण्यात्माओ की है। मै इन सबका अत्यन्त आभारी हू।

सुधी गुणग्राही विद्वानो से अपनी भूलो के लिये क्षमा चाहता हू।

इत्यलम्

विनीत—
चेतनप्रकाश पाटनी
सम्पादक
दिनाक ७ फरवरी ८४

वसन्त पचमी, वि स. २०१०
श्री पार्श्वनाथ जैन मन्दिर
शास्त्री नगर जोधपुर (राज०)



तिलोयपण्णत्ती और उसका गणित

(लेखक . लक्ष्मीचन्द्र जैन, प्राचार्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय)
छिंदवाडा (म० प्र०)

आचार्य यतिवृषभ द्वारा रचित तिलोयपण्णत्ती करणानुयोग विषयक महान् ग्रन्थ है जो प्राकृत भाषा मे है । यह त्रिलोकवर्ती विश्व-रचना का सार रूप से गणितनिबद्ध दर्शन कराने वाला अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसका प्रथम बार सम्पादन दो भागो मे प्रोफेसर हीरालाल जैन, प्रोफेसर ए एन उपाध्ये तथा पंडित बालचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री द्वारा १९४३ एव १९५१ मे सम्पन्न हुआ था । पूज्य आर्यिका श्री विशुद्धमती माताजी कृत हिन्दी टीका सहित अब इसका द्वितीय बार सम्पादन हो रहा है जो अपने आपमे एक महान् कार्य है, जिसमे विगत सम्पादित ग्रंथो का परिशोधन एव विश्लेषण तथा अन्य उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियो द्वारा मिलान किया जाकर एक नवीन, परम्परागत रूप मे प्रस्तुत किया जा रहा है ।

तिलोयपण्णत्ती ग्रन्थ का विशेष महत्त्व इसलिए है कि कर्मसिद्धान्त एव अध्यात्म-सिद्धान्त-विषयक ग्रन्थो मे प्रवेश करने हेतु इस ग्रथ का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है । कर्म परमाणुओ द्वारा आत्मा के परिणामो का दिग्दर्शन जिस गणित द्वारा प्रबोधित किया जाता है, उस गणित की रूपरेखा का विशेष दूरी तक इस ग्रथ मे परिचय कराया गया है । इसप्रकार यह ग्रथ अनेक ग्रन्थो को भलीभाति समझने हेतु सुदृढ़ आधार बनता है ।

यतिवृषभाचार्य की दो कृतियाँ निर्विवाद रूप से प्रसिद्ध मानी गई है जो क्रमशः कसायपाहुड-सुत्त पर रचित चूर्णिसूत्र और तिलोयपण्णत्ती है । आचार्य आर्यमक्षु एव आचार्य नागहस्ति जो "महा-कम्मपयडि पाहुड" के ज्ञाता थे उनसे यतिवृषभाचार्य ने कसायपाहुड के सूत्रो का व्याख्यान ग्रहण किया था, जो 'पेज्जदोसपाहुड' के नाम से भी प्रसिद्ध था । आचार्य वीरसेन ने इन उपदेशो को प्रवाहक्रम से आये घोषित किया है तथा प्रवाह्यमान भी कहकर यथार्थ तथ्य रूप उल्लेखित किया है । आगे उन्होने आचार्य आर्यमक्षु के उपदेश को 'अपवाइज्जमाण' और आचार्य नागहस्ति के उपदेश को 'पवाइज्जत' कहा है ।

तिलोयपण्णत्ती के रचयिता यतिवृषभाचार्य कितने प्रकाड विद्वान् थे यह चूर्णिसूत्रो तथा तिलोयपण्णत्ती की रचना-शैली से स्पष्ट हो जाता है । रचनाएँ वृत्तिसूत्र तथा चूर्णिसूत्र मे हुआ

करती थी। वृत्तिसूत्र के शब्दो की रचना सक्षिप्त तथा सूत्रगत अशेष अर्थ सग्रह सहित होती थी। चूर्णिसूत्र की रचना भी सक्षिप्त शब्दावलीयुक्त, महान् अर्थगर्भित, हेतु निपात एव उपसर्ग से युक्त, गम्भीर, अनेक पदसमन्वित, अव्यवच्छिन्न, धारा-प्रवाही हुआ करती थी। इसप्रकार तीर्थंकरो की दिव्यध्वनि से निस्सृत बीजपदो को उद्घाटित करने मे चूर्णिपद समर्थ कहलाता था। चूर्णिपद के बीजसूत्र विवृत्त्यात्मक सूत्र-रूप होते थे तथा तथ्यो को उद्घोषित करने वाले होते थे। इन सूत्रो द्वारा यतिवृषभाचार्य ने आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और अर्थाधिकार इन पाँच उपक्रमो द्वारा अर्थ को प्रकट किया है। इसप्रकार उनकी शैली विभाषा सूत्र सहित, अवयवार्थ वाली एव पदच्छेद पूर्वक व्याख्यान वाली है।

ऐसे कर्म-ग्रथ के सार्वजनीन हित मे प्रयुक्त होने हेतु उसका आधारभूत ग्रन्थ भी तिलोयपण्णत्ती रूप मे रचा। इस ग्रन्थ मे नौ अधिकार है· सामान्य लोक स्वरूप, नारकलोक, भवनवासीलोक, मनुष्यलोक, तिर्यग्लोक, व्यन्तरलोक, ज्योतिर्लोक, देवलोक और सिद्धलोक। इसप्रकार गणितीय, सुव्यवस्थित, सख्यात्मक विवरण सकेत एव सदृष्टियो सहित इस सरल, लोकोपयोगी तथा लोकोत्तरोपयोगी ग्रन्थ की रचना अधिकाशरूप से पद्यात्मक तथा कही कही गद्य खण्ड, स्फुटशब्द या वाक्य रूप भी है। इसमे छन्दो का भी उपयोग हुआ है जो इन्द्रवज्रा, स्वागता, उपजाति, दोधक, शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, गाथा, मालिनी नाम से ज्ञात है।

इस ग्रन्थ मे ग्रथकार ने कही आचार्य परम्परा से प्राप्त और कही गुरुपदेश से प्राप्त ज्ञान का उल्लेख किया है। जिन ग्रथो का उन्होने उल्लेख किया है आग्रायणी, परिकर्म, लोक विभाग, लोक विनिश्चय : वे अभी उपलब्ध नही है। इन ग्रन्थो मे भी तिलोयपण्णत्ती के समान करणानुयोग की सामग्री रही होगी। करणानुयोग-सम्बन्धी सामग्री जिसमे गणित सूत्रो का बाहुल्य होता है अर्धमागधी आगम विषयक सूर्यप्रज्ञप्ति (बम्बई १९१९), चन्द्रप्रज्ञप्ति और जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति (बम्बई १९२०) मे भी मिलती है। साथ ही अन्य ग्रन्थो लोक विभाग, तत्वार्थराजवार्तिक, धवला जयधवला टीका, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सग्रह, त्रिलोकसार, त्रिलोकदीपिका (सिद्धातसार दीपक) मे भी करणानुयोग विषयकगणितीय सामग्री उपलब्ध है। सिद्धान्तसार दीपक ग्रथ तथा त्रिलोकसार ग्रन्थ का अभिनवावधि मे सम्पादन श्री आर्यिका विशुद्धमतीमाताजी ने अपार परिश्रम के पश्चात् विशुद्धरूप मे किया है। डा० किरफल द्वारा रचित डाइ कास्मोग्राफी डेर इडेर (बान, लाइपजिग, १९२०) भी इस सबध मे द्रष्टव्य है।

यतिवृषभाचार्य के ग्रन्थ का रचनाकाल निर्णय विभिन्न विद्वानो ने अलग-अलग ढग से अलग अलग किया है। डा० हीरालाल जैन तथा डा० ए० एन० उपाध्ये ने उनका काल ईस्वी सन् ४७३ से लेकर ६०९ के मध्य निर्णीत किया है। यही काल निर्णय डेविड पिंगरी ने माना है। फिर भी इन

विद्वानों ने स्वीकार किया है कि अभी भी इस काल निर्णय को निश्चित नही कहा जा सकता है और आगे सुदृढ प्रमाण मिलने पर इसे निश्चित किया जाये। आचार्य शिवार्य, वट्टकेर, कुन्दकुन्द आदि ग्रथरचयिताओ के वर्ग मे यतिवृषभ आचार्य आते है जिनका ग्रथ आगमानुसारी ग्रंथ समूह मे आता है जो पाटलीपुत्र मे सग्रहीत आगम के कुछ आचार्यो द्वारा अप्रामाणिक एवं त्याज्य माने जाने के पश्चात आचार्य परम्परा के ज्ञानाधार से स्मृतिपूर्वक लेख रूप मे सग्रहीत किये गये। उनकी पूर्ववर्ती रचनाएँ क्रमश. अग्गायणिय, दिट्ठिवाद, परिकम्म, मूलायार, लोयविणिच्छय लोय विभाग लोगाइणि, रही है।

१. गणित-परिचय :

सन् १९५२ के लगभग डा० हीरालाल जैन द्वारा मुझे तिलोयपण्णत्ती के दोनो भागो के गणित सबधी प्रबन्ध को तैयार करने के लिए कहा गया था। इन पर 'तिलोयपण्णत्ती का गणित' प्रबन्ध तैयार कर 'जम्बूदीवपण्णत्तीसगहो' मे १९५८ मे प्रकाशित किया गया। उसमें कुछ अशुद्धिया रह गई थी जिन्हे सुधार कर यह प्राय १०५ पृष्ठो का लेख वितरित किया गया था। वह लेख सुविस्तृत था तथा तुलनात्मक एव शोधात्मक था। यहाँ केवल रूपरेखायुक्त गणित का परिचय पर्याप्त होगा।

तिलोयपण्णत्ती ग्रन्थ मे जो सूत्रबद्ध प्ररूपण है उसमे परिणाम तथा गणितीय (करण) सूत्र दिये गये हैं तथा उनका विभिन्न स्थलो मे प्रयोग भी दिया गया है। ये सूत्र ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आगम-परम्परा-प्रवाह मे आया हुआ यह गणितीय विषय अनेक वर्ष पूर्व का प्रतीत होता है। क्रियात्मक एव रैखिकीय, अकगणितीय एव बीजगणितीय प्रतीक भी इस ग्रन्थ मे स्फुट रूप से उपलब्ध है जिनमे से कुछ, हो सकता है, नेमिचद्राचार्य के ग्रन्थो की टीकाएँ बनने के पश्चात् जोडा गया हो।

सिंहावलोकन के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि जो गणित इस ग्रन्थ मे वर्णित है वह सामान्य लोकप्रचलित गणित न होकर लोकोत्तर विषय प्रतिपादन हेतु विशिष्ट सिद्धान्तो को आधार लेकर प्रतिपादित किया गया है। यथा संख्याओ के निरूपण मे सख्यात, असख्यात एव अनन्त प्रकार वाली सख्याएँ—राशियो का प्रतिनिधित्व करने हेतु निष्पन्न की गई है। उनके दायरे निश्चित किये गये है, उन्हे विभिन्न प्रकारो मे उत्पन्न करने हेतु विधियाँ दी गई है, और उन्हे सख्यात से यथार्थ असख्यात रूप मे लाने हेतु असख्यातात्मक राशियो—सख्याओ को युक्त किया गया है। इसीप्रकार असख्यात से यथार्थ अनन्तरूप मे लाने के लिए सख्याओ को अनन्तात्मक राशियो से युक्त किया गया है। यह सख्याप्रमाण है। इसीप्रकार उपमा प्रमाण द्वारा राशियो के परिमाण का बोध किया गया है।

करती थी। वृत्तिसूत्र के शब्दो की रचना सक्षिप्त तथा सूत्रगत अशेष अर्थ सग्रह सहित होती थी। चूर्णिसूत्र की रचना भी सक्षिप्त शब्दावलीयुक्त, महान् अर्थगर्भित, हेतु निपात एवं उपसर्ग से युक्त, गम्भीर, अनेक पदसमन्वित, अव्यवच्छिन्न, धारा-प्रवाही हुआ करती थी। इसप्रकार तीर्थंकरो की दिव्यध्वनि से निस्सृत बीजपदो को उद्घाटित करने मे चूर्णिपद समर्थ कहलाता था। चूर्णिपद के बीजसूत्र विवृत्यात्मक सूत्र-रूप होते थे तथा तथ्यों को उद्घोषित करने वाले होते थे। इन सूत्रो द्वारा यतिवृषभाचार्य ने आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और अर्थाधिकार इन पाँच उपक्रमो द्वारा अर्थ को प्रकट किया है। इसप्रकार उनकी शैली विभाषा सूत्र सहित, अवयवार्थ वाली एव पदच्छेद पूर्वक व्याख्यान वाली है।

ऐसे कर्म-ग्रथ के सार्वजनीन हित मे प्रयुक्त होने हेतु उसका आधारभूत ग्रन्थ भी तिलोयपण्णत्ती रूप मे रचा। इस ग्रन्थ मे नौ अधिकार है : सामान्य लोक स्वरूप, नारकलोक, भवनवासीलोक, मनुष्यलोक, तिर्यग्लोक, व्यन्तरलोक, ज्योतिर्लोक, देवलोक और सिद्धलोक। इसप्रकार गणितीय, सुव्यवस्थित, सख्यात्मक विवरण सकेत एव सदृष्टियो सहित इस सरल, लोकोपयोगी तथा लोकोत्तरोपयोगी ग्रन्थ की रचना अधिकाशरूप से पद्यात्मक तथा कही कही गद्य खण्ड, स्फुटशब्द या वाक्य रूप भी है। इसमे छन्दो का भी उपयोग हुआ है जो इन्द्रवज्रा, स्वागता, उपजाति, दोधक, शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, गाथा, मालिनी नाम से ज्ञात है।

इस ग्रन्थ मे ग्रथकार ने कही आचार्य परम्परा से प्राप्त और कही गुरुपदेश से प्राप्त ज्ञान का उल्लेख किया है। जिन ग्रथो का उन्होने उल्लेख किया है . आग्रायणी, परिकर्म, लोक विभाग, लोक विनिश्चय : वे अभी उपलब्ध नही है। इन ग्रन्थो मे भी तिलोयपण्णत्ती के समान करणानुयोग की सामग्री रही होगी। करणानुयोग-सम्बन्धी सामग्री जिसमे गणित सूत्रो का बाहुल्य होता है अर्धमागधी आगम विषयक सूर्यप्रज्ञप्ति (बम्बई १९१९), चन्द्रप्रज्ञप्ति और जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति (बम्बई १९२०) मे भी मिलती है। साथ ही अन्य ग्रन्थो . लोक विभाग, तत्वार्थराजवार्तिक, धवला जयधवला टीका, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सग्रह, त्रिलोकसार, त्रिलोकदीपिका (सिद्धातसार दीपक) मे भी करणानुयोग विषयकगणितीय सामग्री उपलब्ध है। सिद्धान्तसार दीपक ग्रथ तथा त्रिलोकसार ग्रन्थ का अभिनवावधि मे सम्पादन श्री आर्यिका विशुद्धमतीमाताजी ने अपार परिश्रम के पश्चात् विशुद्धरूप मे किया है। डा० किरफल द्वारा रचित डाइ कास्मोग्राफी डेर इंडेर (बान, लाइयजिग, १९२०) भी इस सबध मे दृष्टव्य है।

यतिवृषभाचार्य के ग्रन्थ का रचनाकाल निर्णय विभिन्न विद्वानो ने अलग-अलग ढग से अलग अलग किया है। डा० हीरालाल जैन तथा डा० ए०.एन० उपाध्ये ने उनका काल ईस्वी सन् ४७३ से लेकर ६०९ के मध्य निर्णीत किया है। यही काल निर्णय डेविड पिगरी ने माना है। फिर भी इन

और संश्लेषण दृष्टिगत होता है दूसरी ओर विश्लेषण। इस प्रकार की प्रक्रियाओं का उपयोग इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। अर्द्धच्छेद प्रक्रिया से गुणन को योग में तथा भाग को घटाने में बदल दिया जाता है। वर्गशलाका की प्रक्रिया भी गुणन में बदल जाती है। इस प्रकार धाराओं में आने वाली विभिन्न राशियों के बीच अर्द्धच्छेद एवं वर्गशलाका विधियों द्वारा एवं वर्गण विधियों द्वारा सम्बन्ध स्थापित किया जाता है।

अंकगणित में ही समान्तर और गुणोत्तर श्रेणियों के योग निकालने के तिलोयपण्णत्ती में अनेक प्रकरण आये हैं। इस ग्रंथ में कुछ और नवीन प्रकार की श्रेणियों का संकलन किया गया है। दूसरे महाधिकार में गाथा २७ से लेकर गाथा १०४ तक नारक बिलों के सम्बन्ध में श्रेणिसंकलन है। इसी प्रकार पांचवें महाधिकार में द्वीप समुद्रों के क्षेत्रफलों का अल्पबहुत्व संकलन रूप में वर्णित किया गया है। श्रेणियों को इतने विस्तृत रूप में वर्णन करने का श्रेय जैनाचार्यों को दिया जाना चाहिए। पुनः इस प्रकार की प्ररूपणा सीधी अस्तित्व पूर्ण राशियों से सम्बन्ध रखती थी जिनका बोध इन संश्लेषण एवं विश्लेषण विधियों से होता था।

यह महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि उपमा प्रमाण में एक सूच्यंगुल में स्थित प्रदेशों की संख्या उतनी ही मानी गयी जितनी पल्य की समस्त राशि को अद्धापल्य की समस्त राशि के अर्द्धच्छेद बार स्वयं से स्वयं को गुणित किया जाये। प्रतीकों में

$$(\text{अंगुल}) = (\text{पल्य})^{[\text{अद्धापल्य के अर्द्धच्छेद}]}$$

अर्द्धच्छेद अथवा "लागएरिथ्म टू दा वेस टू" मानकर कर्म सिद्धान्तादि में गणनाओं को सरलतम बना दिया था वैसे ही आज काम्प्यूटरो मे भी दो को आधार चुना गया है। ताकि पूर्णांको मे परिणाम राशि की सार्थकता को प्रतिवोधित कर सके।

तिलोयपण्णत्ती मे बीजरूप प्रतीको का कही-कही उपयोग हुआ है। रिण के लिये उसके सक्षेप रूप को कही-कही लिया गया दृष्टिगत होता है, जैसे रिण के लिये 'रि'। मूल के लिए 'मू'। रिण के लिये ˙। जगच्छ्रेणी के लिए आडी लकीर '—'। जगत्प्रतर के लिये दो आडी क्षैतिज लकीरें "="। घन लोक के लिए तीन आडी लकीरे "≡"। रज्जु के लिए 'र', पल्य के लिये 'प', सूच्यगुल के लिये '२', आवलि के लिए भी '२' लिया गया। नेमिचन्द्राचार्य के ग्रंथो की टीकाओ मे विशेष रूप से सद्दृष्टियो को विकसित किया गया जो उनके बाद ही माधवचन्द्र त्रैविद्याचार्य एव चामुण्डराय के प्रयासो से फलीभूत हुआ होगा, ऐसा अनुमान है।

जहाँ तक मापिकी एव ज्यामिति विधियो का प्रश्न है, इन्हे करणानुयोग ग्रन्थो मे जम्बूद्वीपादि के वृत्त रूप क्षेत्रो के क्षेत्रफल, धनुष, जीवा, वाण, पार्श्वभुजा, तथा उनके अल्पबहुत्व निकालने के लिये प्रयुक्त किया गया। तिलोयपण्णत्ती मे उपर्युक्त के सिवाय लोक को वेष्टित करने वाले विभिन्न स्थलो पर स्थित वातवलयो के आयतन भी निकाले गये हैं जो स्फान सदृश आकृतियो, क्षेत्रो एव आयतनो से युक्त हैं। इनमे आकृतियो का टापालाजिकल डिफार्मेशन कर घनादिरूप मे लाकर घनफल आदि निकाला गया है, अतएव विधि के इतिहास की दृष्टि से यह प्रयास महत्त्वपूर्ण है।

व्यास द्वारा वृत्त की परिधि निकालने की विधियाँ भी विश्व मे कई सभ्यता वाले देशो मे पाई जाती है। (तिलोयपण्णत्ती जैसे करणानुयोग के ग्रथो मे $\frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}}$ का मान स्थूल रूप से ३ तथा सूक्ष्म रूप से $\sqrt{१०}$ दिया गया है। वीरसेनाचार्य ने धवला ग्रन्थ मे एक और मान दिया है जिसे उन्होने सूक्ष्म से भी सूक्ष्म कहा है और वह वास्तव मे ठीक भी है। वह चीन मे भी प्रयुक्त होता था $\frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}} = \frac{३५५}{११३} = ३\ १४१५९३$ किन्तु वीरसेनाचार्य ने जो सस्कृत श्लोक उद्धृत किया है उसमे १६ अधिक जोडकर लिखा जाने से वह अशुद्ध हो गया है।)

$$\frac{१६\,(\text{व्यास}) + १६}{११३} + ३\,(\text{व्यास}) = \text{परिधि}$$

जो कुछ हो यह तथ्य चीन और भारत से गणितीय सम्बन्ध की परम्परा को जोडता प्रतीत होता है। प्रदेश और परमाणु की धारणाएँ यूनान से सबध जोडती है तथा गणित के आधार पर अहिंसा

का प्रचार यूनान के पिथेगोरस की स्मृति ताजी करती है।* ज्यामिति मे अनुपात सिद्धान्त का तिलोयपण्णत्ती मे विशेष प्रयोग हुआ है। लोकाकाश का घनफल निकालने की प्रक्रिया को विस्तृत किया गया है और भिन्न-भिन्न रूप की आकृतियाँ लोक के घनफल के समान लेकर छोटी आकृतियो से उन्हे पूरित कर घनफल की उनमे समानता दिखलाई गई है। इस प्रकार लोक को प्रदेशो से पूरित कर, छोटी आकृतियो से पूरित कर जो विधियाँ जैनाचार्यो ने प्रयुक्त की है वे गणितीय इतिहास मे अपना विशेष स्थान रखेगी।

जहा तक ज्योतिर्लोक विज्ञान की विधियाँ हैं वे तिलोयपण्णत्ती अथवा अन्य करणानुयोग ग्रन्थो मे एक सी है। समस्त आकाश को गगनखण्डो मे विभाजित कर मुहूर्तो मे ज्योतिर्विम्बो की स्थिति, गति, सापेक्ष गति, वीथिया आदि निर्धारित की गयी। इनमे योजन का भी उपयोग हुआ। योजन शब्द कोई रहस्यमय योजना से सम्बन्धित प्रतीत होता है। ऐसा ही चीन मे "ली" शब्द से अभिप्राय निकलता है। अगुल के माप के आधार पर योजन लिया गया, और अगुल के तीन प्रकार होने के कारण योजन के भी तीन प्रकार हो गये होगे। सूर्य, चन्द्र एव ग्रहो के भ्रमण मे दैनिक एव वार्षिक गति को मिला लिया गया। इससे उनकी वास्तविक वीथियाँ वृत्ताकार न होकर समापन एव असमापन कु तल रूप मे प्रकट हुई। जहा तक ग्रहो और सूर्य चन्द्रमा की पृथ्वीतल से दूरी का सबध है, उनमे प्रयुक्त योजन का अभिप्राय वह नही है जैसा कि हम साधारणतः सोचते है और जमीन के ऊपर की ऊँचाई चन्द्र, सूर्य की ले लेते है। वे उक्त ग्रहो को पारस्परिक कोणीय दूरियो के प्रतीक रूप मे प्रयुक्त हुए प्रतीत होते है। इस विषय पर शोध लगातार चल रही है। यह भी जानना आवश्यक है कि इस प्रकार योजन माप मे चित्रातल से जो दूरी ग्रह आदि की निकाली गयी वह विधि क्या थी और उसका आधार क्या था। क्या यह दूरी छायामाप से ही निकाली जाती थी अथवा इसका और कोई आधार था? सज्जनसिंह लिश्क एव एस डी शर्मा ने इस विधि पर शोध निवन्ध दिये है जिनसे उनकी मान्यता यह स्पष्ट होती है कि ये ऊँचाईयाँ सूर्य पथ मे उनकी कोणीय दूरिया बतलाती होगी। किन्तु यह मान्यता केवल चन्द्रमा के लिये अनुमानत सही उतरती है।

योजन के विभिन्न प्रकार होने के साथ ही एक समस्या और रह जाती है। वह है रज्जु के माप को निर्धारित करने की। इसके लिए रज्जु के अर्द्धच्छेद लिए जाते है और इस सख्या का संबध चन्द्रपरिवारादि ज्योतिर्विम्ब राशि से जोडा गया है। इसमे प्रमाणागुल भी शामिल होते है जिनकी प्रदेशसख्या का मान पल्य समयराशि से स्थापित किया जा सकता है। इस प्रकार रज्जु का मान

---

*देखिये, "तिलोयपण्णत्ती का गणित" जम्बूदीवपण्णत्तीसगहो, शोलापुर, १९५८ (प्रस्तावना) १-१०५ तथा देखिये "गणितसार सग्रह", शोलापुर, १९६३ (प्रस्तावना)

निश्चित किया जा सकता है। चन्द्रमादि बिम्बो को गोलार्द्ध रूप माना गया है जो वैज्ञानिक मान्यता से मिलता है क्योंकि आधुनिक यन्त्रो से प्रतीत होता है कि चन्द्रमादि सर्वदा पृथ्वी की ओर केवल वही अर्द्ध मुख रखते हुए विचरण करते है। उष्णतर किरणो और शीतल किरणों का क्या अभिप्राय हो सकता है, अभी तक स्पष्ट प्रतीत नही हुआ हे। (ग्रहो का गमन सम्वन्धी ज्ञान का कालवश विनष्ट होना बतलाया गया है। पर यह स्पष्ट है कि जिस प्रकार सूर्य और चन्द्र बिम्बो के गमन एकीकृत विधि से वीथियो के रूप मे तथा मुहूर्त मे योजन एव गगनखण्डो के माध्यम से दर्शाये गये होगे जो यूनान की प्राचीन विधियो तथा भारत की तत्कालीन वृत्त वीथियों के आधार पर पुनः स्थापित किये जा सकते है ऐसा अनुमान है।)

पडित नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य जैन ज्योतिष के सम्वन्ध मे कुछ निष्कर्षो पर शोधानुसार पहुचे थे जो निम्नलिखित है : ※

(क) पञ्चवर्षात्मक युग का सर्व प्रथम उल्लेख जैन ज्योतिष ग्रथो में उपलब्ध होना।※

(ख) अवम-तिथि क्षय सबधी प्रक्रिया का विकास जैनाचार्यो द्वारा स्वतन्त्र रूप से किया जाना।

(ग) जैन मान्यता की नक्षत्रात्मक ध्रुवराशि का वेदाग ज्योतिष मे वर्णित दिवसात्मक ध्रुवराशि से सूक्ष्म होना तथा उसका उत्तरकालीन राशि के विकास मे सम्भवत सहायक होना।

(घ) पर्व और तिथियो मे नक्षत्र लाने की विकसित जैन प्रक्रिया, जैनेतर ग्रथो मे छठी शती के बाद दृष्टिगत होना।

(ङ) जैन ज्योतिष मे सम्वत्सर सम्बन्धी प्रक्रिया मे मौलिकता होना।※

※देखिये "वर्णी अभिनन्दन ग्रथ" सागर मे प्रकाशित लेख, "भारतीय ज्योतिष का पोषक जैन–ज्योतिष" १९६२, पृष्ठ ४७८–४८४, उनका एक और लेख "ग्रीक–पूर्व जैन ज्योतिष विचारधारा" ब्र. चदाबाई अभिनन्दन ग्रथ, आरा, १९५४, पृष्ठ ४६२–४६६ मे दृष्टव्य हे।

※वेदाग ज्योतिष मे भी पञ्चवर्षात्मक युग का पचाग बनता है, पर जो विस्तृत गगनखण्डो, वीथियो एव योजनो मे गमन सम्वन्धी सामग्री जैन करणानुयोग के ग्रन्थो मे उपलब्ध है वह अन्यत्र उपलब्ध नही है।

※अयन के कारण विषुवांश मे अन्तर आता है जिससे ऋतुएँ अपना समय धीरे–धीरे बदलती जाती हैं। अयन के कारण होने वाले परिवर्तन को जैनाचार्यो ने सभवत देखा होगा और अपना नया पंचाग विकसित किया होगा। (वेदाग ज्योतिष मे माघशुक्ल प्रथम को सूर्य नक्षत्र धनिष्ठा और चन्द्र नक्षत्र को भी धनिष्ठा लिया गया हे जब कि सूर्य उत्तरापथ पर रहता था। किंतु जैन पचाग (तिलोयपण्णत्ती आदि) मे जब सूर्य उत्तरापथ पर होता था तब माघ कृष्णा सप्तमी को सूर्य अभिजित् नक्षत्र मे और चन्द्रमा हस्त नक्षत्र मे रहता था।) अयन का ३६०° का परिवर्तन प्राय. २६००० वर्षो मे होता दृष्टिगत हुआ है।

(च) दिनमान प्रमाण सम्बन्धी प्रक्रिया मे, पितामह सिद्धात का जैन प्रक्रिया से प्रभावित प्रतीत होना ।

(छ) छाया माप द्वारा समय निरूपण का विकसित रूप इष्ट काल, मयाति आदि होना ।

(इनके अतिरिक्त आतप और तम क्षेत्र का दर्शाये रूप मे प्रकट करना किस प्रक्षेप के आधार पर किया गया है और सूर्य, चन्द्र के रूप और प्रतिरूप का उपयोग किस आधार पर हुआ है इस सम्बन्धी शोध चल रही है । चक्षुस्पर्शध्वान पर भी अभी कुछ नही कहा जा सकता है जब तक कि उसकी प्रायोगिक विज्ञान से तुलना न कर ली जाये ।)

पूज्य आर्यिका विशुद्धमतीजी ने असीम परिश्रम कर चित्र सहित अनेक गणितीय प्रकरणो का निरूपण ग्रथ की टीका करते हुए कर दिया है । अतएव सक्षेप मे विभिन्न गाथाओ मे आये हुए प्रकरणो के सूत्रो तथा अन्य महत्त्वपूर्ण गणितीय विवरण देना उपयुक्त होगा ।

२. तिलोयपण्णत्ती के कतिपय गणितीय प्रकरण :

(प्रथम महाधिकार)

गाथा १/९१ अनन्त अलोकाकाश के बहुमध्यभाग मे स्थित, जीवादि पाच द्रव्यो से व्याप्त और जगश्रेणि के घन प्रमाण यह लोकाकाश है ।

≡ १६ ख ख ख

उपर्युक्त निरूपण मे ≡ जगश्रेणि के घन का प्रतीक है जो लोकाकाश है । १६ जीवराशि की प्रचलित सदृष्टि है । इसीप्रकार १६ से अनन्तगुनी १६ ख पुद्गल परमाणु राशि की सदृष्टि है और इससे अनन्तगुणी १६ ख ख भूत वर्तमान भविष्य त्रिकाल गत समय राशि है । इस समय राशि से अनन्त गुनी १६ ख ख ख अनन्त आकाशगत प्रदेश राशि की सदृष्टि मानी गयी है जो अनन्त अलोकाकाश की भी प्रतीक मानी जा सकती है क्योकि इसकी तुलना मे ≡ लोकाकाश प्रदेश राशि नगण्य है । इसप्रकार उक्त सदृष्टि चरितार्थ होती है ।

गाथा १/९३–१३०

आठ उपमा प्रमाणो की सदृष्टियाँ

प० १ । सा० २ । सू० ३ । प्र० ४ । घ० ५ । ज० ६ । लोक प्र० ७ । लो० ८ ।।

दी गयी है जो पल्य सागरादि के प्रथम अक्षर रूप है ।

व्यवहार पल्य से संख्या का प्रमाण, उद्धारपल्य से द्वीप समुद्रादि का प्रमाण और अद्धापल्य से कर्मो की स्थिति का प्रमाण लगाया जाता है। यहाँ गाथा १०२ आदि निम्न माप निरूपण दिया गया है जो अगुल और अतत· योजन को उत्पन्न करता है —

अनन्तानन्त परमाणु द्रव्य राशि	= १ उवसन्नासन्न स्कन्ध
८ उवसन्नासन्न स्कन्ध	= १ सन्नासन्न स्कन्ध
८ सन्नासन्न स्कन्ध	= १ त्रुटिरेणु स्कन्ध
८ त्रुटिरेणु स्कन्ध	= १ त्रसरेणु स्कन्ध
८ त्रसरेणु स्कन्ध	= १ रथरेणु स्कन्ध
८ रथरेणु स्कन्ध	= १ उत्तम भोगभूमि का बालाग्र
८ उत्तमभोग भूमि बालाग्र	= १ मध्यम भोगभूमि बालाग्र
८ मध्यम भोगभूमि बालाग्र	= १ जघन्य भोगभूमि बालाग्र
८ जघन्य भोगभूमि बालाग्र	= १ कर्मभूमि बालाग्र
८ कर्मभूमि बालाग्र	= १ लीक
८ लीके	= १ जूँ
८ जूँ	= १ जौ
८ जौ	= १ अगुल

उपर्युक्त परिभाषा से प्राप्त अगुल, सूच्यगुल कहलाता है जिसकी सदृष्टि २ का अक मानी गयी है। इस अगुल को उत्सेध अगुल भी कहते है जिससे देव मनुष्यादि के शरीर की ऊँचाई, देवो के निवासस्थान व नगरादि का प्रमाण जाना जाता है। पाच सौ उत्सेधागुल प्रमाण अवसर्पिणी काल के प्रथम भरत चक्रवर्ती का एक अगुल होता है जिसे प्रमाणागुल कहते है जिससे द्वीप समुद्रादि का प्रमाण होता है। स्व स्व काल के भरत ऐरावत क्षेत्र मे मनुष्यो के अगुल को आत्मागुल कहते है जिससे झारीकलशादि की सख्या का प्रमाण होता है। प्रश्न यहाँ आर्यिकाश्री विशुद्धमतीजी ने उठाया कि तिलोयपण्णत्ती मे जो द्वीप समुद्रादि के प्रमाण योजनो और अगुल आदि मे दिये गये हैं उससे नीचे की इकाइयो मे परिवर्तन कैसे किया जाय क्योकि वे प्रमाणागुल के आधार पर योजनादि लिये गये हैं और उक्त योजन से जो अगुल उन्पन्न हो उसमे क्या ५०० का गुणनकर नीचे की इकाइयाँ प्राप्त की जाएँ? वास्तव मे जहाँ जिस अगुल की २५. े, उसे ही लेकर निम्नलिखित प्रमाणो का उपयोग किया जाना चाहिये

६ अगुल=१ पाद, २ पाद=१ वि [illegible] हाथ, २ हाथ=१ रिक्कू,
२ रिक्कू=१ दण्[illegible] या ४ [illegible] नाली;

२००० धनुष या २००० नाली=१ कोश, ४ कोश=१ योजन।

अतएव जिसप्रकार का अगुल चुना जावेगा, स्वमेव उस प्रकार का योजन उत्पन्न होगा। प्रमाण अगुल किये जाने पर प्रमाण योजन और उत्सेध अगुल किये जाने पर उत्सेध योजन प्राप्त होगा।

योजन को प्रमाण लेकर व्यवहार पल्योपम का वर्षो में मान प्राप्त हो जाता है। इस हेतु गड्ढे मे रोमो की सख्या=$\frac{१९}{२४}$ $(४)^{३}$ $(२०००)^{३}$ $(४)^{३}$ $(२४)^{३}$ $(५००)^{३}$ $(८)^{२१}$ प्राप्त होती है। यह व्यवहार पल्य के रोमो की संख्या है जिसमे १०० का गुणन करने पर व्यवहार पल्योपम काल राशि वर्षो मे प्राप्त हो जाती है। तत्पश्चात्—

उद्धार पल्य राशि=व्यवहार पल्य राशि × असख्यात करोड वर्ष समय राशि

यह समय राशि ही उद्धारपल्योपम काल कहलाती है। इस उद्धारपल्य राशि से द्वीपसमुद्रो का प्रमाण जाना जाता है।

अद्धापल्य राशि=उद्धारपल्य राशि × असख्यात वर्ष समय राशि

यह समय राशि ही अद्धा-पल्योपम काल राशि कहलाती है। इस अद्धापल्य राशि से नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवो की आयु तथा कर्मो की स्थिति का प्रमाण ज्ञातव्य है।

१० कोडाकोडी व्यवहार पल्य	=	१ व्यवहार सागरोपम
१० कोडाकोडी उद्धार पल्य	=	१ उद्धार सागरोपम
१० कोडाकोडी अद्धा पल्य	=	१ अद्धा सागरोपम

गाथा १/१३१, १३२

सूच्यगुल मे जो प्रदेश राशि होती है उसकी सख्या निकालने के लिए पहिले अद्धा पल्य के अर्द्धच्छेद निकालते है और उन्हे शलाका रूप स्थापित कर एक एक शलाका के प्रति पल्य को रखकर आपस मे गुणित करते हैं। जो राशि इस प्रकार उत्पन्न होती है वह सूच्यगुल राशि है

$$\text{सूच्यंगुल} = [\text{ पल्य }]^{(\text{पल्य के अर्द्धच्छेद})}$$

इसी प्रकार

$$\text{जगच्छ्रेणी} = [\text{घनागुल}]^{\frac{(\text{पल्य के अर्द्धच्छेद})}{\text{असख्यात}}}$$

यहाँ सूच्यगुल राशि की सदृष्टि २ और जगच्छ्रेणी की सदृष्टि "—" है।

इसी प्रकार

प्रतरागुल = (सूच्यगुल राशि)^{2}, संदृष्टि ४

घनागुल = (सूच्यगुल राशि)^{3}, सदृष्टि ६

जगप्रतर = (जगश्रेणि राशि)^{2}, सदृष्टि '='

घनलोक = (जगश्रेणि राशि)^{3}, संदृष्टि '≡'

राजु = (जगश्रेणि – ७), सदृष्टि '७'

ये सभी प्रदेश राशिया है और इनका सम्बन्ध पल्योपमादि समय राशियो से स्थापित किया गया है।

गाथा १/१६५

इस गाथा मे अधोलोक का घनफल निकालने के लिये सूत्र दिया गया है, जो वेत्रासन सदृश है।

$$\text{घनफल वेत्रासन} = \left[\frac{\text{मुख} + \text{भूमि}}{२} \times \text{वेध}\right]$$

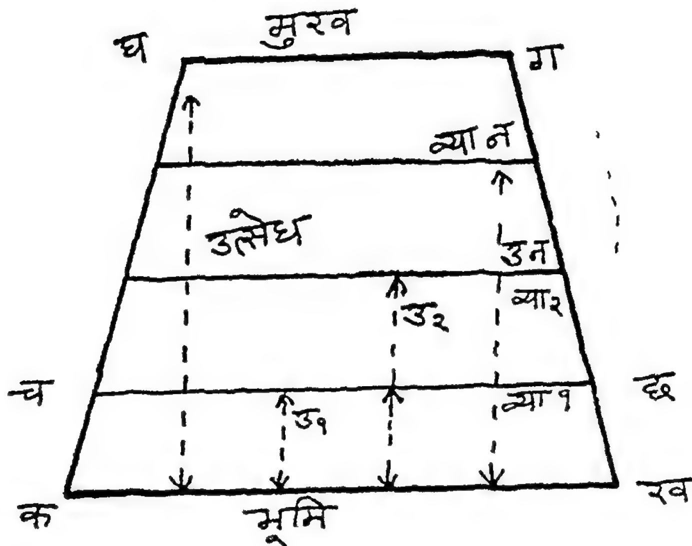
यहा वेध का अर्थ ऊँचाई है।

गाथा १/१६६

अधोलोक का घनफल = $\frac{४}{७}$ × पूर्ण लोक का घनफल

अर्द्ध अधोलोक का घनफल = $\frac{२}{७}$ × पूर्ण लोक का घनफल

गाथा १/१७६–१७७ : इस गाथा मे समानुपाती भाग निकालने का सूत्र दिया गया है।



$$\text{वृद्धि} = \frac{\text{भूमि} - \text{मुख}}{\text{उत्सेध}}$$

यहा उ उत्सेध का प्रतीक और व्या व्यास का प्रतीक है।

$$\text{भूमि} - \left[\frac{\text{भूमि} - \text{मुख}}{\text{उत्सेध}}\right] \text{उ}_{१} = \text{व्या}_{१}$$

$$\text{भूमि} - \left[\frac{\text{भूमि} - \text{मुख}}{\text{उत्सेध}}\right] \text{उ}_{२} = \text{व्या}_{२}$$

$$\text{भूमि} - \left[\frac{\text{भूमि} - \text{मुख}}{\text{उत्सेध}}\right] \text{उ}_{न} = \text{व्या}_{न}$$

इसी प्रकार हानि का सूत्र प्राप्त करते है।

गाथा १/१८१

इस गाथा मे दो सूत्र दिये गये है ।

$\frac{\text{भुजा} + \text{प्रतिभुजा}}{२}$ =व्यास, व्यास × ऊँचाई × मोटाई=समकोण त्रिकोण क्षेत्र का घनफल

$\frac{\text{व्यास}}{२}$ × लम्ब बाहु × मोटाई=लम्ब वाहुयुक्त क्षेत्र का घनफल

गाथा १/२१६ आदि :

सम्पूर्ण लोक को आठ प्रकार की आकृतियो मे निदर्शित किया गया है। इसमे प्रयुक्त सूत्र निम्न प्रकार है । सभी आकृतियो के घनफल जगश्रेणी के घन प्रमाण है ।

(१) सामान्यलोक=जगश्रेणि के घन प्रमाण यह आकृति पूर्व मे ही दी जा चुकी है जो सामान्यत॰ मान्य रूप है ।

(२) ऊर्ध्व आयत चतुरस्र : जगश्रेणी के घन प्रमाण यह आकृति घनाकार होना चाहिए जिसकी लबाई, चौडाई एव ऊँचाई समानरूप से जगश्रेणी या ७ राजू हो । इस प्रकार इसका घनफल

=लबाई × चौडाई × ऊँचाई=७ × ७ × ७ घन राजू= ३४३ घन राजू

(३) तिर्यक् आयत चतुरस्र . जगश्रेणी के घन प्रमाण इस आकृति मे सभी विमाएँ समान नही है, अतएव घनायत रूप इसका घनफल

= १४ × $\frac{७}{२}$ × ७ घन राजू=३४७ घन राजू

(४) यवमुरज क्षेत्र : यह क्षेत्र मुरज और यवो के द्वारा दर्शाया गया है ।

मुरज आकृति बीच मे $\frac{७}{२}$ राजू तथा अत मे १ राजू १ राजू है ।

अतएव उसका क्षेत्रफल $\left(\frac{\frac{७}{२}+१}{२}\right)$ × १४ वर्ग राजू है, क्योकि इसकी ऊँचाई १४ राजू है । यहा मुखभूमि योग दले वाला ही सूत्र लगाया गया है ।

अत: मुरज आकृति का क्षेत्रफल= $\left(\frac{\frac{७}{२}+१}{२}\right)$ × १४ वर्ग राजू= $\frac{६३}{२}$ वर्ग राजू

मुरज आकृति का घनफल=क्षेत्रफल × गहराई= $\frac{६३}{२}$ × ७ घन राजू

= $\frac{४४१}{२}$ घन राजू

शेष क्षेत्र मे यव आकृतिया २५ समाती है ।

एक यव का क्षेत्रफल $=\left(\frac{१}{२}\text{राजू} - २\right) \times \frac{१४}{५}$ वर्ग राजू $= \frac{७}{१०}$ वर्ग राजू

एक यव का घनफल $= \frac{७}{१०} \times ७$ घन राजू $= \frac{४९}{१०}$ घन राजू अथवा $\frac{\equiv}{७०}$

२५ यवो का घन $= \frac{४९}{१०} \times २५$ घन राजू अथवा २५ $\frac{\equiv}{७०}$

(५) यव मध्य क्षेत्र—वाहल्य ७ राजू वाली यह आकृति आधे मुरज के समान होती है। इसमे मुख १ राजू भूमि पुन ७ राजू है जैसा कि यवमुरज क्षेत्र होता है, किन्तु इसमे मुरज न डालकर केवल अर्द्ध यवो से पूरित करते है । इसप्रकार इसमे ३५ अर्द्ध यव इस यवमध्य क्षेत्र मे समाते है ।

एक अर्द्ध यव का क्षेत्रफल $= \frac{१}{२} \times \frac{१४}{५}$ वर्गराजू $= \frac{७}{५}$ वर्गराजू

एक अर्द्ध यव का घनफल $= \frac{७}{५} \times ७$ घनराजू $= \frac{४९}{५}$ घनराजू

इसप्रकार ३५ अर्द्ध यवो का घनफल $= \frac{४९}{५} \times ३५$ घनराजू $=$ ३४३ घनराजू

इसप्रकार यव मध्य क्षेत्र का घनफल ३४३ घनराजू होता है । सदृष्टि मे $\frac{\equiv}{३५}$ एक अर्द्ध यव का घनफल है । $\equiv | \equiv$ सदृष्टि का अर्थ है कि १४ राजू उत्सेध को पाँच वरावर भागो मे वाटा जाये ।

(६) मन्दराकार क्षेत्र उपरोक्त आकृतियो के ही समान आकृति लोक की लेते है जहाँ भूमि ६ राजू, मुख १ राजू, ऊँचाई १४ राजू, और मोटाई ७ राजू लेते है । समानुपात के सिद्धान्त पर विभिन्न उत्सेधो पर व्यास निकालकर 'मुह भूमि जोगदले' सूत्र से विभिन्न निर्मित वेत्रासनो के घनफल निकालकर जोड देने पर सम्पूर्ण लोक का घनफल ३४३ घनराजू प्राप्त करते है । इसे सविस्तार ग्रथ मे देखे, क्योकि वचने वाली शेष आकृतियो को जोडकर पुन घनफल निकालने की प्रक्रिया अपनाई जाती है ।

(७) दूष्य क्षेत्र : उपरोक्त आकृतियो के ही समान लोक की आकृति लेते है जहाँ भूमि ६ राजू, मुख १ राजू, ऊँचाई १४ राजू लेते है तथा वाहल्य ७ राजू है । इसमे से मध्य मे $२\frac{१}{२}$ यव निकालते है जो मध्य मे १ राजू चौडाई वाले होते हैं । वाहर $\frac{१}{२}$ राजू भूमि तथा $\frac{१}{२}$ राजू मुख वाले दो क्षेत्र निकालते है । वीच मे यव निकल जाने के पश्चात् शेप क्षेत्रो का घनफल भी निकाला जा सकता है । इसप्रकार वाहरी दोनो प्रवण क्षेत्रो का घनफल $=$ ९८ घनराजू ।

भीतरी दीर्घ दोनो प्रवरण क्षेत्रों का घनफल$=१३७\frac{१}{२}$ घनराजू

भीतरी लघु दोनो प्रवरण क्षेत्रो का घनफल$=५८\frac{४}{५}$ घनराजू

$२\frac{१}{२}$ यव क्षेत्रो का घनफल$=४९$ घनराजू

कुछ घनफल लोक का इसप्रकार ३४३ घनराजू प्राप्त होता है।

(८) गिरिकटक क्षेत्र : यह क्षेत्र यवमध्य क्षेत्र जैसा ही माना जा सकता है जिसमे २० गिरिया है शेष उल्टी गिरिया है। इस प्रकार कुल गिरिकटक क्षेत्र मिश्र घनफल से बना है। इसप्रकार दोनो क्षेत्रो मे विशेष अतर दिखाई नही दिया है।

२० गिरियो का घनफल$=\frac{४९}{५}\times२०=१९६$ घन राजू

शेष १५ गिरियो का घनफल$=\frac{४९}{५}\times१५=१४७$ घन राजू

इस प्रकार मिश्र घनफल ३४३ घन राजू प्राप्त होता है।

गाथा १/२७० आदि

वातवलयो द्वारा वेष्टित लोक का विवरण इन गाथाओ मे है, जहा विभिन्न आकृतियो वाले वातवलयो के घनफल निकाले गये है। ये या तो सक्षेभ के समच्छिन्नक है, आयतज है, समान्तरानीक है जिनमे पारम्परिक सूत्रो का उपयोग किया जाता है। सदृष्टिया अपने आप मे स्पष्ट है। वातावरुद्ध क्षेत्र और आठ भूमियो के घनफल को मिलाकर उसे सम्पूर्ण लोक मे से घटाने पर अवशिष्ट शुद्ध आकाश के प्रतीक रूप मे ही उस सदृष्टि को माना जा सकता है। वर्ग राजुओ मे योजन का गुणन बतलाकर घनफल निकाला गया है—उन्हे सदृष्टि रूप मे जगप्रतर से योजनो द्वारा गुणित बतलाया गया है।

द्वितीय महाधिकार :

गाथा २/५८

इस गाथा मे श्रेणि व्यवहार गणित का उपयोग है जिसे समान्तर श्रेढि भी कहते है। मानलो प्रथम पाथडे मे बिलो की कुल सख्या a हो और तब प्रत्येक द्वितीयादि पाथडे मे क्रमश. उत्तरोत्तर हानि d हो तो n वे पाथडे मे कुछ बिलो की सख्या प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित सूत्र है :

इष्ट nवे पाथडे मे कुल बिलो की संख्या$=\{a-(n \quad १) d\}$

यहाँ $a=३८९$, $d=८$ और $n=४$ है, .: चौथे पाथडे में श्रेणीवद्ध विलो की सख्या $\{३८९-(४-१)८\}=३६५$ होती हे।

गाथा २/५९

ग्रन्थकार ने n वे पाथडे मे इन्द्रक सहित श्रेणिवद्ध बिलो की संख्या निकालने के लिये सूत्र दिया है : इष्ट पाथडे मे इन्द्रक सहित श्रेणीवद्ध विलो की सख्या=

$$\left(\frac{a-५}{d}+१-n\right)d+५$$

गाथा २/६० यदि प्रथम पाथडे मे इन्द्रक सहित श्रेणिवद्ध बिलो की संख्या a और n वे पाथडे मे a_n मान ली जाये तो n का मान निकालने के लिए सूत्र निम्नलिखित है—

$$n=\left[\frac{a-५}{d}-\frac{a_n-५}{d}\right]$$

गाथा २/६१ . श्रेणी व्यवहार गणित मे, किसी श्रेणी मे प्रथम स्थान मे जो प्रमाण रहता है उसे आदि, मुख (वदन) अथवा प्रभव कहते है। अनेक स्थानो मे समान रूप से होने वाली वृद्धि या हानि के प्रमाण को चय या उत्तर कहते है। ऐसी वृद्धि हानि वाले स्थानों को गच्छ या पद कहते है। उपरोक्त को क्रमश. first term, Common difference, number of terms कहते है।

गाथा २/६४ : सकलित धन को निकालने के लिए सूत्र दिया गया है।

मान लो कुल धन S हो, प्रथमपद a हो, चय d हो, गच्छ n हो तो सूत्र इच्छित श्रेढि मे सकलित धन को प्राप्त कराता है ·

$$S=[\,(n-\text{इच्छा})d+(\text{इच्छा}-१)d+(a.२)\,]\frac{n}{२}$$

इच्छा का मान १ २ आदि हो सकता है।

गाथा २/६५ : इसी प्रकार सकलित धन निकालने का दूसरा सूत्र इस प्रकार है :

$$S=\left[\left\{\left(\frac{n-१}{२}\right)^{२}+\left(\frac{n-१}{२}\right)\right\}d+५\right]n$$

यह समीकरण उपरोक्त सभी श्रेणियो के लिये साधारण है।

उपर्युक्त मे सख्या ५ महातमः प्रभा के विलो से सम्बन्धित होना चाहिए। ५ को अतिम पद माना जा सकता है।

श्रन्तिम पद=a—(४६—१) d

यदि a का मान ३८६ श्रौर d का मान ८ हो तो

अन्तिम पद = ३८६—(४६—१) ८=५ होता है।

गाथा २/६९ : सम्पूर्ण पृथ्वियो इन्द्रक सहित श्रेणिबद्ध बिलो के प्रमाण को निकालने के लिये श्रादि ५, चय ८, और गच्छ का प्रमाण ४६ है ।

गाथा २/७० : यहा सात पृथ्विया है जिनमे श्रेणियो की संख्या ७ है । श्रतिम श्रेणि मे एक ही पद ५ है । इन सभी का सकलित धन प्राप्त करने के लिये निम्नलिखित सूत्र ग्र थकार ने दिया है :

$$S_1=\frac{N}{2}[(N+७)D-(७+१)D+२A]$$
$$=\frac{N}{2}[२A+(N-१)D]$$

यहा इष्ट ७ है । A, D, N, क्रमश आदि, चय और गच्छ है ।

गाथा २/७१ : उपरोक्त के लिए दूसरा सूत्र निम्न प्रकार दिया गया है—

$$S_1=\left[\frac{N-1}{2}\times D+A\right]N$$
$$=\frac{N}{2}[२A+(N-१)D]$$

गाथा २/७४ : यहा भी साधारण सूत्र दिया है—

$$S_2=\frac{[n^2.d]+(२n.d)-nd}{२}$$
$$=\frac{n}{2}[(n-१)d+२d]$$

गाथा २/८१

इंद्रको रहित विलो (श्रेणीबद्ध विलो) की समस्त पृथ्वियो मे कुल सख्या निकालने के लिए सूत्र दिया गया है । यहाँ श्रादि ५ नही होकर ४ है क्योकि महातम. प्रभा मे केवल एक इन्द्रक और चार श्रेणिवद्ध बिल है । यही श्रादि, श्रथवा **A** है; गच्छ **N** या ४६ है, प्रचय **D** या ८ है ।

सूत्र—

$$S_1=\frac{(N^2-N)D+(NA)}{२}+\left(\frac{A}{२}.N\right)$$
$$=\frac{N}{२}[२A+(N-१)D]$$

गाथा २/८२-८३ ·

यहाँ आदि A को निकालने हेतु सूत्र दिया है

$$A = \frac{\left[S_1 \div \frac{n}{2}\right] + (D.\ ७) - [७ - १ + N]D}{२}$$

इसे साधित करने पर पूर्व जैसा सूत्र प्राप्त हो जाता है।

यहाँ इष्ट पृथ्वी ७ वी है, जिसका आदि निकालना इष्ट था।

७ के स्थान पर और कोई भी इच्छा राशि हो सकती है।

गाथा २/८४ .

चय अर्थात् D को निकालने के लिए ग्रथकार ने सूत्र दिया है—

$$D = S_1 - \left(\left[N - १\right]\frac{N}{2}\right) - \left(A - \frac{N - १}{२}\right)$$

गाथा २/८५ . ग्रन्थकार ने रत्नप्रभा प्रथम पृथ्वी के सकलित धन (श्रेणि बद्ध बिलों की कुल सख्या) को लेकर पद १३ को निकालने हेतु निम्नलिखित सूत्र का उपयोग किया है, जहाँ $n = १३$, $S_2 = ४४२०$, $d = ८$ और $a = २९२$ आदि है।

$$n = \left\{ \frac{\sqrt{\left(S_1 \frac{d}{२}\right) + \left(a - \frac{d}{२}\right)^2}}{2} - \frac{\left(a - \frac{d}{२}\right)}{2} \right\} - \frac{d}{२}$$

इसे भी साधित करने पर पूर्ववत् समीकरण प्राप्त होता है।

गाथा २/८६

उपर्युक्त के लिए दूसरा सूत्र भी निम्नलिखित रूप मे दिया गया है

$$n = \left\{ \sqrt{(२ d S_2) + \left(a - \frac{d}{2}\right)^2} - \left(a - \frac{d}{2}\right) \right\} \div d$$

इसे साधित करने पर पूर्ववत् समीकरण प्राप्त होता है।

गाथा २/१०५ यहा प्रचय अथवा d को निकालने का सूत्र दिया है जब अतिम पद मानलो l हो :

$$d = \frac{a - l}{(n - १)}$$

प्रथम बिल से यदि nवे बिल का विस्तार प्राप्त करना हो तो सूत्र यह है :

$$a_n = a - (n - १)\, d,$$

यदि अतिम बिल से nवे बिल का विस्तार प्राप्त करना हो तो सूत्र यह है :

$$b_n = b + (n - १)\, d,$$

जहा a_n और b_n उन nवे बिलो के विस्तारो के प्रतीक है। यहा विस्तार का अर्थ व्यास किया जा सकता है।

गाथा २/१५७ : इन बिलो की गहराई (बाहल्य) समान्तर श्रेणी मे है। कुल पृथ्वियाँ ७ है। यदि nवी पृथ्वी के इन्द्रक का बाहल्य निकालना हो तो सूत्र यह है—

nवी पृथ्वी के इन्द्रक का बाहल्य $= \frac{(n+१)\, ३}{(७-१)}$

nवी पृथ्वी के श्रेणिबद्ध विलो का बाहल्य $= \frac{(n+१) \times ४}{(७-१)}$

इसी प्रकार, n वी पृथ्वी के प्रकीर्णक बिलो का बाहल्य $= \frac{(n+१)\, ७}{(७-१)}$

गाथा २/१५८ दूसरी विधि से विलो का बाहल्य निकालने हेतु ग्रथकार ने आदि के प्रमाण क्रमश· ६, ८ और १४ लिये है। यहा भी पृथ्वियो की सख्या ७ है। यदि n वी पृथ्वी के इन्द्रक का बाहल्य निकालना हो तो सूत्र निम्नलिखित है ·

n वी पृथ्वी के इद्रक का बाहल्य $= \frac{(६+n\ \frac{६}{२})}{(७-१)}$

यहा ६ को आदि लिखे तो दक्षिण पक्ष $= \left(\frac{a+n\ \frac{a}{२}}{७-१}\right)$ होता है।

प्रकीर्णक बिलो के लिए भी यही नियम है।

गाथ २/१९९ : यहा घर्मा या रत्नप्रभा के नारकियो की सख्या निकालने के लिए जगश्रेणी और घनागुल का उपयोग हुआ है। घनागुल को ६ और सूच्यगुल को २ लेकर घर्मा पृथ्वी के नारकियो की सख्या .

$$= \text{जगश्रेणी} \times (\text{कुछ कम}) \sqrt{\sqrt{६}} = \text{जगश्रेणी} \times \left[\text{कुछ कम}\ \sqrt[४]{(२)^3}\,\right]$$

तृतीय महाधिकार :

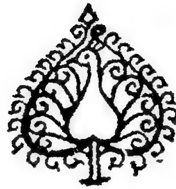
गाथा ३/८० . इस गाथा मे गुण सकलित धन अथवा गुणोत्तर श्रेणी के योग का सूत्र दिया गया है।

गच्छ=७, मुख=४०००, गुणाकार (Common ratio) का प्रमाण २ है।

मानलो S_n को n पदो का योग माना जाये जब कि प्रथम पद और गुणाकार r हो तब

S_n={ (r r r. . . n पदो तक)—१ } — (r—१)×a

अथवा $S_n = \frac{(r^n - १)a}{r - १}$



विषयानुक्रम



मंगलाचरण



ॐ नम सिद्धेभ्य ! ॐ नम सिद्धेभ्य. !! ॐ नम' सिद्धेभ्यः !!!

ॐकारं बिन्दुसयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षद चैव, ओकाराय नमो नमः ।।

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलङ्का ।
मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितम् ।।

अज्ञानतिमिरान्धाना ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलित येन तस्मै श्री गुरवे नम ।।

श्री परमगुरवे नम , परम्पराचार्यगुरवे नम । सकलकलुषविध्वसक, श्रेयसा परिवर्द्धक, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमन प्रतिबोधकारकमिद शास्त्र **'श्रीतिलोयपण्णत्ती'** नामधेय, एतन्मूलग्रन्थकर्त्तार श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थ-कर्त्तार श्रीगणधरदेवा प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचनानुसारतामासाद्य पूज्य **यतिवृषभाचार्य** विरचितम् इदं शास्त्र । वक्तार श्रोतारश्च सावधानतया शृण्वन्तु ।

मङ्गल भगवान् वीरो, मङ्गलं गौतमो गणी ।
मङ्गल कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोस्तु मङ्गलम् ।।
सर्वमङ्गलमाङ्गल्य, सर्वकल्याणकारकम् ।
प्रधान सर्वधर्माणा, जैन जयतु शासनम् ।।

ॐ

जदिवसह-आइरिय-विरइदा

तिलोयपण्णत्ती

पढमो महाहियारो

卐 मङ्गलाचरण (सिद्ध-स्तवन)

अट्ठ-विह-कम्म-वियला णिट्ठिय-कज्जा पणट्ठ-संसारा ।
दिट्ठ-सयलत्थ-सारा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ।।१।।

अर्थ :—आठ प्रकारके कर्मोंसे रहित, करने योग्य कार्योंको कर चुकने वाले, ससारको नष्ट-कर देने वाले और सम्पूर्ण पदार्थोंके सारको देखने-वाले सिद्ध-परमेष्ठी मेरे लिए सिद्धि प्रदान करे ।।१।।

अरहन्त–स्तवन

घण-घाइ-कम्म-महणा तिहुवण-वर-भव्व-कमल-मत्तंडा[1] ।
अरिहा अणंत-णाणा अणुवम-सोक्खा जयंतु जए ।।२।।

अर्थ :—प्रबल घातिया कर्मोंका मन्थन करने वाले, तीन लोकके उत्कृष्ट भव्यजीवरूपी लोके लिए मार्तण्ड (सूर्य), अनन्तज्ञानी और अनुपम–सुख वाले (अरहन्त भगवान्) जगमे न्त होवे ।।२।।

आचार्य–स्तवन

पंच-महव्वय-तुंगा तक्कालिय-सपर-समय-सुदधारा ।
णाणागुण-गण-भरिया आइरिया मम पसीदंतु[2] ।।३।।

卐 द ब क ज ठ ॐ नम सिद्धेभ्य । १ द मातडा । २ द पसीयतु ।

अर्थ :—पाँच महाव्रतोसे उन्नत, तत्कालीन स्वसमय और परसमय स्वरूप श्रुतधारा (मे निमग्न रहने) वाले और नाना-गुणोके समूहसे परिपूरित आचार्यगण मेरे लिए आनन्द प्रदान करे ।।३।।

उपाध्याय-स्तवन

अण्णाण-घोर-तिमिरे[1] दुरंत-तीरम्हि हिंडमाणाणं ।
भवियाणुज्जोययरा[2] उवज्झया वर-मदि देंतु[3] ।।४।।

अर्थ :—दुर्गम-तीरवाले अज्ञानके गहन-अन्धकारमे भटकते हुए भव्य जीवोके लिए ज्ञानरूपी प्रकाश प्रदान करनेवाले उपाध्याय-परमेष्ठी उत्कृष्ट बुद्धि प्रदान करे ।।४।।

साधु-स्तवन

थिर-धरिय-सीलमाला[4] ववगय-राया जसोह-पडहत्था ।
बहु-विणय-भूसियंगा सुहाइं[5] साहू पयच्छंतु ।।५।।

अर्थ :—शीलव्रतोकी मालाको दृढतापूर्वक धारण-करनेवाले, रागसे रहित, यश-समूहसे परिपूर्ण और विविध प्रकारके विनयसे विभूषित अङ्गवाले साधु (परमेष्ठी) सुख प्रदान करे ।।५।।

ग्रन्थ-रचना-प्रतिज्ञा

एव वर-पंचगुरू तियरण-सुद्धेण णमंसिऊणाहं[6] ।
भव्व-जणाण पदीवं वोच्छामि तिलोयपण्णत्ति ।।६।।

अर्थ :—इस प्रकार मै (यतिवृषभाचार्य) तीन-करण (मन, वचन, काय) की शुद्धि पूर्वक श्रेष्ठ पञ्चपरमेष्ठियोको नमस्कार करके भव्य-जनोके लिए प्रदीप-तुल्य "त्रिलोक-प्रज्ञप्ति" ग्रन्थका कथन करता हू ।।६।।

ग्रन्थके प्रारम्भमे करने योग्य छह कार्य

मंगल-कारण-हेदू सत्थस्स पमाण-णाम कत्तारा ।
पढमं चिय कहिदव्वा एसा आइरिय-परिभासा ।।७।।

---

१ द. तिमिर, व तिमिर। २ द. णुज्जोवयरा। ३ द दितु। ४. व. ज. ठ सिलामाला। ५. द ज ठ. मुहाइ। ६ द क. णमसिऊणाह।

अर्थ —मङ्गल, कारण, हेतु, प्रमाण, नाम और कर्ता इन छह अधिकारोका शास्त्रके पहले ही व्याख्यान करना चाहिए, ऐसी आचार्य की परिभाषा (पद्धति) है ।।७।।

मङ्गलके पर्यायवाचक शब्द

पुण्णं पूद-पवित्ता पसत्थ-सिव-भद्द-खेम-कल्लाणा ।
सुह-सोक्खादी सव्वे णिद्दिट्ठा मंगलस्स पज्जाया ।।८।।

अर्थ :—पुण्य, पूत, पवित्र, प्रशस्त, शिव, भद्र, क्षेम, कल्याण, शुभ और सौख्य इत्यादिक सब शब्द मङ्गलके ही पर्यायवाची (समानार्थक) कहे गये है ।।८।।

मङ्गल-शब्दकी निरुक्ति

गालयदि विणासयदे घादेदि दहेदि हंति सोधयदे ।
विद्धंसेदि मलाइं जम्हा तम्हा य मंगलं भणिदं ।।९।।

अर्थ :—क्योकि यह मलको गलाता है, विनष्ट करता है, घातता है, दहन करता है, मारता है, शुद्ध करता है और विध्वस करता है, इसीलिए मङ्गल कहा गया है ।।९।।

मङ्गलके भेद

दोण्णि वियप्पा होंति हु मलस्स इह[1] दव्व-भाव-भेएहि ।
दव्वमलं दुविहप्पं[2] बाहिरमब्भंतरं चेय ।।१०।।

अर्थ :—(यथार्थत) द्रव्य और भावके भेदसे मलके दो प्रकार है, पुन द्रव्यमल दो तरहका है—वाह्य और आभ्यन्तर ।।१०।।

द्रव्यमल और भावमलका वर्णन

सेद[3]-जल-रेणु-कद्दम-पहुदी बाहिर-मलं समुद्दिट्ठं ।
घण[4] दिढ-जीव-पदेसे णिबंध-रूवाइ पयडि-ठिदि-आइं ।।११।।
अणुभाग[5]-पदेसाइं चउहि पत्तेक्क-भेज्जमाणं तु ।
णाणावरणप्पहुदी-अट्ठ-विहं कम्ममखिल-पावरयं ।।१२।।

---

१ द. ज. क ठ. इम । २ ज ठ दुवियप्प । ३. द ज. क ठ. सीदजल । ४ द ज क. ठ पुण । ५ द ज क ठ अणुभावपदेसाई ।

अब्भंतर-दव्वमलं जीव-पदेसे णिबद्धमिदि[1] हेदो ।
भाव-मलं णादव्वं अण्णाणादंसणादि-परिणामो ।।१३।।

अर्थ :—स्वेद (पसीना), रेणु (धूलि), कर्दम (कीचड) इत्यादि द्रव्यमल कहे गये है और दृढरूपसे जीवके प्रदेशोमे एक क्षेत्रावगाहरूप बन्धको प्राप्त तथा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश, बन्धके इन चार भेदोमे से प्रत्येक भेदको प्राप्त होने वाला ऐसा ज्ञानावरणादि आठ प्रकारका सम्पूर्ण कर्मरूपी पाप-रज जो जीवके प्रदेशोसे सम्बद्ध है, (इस हेतु से) वह (ज्ञानावरणादि कर्मरज) आभ्यन्तर द्रव्यमल है। जीवके अज्ञान, अदर्शन इत्यादिक परिणामोको भावमल समझना चाहिए ।।११-१३।।

मङ्गल-शब्दकी सार्थकता

अहवा बहु-भेयगयं णाणावरणादि-दव्व-भाव-मल-भेदा ।
ताइं गालेइ पुढ जदो तदो मंगल भणिदं ।।१४।।

अर्थ :—अथवा ज्ञानावरणादिक द्रव्यमलके और ज्ञानावरणादिक भाव मलके भेदसे मल के अनेक भेद है, उन्हे चू कि (मङ्गल) स्पष्ट रूपसे गलाता है अर्थात् नष्ट करता है, इसलिए यह मगल कहा गया है ।।१४।।

मगलाचरणकी सार्थकता

अहवा मंगं[2] सोक्खं लादि हु गेण्हेदि मंगलं तम्हा ।
एदेण[3] कज्ज-सिद्धि मंगइ गच्छेदि[4] गंथ-कत्तारो ।।१५।।

अर्थ :—यह मग (मोद) को एव सुखको लाता है, इसलिए भी मगल कहा जाता है। इसीके द्वारा ग्रन्थकर्त्ता कार्यसिद्धिको प्राप्त करता है और आनन्दको उपलब्ध करता है ।।१५।।

पुव्विलाइरिएहि मंगं पुण्णत्थ-वाचयं भणियं ।
तं लादि हु आदत्ते जदो तदो मंगलं पवरं ।।१६।।

अर्थ :—पूर्वाचार्योके द्वारा मग पुण्यार्थवाचक कहा गया है, यह यथार्थमे उसी (मगल) को लाता है एव ग्रहण कराता है, इसीलिए यह मगल श्रेष्ठ है ।।१६।।

---

१ द ब. ज क ठ णिबधमिदि। २ द क. मगल। ३ द ज क ठ एदाण। ४ द. गत्थेदिगथ, ब मगलगत्थेदि।

पावं मलं त्ति भण्णइ उवयार-सरूवएण जीवाणं ।
तं गालेदि विणासं णेदि त्ति[1] भणंति मंगलं केई ।।१७।।

अर्थ :—जीवोका पाप, उपचारसे मल कहा जाता है । मगल उस (पाप) को गलाता है तथा विनाशको प्राप्त कराता है, इस कारण भी कुछ आचार्य इसे मगल कहते है ।।१७।।

मगलाचरणके नामादिक छह भेद

णामाणिठावणाओ दव्व-खेत्ताणि काल-भावा य ।
इय छब्भेयं भणियं मंगलमाणंद-संजणणं ।।१८।।

अर्थ :—आनन्दको उत्पन्न करनेवाला मगल नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके भेदसे छह प्रकारका कहा गया है ।।१८।।

नाममगल

अरिहाणं सिद्धाणं आइरिय-उवज्झयाइ[2]-साहूणं ।
णामाइं णाम-मंगलमुद्दिट्ठं वीयराएहि ।।१९।।

अर्थ :—वीतराग भगवान् ने अरिहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु, इनके नामो को नाममङ्गल कहा है ।।१९।।

स्थापना एव द्रव्य मङ्गल

ठावण-मंगलमेदं अकट्टिमाकट्टिमाणि जिणबिंबा ।
सूरि-उवज्झय[3]-साहू-देहाणि हु दव्व-मंगलयं ।।२०।।

अर्थ .—अकृत्रिम और कृत्रिम जिनबिम्ब स्थापना मङ्गल है तथा आचार्य, उपाध्याय और साधुके शरीर द्रव्य—मङ्गल है ।।२०।।

क्षेत्रमङ्गल

गुण-परिणदासणं परिणिक्कमणं केवलस्स णाणस्स ।
उप्पत्ती इय-पहुदी बहुभेयं खेत्त-मंगलयं ।।२१।।

अर्थ :—गुणपरिणत (गुणवान मनुष्यो का निवास) क्षेत्र, परिनिष्क्रमण (दीक्षा) क्षेत्र, केवलज्ञानोत्पत्ति क्षेत्र, इत्यादि रूपसे क्षेत्रमङ्गल अनेक प्रकारका है ।।२१।।

---

१ द. ज क. ठ. णेद्देत्ति । २. उवज्झायाइ । ३. ब. उवज्झायाइ ।

एदस्स उदाहरणं पावाणयरुज्जयंत-चंपादी ।
आउट्ठ-हत्थ-पहुदी पणुवीसब्भहिय-पणसय-धणूणि ॥२२॥
देह-अवट्ठिद-केवलणाणावट्ठद्ध-गयण-देसो वा ।
सेढि[1]-घण-मेत्त अप्पप्पदेस-गद-लोय-पूरणा-पुण्णा[2] ॥२३॥
विस्साण[3] लोयाण होदि पदेसा वि मगलं खेत्तं ।

अर्थ :—इस क्षेत्रमङ्गलके उदाहरण—पावानगर, ऊर्जयन्त (गिरनार) और चम्पापुर आदि हैं तथा साढे तीन हाथसे लेकर पाँच सौ पच्चीस धनुष प्रमाण शरीरमे स्थित और केवलज्ञानसे व्याप्त आकाश-प्रदेश तथा जगच्छ्रेणीके घनमात्र (लोक प्रमाण) आत्माके प्रदेशो से लोकपूरण-समुद्घात द्वारा पूरित सभी (ऊर्ध्व, मध्य एव अधो) लोकोके प्रदेश भी क्षेत्रमङ्गल है ॥२१-२३½॥

काल—मगल

जस्सि काले केवलणाणादि-मंगलं परिणमदि ॥२४॥
परिणिक्कमणं केवलणाणुब्भव-णिव्वुदि-प्पवेसादी ।
पावमल-गालणादो पण्णत्तं काल-मंगलं एदं ॥२५॥
एवं अणेयभेयं हवेदि तं काल-मंगलं पवरं ।
जिण-महिमा-संबंधं णदीसर-दिवस-पहुदीओ[4] ॥२६॥

अर्थ :—जिस कालमे जीव केवलज्ञानादिरूप मगलमय पर्याय प्राप्त करता है उसको तथा परिनिष्क्रमण (दीक्षा) काल, केवलज्ञानके उद्भवका काल और निर्वृति (मोक्षके प्रवेश का) काल, इन सवको पापरूपी मलके गलानेका कारण होनेसे काल—मगल कहा गया है। इसी प्रकार जिन-महिमासे सम्वन्ध रखने वाले वे नन्दीश्वर दिवस (अष्टाह्निका पर्व) आदि भी श्रेष्ठ काल मगल है ॥२३½—२६॥

भावमगल

मंगल-पज्जाएहि उवलक्खिय-जीव-दव्व-मेत्तं च ।
भावं मंगलमेद पढियं[5] सत्थादि-मज्झअंतेसु ॥२७॥

---

१. द. सेढिवणमित्त अप्पपदेसजद । २. व. पूरण पुण्ण । ३ द. व क विण्णास । ४ द ज. क ठ ... च्चयपच्छादि, व पव्वियसत्थादि ।

अर्थ :—मगलरूप पर्यायोसे परिरणत शुद्ध जीवद्रव्य भावमगल है। यही भावमगल शास्त्र के आदि, मध्य ओर अन्तमे पढा गया है (करना चाहिए) ।।२७।।

मगलाचरणके आदि, मध्य और अन्त भेद

पुव्विल्लाइरिएहिं उत्तो सत्थाण मंगलं जो[1] सो ।
आइम्मि मज्झ-अवसाणएसु णियमेण कायव्वो ।।२८।।

अर्थ :—शास्त्रोके आदि, मध्य और अन्तमे मगल अवश्य करना चाहिए, ऐसा पूर्वाचार्योने कहा है ।।२८।।

आदि, मध्य और अन्त मगलकी सार्थकता

पढमे मंगल-करणे[2] सिस्सा सत्थस्स पारगा होंति ।
मज्झिम्मे णीविग्घं विज्जा विज्जाफलं चरिमे ।।२९।।

अर्थ :—शास्त्रके आदिमे मगल करने पर शिष्यजन (शास्त्रके) पारगामी होते है, मध्यमे मगल करने पर विद्याकी प्राप्ति निर्विघ्न होती है और अन्तमे मगल करने पर विद्याका फल प्राप्त होता है ।।२९।।

जिननाम-ग्रहणका फल

णासदि विग्घं भेददि यंहो दुट्ठा सुरा[3] ण लंघंति ।
इट्ठो अत्थो[4] लब्भइ जिण-णामग्गहण-मेत्तेण ।।३०।।

अर्थ :—जिनेन्द्र भगवान्का नाम लेने मात्रसे विघ्न नष्ट हो जाते है, पाप खण्डित हो जाते है, दुष्ट देव (असुर) लाघते नही है, अर्थात् किसी प्रकारका उपद्रव नही करते और इष्ट अर्थकी प्राप्ति होती है ।।३०।।

ग्रन्थमे मगलका प्रयोजन

सत्थादि-मज्झ-अवसाणएसु जिण-थोत्त मंगलुग्घोसो ।
णासइ णिस्सेसाइं विग्घाइं रवि व्व तिमिराइं ।।३१।।

।। इदि मंगलं गदं ।।

---

१. द ब सठाणमगल घोसो। २. द ज. क. ठ वयणे। ३ द दुट्ठासुत्ताण, ब दुट्ठासुवाण, क. ज. ठ. दुट्ठासुताण। ४ द ब क. ज. ठ. लद्धो।

अर्थ :—शास्त्रके आदि, मध्य और अन्तमे जिन-स्तोत्ररूप मगलका उच्चारण सम्पूर्ण विघ्नोको उसी प्रकार नष्ट कर देता है जिस प्रकार सूर्य अधकारको (नष्ट कर देता है) ।।३१।।

। इस प्रकार मगलका कथन समाप्त हुआ ।

ग्रन्थ-अवतार-निमित्त

विविह-वियप्पं लोयं बहुभेय-णयप्पमाणदो[1] भव्वा ।
जाणंति त्ति णिमित्तं कहिदं गंथावतारस्स ।।३२।।

अर्थ :—नाना भेदरूप लोकको भव्य जीव अनेक प्रकारके नय और प्रमाणोसे जाने, यह त्रिलोकप्रज्ञप्तिरूप ग्रन्थके अवतारका निमित्त कहा गया है ।।३२।।

केवलणाण-दिवायर-किरणकलावादु एत्थ अवदारो[2] ।
गणहरदेवेहिं[3] गंथुप्पत्ति हु सोहं त्ति संजादो[4] ।।३३।।

अर्थ :—केवलज्ञानरूपी सूर्यकी किरणोके समूहसे श्रुतके अर्थका अवतार हुआ तथा गणधर-देवके द्वारा ग्रन्थकी उत्पत्ति हुई । यह श्रुत कल्याणकारी है ।।३३।।

छद्दव्व-णव-पयत्थे सुदणाणं दुमणि-किरण-सत्तीए ।
देक्खंतु भव्व-जीवा अण्णाण-तमेण संछण्णा ।।३४।।

।। णिमित्तं गदं ।।

अर्थ —अज्ञानरूपी अँधेरेसे आच्छादित हुए भव्य जीव श्रुतज्ञानरूपी सूर्यकी किरणोकी शक्तिसे छह द्रव्य और नव-पदार्थोको देखे (यही ग्रन्थावतारका निमित्त है) ।।३४।।

। इस प्रकार निमित्तका कथन समाप्त हुआ ।

हेतु एव उसके भेद

दुविहो हवेदि हेदू तिलोयपण्णत्ति-गंथअज्झयणे[5] ।
जिणवर-वयणुद्दिट्ठो पच्चक्ख-परोक्ख-भेएहिं ।।३५।।

अर्थ :—त्रिलोकप्रज्ञप्ति ग्रन्थके अध्ययनमे जिनेन्द्रदेवके वचनोसे उपदिष्ट हेतु, प्रत्यक्ष और परोक्षके भेदमे दो प्रकारका है ।।३५।।

---

१. द. ब ज. क. ठ. भेयपमाणदो । २ द. ज. क. ठ. अवहारो, ब. अवहारे । ३. द. गणधरदेहे । ४. द सोहति सजादो, ब सोहति सो जादो । ५ ब. गथयज्झयणे ।

प्रत्यक्ष हेतु

सक्खा-पच्चक्ख-परंपच्चक्खा दोण्णि होंति[1] पच्चक्खा ।
अण्णाणस्स विणासं णाण-दिवायरस्स उप्पत्ती ।।३६।।

देव-मणुस्सादीहिं संततमब्भच्चण-प्पयाराणि ।
पडिसमयमसंखेज्जय - गुणसेढि - कम्म - णिज्जरणं ।।३७।।

इय सक्खा-पच्चक्खं पच्चक्ख-परंपरं च णादव्वं ।
सिस्स-पडिसिस्स-पहुदीहिं सददमब्भच्चण-पयारं ।।३८।।

अर्थ :—प्रत्यक्ष हेतु, साक्षात् प्रत्यक्ष और परम्परा प्रत्यक्षके भेदसे दो प्रकारका है। अज्ञानका विनाश, ज्ञानरूपी दिवाकरकी उत्पत्ति, देव और मनुष्यादिकोके द्वारा निरन्तर की जानेवाली विविधप्रकारकी अभ्यर्चना (पूजा) और प्रत्येक समयमे असख्यातगुणश्रेणीरूपसे होने वाली कर्मोकी निर्जरा साक्षात् प्रत्यक्ष हेतु है। शिष्य-प्रतिशिष्य आदिके द्वारा निरन्तर अनेक प्रकारसे की जानेवाली पूजाको परम्परा प्रत्यक्ष हेतु जानना चाहिए ।।३६-३८।।

परोक्ष हेतुके भेद एव अभ्युदय सुखका वर्णन

दो-भेदं च परोक्खं अब्भुदय-सोक्खाइं मोक्ख-सोक्खाइं ।
सादादि-विविह-सु-पसत्थ[2]-कम्म-तिव्वाणुभाग-उदएहिं ।।३९।।

इंद - पडिंद - दिगिंदय - तेत्तीसामर[3] - समाण - पहुदि - सुहं ।
राजाहिराज - महराज - अद्धमंडलिय - मंडलियाणं ।।४०।।

महमंडलियाणं अद्धचक्कि-चक्कहर-तित्थयर-सोक्खं ।।४१/१।।

अर्थ :—परोक्ष हेतु भी दो प्रकारका है, एक अभ्युदय सुख और दूसरा मोक्षसुख। सातावेदनीय आदि विविध सुप्रशस्त कर्मोके तीव्र अनुभागके उदयसे प्राप्त हुआ इन्द्र, प्रतीन्द्र, दिगिन्द्र (लोकपाल), त्रायस्त्रिंश एव सामानिक आदि देवोका सुख तथा राजा, अधिराजा, महाराजा, अर्धमण्डलीक, मण्डलीक, महामण्डलीक, अर्धचक्री (नारायण-प्रतिनारायण), चक्रवर्ती और तीर्थंकर इनका सुख अभ्युदय सुख है ।।३९-४१/१।।

---

१ द होदि। २ क. ज ठ. सुपरसत्थ। ३ ब तेत्तीससायरपमाण।

राजा का लक्षण

अट्ठारस-मेत्ताणं सामी-सेणीण[1] भत्ति-जुत्ताणं ।।४१/२।।
वर-रयण-मउडधारी सेवयमाणाण वंछिदं[2] अत्थं ।

देता हवेदि राजा जिदसत्तू समरसंघट्टे ।।४२।।

अर्थ :—भक्ति युक्त अठारह-प्रकारकी श्रेणियोका स्वामी, उत्कृष्ट रत्नोके मुकुटको धारण करने वाला, सेवकजनोको इच्छित पदार्थ प्रदान करनेवाला और समरके सघर्षमे शत्रुओको जीतने वाला (व्यक्ति) राजा होता है ।।४१/२-४२।।

अठारह-श्रेणियोके नाम

करि-तुरय-रहाहिवई सेणवइ पदत्ति-सेट्ठि-दंडवई ।
सुद्दक्खत्तिय-वइसा हवंति तह महयरा पवरा ।।४३।।

गणराय-मंति-तलवर-पुरोहियामत्तया महामत्ता ।
बहुविह-पइण्णया य अट्ठारस होंति सेणीओ[3] ।।४४।।

अर्थ :—हाथी, घोडे और रथोके अधिपति, सेनापति, पदाति (पादचारी सेना), श्रेष्ठि (सेठ), दण्डपति, शूद्र, क्षत्रिय, वैश्य, महत्तर, प्रवर (ब्राह्मण), गणमन्त्री, राजमन्त्री, तलवर (कोतवाल), पुरोहित, अमात्य ओर महामात्य एव बहुत प्रकारके प्रकीर्णक, ऐसी अठारह प्रकारकी श्रेणियाँ होती है ।।४३-४४।।

अधिराज एव महाराजका लक्षण

पंचसय-राय-सामी अहिराजो होदि कित्ति-भरिद-दिसो ।
रायाण जो सहस्सं पालइ सो होदि महराजो ।।४५।।

अर्थ —कीर्तिसे भरित दिशाओ वाला और पाँच सौ राजाओका स्वामी अधिराजा होता है और जो एक हजार राजाओका पालन करता है वह महाराजा है ।।४५।।

---

१ द ब सेणेण। २ द ज क ठ वति दह अद्ध, ब वति दह अट्ठ। ३. द ब. ज. क. सेणेओ।

अर्धमण्डलीक एवं मण्डलीकका लक्षण

दु-सहस्स-मउडबद्ध-भुव-वसहो[1] तत्थ अद्धमंडलिओ ।
चउ-राज-सहस्साणं अहिणाहो होइ मंडलिओ[2] ।।४६।।

अर्थ :—दो हजार मुकुटबद्ध भूपोमे वृषभ (प्रधान) अर्धमण्डलीक तथा चार हजार राजाओ का स्वामी मण्डलीक होता है ।।४६।।

महामण्डलीक एवं अर्धचक्रीका लक्षण

महमंडलिया णामा अट्ठ-सहस्साण अहिवई ताणं ।
रायाण अद्धचक्की सामी सोलस-सहस्स-मेत्ताणं ।।४७।।

अर्थ —आठ हजार राजाओका अधिपति महामडलीक होता है तथा सोलह हजार राजाओका स्वामी अर्धचक्री कहलाता है ।।४७।।

चक्रवर्ती और तीर्थंकर का लक्षण

छक्खंड-भरहणाहो बत्तीस-सहस्स-मउडबद्ध-पहुदीओ ।
होदि हु सयलंचक्की तित्थयरो सयल-भुवणवई ।।४८।।

।। अब्भुदय-सोक्खं गदं ।।

अर्थ :—छह खण्डरूप भरतक्षेत्रका स्वामी और बत्तीसहजार-मुकुटबद्ध राजाओका तेजस्वी अधिपति सकलचक्री एवं समस्त लोकोका अधिपति तीर्थंकर होता है ।।४८।।

।। इस प्रकार अभ्युदय सुखका कथन समाप्त हुआ ।।

मोक्षसुख

सोक्खं तित्थयराणं सिद्धाणं[3] तह य इंदियादीदं ।
अदिसयमाद-समुत्थं णिस्सेयसमणुवमं पवरं ।।४९।।

।। मोक्ख-सोक्खं गदं ।।

---

१ द क ज ठ वद्धासेवसहो । २ द व ज क ठ मडलिय । ३ द. पवनाण तह इंदियादीद । ज. पयराण तह य इंदियादीद । ठ पयराण तह य इंदियादीहिं । क कप्पातीदाण तह य इंदियादीह ।

अर्थ :—तीर्थंकरो (अरिहन्तो) और सिद्धोके अतीन्द्रिय, अतिशयरूप आत्मोत्पन्न, अनुपम तथा श्रेष्ठ सुखको नि श्रेयस-सुख कहते है ।।४९।।

।। इसप्रकार मोक्ष सुखका कथन समाप्त हुआ ।।

श्रुतज्ञानकी भावनाका फल

सुदणाण-भावणाए णाणं मत्तंड-किरण-उज्जोओ ।
चंदुज्जलं चरित्तं णियवस-चित्तं हवेदि भव्वाणं ।।५०।।

अर्थ :—श्रुतज्ञानकी भावनासे भव्य जीवोका ज्ञान सूर्यकी किरणोके समान उद्योतरूप अर्थात् प्रकाशमान होता है, चरित्र चन्द्रमाके समान उज्ज्वल होता है तथा चित्त अपने वशमे होता है ।।५०।।

परमागम पढनेका फल

कणय-धराधर-धीरं मूढ-त्तय-विरहिदं [1]हयट्ठमलं ।
जायदि पवयण-पढणे सम्मद्दंसणमणुवमाणं ।।५१।।

अर्थ :—प्रवचन (परमागम) के पढनेसे सुमेरुपर्वतके समान निश्चल, लोकमूढता, देवमूढता और गुरुमूढता, इन तीन (मूढताओ) से रहित और शका-काक्षा आदि आठ दोषोसे विमुक्त अनुपम सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होती है ।।५१।।

आर्ष वचनोके अभ्यासका फल

सुर-खेयर-मणुवाणं लब्भंति सुहाइं आरिसब्भासा[2] ।
तत्तो णिव्वाण-सुहं णिण्णासिद दारुणट्ठमला ।।५२।।

।। एवं हेदु-गदं ।।

अर्थ :—आर्ष वचनोके अभ्याससे देव, विद्याधर तथा मनुष्यो के सुख प्राप्त होते है और अन्तमे दारुण अष्ट कर्ममलसे रहित मोक्षसुखकी भी प्राप्ति होती है ।।५२।।

।। इसप्रकार हेतुका कथन समाप्त हुआ ।।

श्रुतका प्रमाण

विविहत्थेहि अणंतं संखेज्जं अक्खराण गणणाए ।
एदं पमाणमुदिदं सिस्साणं मइ-वियासयरं ।।५३।।

।। पमाणं गदं ।।

१ द हय भग्गमल । क. ज ठ हयग्गमल । म हदट्ठमय । २. द. ब. आरसभासा ।

अर्थ :—श्रुत, विविध प्रकारके अर्थोकी अपेक्षा अनन्त है और अक्षरोकी गणनाकी अपेक्षा सख्यात है। इसप्रकार शिष्योकी बुद्धिको विकसित करनेवाले इस श्रुतका प्रमाण कहा गया है ॥५३॥

॥ इसप्रकार प्रमाणका वर्णन हुआ ॥

ग्रन्थनाम कथन

भव्वाण जेण एसा ते-लोक्क-पयासणे परम-दीवा ।
तेण गुण-णाममुदिदं तिलोयपण्णत्ति णामेणं ॥५४॥

॥ णामं गदं ॥

अर्थ :—यह (शास्त्र) भव्य जीवोके लिए तीनो लोकोका स्वरूप प्रकाशित करनेमे उत्कृष्ट दीपकके सदृश है, इसलिए इसका 'त्रिलोकप्रज्ञप्ति' यह सार्थक नाम कहा गया है ॥५४॥

॥ इसप्रकार नामका कथन पूर्ण हुआ ॥

कर्ताके भेद

कत्तारो दुवियप्पो णायव्वो अत्थ-गंथ-भेदेहि ।
दव्वादि-चउपयारे पभासिमो अत्थ-कत्तारं[1] ॥५५॥

अर्थ :—अर्थकर्ता और ग्रन्थकर्ताके भेदमे कर्ता दो प्रकारके समझना चाहिए। इनमेसे द्रव्यादिक चार प्रकारसे अर्थकर्ताका हम निरूपण करते है ॥५५॥

द्रव्यकी अपेक्षा अर्थागमके कर्ता

सेद-रजाइ-मलेणं रत्तच्छि-कडक्ख-वाण-मोक्खेहिं ।
इय-पहुदि-देह-दोसेहि संततमदूसिद-सरीरो (य) ॥५६॥

आदिम-संहणण-जुदो समचउरस्संग-चारु-संठाणो ।
दिव्व-वर-गंधधारी पमाण-ठिद-रोम-णह-रूवो ॥५७॥

णिब्भूसणायुहंबर-भीदी सोम्माणणादि-दिव्व-तणू ।
अट्ठब्भहिय - सहस्स - प्पमाण-वर - लक्खणोपेदो ॥५८॥

---

१ व अत्थकत्तारो ।

चउविह-उवसग्गेहिं णिच्च-विमुक्को कसाय-परिहीणो ।
छुह-पहुदि-परिसहेहिं परिचत्तो राय-दोसेहिं ॥५९॥

जोयण-पमाण-संठिद-तिरियामर-मणुव-णिवह-पडिबोहो ।
मिदु-महुर-गभीरतरा-विसद[1]-यिसय-सयल-भासाहिं ॥६०॥

अट्ठरस महाभासा खुल्लयभासा यि सत्तसय-संखा ।
अक्खर-अणक्खरप्पय सण्णी-जीवाण सयल-भासाओ ॥६१॥

एदासि भासाणं तालुव-दंतोट्ठ-कंठ-वावारं ।
परिहरिय एक्क-कालं भव्व-जणाणंद-कर-भासो ॥६२॥

भावण-वेंतर-जोइसिय-कप्पवासेहिं केसव-बलेहिं ।
विज्जाहरेहि चक्किप्पमुहेहि णरेहिं तिरिएहिं ॥६३॥

एदेहि अण्णेहि विरचिद-चरणारविंद-जुग-पूजो ।
दिट्ठ-सयलट्ठ-सारो महवीरो अत्थ-कत्तारो ॥६४॥

अर्थ :—जिनका शरीर पसीना, रज (धूलि) आदि मलसे तथा लालनेत्र और कटाक्ष-बाणोको छोडना आदि शारीरिक दूषणोसे सदा अदूषित है, जो आदिके अर्थात् वज्रर्षभनाराच सहनन और समचतुरस्र-सस्थानरूप सुन्दर आकृतिसे शोभायमान है, दिव्य और उत्कृष्ट सुगन्धके धारक है, रोम और नख प्रमाणसे स्थित (वृद्धिसे रहित) है, भूषण, आयुध, वस्त्र और भीतिसे रहित है, सुन्दर मुखादिकसे शोभायमान दिव्य-देहसे विभूषित है, शरीरके एकहजार-आठ उत्तम लक्षणोसे युक्त है, देव, मनुष्य, तिर्यंच और अचेतनकृत चार प्रकारके उपसर्गोसे सदा विमुक्त है, कषायोसे रहित है, क्षुधादिक बाईस परीषहो एव रागद्वेषसे रहित है, मृदु, मधुर, अतिगम्भीर और विषयको विशद करनेवाली सम्पूर्ण भाषाओसे एक योजन प्रमाण समवसरणसभामे स्थित तिर्यंच, देव और मनुष्योके समूहको प्रतिवोधित करने वाले है, जो सज्ञी जीवो की अक्षर और अनक्षररूप अठारह महाभाषा तथा सात सौ छोटी भाषाओमे परिणत हुई और तालु, दन्त, ओठ तथा कण्ठके हलन-चलनरूप व्यापारसे रहित होकर एक ही समयमे भव्यजनोको आनन्द करनेवाली भाषा (दिव्यध्वनि) के स्वामी है, भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी देवोके द्वारा तथा नारायण, बलभद्र, विद्याधर और चक्रवर्ती आदि प्रमुख मनुष्यो, तिर्यंचो एव अन्य भी ऋषि-महर्षियोसे जिनके चरणारविन्द युगलकी

१. ब. विसदयसमसयल ।

पूजा की गई है और जिन्होने सम्पूर्ण पदार्थोके सारको देख लिया है, ऐसे महावीर भगवान् (द्रव्यकी अपेक्षा) अर्थागमके कर्ता है ।। ५६-६४ ।।

क्षेत्रकी अपेक्षा अर्थ-कर्ता

सुर-खेयर-मण-हरणे गुणणामे पंचसेल-णयरम्मि[1] ।
विउलम्मि पव्वदवरे वीर-जिणो अत्थ-कत्तारो ।।६५।।

अर्थ :—देव एव विद्याधरोके मनको मोहित करनेवाले और सार्थक नाम-वाले पचशैल (पाच पहाडोसे सुशोभित) नगर (राजगृही) मे; पर्वतोमे श्रेष्ठ विपुलाचल पर श्री वीरजिनेन्द्र (क्षेत्रकी अपेक्षा) अर्थके कर्ता हुए ।।६५।।

पचशैल

चउरस्सो पुव्वाए रिसिसेलो[2] दाहिणाए वेभारो ।
णइरिदि-दिसाए विउलो दोण्णि तिकोणट्ठिदायारा ।।६६।।

अर्थ :—(राजगृह नगरके) पूर्वमे चतुष्कोण ऋषिशैल, दक्षिणमे वैभार और नैऋत्यदिशामे विपुलाचल पर्वत है, ये दोनो, वैभार एव विपुलाचल पर्वत त्रिकोण आकृतिसे युक्त है ।।६६।।

चाव-सरिच्छो छिण्णो वरुणाणिल-सोमदिस-विभागेसु ।
ईसाणाए पंडू वट्टो[3] सव्वे कुसग्ग-परियरणा ।।६७।।

अर्थ :—पश्चिम, वायव्य और सोम (उत्तर) दिशामे फैला हुआ धनुपाकार छिन्न नामका पर्वत है और ईशान दिशामे पाण्डु नामका पर्वत है। उपर्युक्त पाँचोही पर्वत कुशाग्रोसे वेष्टित है ।। ६७ ।।

कालकी अपेक्षा अर्थकर्ता एव धर्मतीर्थकी उत्पत्ति

एत्थावसप्पिणीए चउत्थ-कालस्स चरिम-भागम्मि ।
तेत्तीस-वास-अडमास-पण्णरस-दिवस-सेसम्मि ।।६८।।

वासस्स पढम-मासे सावण-णामम्मि बहुल-पडिवाए ।
अभिजीणक्खत्तम्मि य उप्पत्ती धम्म-तित्थस्स ।।६९।।

---

१. द. णययम्मि । २. द. ब. ज. क ठ सिरिसेलो । ३. द. ज. क. ठ. वप्पा ट्टो ।

अर्थ :—यहाँ अवसर्पिणीके चतुर्थकालके अन्तिम भागमे तेंतीस वर्ष, आठ माह और पन्द्रह दिन शेष रहनेपर वर्षके श्रावण नामक प्रथम माहमे कृष्णपक्षकी प्रतिपदाके दिन अभिजित् नक्षत्रके उदित रहनेपर धर्मतीर्थकी उत्पत्ति हुई ।।६८-६९।।

सावण-बहुले-पाडिव-रुद्दमुहुत्ते[1] सुहोदये[2] रविणो ।
अभिजिस्स पढम-जोए जुगस्स आदी इमस्स[3] पुढं ।।७०।।

अर्थ :—श्रावण कृष्णा प्रतिपदाके दिन रुद्रमुहूर्तके रहते हुए सूर्यका शुभ उदय होनेपर अभिजित् नक्षत्रके प्रथम योगमे इस युगका प्रारम्भ हुआ, यह स्पष्ट है ।।७०।।

भावकी अपेक्षा अर्थकर्ता

णाणावरणप्पहुदी णिच्छय-ववहारपाय अतिसयए ।
संजादेण अणंतं णाणेणं दंसणेण सोक्खेणं ।।७१।।
विरिएण तहा खाइय-सम्मत्तेणं पि दाण-लाहेहि ।
भोगोपभोग-णिच्छय-ववहारेहिं च परिपुण्णो[4] ।।७२।।

अर्थ :—ज्ञानावरणादि चार-घातियाकर्मोके निश्चय और व्यवहाररूप विनाशके कारणोकी प्रकर्षता होने पर उत्पन्न हुए अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य इन चार—अनन्त-चतुष्टय तथा क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग और क्षायिकउपभोग इसप्रकार नवलब्धियोके निश्चय एव व्यवहार स्वरूपोसे परिपूर्ण हुए ।।७१-७२।।

दंसणमोहे णट्ठे घादि-त्तिदए चरित्त-मोहम्मि ।
सम्मत्त-णाण-दंसण-वीरिय-चरियाइ होंति खइयाइं ।।७३।।

अर्थ :—दर्शनमोह, तीन घातियाकर्म (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय) और चारित्र-मोहके नष्ट होनेपर क्रमसे सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य और चारित्र, ये पाँच क्षायिकभाव प्राप्त होते है ।।७३।।

जादे अणंत-णाणे णट्ठे छदुमट्ठिदियम्मि[5] णाणम्मि ।
णवविह-पदत्थसारो दिव्वझुणी कहइ सुत्तत्थं ।।७४।।

अर्थ :—अनन्तज्ञान अर्थात् केवलज्ञानकी उत्पत्ति और छद्मस्थ अवस्थामे रहनेवाले मति, श्रुत, अवधि एव मन पर्ययरूप चारो-ज्ञानोका अभाव होनेपर नौ प्रकारके पदार्थो (सात-तत्त्व और पुण्य-पाप) के सारको विषय करनेवाली दिव्यध्वनि सूत्रार्थको कहती है ।।७४।।

---

१. द. ब. सुद्दमुहुत्ते । २ ब. सुहोदिए, क. सुहोदए । ३. द. आदीइ यिमस्स, क आदी यिमस्स ।
४. ब. परपुण्णो । ५. द ब चदुमट्ठिदिदम्मि ।

अण्णेहिं अणंतेहिं गुणेहिं जुत्तो विसुद्ध-चारित्तो ।
भव-भय-भंजण-दच्छो महवीरो अत्थ-कत्तारो ।।७५।।

अर्थ :—इसके अतिरिक्त और भी अनन्तगुणोसे युक्त, विशुद्ध चारित्रके धारक तथा ससारके भयको नष्ट करनेमे दक्ष श्रीमहावीर प्रभु (भावकी अपेक्षा) अर्थ-कर्ता है ।।७५।।

गौतम-गणधर द्वारा श्रुत-रचना

महवीर-भासियत्थो तस्सि खेत्तम्मि तत्थ काले य ।
खायोवसम-विवड्ढिद-चउरमल[1]-मईहि पुण्णेण ।।७६।।

लोयालोयाण तहा जीवाजीवाण विविह-विसयेसु ।
संदेह-णासणत्थं उवगद-सिरि-वीर-चलणमूलेण ।।७७।।

विमले गोदम-गोत्ते जादेणं [2]इंदभूदि-णामेणं ।
चउ-वेद-पारगेणं सिस्सेण[3] विसुद्ध-सीलेणं ।।७८।।

भाव-सुदं पज्जाएहि परिणदमयिणा[4] अ बारसंगाणं ।
चोद्दस-पुव्वाण तहा एक्क-मुहुत्तेण विरचणा विहिदा ।।७९।।

अर्थ :—भगवान् महावीरके द्वारा उपदिष्ट पदार्थस्वरूप, उसी क्षेत्र और उसीकालमे, ज्ञानावरणके विशेष क्षयोपशमसे वृद्धिको प्राप्त निर्मल चार बुद्धियो (कोष्ठ, बीज, सभिन्न-श्रोतृ और पदानुसारी) से परिपूर्ण, लाक-अलोक और जीवाजीवादि विविध विषयोमे उत्पन्न हुए सन्देहको नष्ट करनेके लिए श्रीवीर भगवान्के चरण-मूलकी शरणमे आये हुए, निर्मल गौतमगोत्रमे उत्पन्न हुए, चारो वेदोमे पारगत, विशुद्ध शीलके धारक, भावश्रुतरूप पर्यायसे बुद्धिकी परिपक्वताको प्राप्त, ऐसे इन्द्रभूति नामक शिष्य अर्थात् गौतम गणधर द्वारा एक मुहूर्तमे बारह अग और चौदहपूर्वोकी रचना रूपसे श्रुत गु थित किया गया ।।७६-७९।।

कर्त्ताके तीन भेद

इय मूल-तंत-कत्ता सिरि-वीरो इंदभूदि-विप्प-वरो ।
उवतंते कत्तारो अणुतंते सेस-आइरिया ।।८०।।

---

१ व चउउर°, क. चउउर । २. व यदभूदि°, क. इदिभूदि । ३. ब. मिस्सेण, क मिणेण । ४. [परिणदमइणा य] क मयेण एयार ।

अर्थ :—इसप्रकार श्रीवीरभगवान् मूलतन्त्रकर्ता, ब्राह्मणोमे श्रेष्ठ इन्द्रभूति गणधर उपतन्त्र-कर्ता और शेष आचार्य अनुतन्त्रकर्ता है ।।८०।।

सूत्रकी प्रमाणता

णिण्णट्ठ-राय-दोसा महेसिणो [1]दव्व-सुत्त-कत्तारो ।
किं कारणं पभणिदा कहिदुं सुत्तस्स [2]पामण्णं ।।८१।।

अर्थ :—रागद्वेषसे रहित गणधरदेव द्रव्यश्रुतके कर्ता है, यह कथन यहाँ किस कारणसे किया गया है ? यह कथन सूत्रकी प्रमाणताका कथन करनेके लिए किया गया है ।।८१।।

नय प्रमाण और निक्षेपके बिना अर्थ निरीक्षण करनेका फल

जो ण पमाण-णयेहि णिक्खेवेणं णिरक्खदे अत्थं ।
तस्साजुत्तं जुत्तं जुत्तमजुत्तं च पडिहादि ।।८२।।

अर्थ :—जो नय और प्रमाण तथा निक्षेपसे अर्थका निरीक्षण नही करता है, उसको अयुक्त पदार्थ युक्त और युक्त पदार्थ अयुक्त ही प्रतीत होता है ।।८२।।

प्रमाण एव नयादिका लक्षण

णाणं होदि पमाणं णओ वि णादुस्स हिदय-भावत्थो[3] ।
णिक्खेओ वि उवाओ, जुत्तीए अत्थ-पडिगहणं ।।८३।।

अर्थ :—सम्यग्ज्ञानको प्रमाण और ज्ञाताके हृदयके अभिप्रायको नय कहते है । निक्षेप भी उपायस्वरूप है । युक्तिसे अर्थका प्रतिग्रहण करना चाहिए ।।८३।।

रत्नत्रयका कारण

इय णायं अवहारिय आइरिय-परंपरागदं मणसा ।
पुव्वाइरियाआराणुसरणअं ति-रयण-णिमित्तं ।।८४।।

अर्थ :—इसप्रकार आचार्यपरम्परासे प्राप्त हुए न्यायको मनसे अवधारण करके पूर्व आचार्योके आचारका अनुसरण करना रत्नत्रयका कारण है ।।८४।।

---

१. द ज. क ठ. दिव्यसुत्त° । २. क. द ज. ब ठ. सामण्ण । ३ व णउ वि णादुसहहिदय-भावत्थो, क. णउ वि णादुसहहिदयभावत्थो ।

अथ प्रतिपादनकी प्रतिज्ञा

मंगलपहुदिच्छक्कं वक्खाणिय विविह-गंथ-जुत्तीहि ।
जिणवर-मुह-णिक्कंतं गणहर-देवेहि [1]गथित-पदमालं ।।८५।।

सासद-पदमावण्णं पवाह रुवत्तणेण दोसेहि ।
णिस्सेसेहि विमुक्कं आइरिय-अणुक्कमाआद ।।८६।।

भव्व-जणाणंदयरं वोच्छामि अहं तिलोयपण्णत्ति ।
णिब्भर-भत्ति-पसादिद-वर-गुरु-चलणाणुभावेण ।।८७।।

अर्थ :—विविध ग्रन्थ और युक्तियोसे (मगलादि छह—मगल, कारण, हेतु, प्रमाण, नाम और कर्ता का) व्याख्यान करके जिनेन्द्र भगवानके मुखसे निकले हुए, गणधरदेवो द्वारा पदोकी (शब्द रचना रूप) मालामे गू थे गये, प्रवाह रूपसे शाश्वतपद (अनन्तकालीनताको) प्राप्त सम्पूर्ण दोषोसे रहित और आचार्य-परम्परासे आये हुए तथा भव्यजनोको आनन्ददायक 'त्रिलोकप्रज्ञप्ति' शास्त्रको मै अतिशय भक्ति द्वारा प्रसादित उत्कृष्ट-गुरुके चरणोके प्रभावसे कहता हू ।।८५-८७।।

ग्रन्थके नव अधिकारोके नाम

सामण्ण-जग-सरूवं तम्मि ठियं णारयाण लोयं च ।
भावण-णर-तिरियाणं वेंतर-जोइसिय-कप्पवासीणं ।।८८।।

सिद्धाणं लोगो त्ति य [2]अहियारे पयद-दिट्ठ-णव-भेए ।
तम्मि णिबद्धे जीवे पसिद्ध-वर-वण्णणा-सहिए ।।८९।।

वोच्छामि [3]सयलभेदे भव्वजणाणंद-पसर-संजणणं[4] ।
जिण-मुह-कमल-विणिग्गय-तिलोयपण्णत्ति-णामाए ।।९०।।

अर्थ :—जगतका सामान्यस्वरूप तथा उसमे स्थित नारकियोका लोक, भवनवासी, मनुष्य, तिर्यंच, व्यन्तर, ज्योतिषी, कल्पवासी और सिद्धोका लोक, इसप्रकार प्रकृतमे उपलब्ध भेदरूप नौ अधिकारो तथा उस-उस लोकमे निबद्ध जीवोको, नयविशेषोका आश्रय लेकर उत्कृष्ट वर्णनासे

---

१ क. ज. ठ. गथित । २ व अहिआरो, क अहिआरे । ३. व. लय=नयविशेषम्, द वोच्छामि सयलईए, क वोच्छामि सयलईए । ४ व जणाणदएसरस ।

युक्त भव्यजनोको आनन्दके प्रसारका उत्पादक और जिनभगवान्के मुखरूपी कमलसे निर्गत यह त्रिलोकप्रज्ञप्ति नामक ग्रन्थ कहता हू।।८८–९०।।

लोकाकाशका लक्षण

जगसेढि-घण-पमाणो लोयायासो स-पंच-दव्व-ठिदी ।
एस अणंताणंतालोयायासस्स बहुमज्झे ।।९१।।

☰ १६ ख ख ख[1]

अर्थ :—यह लोकाकाश (☰) अनन्तानन्त अलोकाकाश (१६ ख ख ख) के बहुमध्य-भागमे जीवादि पाँच द्रव्योसे व्याप्त और जगच्छ्रेणीके घन (३४३ घन राजू) प्रमाण है ।।९१।

विशेष :—इस गाथाकी सदृष्टि (☰ १६ ख ख ख) का अर्थ इसप्रकार है—

☰, का अर्थ लोककी प्रदेश-राशि एवं धर्माधर्मकी प्रदेश राशि ।

१६, सम्पूर्ण जीव राशि ।

१६ ख, सम्पूर्ण पुद्गल (की परमाणु) राशि ।

१६ ख ख, सम्पूर्ण काल (की समय) राशि ।

१६ ख ख ख, सम्पूर्ण आकाश (की प्रदेश) राशि ।

जीवा पोग्गल-धम्माधम्मा काला इमाणि दव्वाणि ।
सव्वं [2]लोयायासं [3]आधूइय पंच [4]चिट्ठंति ।।९२।।

अर्थ :—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल, ये पाँचो द्रव्य सम्पूर्ण लोकाकाशको व्याप्त-कर स्थित है ।।९२।।

एत्तो सेढिस्स घणप्पमाणाण णिण्णयत्थ परिभासा उच्चदे—

अब यहाँसे आगे श्रेणिके घन प्रमाण लोकका निर्णय करनेके लिए परिभाषाएँ अर्थात् पल्योपमादिका स्वरूप कहते है—

---

१ द ख ख ख×२। २ द. ब क ज. ठ. लोयायासो। ३ द क आउवड्ढिदि आधूइय। ४ द ब चरति, क चिरति, ज. ठ चिरति।

उपमा प्रमाणके भेद—

पल्ल-समुद्दे उवमं अंगुलयं सूइ-पदर-घरण-रणामं ।
जगसेढि-लोय-पदरो अ लोओ अट्ठप्पमाणाणि ॥६३॥

प १ । सा २ । सू ३ । प्र ४ । घ ५ । ज ६ । लोय प ७ । लोय ८

अर्थ :—पल्योपम, सागरोपम, सूच्यगुल, प्रतरागुल, घनागुल, जगच्छ्रेणी, लोक-प्रतर और लोक ये आठ उपमा प्रमाणके भेद है ॥९३॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
पल्य, सागर, सूच्यगुल, प्रतरागुल, घनागुल, जग० लोक प्र० लोक ।

पल्यके भेद एव उनके विपयोका निर्देश

ववहारुद्धारद्धा तिय-पल्ला पढमयम्मि संखाओ ।
विदिए दीव-समुद्दा तदिए मिज्जेदि कम्म-ठिदी ॥६४॥

अर्थ :—व्यवहारपल्य, उद्धारपल्य और अद्धापल्य, ये पल्यके तीन भेद है । इनमे प्रथम पल्यसे सख्या, द्वितीयसे द्वीप-समुद्रादिक और तृतीयसे कर्मोकी स्थितिका प्रमाण लगाया जाता है ॥९४॥

स्कध, देश, प्रदेश एव परमाणुका स्वरूप

खंदं सयल-समत्थं तस्स य अद्धं भणंति देसो त्ति ।
अद्धद्धं च पदेसो अविभागी होदि परमाणू ॥६५॥

अर्थ :—सव प्रकारसे समर्थ (सर्वाशपूर्ण) स्कध, उसके अर्धभागको देश और आधेके आधे भागको प्रदेश कहते है । स्कधके अविभागी (जिसके और विभाग न हो सके ऐसे) अशको परमाणु कहते है ॥९५॥

परमाणुका स्वरूप

सत्थेण [1]सु-तिक्खेणं छेत्तुं भेत्तुं च जं किरण सक्को ।
जल-अणलादिहिं णासं ण एदि सो[2] होदि परमाणू ॥६६॥

अर्थ :—जो अत्यन्त तीक्ष्णशस्त्रसे भी छेदा या भेदा नही जा सकता, तथा जल और अग्नि आदिके द्वारा नाशको भी प्राप्त नही होता वह परमाणु है ॥९६॥

---

१. ब. सुतिक्खेण य च्छेत्तु च ज किरस्सक्का । २. द ब. सा, ब. ज. ठ. सा ।

एक्क-रस-वण्ण-गंधं दो पासा सद्द-कारणमसद्दं ।
खंदंतरिदं दव्वं तं परमाणुं भणंति बुधा ।।९७।।

अर्थ —जिसमे (पाँच रसोमेसे) एक रस, (पाच वर्णोमेसे) एक वर्ण, (दो गधोमेसे) एक गध और (स्निग्ध-रूक्षमेसे एक तथा शीत-उष्णमेसे एक ऐसे) दो स्पर्श (इसप्रकार कुल पाच गुण) है और जो स्वय शब्दरूप न होकर भी शब्दका कारण है एव स्कन्धके अन्तर्गत है, उस द्रव्यको ज्ञानीजन परमाणु कहते है ।।९७।।

अंतादि-मज्झ-हीणं अपदेसं इंदिएहिं ण हि [1]गेज्झं ।
जं दव्वं अविभत्तं तं परमाणुं कहंति जिणा ।।९८।।

अर्थ :—जो द्रव्य अन्त, आदि एव मध्यसे विहीन, प्रदेशोसे रहित (अर्थात् एक प्रदेशी हो), इन्द्रियद्वारा ग्रहण नही किया जा सकने वाला और विभाग रहित है, उसे जिन भगवान् परमाणु कहते है ।।९८।।

परमाणुका पुद्गलत्व

पूरंति गलंति जदो पूरण-गलणेहि पोग्गला तेण ।
परमाणु च्चिय जादा इय दिट्ठं दिट्ठि-वादम्हि ।।९९।।

अर्थ :—क्योकि स्कन्धोके समान परमाणु भी पूरते है और गलते है, इसीलिए पूरण-गलन क्रियाओके रहनेसे वे भी पुद्गलके अन्तर्गत है, ऐसा दृष्टिवाद अगमे निर्दिष्ट है ।।९९।।

परमाणु पुद्गल ही है

वण्ण-रस-गंध-फासे पूरण-गलणाइ सव्व-कालम्हि ।
खंदं पिव कुणमाणा परमाणू पुग्गला [2]तम्हा ।।१००।।

अर्थ .—परमाणु स्कन्धकी तरह सब कालोमे वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्श, इन गुणोमे पूरण-गलन किया करते है, इसलिए वे पुद्गल ही है ।।१००।।

नय-अपेक्षा परमाणुका स्वरूप

आदेस-मुत्तमुत्तो [3]धातु-चउक्कस कारणं जो दु[4] ।
सो णेयो परमाणू परिणाम-गुणो य खंदस्स ।।१०१।।

---

१ द क ज. ठ सोज्झ । २. द ज ठ तस्स । ३ द ज ठ धाउ । ४ द. क ठ जादु ।

अर्थ :—जो नय विशेषकी अपेक्षा कथचित् मूर्त एव कथचित् अमूर्त है, चार धातुरूप स्कन्धका कारण है और परिणमन-स्वभावी है, उसे परमाणु जानना चाहिए ।।१०१।।

उवसन्नासन्न स्कधका लक्षण

परमाणूहिं अणंताणंतेहि बहु-विहेहि-दव्वेहिं ।
[1]उवसण्णासण्णो त्ति य सो खंदो होदि णामेण ।।१०२।।

अर्थ :—नानाप्रकारके अनन्तानन्त परमाणु-द्रव्योसे उवसन्नासन्न नामसे प्रसिद्ध एक स्कन्ध उत्पन्न होता है ।।१०२।।

सन्नासन्नसे अगुल पर्यन्तके लक्षण

[1]उवसण्णासण्णो वि य गुणिदो अट्ठेहि होदि णामेण ।
सण्णासण्णो त्ति तदो दु इदि खंधो पमाणट्ठं ।।१०३।।
[2]अट्ठेहिं गुणिदेहिं सण्णासण्णेहिं होदि तुडिरेणू ।
तित्तिय-मेत्तहदेहिं तुडिरेणूहिं पि तसरेणू ।।१०४।।
तसरेणू रथरेणू उत्तम-भोगावणीए वालग्गं ।
मज्झिम-भोग-खिदोए वालं पि जहण्ण-भोग-खिदिवालं ।।१०५।।
कम्म-महीए वालं लिक्खं जूवं जवं च अंगुलयं ।
इगि-उत्तरा य भणिदा पुव्वेहिं अट्ठ-गुणिदेहि ।।१०६।।

अर्थ —उवसन्नासन्नको भी आठसे गुणित करनेपर सन्नासन्न नामका स्कन्ध होता है अर्थात् आठ उवसन्नासन्नोका एक सन्नासन्न नामका स्कन्ध होता है। आठसे गुणित सन्नासन्नो अर्थात् आठ सन्नासन्नोसे एक त्रुटिरेणु और इतने (आठ) ही त्रुटिरेणुओका एक त्रसरेणु होता है। त्रसरेणुसे पूर्व पूर्व स्कन्धो द्वारा आठ आठ गुणित रथरेणु, उत्तमभोगभूमिका बालाग्र, मध्यम-भोगभूमिका बालाग्र, जघन्य-भोगभूमिका बालाग्र, कर्म-भूमिका बालाग्र, लीख, जूँ, जौ और अगुल, ये उत्तरोत्तर स्कन्ध कहे गये है ।।१०३-१०६।।

अगुलके भेद एव उत्सेधागुलका लक्षण

तिवियप्पमंगुलं तं उच्छेह-पमाण-अप्प-अंगुलयं ।
परिभासा-णिप्पण्णं होदि हु [3]उच्छेह-सूइ-अंगुलियं ।।१०७।।

---

१. द. ज ठ ओसण्णासण्णो। २ द क अट्ठट्ठे, ज. ठ अट्ठेदि। ३ द ज क ठ उदिसेह-सूचि अगुलय।

अर्थ :—अगुल तीनप्रकारका है—उत्सेधागुल, प्रमाणागुल और आत्मागुल परिभाषासे सिद्ध किया गया अगुल उत्सेधांगुल या सूच्यगुल होता है ।।१०७।।

प्रमाणागुलका लक्षण

तं चिय पंच सयाइं अवसप्पिणि-पढम-भरह-चक्किस्स ।
अगुलमेक्क चेव य तं तु पमाणंगुलं णाम ।।१०८।।

अर्थ .—पाचसौ उत्सेधागुल प्रमाण, अवसर्पिणी कालके प्रथम चक्रवर्ती भरतके एक अगुलका नामही प्रमाणागुल है ।।१०८।।

आत्मागुलका लक्षण

जस्सि जस्सि काले भरहेरावद-महीसु[1] जे मणुवा ।
तस्सि तस्सि ताणं अंगुलमादंगुलं णाम ।।१०९।।

अर्थ —जिस-जिस कालमे भरत और ऐरावतक्षेत्रमे जो-जो मनुष्य हुआ करते है, उस-उस कालमे उन्ही मनुष्योके अगुलका नाम आत्मागुल है ।।१०९।।

उत्सेधागुल द्वारा माप करने योग्य वस्तुएँ

उस्सेहअंगुलेणं सुराण-णर-तिरिय-णारयाणं च ।
[2]उस्सेहस्य-पमाणं चउदेव-णिगेद-णयराणं[3] ।।११०।।

अर्थ :—उत्सेधागुलसे देव, मनुष्य, तिर्यंच एव नारकियोके शरीरकी ऊँचाईका प्रमाण और चारोप्रकारके देवोके निवास स्थान एव नगरादिकका प्रमाण जाना जाता है ।।११०।।

प्रमाणागुलसे मापने योग्य पदार्थ

दीवोदहि-सेलाणं वेदीण णदीण कुण्ड-जगदीणं ।
[4]वस्साणं च पमाणं होदि पमाणंगुलेणेव ।।१११।।

अर्थ :—द्वीप, समुद्र, कुलाचल, वेदी, नदी, कुण्ड, सरोवर, जगती और भरतादिक क्षेत्रका प्रमाण प्रमाणागुलसे ही होता है ।।१११।।

---

१ व. क. महीस । २. व. उस्सेह अगुलो ण । ३ ब. णिकेदणणयराणि । ४. द. व. वसाण ज क ठ वसाण ।

आत्मागुलसे मापने योग्य पदार्थ

भिंगार-कलस-दप्पण-वेणु-पडह-जुगाण सयण-सगदाणं[1] ।
हल-मुसल-सत्ति-तोमर-सिंहासण-वाण-णालि-अक्खाणं ॥११२॥
चामर-दुंदुहि-पीढच्छत्ताणं णर-णिवास-णयराणं ।
उज्जाण-पहुदियाणं संखा आदंगुलेणेव ॥११३॥

अर्थ :—झारी, कलश, दर्पण, वेणु, भेरी, युग, शय्या, शकट (गाडी), हल, मूसल, शक्ति, तोमर, सिहासन, वाण, नालि, अक्ष, चामर, दुन्दुभि, पीठ, छत्र, मनुष्योके निवास स्थान एव नगर और उद्यानादिकोकी सख्या आत्मागुलसे ही समझना चाहिए ॥११२-११३॥

पादसे कोश-पर्यतकी परिभाषाएँ

छहि अंगुलेहि पादो बेपादेहिं विहत्थि-णामा य ।
दोण्णि विहत्थी हत्थो बेहत्थेहिं हवे रिक्कू ॥११४॥
बेरिक्कूहिं दंडो दंडसमा [2]जुगधणूणि मुसलं वा ।
तस्स तहा णाली वा दो-दंड-सहस्सयं कोसं ॥११५॥

अर्थ :—छह अगुलोका पाद, दो पादोकी वितस्ति, दो वितस्तियोका हाथ, दो हाथोका रिक्कू, दो रिक्कुओका दण्ड, दण्डके बराबर अर्थात् चार हाथ प्रमाणही धनुष, मूसल तथा नाली और दो हजार दण्ड या धनुषका एक कोस होता है ॥११४-११५॥

योजनका माप

चउ-कोसेहिं जोयण तं चिय [3]वित्थार-गत्त-समवट्टं ।
तत्तियमेत्तं घण-फल-माणेज्जं करण-कुसलेहिं ॥११६॥

अर्थ :—चार कोसका एक योजन होता है। उतने ही अर्थात् एक योजन विस्तार वाले गोल गड्ढेका गणितशास्त्रमे निपुण पुरुषोको घनफल ले आना चाहिए ॥११६॥

गोलक्षेत्रकी परिधिका प्रमाण, क्षेत्रफल एव घनफल

सम-वट्ट-वास-वग्गे दह-गुणिदे करणि-परिहिओ होदि ।
वित्थार-तुरिय[4]-भागे परिहि-हदे तस्स खेत्तफलं ॥११७॥

---

१. [सगडाण]　२ द युगधणूणि।　३ व वित्थार।　४ द ज क ठ तुरिम।

उणवीस-जोयणेसुं चउवीसेंहि तहावहरिदेसुं ।
तिविह-वियप्पे पल्ले घण-खेत्त[1]-फला हु [2]पत्तेयं ॥११८॥

$\frac{१९}{२४}$ ।

अर्थ :—समान गोल (बेलनाकार) क्षेत्रके व्यासके वर्गको दससे गुणा करके जो गुणनफल प्राप्त हो उसका वर्गमूल निकालने पर परिधिका प्रमाण निकलता है, तथा विस्तार अर्थात् व्यासके चौथे भागसे अर्थात् अर्द्ध व्यासके वर्गसे परिधिको गुणित करनेपर उसका क्षेत्रफल निकलता है। तथा उन्नीस योजनोको चौबीससे विभक्त करने पर तीन प्रकारके पल्योमेसे प्रत्येकका घन-क्षेत्रफल होता है ॥११७-११८॥

उदाहरण—एक योजन व्यासवाले गोलक्षेत्रका घनफल —

१ × १ × १० = १०, $\sqrt{१०}$ = $\frac{१९}{६}$ परिधि, $\frac{१९}{६} \times \frac{१}{४} = \frac{१९}{२४}$ क्षेत्रफल, $\frac{१९}{२४} \times १ = \frac{१९}{२४}$ घनफल।

विशेषार्थ :—यहाँ समान गोलक्षेत्र (कुण्ड) का व्यास १ योजन है, इसका वर्ग (१यो० × १यो०) = १ वर्ग यो० हुआ। इसमे १० का गुणा करनेसे (१वर्ग यो० × १० =) १० वर्ग योजन हुए। इन १० वर्ग यो० का वर्गमूल ३$\frac{१}{६}$ ($\frac{१९}{६}$) योजन हुआ, यही परिधिका (सूक्ष्म) प्रमाण है। $\frac{१९}{६}$ यो० परिधिको व्यासके चाथाई भाग $\frac{१}{४}$ यो० से गुणा करने पर ($\frac{१९}{६} \times \frac{१}{४}$ =) $\frac{१९}{२४}$ वर्ग यो० (सूक्ष्म) क्षेत्रफल हुआ। इस $\frac{१९}{२४}$ वर्ग यो० क्षेत्रफलको १ यो० गहराईसे गुणित करनेपर ($\frac{१९}{२४}$ × १ यो० =) $\frac{१९}{२४}$ घन यो० (सूक्ष्म) घनफल प्राप्त होता है ॥११७-११८॥

व्यवहार पल्यके रोमोकी सख्या निकालनेका विधान तथा उनका प्रमाण

उत्तम-भोग-खिदीए उप्पण्ण-विजुगल-रोम-कोडीओ ।
एक्कादि-सत्त-दिवसावहिम्मि च्छेत्तूण संगहियं ॥११९॥
अइवट्टेंहि तेंहि रोमग्गेंहि णिरन्तरं पढमं ।
अच्चंतं णिचिदूणं भरियव्वं जाव भूमिसमं ॥१२०॥

अर्थ —उत्तम भोग-भूमिमे एकदिनसे लेकर सात दिनतकके उत्पन्न हुए मेढेके करोडो रोमोके अविभागी-खण्ड करके उन खण्डित रोमाग्रोसे लगातार उस एक योजन विस्तार वाले प्रथम पल्य (गड्ढे) को पृथ्वीके बराबर अत्यन्त सघन भरना चाहिए ॥११९-१२०॥

---

१. [घणखेत्तफ] २ ब पत्तेका।

दंड-पमाणंगुलए उस्सेहंगुल जवं च जूवं च ।
लिक्खं तह कादूणं वालग्गं कम्म-भूमीए ॥१२१॥
[1]अवरं-मज्झिम-उत्तम-भोग-खिदीणं च वाल-अग्गाइं ।
[2]एक्केक्कमट्ठ - घण - हद - रोमा ववहार-पल्लस्स ॥१२२॥

ऽ० । ९६ । ५०० । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ ।
ऽ० । ९६ । ५०० । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ ।
ऽ० । ९६ । ५०० । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ ।

[3]पल्ल रोमस्स

अर्थ :—ऊपर जो $\frac{१९}{२४}$ प्रमाण घनफल आया है, उसके दण्ड कर प्रमाणागुल कर लेना चाहिए। पुन प्रमाणागुलोके उत्सेधागुल करना चाहिए । पुन जौ, जूँ, लीख, कर्मभूमिके बालाग्र, मध्यमभोगभूमिके बालाग्र, उत्तम भोगभूमिके बालाग्र, इनकी अपेक्षा प्रत्येक को आठके घनसे गुणा करनेपर व्यवहार पल्यके रोमोकी सख्या निकल आती है ॥१२१-१२२॥ यथा—

$\frac{१९}{२४}$×४×४×४×२०००×२०००×२०००×४×४×४×२४×२४×२४×५००×५००×५००×८=४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२००००००००००००००००००० ।

नोट :—मूल सदृष्टिके ऽ० का अर्थ ३ शून्य (०००) है । मूलमे तीन बार ९६, तीन बार ५०० और चौबीस बार ८ के अक आए है । हिन्दी अर्थमे तीन बार ५०० और इक्कीस बार ८ के अक रखे गये है, तीन बार ९६, तीन बार ८ और ९ शून्य अवशेष रहे । ९६००० को ८ से गुणित करने पर (९६०००×८)=७६८००० अगुल प्राप्त होते है, जो एक योजनके बरावर है । इन अगुलोके कोस आदि बनानेपर ४ कोस, २००० धनुष, ४ हाथ और २४ अगुल होते है । अर्थमे तीन बार ४, तीन बार २०००, तीन बार ४ और तीन बार २४ इसीके सूचक रखे गये है ।

विशेषार्थ :—एक योजनके चार कोस, एक कोसके २००० धनुष, एक धनुषके चार हाथ और एक हाथके २४ अगुल होते है । एक योजन व्यास वाले गड्ढेका घनफल $\frac{१९}{२४}$ प्रमाण घन योजन प्राप्त हुआ है, एक प्रमाण योजनके ५०० व्यवहार योजन होते है । "घन राशिका गुणकार या भागहार घनात्मक ही होता है" इस नियमके अनुसार $\frac{१९}{२४}$ को तीन बार ५०० से गुणा किया और इन व्यवहार योजनोके रोम खण्ड बनाने हेतु तीन-तीन वार ४ कोस, २००० धनुष, ४ हाथ, २४ अगुल एव आठ-आठ यव, जूँ आदिके प्रमाणसे गुणा किया गया है ।

---

१ ब अवरमज्झिम० । २ द. एक्किक्क० । ३ [पल्ल] ।

उपर्युक्त सदृष्टिका गुणनफल

[1]अट्ठारस ठाणेसुं सुण्णाणि दो णवेक्क दो [2]एक्को ।
पण-णव-चउक्क-सत्ता सग-सत्ता एक्क-तिय-सुण्णा ।।१२३।।

दो अट्ठ सुण्ण-तिअ-णह-[3]तिय-छक्का दोण्णि-पण-चउक्काणि ।
[4]तिय एक्क चउक्काणि अंक कमेण पल्लरोमस्स ।।१२४।।

४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२०००००००००००००००००० ।

अर्थ :—अन्तके स्थानोमे १८ शून्य, दो, नौ, एक, दो, एक, पाँच, नौ, चार, सात, सात, सात, एक, तीन, शून्य, दो, आठ, शून्य, तीन, शून्य, तीन, छह, दो, पाँच, चार, तीन, एक और चार ये क्रमसे पल्यरोमके अक है ।।१२३-१२४।।

व्यवहार पल्यका लक्षण

एक्केक्कं रोमग्गं वस्स-सदे फेडिदम्हि सो पल्लो ।
रित्तो होदि स कालो उद्धार णिमित्त-ववहारो ।।१२५।।

।। ववहार-पल्लं ।।

अर्थ :—सौ-सौ वर्षमे एक-एक रोम-खण्डके निकालनेपर जितने समयमे वह गड्ढा खाली होता है,—उतने कालको व्यवहार-पल्योपम कहते है । वह व्यवहार पल्य उद्धार-पल्यका निमित्त है ।।१२५।।

।। व्यवहार-पल्यका कथन समाप्त हुआ ।।

उद्धार पल्यका प्रमाण

ववहार-रोम-रासिं पत्तेक्कमसंख-कोडि-वस्साणं ।
समय-समं छेत्तूणं विदिए पल्लम्हि भरिदम्हि ।।१२६।।

---

१. द अट्ठरसताणे । २ द. दोणविक्क । ३. द तियच्छचपदोण्णिपणचउण्णिति, क. तियच्छ-चउदोण्णिपणचउण्णिति । ४ द. ए एक्क ।

समयं पडि[1] एक्केक्कं वालग्गं फेडिदम्हि सो पल्लो ।
रित्तो होदि स कालो उद्धारं णाम पल्लं तु ॥१२७॥

॥ उद्धार-पल्लं ॥

अर्थ :—व्यवहारपल्यकी रोम-राशिमेसे प्रत्येक रोम-खण्डोके, असख्यात करोड वर्षोके जितने समय हो उतने खण्ड करके, उनसे दूसरे पल्यको भरकर पुन. एक-एक समयमे एक-एक रोम-खण्डको निकाले । इसप्रकार जितने समयमे वह दूसरा पल्य (गड्ढा) खाली होता है, उतना काल उद्धार नामके पल्यका है ॥१२६-१२७॥

॥ उद्धार-पल्यका कथन समाप्त हुआ ॥

अद्धार या अद्धापल्यके लक्षण आदि

एदेणं पल्लेणं दीव-समुद्दाण होदि परिमाणं ।
उद्धार-रोम-रासिं [2]छेत्तूणमसंख-वास-समय-समं ॥१२८॥
पुव्वं व विरचिदेणं तदियं अद्धार-पल्ल-णिप्पत्ती ।
णारय-तिरिय-णराणंसुराण-कम्म-ट्ठिदी तम्हि ॥१२९॥

॥ अद्धार-पल्लं एवं पल्लं समत्तं ॥

अर्थ :—इस उद्धार-पल्यसे द्वीप और समुद्रोका प्रमाण जाना जाता है । उद्धार-पल्यकी रोम-राशिमेसे प्रत्येक रोम-खण्डके असख्यात वर्षोके समय-प्रमाण खण्ड करके तीसरे गड्ढेके भरनेपर और पहलेके समान एक-एक समयमे एक-एक रोम-खण्डको निकालनेपर जितने समयमे वह गड्ढा रिक्त होता है उतने कालको अद्धार पल्योपम कहते है । इस अद्धा पल्यसे नारकी, मनुष्य और देवोकी आयु तथा कर्मोकी स्थितिका प्रमाण (जानना चाहिए) ॥१२८-१२९॥

॥ अद्धार-पल्य समाप्त हुआ । इसप्रकार पल्य समाप्त हुआ ॥

व्यवहार, उद्धार एव अद्धा सागरोपमोके लक्षण

एदाणं पल्लाणं दहप्पमाणाउ कोडि-कोडीओ ।
सायर-उवमस्स पुढं एक्कस्स हवेज्ज परिमाणं ॥१३०॥

॥ सायरोपमं समत्तं ॥

---

१ ब पडियक्केक्क । २. द. छेत्तूण सख ।

अर्थ :—इन दसकोडाकोडी पल्योका जितना प्रमाण हो उतना पृथक्-पृथक् एक सागरोपमका प्रमाण होता है। अर्थात् दसकोडाकोडी व्यवहार पल्योका एक व्यवहार-सागरोपम, दसकोडाकोडी उद्धार-पल्योका एक उद्धार-सागरोपम और दस-कोडाकोडी अद्धा-पल्योका एक अद्धा-सागरोपम होता है ॥१३०॥

॥ सागरोपमका वर्णन समाप्त हुआ ॥

सूच्यगुल और जगच्छ्रेणीके लक्षण

अद्धार-पल्ल-छेदे तस्सासंखेज्ज-भागमेत्ते य ।
पल्ल-घणंगुल-वग्गिद-संवग्गिदयम्हि सूइ-जगसेढी ॥१३१॥

सू० २ । जग०— ।

अर्थ :—अद्धापल्यके जितने अर्धच्छेद हो उतनी जगह पल्य रखकर परस्पर गुणित करनेपर सूच्यगुल प्राप्त होता है। अर्थात्—

सूच्यगुल=[अद्धापल्य] की घात [अद्धापल्यके अर्धच्छेद], तथा अद्धापल्यकी अर्धच्छेद राशिके असख्यातवे भागप्रमाण घनागुल रखकर उन्हे परस्परमे गुणित करनेमे जगच्छ्रेणी प्राप्त होती है। अर्थात्—

जगच्छ्रेणी=[घनागुल] की घात (अद्धापल्यके अर्धच्छेद/असख्यात) ॥१३१॥

सू० अ० २ जगच्छ्रेणी—

सूच्यगुल आदिका तथा राजूका लक्षण

तं वग्गे पदरंगुल-पदराइ-घणे घणंगुलं लोयो ।
जगसेढीए सत्तम-भागो रज्जू पभासंते ॥१३२॥

४ । = । ६ । ☰ । ७ ।

॥ एवं परिभासा गदा ॥

अर्थ :—उपर्युक्त सूच्यगुलका वर्ग करनेपर प्रतरागुल और जगच्छ्रेणीका वर्ग करनेपर जगत्प्रतर होता है। इसीप्रकार सूच्यगुलका घन करनेपर घनागुल और जगच्छ्रेणीका घन करनेपर लोकका प्रमाण होता है। जगच्छ्रेणीके सातवे भागप्रमाण राजूका प्रमाण कहा जाता है ॥१३२॥

प्र अ ४; ज प्र =, घ अ ६, घ लो ≡ । ७ राजू है ।

।। इसप्रकार परिभाषाका कथन समाप्त हुआ ।।

विशेषार्थ :—गाथा १३१ और १३२ मे सूच्यगुल, प्रतरागुल और घनागुल तथा जगच्छ्रेणी, जगत्प्रतर और लोक एव राजूकी परिभाषाएँ कही गई है । अकसदृष्टिमे—मानलो, अद्धा-पल्यका प्रमाण १६ है । इसके अर्धच्छेद ४ हुए (विवक्षित राशिको जितनी बार आधा करते-करते एकका अक रह जाय उतने, उस राशिके अर्धच्छेद कहलाते है । जैसे १६ को ४ बार आधा करनेपर एक अक रहता है, अत १६ के ४ अर्धच्छेद हुए) । अत चार बार पल्य (१६ × १६ × १६ × १६) का परस्पर गुणा करनेसे सूच्यगुल (६५ = अर्थात् ६५५३६) प्राप्त हुआ । इस सूच्यगुलके वर्ग (४२ = अर्थात् ६५५३६ × ६५५३६) को प्रतरागुल तथा सूच्यगुल के घन (६५५३६ × ६५५३६ × ६५५३६ या (६५५३६)^{२} × ६५५३६ = (६५५३६)^{3} को घनागुल कहते है ।

मानलो—अद्धापल्यका प्रमाण १६, घनागुलका प्रमाण (६५५३६)^{3} और असख्यातका प्रमाण २ है । अत पल्य (१६) के अर्धच्छेद ४ — २ (असख्यात) = लब्ध २ आया, इसलिए दो बार घनागुलो { (६५५३६)^{3} × (६५५३६)^{3} } का परस्पर गुणा करनेसे जगच्छ्रेणी प्राप्त होती है । जगच्छ्रेणीके वर्गको जगत्प्रतर और जगच्छ्रेणीके घनको लोक कहते है । जगच्छ्रेणी (६५५३६^{४} × ६५५३६^{२}) के सातवेभागको राजू कहते है । यथा—$\frac{\text{जगच्छ्रेणी}}{७}$ = राजू ।

लोकाकाशके लक्षण

आदि-णिहणेण हीणो पयडि-सरूवेण एस संजादो ।
जीवाजीव-समिद्धो [1]सव्वण्हावलोइओ लोओ ।।१३३।।

अर्थ :—सर्वज्ञ भगवान्से अवलोकित यह लोक, आदि और अन्तसे रहित अर्थात् अनाद्यनन्त है, स्वभावसे ही उत्पन्न हुआ है और जीव एव अजीव द्रव्योसे व्याप्त है ।।१३३।।

धम्माधम्म-णिबद्धा [2]गदिरगदी जीव-पोग्गलाणं च ।
जेत्तिय-मेत्ताआसे[3] लोयाआसो स णादव्वो ।।१३४।।

अर्थ :—जितने आकाशमे धर्म और अधर्म द्रव्यके निमित्तसे होनेवाली जीव और पुद्गलोकी गति एव स्थिति हो, उसे लोकाकाश समझना चाहिए ।।१३४।।

---

१ द क. ज. ठ सव्वणहावअववो, व सव्वणहावलोयवो । २. द. ब. गदिरागदि । ३ द ब. क ज मेत्ताआसो ।

लोकाकाश एव अलोकाकाश—

लोयायास-ट्ठाणं सयं-पहाणं स-दव्व-छक्कं हु ।
सव्वमलोयायासं तं [1]सव्वासं हवे णियमा ॥१३५॥

अर्थ :—छह द्रव्योसे सहित यह लोकाकाशका स्थान निश्चय ही स्वयप्रधान है, इसकी सब दिशाओमे नियमसे अलोकाकाश स्थित है ॥१३५॥

लोकके भेद

सयलो एस य लोओ णिप्पण्णो सेढि-विंद-माणेणं ।
[2]तिवियप्पो णादव्वो हेट्ठिम-मज्झिल्ल-उड्ढ-भेएण ॥१३६॥

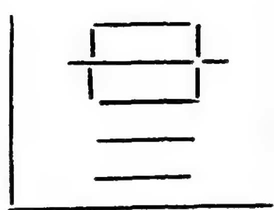
अर्थ :—श्रेणीवृन्दके मानसे अर्थात् जगच्छ्रेणीके घनप्रमाणसे निष्पन्न हुआ यह सम्पूर्ण लोक अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोकके भेदसे तीन प्रकारका जानना चाहिए ॥१३६॥

तीन लोकको आकृति

हेट्ठिम लोयाआरो वेत्तासण-सण्णिहो सहावेण ।
मज्झिम-लोयायारो उब्भिय-मुरअद्ध-सारिच्छो ॥१३७॥

△ ▽

उवरिम-लोयाआरो उब्भिय-मुरवेण होइ सरिसत्तो ।
संठाणो एदाणं लोयाणं एण्हि साहेमि ॥१३८॥

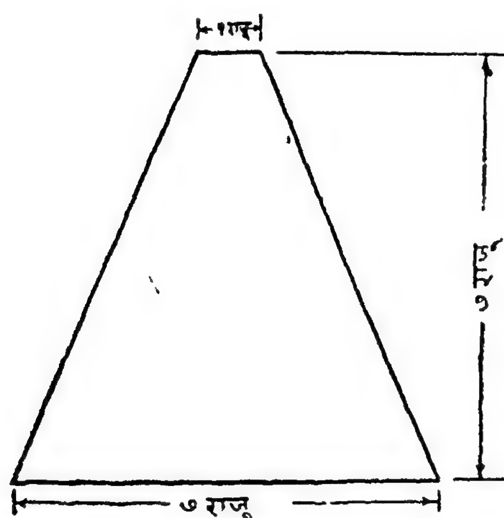


अर्थ :—इनमेसे अधोलोकको आकृति स्वभावसे वेत्रासन सदृश और मध्यलोकको आकृति खडे किए हुए अर्धमृदगके ऊर्ध्वभागके सदृश है । ऊर्ध्वलोकको आकृति खडे किए हुए मृदगके सदृश है । अब इन तीनो लोकोका आकार कहते है ॥१३७-१३८॥

---

१. ब. त सवास । २ द. तिव्वियप्पो ।

विशेषार्थ :—सम्पूर्ण लोकमेसे अधोलोकको इसप्रकार अलग किया गया है, कि जिसका मुख एक राजू और भूमि सात राजू है। यथा—



सम्पूर्ण लोकको वर्गाकार आकृतिमे लानेका विधान एव आकृति

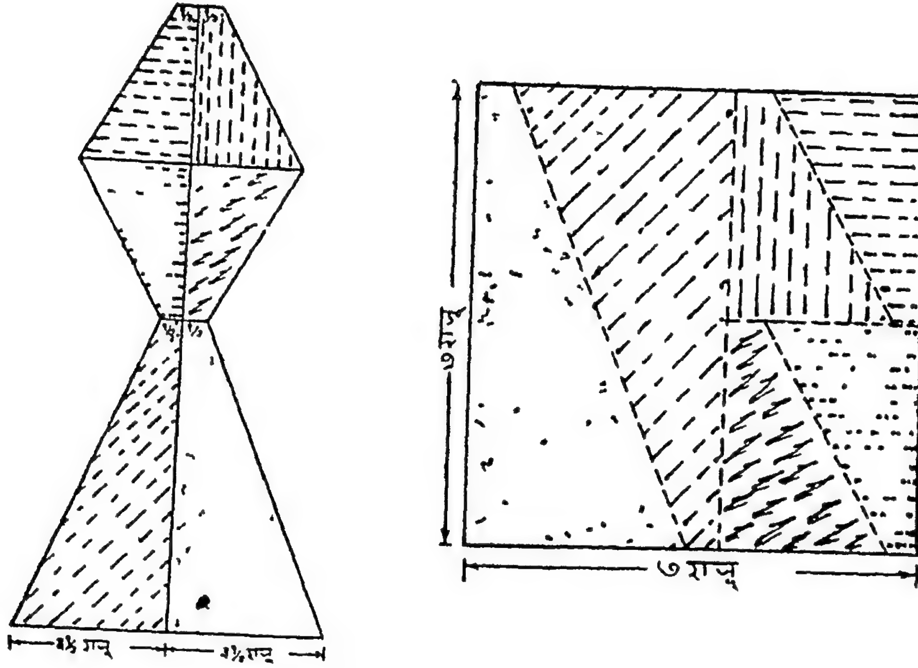
दोपक्ख-खेत्त-मेत्तं[1] उच्चलयंतं पुण-ठ्ठवेदूणं ।
विवरीदेणं मेलिदे वासुच्छेहा सत्त रज्जूओ ॥१४०॥

अर्थ :—दोनो ओर फैले हुए क्षेत्रको उठाकर अलग रखदे, फिर विपरीतक्रमसे मिलानेपर विस्तार और उत्सेध सात-सात राजू होता है ॥१४०॥

विशेषार्थ :—लोक चौदह राजू ऊँचा है। इस ऊँचाईको ठीक वीचमेसे काट देनेपर लोकके सामान्यत दो भाग हो जाते है, इन क्षेत्रोमेसे अधोलोकको अलगकर उसके दोनो भागोको और अलग किये हुए ऊर्ध्वलोकके चारो भागोको विपरीत क्रमसे रखनेपर लोकका उत्सेध और विस्तार दोनो सात-सात राजू प्राप्त होते है। यथा —

---

१. द क ज ठ उच्चल्लयत ।



लोककी डेढ मृदग सदृश आकृति बनानेका विधान

मज्झम्हि पंच रज्जू कमसो हेट्ठोवरम्हि[1] इगि-रज्जू ।
सग रज्जू उच्छेहो होदि जहा तह य छेत्तूणं ॥१४१॥

हेट्ठोवरिदं मेलिद-खेत्तायारं तु चरिम-लोयस्स ।
एदे पुव्विल्लस्स य खेत्तोवरि ठावए पयदं ॥१४२॥

[2]उब्भिय-दिवड्ढ-मुरव-धजोवमाणो य तस्स आयारो ।
एक्कपदे [3]सग-बहलो चोद्दस-रज्जूदवो तस्स ॥१४३॥

अर्थ :—जिसप्रकार मध्यमे पाच राजू, नीचे और ऊपर क्रमश एक राजू और ऊँचाई सात राजू हो, इसप्रकार खण्डित करनेपर नीचे और ऊपर मिले हुए क्षेत्रका आकार अन्तिम लोक अर्थात् ऊर्ध्वलोकका आकार होता है, इसको पूर्वोक्त क्षेत्र अर्थात् अधोलोकके ऊपर रखनेपर प्रकृतमे खडे किये हुए ध्वजयुक्त डेढमृदगके सदृश उस सम्पूर्ण लोकका आकार होता है । इसको एकत्र करनेपर उस लोकका बाहल्य सात राजू और ऊँचाई चौदह राजू होती है ॥१४१-१४३॥

---

१ द क वरिम्हि। २. द उब्भियदिवड्ढमुरवद्ध। ३ द ब सव्वहलो।

तस्स य एक्कम्हि दए वासो पुव्वावरेण भूमि-मुहे ।
सत्तेक्क-पंच-एक्का रज्जूवो मज्झ-हाणि-चयं ॥१४४॥

अर्थ :—इस लोककी भूमि और मुखका व्यास पूर्व-पश्चिमकी अपेक्षा एक ओर क्रमश सात, एक, पाँच और एक राजूमात्र है, तथा मध्यमे हानि-वृद्धि है ॥१४४॥

नोट :—गाथा १४१ से १४४ प्रकृत प्रसगसे इतर है, क्योकि गाथा १४० का सम्बन्ध गाथा १४५-१४७ से है ।

सम्पूर्ण लोकको प्रतराकार रूप करनेका विधान एव आकृति

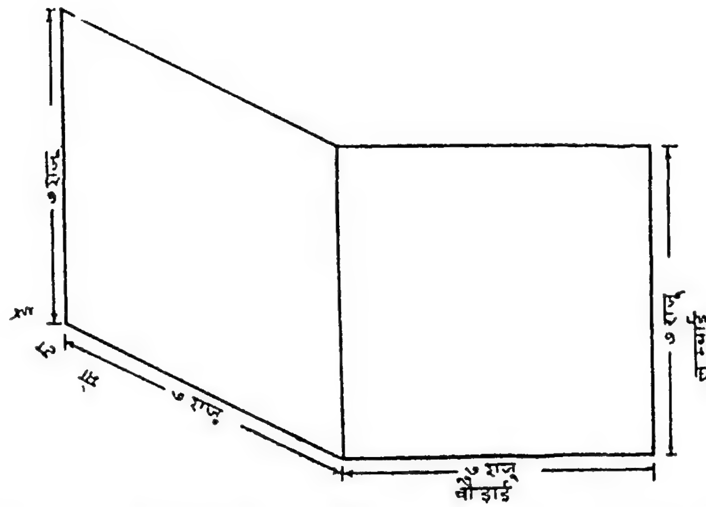
खे-संठिय-चउखंडं सरिसट्ठाणं [1]आइ घेत्तूणं ।
तमणुज्झोभय-पक्खे विवरीय-कमेण मेलेज्जो ॥१४५॥
[2]एवज्जिय अवसेसे खेत्ते गहिऊण पदर-परिमाणं ।
पुव्वं पिव कादूणं बहलं बहलम्मि मेलेज्जो ॥१४६॥
एव-मवसेस-खेत्तं जाव [3]समप्पेदि ताव घेत्तव्वं ।
एक्केक्क-पदर-माणं एक्केक्क-पदेस-बहलेणं ॥१४७॥

अर्थ :—आकाशमे स्थित, सदृश आकार वाले चारो-खण्डोको ग्रहणकर उन्हे विचारपूर्वक उभय पक्षमे विपरीत क्रमसे मिलाना चाहिए । इसीप्रकार अवशेष क्षेत्रोको ग्रहणकर और पूर्वके सदृश ही प्रतर-प्रमाण करके बाहल्यको बाहल्यमे मिलादे । जब तक इस क्रमसे अवशिष्ट क्षेत्र समाप्त नही हो जाता, तब तक एक-एक प्रदेशकी मोटाईसे एक-एक प्रतर-प्रमाणको ग्रहण करना चाहिए ॥१४५-१४७॥

विशेषार्थ :—१४ इच ऊँची, ७ इच मोटी और पूर्व-पश्चिम सात, एक, पाच और एक इच चौडाई वाली मिट्टीकी एक लोकाकृति सामने रखकर उसमेसे १४ इच लम्बी, ७, १, ५, १ इच चौडी और एक इच मोटी एक परत छीलकर ऊँचाईकी ओरसे उसके दो-भाग कर गाथा १४० मे दर्शाई हुई ७ राजू उत्सेध और ७ राजू विस्तार वाली प्रतराकृतिके रूपमे बनाकर स्थापित करे । पुन उस लोकाकृतिमेसे एक इच मोटी, १४ इच ऊँची और पूर्व विस्तार वाली दूसरी परत छीलकर उसे भी प्रतर रूप करके पूर्व-प्रतरके ऊपर स्थापित करे, पुन इसी प्रमाण वाली तीसरी परत छीलकर उसे भी प्रतर रूप करके पूर्व स्थापित प्रतराकृतिके ऊपर ही स्थापित करे । इसप्रकार करते-

१ व. अइ । २. [एव चिय] । ३ द. व. सम पेरि ।

करते जब सातो ही परते प्रतराकारमे एक दूसरेपर स्थापित हो जाएँगी तब ७ इच उत्सेध, ७ इच विस्तार और सात इच बाहल्यवाला एक क्षेत्र प्राप्त होगा। यह मात्र दृष्टान्त है किन्तु इसका दार्ष्टान्त भी प्राय ऐसा ही है। यथा—१४ राजू ऊँचे, ७, १, ५, १ राजू चौडे और ७ राजू मोटे लोककी एक-एक प्रदेश मोटाई वाली एक-एक परत छीलकर तथा उसे प्रतराकार रूपसे स्थापित करने अर्थात् वाहल्यको बाहल्यसे मिला देनेपर लोकरूप क्षेत्रकी मोटाई ७ राजू, उत्सेध ७ राजू और विस्तार ७ राजू प्राप्त होता है। यथा—



नोट —मूल गाथा १३८ के पश्चात् दी हुई सद्दृष्टिका प्रयोजन विशेषार्थसे स्पष्ट होजाता है।

त्रिलोककी ऊँचाई, चौडाई और मोटाईके वर्णनकी प्रतिज्ञा

एदेण पयारेणं णिप्पण्णत्ति-लोय-खेत्त-दीहत्तं ।
वास-उदयं भणामो णिस्संदं दिट्ठि-वादादो ।।१४८।।

अर्थ :—इसप्रकारसे सिद्ध हुए त्रिलोकरूप क्षेत्रकी मोटाई, चौडाई और ऊँचाईका हम (यतिवृषभ) वैसा ही वर्णन कर रहे है जैसा दृष्टिवाद अगसे निकला है ।।१४८।।

दक्षिण-उत्तर सहित लोकका प्रमाण एव आकृति

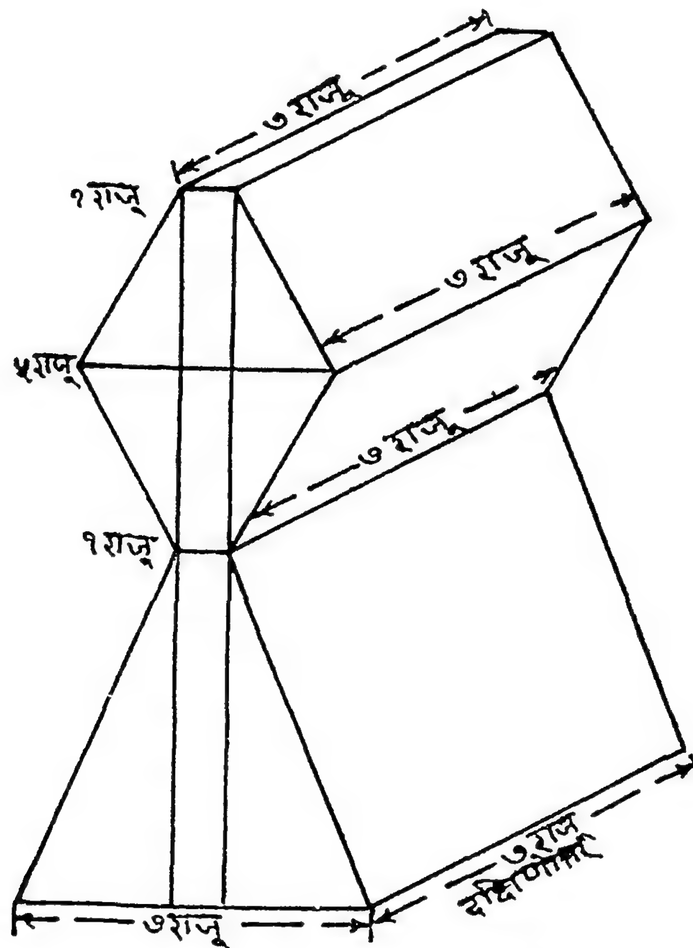
सेढि-पमाणायामं भागेसुं दक्खिणुत्तरेसु पुढं ।
पुव्वावरेसु वासं भूमि-मुहे सत्त एक्क-पंचेक्का ।।१४६।।

— । — । ७१ । ७५ । ७१ ।

अर्थ :—दक्षिण और उत्तर भागमे लोकका आयाम जगच्छ्रेणी प्रमाण अर्थात् सात राजू है, पूर्व और पश्चिम भागमे भूमि तथा मुखका व्यास, क्रमश सात, एक, पाच और एक राजू है।

तात्पर्य यह है कि लोकको मोटाई सर्वत्र सात राजू है और विस्तार क्रमश अधोलोकके नीचे सात, मध्यलोकमे एक, ब्रह्मस्वर्गपर पाँच और लोकके अन्तमे एक राजू है ॥१४९॥

विशेषार्थ :—लोककी उत्तर-दक्षिण मोटाई, पूर्व-पश्चिम चौडाई और गा० १५० के प्रथम चरणमे कही जानेवाली ऊँचाई निम्नप्रकार है—



अधोलोक एव ऊर्ध्वलोकको ऊँचाईमे सदृशता

चोद्दस-रज्जु-पमाणो उच्छेहो होदि सयल-लोयस्स ।
अद्ध-मुरज्जस्सुदवो [1]समग्ग-मुरवोदय-सरिच्छो ॥१५०॥

१४ । — । — ।

१ ब. सामग्ग ।

अर्थ :—सम्पूर्ण लोककी ऊँचाई चौदह राजू प्रमाण होती है। अर्धमृदगकी ऊँचाई, सम्पूर्ण मृदगकी ऊँचाईके सदृश है अर्थात् अर्धमृदग सदृश अधोलोक जैसे सात राजू ऊँचा है, उसीप्रकार पूर्ण मृदगके सदृश ऊर्ध्वलोकभी सात राजू ऊँचा है ॥१५०॥

तीनो लोकोकी पृथक्-पृथक् ऊँचाई

हेट्ठिम-मज्झिम-उवरिम-लोउच्छेहो कमेण रज्जूवो ।
सत्त य जोयण-लक्खं जोयण-लक्खूण-सग-रज्जू ॥१५१॥

। ७ । जो १००००० । ७ रिण जो १००००० ।

अर्थ :– क्रमश अधोलोककी ऊँचाई सात राजू, मध्यलोककी ऊँचाई एक लाख योजन और ऊर्ध्वलोककी ऊँचाई एक लाख योजन कम सात राजू है ॥१५१॥

विशेषार्थ :—अधोलोककी ऊँचाई सात राजू, मध्यलोककी ऊँचाई एक लाख योजन और ऊर्ध्वलोककी ऊँचाई एक लाख योजन कम सात राजू प्रमाण है।

अधोलोकमे स्थित पृथिवियोके नाम एव उनका अवस्थान

इह रयण-सक्करा-वालु-पंक-धूम-तम-महातमादि-पहा ।
मुरवद्धम्मि महीओ सत्तच्चिय रज्जु-अंतरिदा[1] ॥१५२॥

अर्थ :—इन तीनो लोकोमेसे अर्धमृदगाकार अधोलोकमे रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुप्रभा, पकप्रभा, धूमप्रभा, तम प्रभा और महातम प्रभा, ये सात पृथिवियाँ एक-एक राजूके अन्तरालसे है ॥१५२॥

विशेषार्थ :—ऊपर प्रत्येक पृथिवीके मध्यका अन्तर जो एक राजू कहा है, वह सामान्य कथन है। विशेष रूपसे विचार करनेपर पहली और दूसरी पृथिवीकी मोटाई एक राजूमे शामिल है, अतएव इन दोनो पृथिवियोका अन्तर दो लाख बारह हजार योजन कम एक राजू होगा। इसीप्रकार आगे भी पृथिवियोकी मोटाई, प्रत्येक राजूमे शामिल है, अतएव मोटाईका जहाँ जितना प्रमाण है उतना-उतना कम, एक-एक राजू अन्तर वहाँका जानना चाहिए।

---

१. क ज. ठ अतरिया।

रत्नप्रभादि पृथिवियोके गोत्र नाम

घम्मा-वंसा-मेघा-अंजणरिट्ठाण[1] ओज्झ मघवीओ ।
माघविया इय ताणं पुढवीणं [2]गोत्त-णामाणि ।।१५३।।

अर्थ :—घर्मा, वशा, मेघा, अजना, अरिष्टा, मघवी और माघवी, ये इन उपर्युक्त पृथिवियोके गोत्र नाम है ।।१५३।।

मध्यलोकके अधोभागसे लोकके अन्त-पर्यन्त राजू-विभाग

मज्झिम-जगस्स हेट्ठिम-भागादो णिग्गदो पढम-रज्जू ।
[3]सक्कर-पह-पुढवीए हेट्ठिम-भागम्मि णिट्ठादि ।।१५४।।

। ७ १ ।

अर्थ :—मध्यलोकके अधोभागसे प्रारम्भ होता हुआ पहला राजू शर्कराप्रभा पृथिवीके अधोभागमे समाप्त होता है ।।१५४।।

।। राजू १ ।।

तत्तो [4]दोइद-रज्जू वालुव-पह-हेट्ठम्मि समप्पेदि ।
तह य तइज्जा रज्जू [5]पंक-पहे हेट्ठभायम्मि ।।१५५।।

। ७ २ । ७ ३ ।

अर्थ :—इसके आगे दूसरा राजू प्रारम्भ होकर बालुकाप्रभाके अधोभागमे समाप्त होता है, तथा तीसरा राजू पङ्कप्रभाके अधोभागमे समाप्त होता है ।।१५५।।

राजू २ । ३ ।

धूम-पहाए हेट्ठिम-भागम्मि समप्पदे तुरिय-रज्जू ।
तह पंचमिआ रज्जू तमप्पहा-हेट्ठिम-पएसे ।।१५६।।

। ७ ४ । ७ ५ ।

अर्थ :—इसके अनन्तर चौथा राजू धूमप्रभाके अधोभागमे और पाँचवाँ राजू तम प्रभाके अधोभागमे समाप्त होता है । १५६।।

---

१ क रिट्ठाण उज्झ, ज. ठ. द रिट्ठा ओज्झ । २. ब गात्त । ३ द. ब क. ठ. सक्करसेह । ज सकरसेढ । ४ ज ठ दुइज्ज, द क. दोइज्ज । ५ ज द क ठ. पक पह हेट्ठस्स भागम्मि ।

महतम-पहाग्र हेट्ठिम-ग्रंते [1]छट्ठी हि समप्पदे रज्जू ।
तत्तो सत्तम-रज्जू लोयस्स तलम्मि णिट्ठादि ।।१५७।।

। ७ ६ । ७ ७ ।

ग्रर्थ :—पूर्वोक्त क्रमसे छठा राजू महातम प्रभाके नीचे ग्रन्तमे समाप्त होता है ग्रौर इसके ग्रागे सातवाँ राजू लोकके तलभागमे समाप्त होता है ।।१५७।।

मध्यलोकके ऊपरी भागसे ग्रनुत्तर विमान पर्यन्त राजू विभाग

मज्झिम-जगस्स उवरिम-भागादु दिवड्ढ-रज्जु-परिमाणं ।
इगि-जोयण-लक्खूणं[2] सोहम्म-विमाण-धय-दंडे ।।१५८।।

१४ ३ । रि यो १००००० [3]

ग्रर्थ :—मध्यलोकके ऊपरी भागसे सौधर्म-विमानके ध्वज-दण्ड तक एक लाख योजन कम डेढराजू प्रमाण ऊँचाई है ।।१५८।।

विशेषार्थ .—मध्यलोकके ऊपरी भाग (चित्रा पृथिवी) से सौधर्मविमानके ध्वजदण्ड पर्यन्त सुमेरुपर्वतकी ऊँचाई एक लाख योजन कम डेढ राजू प्रमाण है ।

वच्चदि दिवड्ढ-रज्जू माहिंद-सणक्कुमार-उवरिम्मि ।
णिट्ठादि-ग्रद्ध[4]-रज्जू बम्हुत्तर-उड्ढ-भागम्मि ।।१५९।।

।। १४ ३ । १४ ।

ग्रर्थ :—इसके ग्रागे डेढराजू, माहेन्द्र ग्रौर सनत्कुमार स्वर्गके ऊपरी भागमे समाप्त होता है । ग्रनन्तर ग्राधा राजू ब्रह्मोत्तर स्वर्गके ऊपरी भागमे पूर्ण होता है ।।१५९।।

रा $\frac{१}{२}$ । $\frac{५}{२}$

ग्रवसादि-ग्रद्ध-रज्जू काविट्ठस्सोवरिट्ठ[5]-भागम्मि ।
स च्चिय महसुक्कोवरि सहसारोवरि य सच्चेव ।।१६०।।

। १४ । १४ । १४ ।

१. ब. क छट्ठीहिं । २ द. लक्खोण, क लक्खाण । ३ द. ब. १४ ३ । १४ ३ । ४. ब. ग्रट्ठरज्जूवमुत्तर । ५ क सोवरिमद्ध ।

अर्थ :—इसके पश्चात् आधाराजू कापिष्टके ऊपरी भागमे, आधा राजू महाशुक्रके ऊपरी भागमे और आधाराजू सहस्रारके ऊपरी भागमे समाप्त होता है ॥१६०॥

। राजू $\frac{१}{२}$ । $\frac{१}{२}$ । $\frac{१}{२}$ ।

तत्तो य अद्ध-रज्जू आणद-कप्पस्स[1] उवरिम-पएसे ।
स य आरणस्स कप्पस्स उवरिम-भागम्मि [2]गेविज्जं ॥१६१॥

। $\frac{१}{२}$ । $\frac{१}{२}$ ।

अर्थ :—इसके अनन्तर अर्ध ($\frac{१}{२}$) राजू आनतस्वर्गके ऊपरी भागमे और अर्ध ($\frac{१}{२}$) राजू आरण स्वर्गके ऊपरी भागमे पूर्ण होता है ॥१६१॥

[3]गेवेज्ज णवाणुद्दिस पहुडीओ होंति एक्क-रज्जूवो ।
एवं उवरिम-लोए रज्जु-विभागो समुद्दिट्ठो ॥१६२॥

७ १

अर्थ :—तत्पश्चात् एक राजूकी ऊँचाईमे नौग्रैवेयिक, नौअनुदिश और पाँच अनुत्तर विमान है। इसप्रकार ऊर्ध्वलोकमे राजूका विभाग कहा गया है ॥१६२॥

कल्प एव कल्पातीत भूमियोका अन्त

णिय-णिय-चरिमिदय-धय-दंडग्गं कप्पभूमि-अवसाणं ।
कप्पादीद-महीए विच्छेदो लोय-किंचूणो[4] ॥१६३॥

अर्थ :—अपने-अपने अन्तिम इन्द्रक ध्वज-दण्डका अग्रभाग उन-उन कल्पो (स्वर्गों) का अन्त है और कल्पातीतभूमिका जो अन्त है वह लोकके अन्तसे कुछ कम है ॥१६३॥

विशेषार्थ :—ऊर्ध्वलोक सुमेरुपर्वतकी चोटीसे एक बाल मात्रके अन्तरसे प्रारम्भ होकर लोकशिखर पर्यन्त १०००४० योजन कम ७ राजू प्रमाण है, जिसमे सर्वप्रथम ८ युगल (१६ स्वर्ग) है, प्रत्येक युगलोका अन्त अपने अपने अन्तिम इन्द्रकके ध्वजदण्डके अग्रभागपर हो जाता है। इसके ऊपर अनुक्रमसे कल्पातीत विमान एव सिद्धशिला आदि है। लोकशिखरसे २१ योजन ४२५ धनुष नीचे कल्पातीत भूमिका अन्त है और सिद्धलोकके मध्यकी मोटाई ८ योजन है अत कल्पातीत भूमि

१ द. व क. कप्प सो। २ क ब. गेवज्ज। ३ द. क ब ज. ठ. तत्तो उवरिम-भागे णवाणुत्तरओ। ४. द. क. ज ठ विच्छेदो।

(सर्वार्थसिद्धि विमानके ध्वजदण्ड) से २६ योजन ४२५ धनुष ऊपर जाकर लोकका अन्त है, इसीलिए गाथामे कल्पातीत भूमिका अन्त लोकके अन्तसे किंचित् (२६ यो. ४२५ ध) कम कहा है।

अधोलोकके मुख और भूमिका विस्तार एव ऊँचाई

सेढीए सत्तंसो हेट्ठिम-लोयस्स होदि मुहवासो।
भूमी-वासो सेढी-मेत्ता[1]-अवसाण-उच्छेहो ॥१६४॥

७ । — । — ।

अर्थ :—अधोलोकके मुखका विस्तार जगच्छ्रेणीका सातवाँ भाग, भूमिका विस्तार जगच्छ्रेणी प्रमाण और अधोलोकके अन्त तक ऊँचाई भी जगच्छ्रेणी प्रमाण ही है ॥१६४॥

विशेषार्थ :—अधोलोकका मुख विस्तार एक राजू, भूमि विस्तार सात राजू और ऊँचाई सात राजू प्रमाण है।

अधोलोकका घनफल निकालनेकी विधि

मुह-भू-समासमद्धिअ[2] गुणिदं पुण तह य वेदेण।
घण-घणिदं णादव्वं वेत्तासण-सण्णिए खेत्ते ॥१६५॥

अर्थ :—मुख और भूमिके योगको आधा करके पुन ऊँचाईसे गुणा करनेपर वेत्रासन सदृश लोक (अधोलोक) का क्षेत्रफल जानना चाहिए ॥१६५॥

विशेषार्थ :—अधोलोकका मुख एक राजू और भूमि सात राजू है, इन दोनोके योगको दो से भाजित-कर ७ राजू ऊँचाईसे गुणित करनेपर अधोलोकका क्षेत्रफल प्राप्त होता है। यथा— १+७=८, ८÷२=४, ४×७ राजू ऊँचाई=२८ वर्ग राजू अधोलोकका क्षेत्रफल प्राप्त होता है।

पूर्ण अधोलोक एव उसके अर्धभागके घनफलका प्रमाण

हेट्ठिम-लोए लोओ चउ-गुणिदो सग-हिदो य विंदफलं।
तस्सद्धं[3] सयल-जगो दो-गुणिदो [4]सत्त-पविहत्तो ॥१६६॥

| ≡/७ ४ | ≡/७ २ |

१ द मेत्ता अ उच्छेहो। २ द. ब समासमद्दिय। ३ ब. तस्सद्धे सयल-जुदागो। ४. द. ब क. ज. ठ सत्तपरिमाणो।

अर्थ :—लोकको चारसे गुरिणतकर उसमे सातका भाग देनेपर अधोलोकके घनफलका प्रमाण निकलता है और सम्पूर्ण लोकको दो से गुणितकर प्राप्त गुणनफलमे सातका भाग देनेपर अधोलोक सम्बन्धी आधे क्षेत्रका घनफल होता है ॥१६६॥

विशेषार्थ :—लोकका प्रमाण ३४३ घनराजू है, अत ३४३×४=१३७२, १३७२—७=१९६ घनराजू अधोलोकका घनफल है।

३४३×२=६८६, ६८६—७=९८ घनराजू अर्ध अधोलोकका घनफल है।

अधोलोकमे त्रसनालीका घनफल

छेत्तूण तस-णालिं अण्णत्थं ठाविदूण विदफलं।
आणेज्ज तप्पमाणं उणवण्णेहिं विहत्त-लोअ-समं ॥१६७॥

$\left|\frac{\equiv}{४९}\right|$

अर्थ :—अधोलोकमेसे त्रसनालीको छेदकर और उसे अन्यत्र रखकर उसका घनफल निकालना चाहिए। इस घनफलका प्रमाण, लोकके प्रमाणमे उनचासका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना होता है ॥१६७॥

विशेषार्थ :—अधोलोकमे त्रसनाली एक राजू चौडी, एक राजू मोटी और सात राजू ऊँची है, अत. १×१×७=७ घनराजू घनफल प्राप्त हुआ जो ३४३—४९=७ घनराजूके बराबर है।

त्रसनालीसे रहित और उससे सहित अधोलोकका घनफल

सगवीस-गुणिद-लोओ उणवण्ण-हिदो अ सेस-खिदि-संखा।
तस-खित्ते सम्मिलिदे चउ-गुणिदो सग-हिदो लोओ ॥१६८॥

$\left|\frac{\equiv}{४९}\ २७\right|\ \left|\frac{\equiv}{७}\ ४\right|$

अर्थ :—लोकको सत्ताईससे गुणाकर उसमे उनचासका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना त्रसनालीको छोड शेष अधोलोकका घनफल समझना चाहिए और लोक प्रमाणको चारसे गुणाकर

---

१ द $\frac{\equiv}{४९}\left|\frac{\equiv}{२७}\ ४\right|$

उसमे सातका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना त्रसनालीसे युक्त पूर्ण अधोलोकका घनफल समझना चाहिए ।।१६८।।

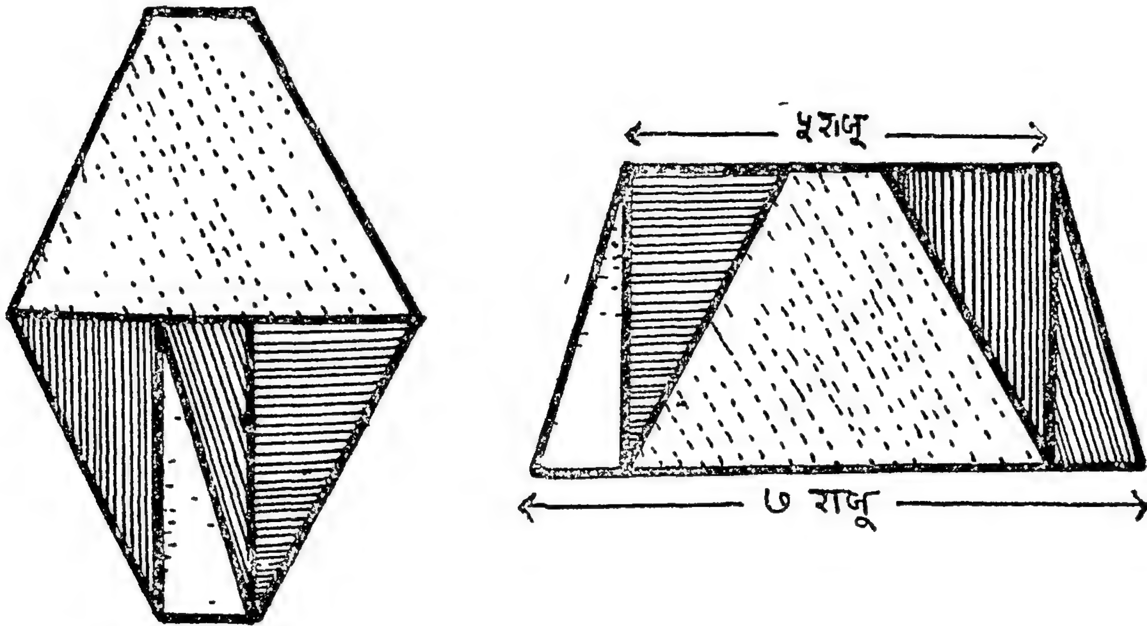
विशेषार्थ :—३४३ × २७ — ४९ = १८९ घनफल, त्रसनालीको छोडकर शेष अधोलोकका कहा गया है और सम्पूर्ण अधोलोकका घनफल ३४३ × ४ — ७ = १९६ घनराजू कहा गया है ।

ऊर्ध्वलोकके आकारको अधोलोक स्वरूप करनेकी प्रक्रिया एव आकृति

मुरजायारं उड्ढं खेत्तं छेत्तूण मेलिदं सयलं ।
पुव्वावरेण जायदि वेत्तासण-सरिस-संठाणं[1] ।।१६९।।

अर्थ :—मृदगके आकारवाला सम्पूर्ण ऊर्ध्वलोक है । उसे छेदकर एव मिलाकर पूर्व-पश्चिमसे वेत्रासनके सदृश अधोलोकका आकार बन जाता है ।।१६९।।

विशेषार्थ :—अधोलोकका स्वाभाविक आकार वेत्रासन सदृश अर्थात् नीचे चौडा और ऊपर सँकरा है, किन्तु इस गाथामे मृदगाकार ऊर्ध्वलोकको छेदकर इस क्रमसे मिलाना चाहिए कि वह भी अधोलोकके सदृश वेत्रासनाकार बन जावे । यथा—



१ द ब ज. क ठ. सठाणा ।

ऊर्ध्वलोकके व्यास एव ऊँचाईका प्रमाण

सेढीए सत्त-भागो उवरिम-लोयस्स होदि मुह-वासो ।
पण-गुणिदो तब्भूमी उस्सेहो तस्स इगि-सेढी ।।१७०।।

। ७ । ७ ५ ।

अर्थ :—ऊर्ध्वलोकके मुखका व्यास जगच्छ्रेणीका सातवाँ भाग है और इससे पाँचगुणा (५ राजू) उसकी भूमिका व्यास तथा ऊँचाई एक जगच्छ्रेणी प्रमाण है ।।१७०।।

विशेषार्थ :—ऊर्ध्वलोक, मध्यलोकके समीप एक राजू, मध्यमे ५ राजू और ऊपर एक राजू चौडा एवम् ७ राजू ऊँचा है ।

सम्पूर्ण ऊर्ध्वलोक और उसके अर्धभागका घनफल

तिय-गुणिदो सत्त-हिदो उवरिम-लोयस्स घणफलं लोओ ।
तस्सद्धे खेत्तफलं तिगुणो चोद्दस-हिदो लोओ ।।१७१।।

| ≡/७ ३ | ≡/१४ ३ |

अर्थ :—लोकको तीनसे गुणा करके उसमे सातका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना ऊर्ध्वलोकका घनफल है और लोकको तीनसे गुणा करके उसमे चौदहका भाग देनेपर लब्धराशि प्रमाण ऊर्ध्वलोक सम्बन्धी आधे क्षेत्रका घनफल होता है ।।१७१।।

विशेषार्थ :—३४३ × ३ — ७ = १४७ घन राजू ऊर्ध्वलोकका घनफल ।
३४३ × ३ — १४ = ७३½ घन राजू अर्ध ऊर्ध्वलोकका घनफल ।

ऊर्ध्वलोकमे त्रसनालीका घनफल

छेत्तूणं [1]तस-णालिं [2]अण्णत्थं ठाविदूण [3]विदफलं ।
आणेज्ज तं पमाणं उणवण्णेहिं विभत्त-लोयसमं ।।१७२।।

| ≡/४९ १ |

---

१. द तस्सणालिं । २ द व. अण्णद्ध, ठ अण्णट्ठ । ३. द. क ज ठ विंदुफल ।

अर्थ :—ऊर्ध्वलोकसे त्रसनालीको छेदकर और उसे अलग रखकर उसका घनफल निकाले। उस घनफलका प्रमाण ४९ से विभक्त लोकके बराबर होगा ।।१७२।।

३४३ – ४९ = ७ घनराजू त्रसनालीका घनफल ।

त्रस नाली रहित एवम् सहित ऊर्ध्वलोकका घनफल

विसदि-गुणिदो लोओ उणवण्ण-हिदो य सेस-खिदि-संखा ।
तस-खेत्ते सम्मिलिदे लोओ ति-गुणो अ सत्त-हिदो ।।१७३।।

$\left| \frac{\equiv}{४९}\ २० \right| \frac{\equiv}{७}\ ३ \right|$

अर्थ :—लोकको बीससे गुणाकर उसमे ४९ का भाग देनेपर त्रसनालीको छोड बाकी ऊर्ध्वलोकका घनफल तथा लोकको तिगुणाकर उसमे सातका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना त्रसनाली युक्त पूर्ण ऊर्ध्वलोकका घनफल है ।।१७३।।

विशेषार्थ :—३४३ × २० – ४९ = १४० घनराजू त्रसनाली रहित ऊर्ध्वलोकका घनफल ।
३४३ × ३ ÷ ७ = १४७ घनराजू त्रसनाली युक्त ऊर्ध्वलोकका घनफल ।

सम्पूर्ण लोकका घनफल एव लोकके विस्तार कथनकी प्रतिज्ञा

घण-फलमुवरिम-हेट्ठिम-लोयाणं मेलिदम्मि सेढि-घणं ।
[1]वित्थर-रुइ-बोहत्थं[2] वोच्छं णाणा-वियप्पेहि ।।१७४।।

अर्थ :—ऊर्ध्व एव अधोलोकके घनफलको मिला देनेपर वह श्रेणीके घनप्रमाण (लोक) होता है। अब विस्तारमे अनुराग रखनेवाले शिष्योंको समझानेके लिए अनेक विकल्पो द्वारा भी इसका कथन करता हू ।।१७४।।

विशेषार्थ :—ऊर्ध्वलोकका घनफल १४७ + १९६ अधोलोकका = ३४३ घनराजू सम्पूर्ण लोकका घनफल है। अथवा

७ × ७ × ७ = ३४३ घनराजू, श्रेणीका घनफल है।

---

१ द ब क ज ठ वित्थररुहि। २ क ज ठ. बोहित्थ।

अधोलोकके मुख एवम् भूमिका विस्तार तथा ऊँचाई

सेढीए सत्त-भागो हेट्ठिम-लोयस्स होदि मुह-वासो ।
भू-वित्थारो सेढी सेढि त्ति य [1]तस्स उच्छेहो ।।१७५।।

। ७ । — । — ।

अर्थ :—अधोलोकका मुख व्यास श्रेणीके सातवे भाग अर्थात् एक राजू और भूमि विस्तार जगच्छ्रेणी प्रमाण (७ राजू) है, तथा उसकी ऊँचाई भी जगच्छ्रेणी प्रमाण ही है ।।१७५।।

विशेषार्थ :—अधोलोकका मुख-व्यास एक राजू, भूमि सात राजू और ऊँचाई सात राजू प्रमाण है ।

प्रत्येक पृथिवीके चय निकालनेका विधान

भूमीअ मुहं सोहिय उच्छेह-हिदं मुहाउ भूमीदो ।
सव्वेसुं खेत्तेसुं पत्तेकं वड्ढि-हाणीओ ।।१७६।।

$\frac{६}{७}$

अर्थ —भूमिके प्रमाणमेसे मुखका प्रमाण घटाकर शेषमे ऊँचाईके प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उतना सब भूमियोमेसे प्रत्येक पृथिवी क्षेत्रकी, मुखकी अपेक्षा वृद्धि और भूमिकी अपेक्षा हानिका प्रमाण निकलता है ।।१७६।।

विशेषार्थ —आदि प्रमाणका नाम भूमि, अन्तप्रमाणका नाम मुख तथा क्रमसे घटनेका नाम हानिचय और क्रमसे वृद्धिका नाम वृद्धिचय है ।

मुख और भूमिमे जिसका प्रमाण अधिक हो उसमेसे हीन प्रमाणको घटाकर ऊँचाईका भाग देनेसे भूमि और मुखकी हानिवृद्धिका चय प्राप्त होता है । यथा—भूमि ७ — १ मुख=६—७ ऊँचाई=$\frac{६}{७}$ वृद्धि और हानिके चयका प्रमाण हुआ ।

प्रत्येक पृथिवीके व्यासका प्रमाण निकालनेका विधान

तक्खय-वड्ढि-पमाणं णिय-णिय-उदया-हदं जइच्छाए ।
हीणब्भहिए संते[2] वासाणि हवंति भू-मुहाहितो ।।१७७।।

$\frac{४}{६}$ ६ ।[3]

१ द क ज ठ सत्त। २ द व सत्ते। ३. द व $\frac{४}{७}$ ६ ।

अर्थ :—विवक्षित स्थानमे अपनी-अपनी ऊँचाईसे उस वृद्धि और क्षयके प्रमाणको [$\frac{६}{७}$] गुणा करके जो गुणनफल प्राप्त हो, उसको भूमिके प्रमाणमेसे घटानेपर अथवा मुखके प्रमाणमे जोड देनेपर व्यासका प्रमाण निकलता है ।।१७७।।

विशेषार्थ :—कल्पना कीजिये कि यदि हमे भूमिकी अपेक्षा चतुर्थ स्थानके व्यासका प्रमाण निकालना है तो हानिका प्रमाण जो छह बटे सात [$\frac{६}{७}$] है, उसे उक्त स्थानकी ऊँचाई [३ रा०] से गुणाकर प्राप्त हुए गुणनफलको भूमिके प्रमाणमेसे घटा देना चाहिए । इस विधिसे चतुर्थ स्थानका व्यास निकल आएगा । इसीप्रकार मुखकी अपेक्षा चतुर्थ स्थानके व्यासको निकालनेके लिए वृद्धिके प्रमाण [$\frac{६}{७}$] को उक्त स्थानकी ऊँचाई (४ राजू) से गुणा करके प्राप्त हुए गुणनफलको मुखमे जोड देनेपर विवक्षित स्थानके व्यासका प्रमाण निकल आएगा ।

उदाहरण—$\frac{६}{७} \times ३ = \frac{१८}{७}$, भूमि $\frac{४९}{७}$ — $\frac{१८}{७} = \frac{३१}{७}$ भूमिकी अपेक्षा चतुर्थ स्थानका व्यास ।

$\frac{६}{७} \times ४ = \frac{२४}{७}$, $\frac{२४}{७}$ + मुख $\frac{७}{७} = \frac{३१}{७}$ मुखकी अपेक्षा चतुर्थस्थानका व्यास ।

अधोलोकगत सातक्षेत्रोका घनफल निकालने हेतु गुणकार एव आकृति

[1]उणवण्ण-भजिद-सेढी अट्ठसु ठाणेसु[2] ठाविदूण कमे ।
[3]वासट्ठं [4]गुणआरा सत्तादि-छक्क-वड्ढि-गदा ।।१७८।।

${}_{४९}$७ । ${}_{४९}$१३ । ${}_{४९}$१९ । ${}_{४९}$२५ । ${}_{४९}$३१ । ${}_{४९}$३७ । ${}_{४९}$४३ । ${}_{४९}$४९ ।

सत्त-घण-हरिद-लोयं सत्तेसु ठाणेसु ठाविदूण कमे ।
विंदफले गुणयारा दस-पभवा छक्क-वड्ढि-गदा ।।१७९।।

$\frac{\equiv}{३४३}$ १० | $\frac{\equiv}{३४३}$ १६ | $\frac{\equiv}{३४३}$ २२ | $\frac{\equiv}{३४३}$ २८ | $\frac{\equiv}{३४३}$ ३४ | $\frac{\equiv}{३४३}$ ४० | $\frac{\equiv}{३४३}$ ४६ |

अर्थ —श्रेणीमे उनचासका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे क्रमश आठ जगह रखकर व्यासके निमित्त गुणा करनेके लिए आदिमे गुणकार सात है । पुन इसके आगे क्रमश छह-छह गुणकारकी वृद्धि होती गई है ।।१७८।।

श्रेणीप्रमाण राजू ७, यहाँ ऊपर से नीचे तक प्राप्त पृथिवियोके व्यास क्रमश. $\frac{७}{४९} \times ७$, $\frac{७}{४९} \times १३$, $\frac{७}{४९} \times १९$, $\frac{७}{४९} \times २५$, $\frac{७}{४९} \times ३१$, $\frac{७}{४९} \times ३७$, $\frac{७}{४९} \times ४३$, $\frac{७}{४९} \times ४९$ ।।१७८।।

---

१. व. उणवणभज्जिद । २ द ज क. ठ ठाणेण । ३. द. वासद्ध, म. वासत्त । ४ व वासद्ध गुणआए ।

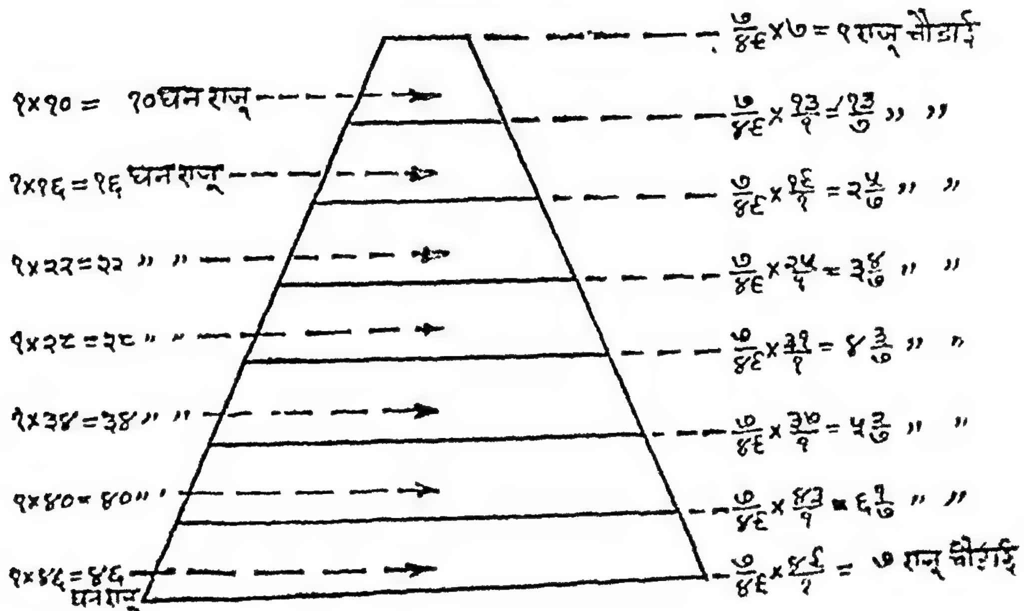
अर्थ :—सातके घन अर्थात् तीनसौ तयालीससे भाजित लोकको क्रमश सात स्थानोपर रखकर अधोलोकके सात क्षेत्रोमेसे प्रत्येक क्षेत्रके घनफलको निकालनेके लिए आदिमे गुणकार दस और फिर इसके आगे क्रमश छह-छहकी वृद्धि होती गई है ॥१७६॥

लोकका प्रमाण ३४३, ३४३ ÷ (७)^{३} = १, तथा उपर्युक्त सात पृथिवियोके घनफल क्रमश १ × १०, १ × १६; १ × २२, १ × २८, १ × ३४, १ × ४० और १ × ४६ घन राजू प्राप्त होंगे ॥१७६॥

विशेषार्थ —(दोनो गाथाओका) अधोलोकमे सात पृथ्वियाँ है और एक भूमि क्षेत्र, लोककी अन्तिम सीमाका है, इसप्रकार आठो स्थानोका व्यास प्राप्त करनेके लिए श्रेणी (७) मे ४६ का भाग देकर अर्थात् $\frac{७}{४९}$ को क्रमश ७, (७ + ६) = १३, (१३ + ६) = १९, (१९ + ६) = २५, (२५ + ६) = ३१, (३१ + ६) = ३७, (३७ + ६) = ४३ और (४३ + ६) = ४९ से गुणित करना चाहिए।

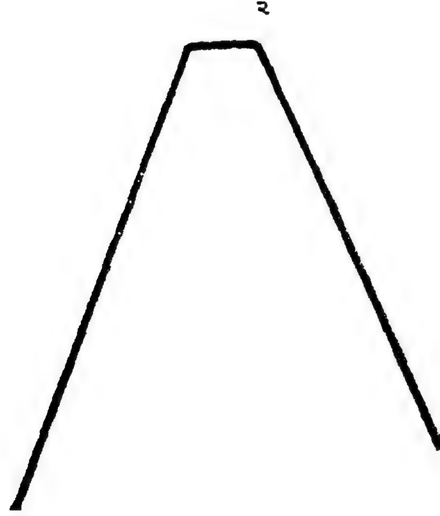
उपर्युक्त आठ व्यासोके मध्यमे ७ क्षेत्र प्राप्त होते है। इन क्षेत्रोका घनफल निकालनेके लिए ३४३ से भाजित लोक अर्थात् ($\frac{३४३}{३४३}$) = १ को सात स्थानोपर स्थापित कर क्रमश १०, १६, २२, २८, ३४, ४० और ४६ मे गुणा करना चाहिए यथा—

पृथ्वियोके घनफल



पूर्व-पश्चिमसे अधोलोककी ऊँचाई प्राप्त करनेका विधान एवं उसकी आकृति

उदओ हवेदि पुव्वावरेहि लोयंत-उभय-पासेसु ।
ति-दु-इगि-रज्जु-पवेसे सेढी दु-ति-[1]भाग-तिद-सेढीओ ॥१८०॥



अर्थ :—पूर्व और पश्चिमसे लोकके अन्तके दोनो पार्श्वभागोमे तीन, दो और एक राजू प्रवेश करनेपर ऊँचाई क्रमशः एक जगच्छ्रेणी, श्रेणीके तीन भागोमेसे दो-भाग और श्रेणीके तीन भागोमेसे एक भाग मात्र है ॥१८०॥

विशेषार्थ :—पूर्व दिशा सम्बन्धी लोकके अन्तिम छोरसे पश्चिमकी ओर ३ राजू जाकर यदि उस स्थानसे लोककी ऊँचाई मापी जाय तो ऊँचाइयाँ क्रमश जगच्छ्रेणी प्रमाण अर्थात् ७ राजू, दो राजू जाकर मापी जाय तो $\frac{१४}{३}$ राजू और यदि एक राजू जाकर मापी जाय तो $\frac{७}{३}$ राजू प्राप्त होगी।

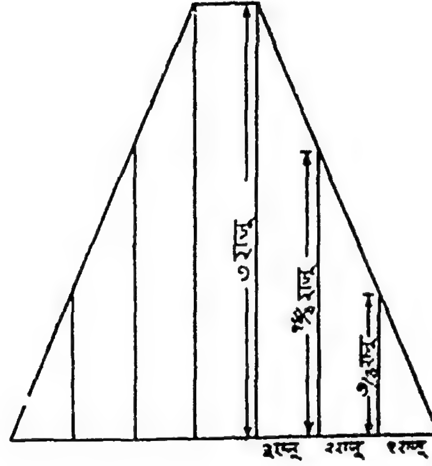
पश्चिम दिशा सम्बन्धी लोकान्तसे पूर्वकी ओर चलने परभी लोककी यही ऊँचाइयाँ प्राप्त होगी।

शंका :—दो राजू आगे जाकर लोककी ऊँचाई $\frac{१४}{३}$ राजू प्राप्त होती है यह कैसे जाना जाय ?

---

१ [दुतिभागतिदियसेढीओ]। २. क. प्रति से ।

समाधान —३ राजू दूरी पर जब ऊँचाई ७ राजू है, तव दो राजू दूरी पर कितनी ऊँचाई प्राप्त होगी ? इस त्रैराशिक नियमसे जानी जाती हे । यथा—



त्रिकोण एव लम्वे वाहु युक्त क्षेत्रके घनफल निकालनेकी विधि एव उसका प्रमाण

भुज-पडिभुज-मिलिदद्धं विंदफल वासमुदय-वेद-हदं ।
[1]एक्काययत्त-बाहू वासद्ध-हदा य वेद-हदा ।।१८१।।

अर्थ ·—[१] भुजा और प्रतिभुजाको मिलाकर आधा करनेपर जो व्यास हो, उसे ऊँचाई और मोटाईसे गुणा करना चाहिए । ऐसा करनेसे त्रिकोण क्षेत्रका घनफल निकल आता है ।

[२] एक लम्वे वाहुको व्यासके आधेसे गुणाकर पुन मोटाईसे गुणा करनेपर एक लम्वे वाहु-युक्त क्षेत्रके घनफलका प्रमाण आता है ।।१८१।।

विशेषार्थ :—गा० १८० के विशेपार्थके चित्रणमे "स" नामक विषम चतुर्भुजमे ७ राजू लम्वी रेखाका नाम भुजा और $\frac{१४}{३}$ राजू लम्बी रेखा का नाम प्रतिभुजा है । इन दोनोका जोड $(\frac{७}{१}+\frac{१४}{३})=\frac{३५}{३}$ राजू है । इसको आधा करने पर $(\frac{३५}{३}\times\frac{१}{२})=\frac{३५}{६}$ राजू प्राप्त होते है । इनमे ऊँचाई और मोटाई का गुणा कर देने पर $(\frac{३५}{६}\times\frac{१}{१}\times\frac{७}{१})=\frac{२४५}{६}$ अर्थात् $४०\frac{५}{६}$ घन राजू "स" नामक विपम चतुर्भुजका घनफल है ।

इसीप्रकार "ब" चतुर्भुजका घनफल भी प्राप्त होगा । यथा $\frac{१४}{३}$ राजू ,भुजा + $\frac{७}{३}$ राजू प्रतिभुजा $=\frac{२१}{३}$ राजू । तत्पश्चात् घनफल $=\frac{२१}{३}\times\frac{१}{२}\times\frac{१}{१}\times\frac{७}{१}=\frac{४९}{२}$ अर्थात् $२४\frac{१}{२}$ घनराजू "व" नामक विषम चतुर्भुजका घनफल प्राप्त होता है । यही घनफल गाथा १८२ मे दर्शाया गया है ।

---

१. द एक्कायजत्त, ज क ठ एक्कायसत्त ।

"अ" क्षेत्र त्रिकोणाकार है अत उसमे प्रतिभुजाका अभाव है । अ क्षेत्रकी भुजाकी लम्वाई $\frac{७}{३}$ राजू और क्षेत्रका व्यास एक राजू है । लम्वायमान वाहु ($\frac{७}{३}$) को व्यासके आधे ($\frac{१}{२}$) से और मोटाईसे गुणित कर देनेपर लम्वे वाहु युक्त त्रिकोण क्षेत्रका क्षेत्रफल प्राप्त हो जाता है । यथा $\frac{७}{३}\times\frac{१}{२}\times\frac{७}{१}=\frac{४९}{६}$ अर्थात् ८$\frac{१}{६}$ घनराजू 'अ' त्रिकोण क्षेत्रका घनफल प्राप्त हुआ । यही क्षेत्रफल गाथा १८२ मे दर्शाया गया है ।

अभ्यन्तर क्षेत्रोका घनफल

वादाल-हरिद-लोओ विंदफलं चोद्दसावहिद-लोओ ।
तब्भंतर-खेत्ताणं पण-हद-लोओ दुदाल-हिदो ॥१८२॥

$$\left|\frac{\equiv}{४२}\right|\frac{\equiv}{१४}\left|\frac{\equiv}{४२}\,५\right|$$

अर्थ :–लोकको वयालीससे भाजित करनेपर, चौदहसे भाजित करनेपर और पाँचसे गुणित एव वयालीससे भाजित करनेपर क्रमश (अ व स) अभ्यन्तर क्षेत्रोका घनफल निकलता है ॥१८२॥

विशेषार्थ :—३४३ – ४२ = ८$\frac{१}{६}$ घनराजू 'अ' क्षेत्रका घनफल ।

३४३ – १४ = २४$\frac{१}{२}$ घनराजू 'व' क्षेत्रका घनफल ।

३४३ × ५ – ४२ = ४०$\frac{५}{६}$ घनराजू 'स' क्षेत्रका घनफल ।

नोट —इन तीनो घनफलोका चित्रण गाथा १८० के विशेपार्थमे और प्रक्रिया गा० १८१ के विशेषार्थमे दर्शा दी गई है ।

सम्पूर्ण अधोलोकका घनफल

एदं खेत्त-पमाणं मेलिद सयलं पि दु-गुणिदं कादु ं ।
मज्झिम-खेत्ते मिलिदे [1]चउ-गुणिदो सग-हिदो लोओ ॥१८३॥

$$\left|\frac{\equiv}{७}\,४\right|^{२}$$

---

१. द.व क ज ठ चउगुणिदे सगहिदे । २ व $\frac{\equiv}{७}\,४ \left| \frac{\equiv}{७} \right| ७ \right|$

अर्थ :—उपर्युक्त घनफलोको मिलाकर और सकलको दुगुनाकर इसमे मध्यम क्षेत्रके घनफलको जोड देनेपर चारसे गुणित और सातसे भाजित लोकके वरावर सम्पूर्ण अधोलोकके घनफलका प्रमाण निकल आता है ।।१८३।।

विशेषार्थ —गा० १८० के चित्रणमे अ, व और स नामके दो-दो क्षेत्र है, अत $८\frac{१}{६}+२४\frac{३}{६}+४०\frac{५}{६}=७३\frac{३}{६}$ घनराजूमे २ का गुणा करनेसे $(७३\frac{३}{६}\times२)=१४७$ घनराजू प्राप्त हुआ । इसमे मध्यक्षेत्र अर्थात् त्रसनालीका (७ × १ × ७) = ४९ घनराजू जोड देनेसे (१४७ + ४९) = १९६ घनराजू पूर्ण अधोलोकका घनफल प्राप्त हुआ, जो सदृष्टि रूप ३४३ × ४—७ राजूके वरावर है ।

लघु भुजाओके विस्तारका प्रमाण निकालनेका विधान एव आकृति

रज्जुस्स सत्त-भागो तिय-छ-दु-पंचेक्क-चउ-सगेहि हदा ।
खुल्लय-भुजाण रुंदा वंसादी थंभ-बाहिरए ।।१८४।।

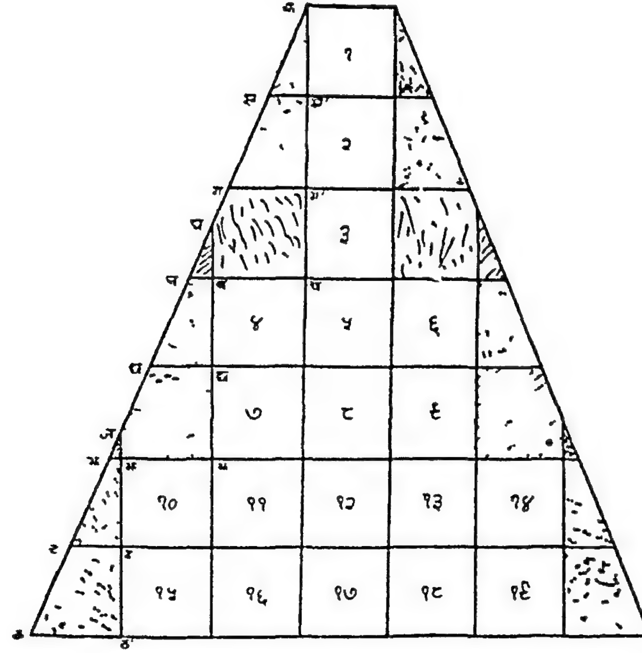
४६३ । ४६६ । ४६२ । ४६५ । ४६१ । ४६४ । ४६७ ।

अर्थ :—राजूके सातवे भागको क्रमश तीन, छह, दो, पाँच, एक, चार और सातसे गुणित-करनेपर वशा आदिकमे स्तम्भोके बाहर छोटी भुजाओके विस्तारका प्रमाण निकलता है ।।१८४।।

विशेषार्थ —सात राजू चौडे और सातराजू ऊँचे अधोलोकमे एक-एक राजूके अन्तरालसे जो ऊँचाई-रूप रेखाएँ डाली जाती है, उन्हे स्तम्भ कहते है । स्तम्भोके वाहरवाली छोटी भुजाओका प्रमाण प्राप्त करनेके लिए राजूके सातवे ($\frac{१}{७}$) भागको तीन, छह, दो, पाँच, एक, चार और सातसे गुणित करना चाहिए । इसकी सिद्धि इसप्रकार है —

अधोलोक नीचे सात राजू और ऊपर एक राजू चौडा है । भूमि (७ राजू) मे से मुख घटा देनेपर (७ — १ =) ६ राजूकी वृद्धि प्राप्त होती है । जब ७ राजूपर ६ राजूकी वृद्धि होती है तब एक राजूपर $\frac{६}{७}$ राजूकी वृद्धि होगी । प्रथम पृथिवीकी चौडाई $\frac{७}{७}$ अर्थात् एक राजू और दूसरी पृथिवीकी ($\frac{७}{७}+\frac{६}{७}=$) $\frac{१३}{७}$ राजू है । इसीप्रकार तृतीय आदि शेष पृथ्वियोकी चौडाई क्रमश $\frac{१९}{७}$, $\frac{२५}{७}$, $\frac{३१}{७}$, $\frac{३७}{७}$ और $\frac{४३}{७}$ राजू है (यह चौडाई गा० १७८, १७९ के चित्रणमे दर्शाई गयी है), अधोलोककी भूमि अन्तमे $\frac{४९}{७}$ अर्थात् सात राजू है । दूसरी और तीसरी पृथिवीके मुखोमेसे बीच (त्रसनाली) का एक-एक राजू कम कर देनेपर क्रमश $\frac{६}{७}$ और $\frac{१२}{७}$ राजू अवशेष रहता है, इसका आधा कर देनेपर प्रत्येक दिशामे $\frac{३}{७}$ और $\frac{६}{७}$ राजू बाहरका क्षेत्र रहता है । चौथी-पाँचवी पृथ्वियोके मुखोमेसे बीचके तीन अर्थात् $\frac{२१}{७}$ राजू घटा देनेपर शेष ($\frac{२५}{७}$ — $\frac{२१}{७}$) = $\frac{४}{७}$ और ($\frac{३१}{७}$ — $\frac{२१}{७}$) = $\frac{१०}{७}$ राजू शेष रहता है,

इनका आधा करनेपर प्रत्येक दिशामे बाह्य छोटी भुजाका विस्तार क्रमश $\frac{२}{७}$ और $\frac{५}{७}$ राजू रहता है। ६ ठी और ७ वी पृथ्वियोके मुखो तथा लोकके अन्तमेसे पाँच-पाँच राजू निकाल देनेपर क्रमश ($\frac{३७}{७}$ — $\frac{३५}{७}$) = $\frac{२}{७}$, ($\frac{४३}{७}$ — $\frac{३५}{७}$) = $\frac{८}{७}$ और ($\frac{४९}{७}$ — $\frac{३५}{७}$) = $\frac{१४}{७}$ राजू अवशेष रहता है। इनमेसे प्रत्येकका आधा करनेपर एक दिशामे बाह्य छोटी भुजाका विस्तार क्रमश $\frac{१}{७}$, $\frac{४}{७}$ और $\frac{७}{७}$ राजू प्राप्त होता है, इसीलिए इस गाथामे $\frac{१}{७}$ को तीन आदिसे गुणित करनेको कहा गया है। यथा —



उपर्युक्त चित्रणमे —ख खे = $\frac{३}{७}$
ग गे = $\frac{६}{७}$
च चे = $\frac{२}{७}$
छ छे = $\frac{५}{७}$
झ झे = $\frac{१}{७}$
ट टे = $\frac{४}{७}$
ठ ठे = $\frac{७}{७}$

लोयंते रज्जु-घणा पंच च्चिय अद्ध-भाग-संजुत्ता।
सत्तम-खिदि-पज्जंता अड्ढाइज्जा हवंति फुड ॥१८५॥

| ≡ ११ | ≡ ५ |
| ३४३। २ | ३४३। २ |

अर्थ :—लोकके अन्त तक अर्धभाग सहित पाच (५$\frac{१}{२}$) घनराजू और सातवी पृथिवी तक ढाई घनराजू प्रमाण घनफल होता है ॥१८५॥

[$(\frac{७}{७}+\frac{४}{७})-२\times१\times७$]$=\frac{११}{२}$ घनराजू, [$(\frac{४}{७}+\frac{१}{७})-२\times१\times७$]$=\frac{५}{२}$ घनराजू ।

विशेषार्थ :—गाथा १८४ के चित्रणमे ट ठ ठे टे क्षेत्रका घनफल निम्नलिखित प्रकारसे है —

लोकके अन्तमे ठ ठे भुजाका प्रमाण $\frac{७}{७}$ राजू है और सप्तम पृथिवीपर ट टे भुजाका प्रमाण $\frac{४}{७}$ राजू है । यहाँ गा० १८१ के नियमानुसार भुजा ($\frac{७}{७}$) और प्रतिभुजा ($\frac{४}{७}$) का योग ($\frac{७}{७}+\frac{४}{७}$)$=\frac{११}{७}$ राजू होता है, इसका आधा ($\frac{११}{७}\times\frac{१}{२}$)$=\frac{११}{१४}$ हुआ । इसको एक राजू व्यास और सात राजू मोटाईसे गुणित करने पर ($\frac{११}{१४}\times\frac{१}{१}\times\frac{७}{१}$)$=\frac{११}{२}$ अर्थात् ५$\frac{१}{२}$ घनराजू घनफल प्राप्त होता है ।

सप्तम पृथिवीपर झ ट टे झे क्षेत्रका घनफल भी इसी भाँति है—भुजा ट टे $\frac{४}{७}$ राजू है और प्रतिभुजा झ झे $\frac{१}{७}$ राजू है । इन दोनो भुजाओका योग ($\frac{४}{७}+\frac{१}{७}$)$=\frac{५}{७}$ राजू हुआ । इसका अर्ध करनेपर ($\frac{५}{७}\times\frac{१}{२}$)$=\frac{५}{१४}$ राजू प्राप्त होता है । इसे एक राजू व्यास और ७ राजू मोटाईसे गुणित करनेपर ($\frac{५}{१४}\times\frac{१}{१}\times\frac{७}{१}$)$=\frac{५}{२}$ अर्थात् २$\frac{१}{२}$ घनराजू घनफल प्राप्त होता है ।

उभयेसि परिमाणं बाहिम्मि अब्भंतरम्मि रज्जु-घणा ।
छट्ठक्खिदि-पेरंता तेरस दोरूव-परिहत्ता ॥१८६॥

$\left| \frac{\equiv}{३४३} \; \frac{१३}{२} \right|$

बाहिर-छब्भाएसु[1] अवणीदेसुं हवेदि अवसेसं[2] ।
स-तिभाग-छक्क-मेत्तं तं चिय अब्भंतरं खेत्तं ॥१८७॥

$\left| \frac{\equiv}{३४३} \; \frac{१}{६} \right| \frac{\equiv}{३४३} \; \frac{३८}{६} \Big|$ [3]

अर्थ :—छठी पृथिवीतक बाह्य और अभ्यन्तर क्षेत्रोका मिश्रघनफल दो से विभक्त तेरह घनराजू प्रमाण है ॥१८६॥

[$(\frac{६}{७}+\frac{७}{७})-२\times१\times७$]$=\frac{१३}{२}$ घनराजू ।

---

१ द ब क ज. ठ बाहिरछब्भासेसु । २ द. ब अवसेसु । ३ द ब $\frac{\equiv}{३४३} \Big| \frac{६}{\frac{१}{३}} \Big|$

अर्थ :—छठी पृथिवी तक जो बाह्य क्षेत्रका घनफल एक बटे छह ($\frac{१}{६}$) घनराजू होता है, उसे उपर्युक्त दोनो क्षेत्रोके जोड रूप घनफल ($\frac{१३}{२}$ घनराजू) मे से घटा देनेपर शेष एक त्रिभाग ($\frac{१}{३}$) सहित छह घनराजू प्रमाण अभ्यन्तर क्षेत्रका घनफल समझना चाहिए ।।१८७।।

($\frac{१}{७}$ ÷ २) × $\frac{१}{३}$ × ७ = $\frac{१}{६}$ घन रा० बाह्यक्षेत्रका घनफल ।

$\frac{१३}{२}$ — $\frac{१}{६}$ = $\frac{३८}{६}$ घनराजू अभ्यन्तर क्षेत्रका घनफल ।

विशेषार्थ :—छठी पृथिवी पर छ ज झ झें छें बाह्य और अभ्यन्तर क्षेत्रसे मिश्रित क्षेत्रका घनफल इसप्रकार है—

झ झें = $\frac{१}{७}$ और झें झें = $\frac{५}{७}$ है, अत झ झें = ($\frac{१}{७}$ + $\frac{५}{७}$) = $\frac{६}{७}$ होता है । और छ छें = $\frac{७}{७}$ है, इन दोनो भुजाओका योग ($\frac{६}{७}$ + $\frac{७}{७}$) = $\frac{१३}{७}$ राजू हुआ । इसमे पूर्वोक्त क्रिया करने पर ($\frac{१३}{७}$ × $\frac{१}{२}$ × $\frac{१}{१}$ × $\frac{७}{१}$) = $\frac{१३}{२}$ घनराजू घनफल प्राप्त होता है । इसमेसे बाह्य त्रिकोण क्षेत्र ज झ झें का घनफल ($\frac{१}{७}$ × $\frac{१}{२}$ × $\frac{१}{३}$ ऊँ० × ७) = $\frac{१}{६}$ घनराजू घटा देनेपर छ ज झें झें छें अभ्यन्तर क्षेत्रका घनफल ($\frac{१३}{२}$ — $\frac{१}{६}$) = $\frac{३८}{६}$ अर्थात् ६$\frac{१}{३}$ घनराजू प्राप्त होता है ।

आहुट्ठं रज्जु-घणं धूम-पहाए समासमुद्दिट्ठं ।
पंकाए चरिमंते इगि-रज्जु-घणा ति-भागूणं ।।१८८।।

| ≡ ७ | ≡ २ |
| ३४३ । २ | ३४३ । ३ |

रज्जु-घणा सत्तच्चिय छब्भागूणा चउत्थ-पुढवीए ।
अब्भंतरम्मि भागे खेत्त-फलस्स-प्पमाणमिदं ।।१८९।।

| ≡ ४१ |
| ३४३ । ६ |

अर्थ :—धूमप्रभा पर्यन्त घनफलका जोड साढे-तीन घनराजू बतलाया गया है, और पक-प्रभाके अन्तिम भागतक एक त्रिभाग ($\frac{१}{३}$) कम एक घनराजू प्रमाण घनफल है ।।१८८।।

[($\frac{५}{७}$ + $\frac{२}{७}$) − २ × १ × ७] = $\frac{७}{२}$ घन रा०, ($\frac{२}{७}$ − २) × $\frac{२}{३}$ × ७ = $\frac{२}{३}$ घ० रा० बाह्यक्षेत्रका घनफल ।

अर्थ :—चौथी पृथिवी पर्यन्त अभ्यन्तर भागमे घनफलका प्रमाण एक बटे छह ($\frac{१}{६}$) कम सात घनराजू है ।।१८९।।

$[(\frac{९}{७}+\frac{६}{७})-२\times१\times७]-\frac{२}{३}=\frac{४१}{६}$ घनराजू अभ्यन्तर क्षेत्रका घनफल ।

विशेषार्थ :—पाँचवी पृथिवी पर च छ छे चे क्षेत्रका घनफल इसप्रकार है—भुजा छ छे $\frac{५}{७}$ और प्रतिभुजा च चे $\frac{२}{७}$ है, दोनोका योग $(\frac{५}{७}+\frac{२}{७})=\frac{७}{७}$ है । इसमे पूर्वोक्त क्रिया करनेपर $(\frac{७}{७}\times\frac{१}{२}\times१\times७)=\frac{७}{२}$ अर्थात् $३\frac{१}{२}$ घनराजू घनफल पचम पृथिवीका प्राप्त होता है ।

चौथी पृथिवी पर ग घ च चें गे वाह्य और अभ्यन्तर क्षेत्रसे मिश्रित क्षेत्रका (वाह्यक्षेत्रका एव अभ्यन्तर क्षेत्रका भिन्न-भिन्न) घनफल इसप्रकार है—च चे $=\frac{२}{७}$ और चे चें $=\frac{७}{७}$ है, अत $(\frac{७}{७}+\frac{२}{७})=\frac{९}{७}$ भुजा है तथा ग गें $=\frac{६}{७}$ प्रतिभुजा है । $\frac{९}{७}+\frac{६}{७}=\frac{१५}{७}$ राजू प्राप्त हुआ । $\frac{१५}{७}\times\frac{१}{२}\times१\times७=\frac{१५}{२}$ घनराजू वाह्याभ्यन्तर दोनोका मिश्रघनफल होता है । इसमेसे वाह्य त्रिकोण क्षेत्रका घनफल $(\frac{२}{७}\times\frac{१}{२}\times\frac{२}{३}$ ऊँ० $\times७)=\frac{२}{३}$ घनराजू घटा देनेपर $(\frac{१५}{२}-\frac{२}{३})=\frac{४१}{६}$ घनराजू ग घ चे चें गे अभ्यन्तर क्षेत्रका घनफल प्राप्त होता है ।

रज्जु-घणद्धं णव-हद-तदिय[1]-खिदीए दुइज्ज-भूमीए ।
होदि दिवड्ढा एदो मेलिय दुगुणं घणो कुज्जा ॥१९०॥

| ≡ / ३४३ । ९/२ | ≡ / ३४३ | ३/२ |

मेलिय दुगुणिदे ≡ / ३४३ ६३ |

[2]तेत्तीसब्भहिय-सयं सयलं खेत्ताण सव्व-रज्जुघणा ।
ते ते सव्वे मिलिदा दोण्णि-सया होंति चउ-हीणा ॥१९१॥

| ≡ / ३४३ १३३ | मिलिदे ≡ / ३४३ १९६ |

अर्थ :—अर्ध $(\frac{१}{२})$ घनराजूको नौ से गुणा करनेपर जो गुणनफल प्राप्त हो, उतना तीसरी पृथिवी-पर्यन्त क्षेत्रके घनफलका प्रमाण है और दूसरी पृथिवी पर्यन्त क्षेत्रका घनफल डेढ घनराजू प्रमाण है । इन सब घनफलोको जोडकर दोनो तरफका घनफल लानेके लिए उसे दुगुना करना चाहिए ॥१९०॥

$[(\frac{६}{७}+\frac{३}{७})-२\times१\times७]=\frac{९}{२}$ घ० रा०, $\frac{३}{७}-२\times१\times७=\frac{३}{२}$ घनराजू ।

योग— $\frac{११}{२}+\frac{५}{२}+\frac{१}{६}+\frac{३८}{६}+\frac{७}{२}+\frac{२}{३}+\frac{४१}{६}+\frac{९}{२}+\frac{३}{२}=\frac{१८९}{६}$

$\frac{१८९}{६}\times\frac{२}{१}=\frac{३७८}{६}=६३$ घनराजू ।

१. द ब तदीय । २. ब तेत्तीससब्भहियछेत्ताण । द ज क ठ तेत्तीसब्भहिय, सय सयछेत्ताण ।

अर्थ :—उपर्युक्त घनफलको दुगुना करनेपर दोनो (पूर्व-पश्चिम) तरफका कुल घनफल त्रेसठ घनराजू प्रमाण होता है। इसमे सब अर्थात् पूर्ण एक राजू प्रमाण विस्तार वाले समस्त (१९) क्षेत्रोका घनफल जो एक सौ तैंतीस घनराजू है, उसे जोड देनेपर चार कम दो सौ अर्थात् एकसौ छयानवै घनराजू प्रमाण कुल अधोलोकका घनफल होता है ॥१९१॥

६३ + १३३ = १९६ घनराजू ।

विशेषार्थ :—तीसरी पृथिवीपर ख ग गं खं क्षेत्रका घनफल—भुजा ग गं = $\frac{६}{७}+\frac{३}{७}$, ख खं प्रतिभुजा = $\frac{९}{७}$ तथा घनफल = $\frac{९}{७}\times\frac{१}{२}\times १\times ७=\frac{९}{२}$ घनराजू घनफल प्राप्त होता है।

दूसरी पृथिवीपर क ख खं एक त्रिकोण है। इसमे प्रतिभुजाका अभाव है। भुजा ख खं = $\frac{३}{७}$ तथा घनफल = $\frac{३}{७}\times\frac{१}{२}\times १\times ७=\frac{३}{२}$ अर्थात् $१\frac{१}{२}$ घनराजू घनफल प्राप्त होता है।

इन सब घनफलोको जोडकर दोनो ओरका घनफल प्राप्त करनेके लिए उसे दुगुना करना चाहिए। यथा—

$$\frac{११}{२}+\frac{५}{२}+\frac{१}{६}+\frac{३८}{६}+\frac{७}{२}+\frac{२}{३}+\frac{४१}{६}+\frac{९}{२}+\frac{३}{२}$$

$$=\frac{३३+१५+१+३८+२१+४+४१+२७+९}{६}=\frac{१८९}{६}\times\frac{२}{१}=\frac{३७८}{६}=६३ \text{ घनराजू}$$

अर्थात् दोनो पार्श्वभागोमे बनने वाले सम्पूर्ण विषम चतुर्भुजो और त्रिकोणो का घनफल ६३ घनराजू प्रमाण है। इसमे एक राजू ऊँचे, एक राजू चौडे और सात राजू मोटे १९ क्षेत्रोका घनफल = (१९ × १ × १ × ७) = १३३ घनराजू और जोड देनेपर अधोलोकका सम्पूर्ण घनफल (१३३ + ६३) = १९६ घनराजू प्राप्त हो जाता है।

ऊर्ध्वलोकके मुख तथा भूमिका विस्तार एव ऊँचाई

एक्केक्क-रज्जु-मेत्ता उवरिम-लोयस्स होंति मुह-वासा ।
हेट्ठोवरि भू-वासा पण रज्जू सेढि-अद्धमुच्छेहो ॥१९२॥

७ । ७ । भू । ७५ । ३ । २ ।

अर्थ :—ऊर्ध्वलोकके अधो और ऊर्ध्व मुखका विस्तार एक-एक राजू, भूमिका विस्तार पाँच राजू और ऊँचाई (मुखसे भूमि तक) जगच्छ्रेणीके अर्धभाग अर्थात् साढे तीन राजू-मात्र है ॥१९२॥

ऊर्ध्वलोकका ऊपर एव नीचे मुख एक राजू, भूमि पाँच राजू और उत्सेध-भूमिसे नीचे $३\frac{१}{२}$ राजू तथा ऊपर भी $३\frac{१}{२}$ राजू है।

ऊर्ध्वलोकमे दश स्थानोके व्यासार्थ चय एव गुणकारोका प्रमाण

भूमीए मुहं सोहिय उच्छेह-हिदं मुहादु भूमीदो।
खय-वड्ढीण पमाणं अड-रूवं सत्त-पविहत्तं[1] ॥१९३॥

$\frac{८}{७}$ |

अर्थ :—भूमिमेसे मुखके प्रमाणको घटाकर शेषमें ऊँचाईका भाग देनेपर जो उतना प्रत्येक राजूपर मुखकी अपेक्षा वृद्धि और भूमिकी अपेक्षा हानिका प्रमाण होता है। वह सातसे विभक्त आठ अक मात्र अर्थात् आठ बटे सात राजू होता है ॥१९३॥

ऊर्ध्वलोकमे भूमि ५ राजू, मुख एक राजू और ऊँचाई $३\frac{१}{२}$ अर्थात् $\frac{७}{२}$

$५ — १ = ४,\ ४ \div \frac{७}{२} = \frac{८}{७}$ राजू प्रत्येक राजू पर वृद्धि और हानिका

व्यासका प्रमाण निकालनेका विधान

तक्खय-वड्ढि-पमाणं णिय-णिय-उदया-हदं जइच्छाए।
हीणब्भहिए संते वासाणि हवंति भू-मुहाहितो ॥१९

अर्थ :—उस क्षय और वृद्धिके प्रमाणको इच्छानुसार अपनी-अपनी ऊँचाईसे जो कुछ गुणनफल प्राप्त हो उसे भूमिमेसे घटा देने अथवा मुखमे जोड देनेपर व्यासका प्रमाण निकलता है ॥१९४॥

उदाहरण —सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्पका विस्तार—

ऊँचाई ३ राजू, चय $\frac{८}{७}$ राजू और मुख १ राजू है। $\frac{३}{१} \times \frac{८}{७} = \frac{२४}{७}$, तथा अर्थात् $४\frac{३}{७}$ राजू दूसरे युगलका व्यास प्राप्त हुआ।

भूमि अपेक्षा—दूसरे कल्पकी नीचाई $\frac{१}{२}$ राजू, भूमि ५ और चय $\frac{८}{७}$ राजू है $५ — \frac{८}{१४} = \frac{६२}{१४}$ या $\frac{३१}{७}$ अर्थात् $४\frac{३}{७}$ राजू विस्तार प्राप्त हुआ।

---

१ व सत्तपहिहत्य, द. ज क ठ. सत्तपविहत्य।

ऊर्ध्वलोकके व्यासकी वृद्धि-हानिका प्रमाण

अट्ठ-गुणिदेग-सेढी उणवण्णहिदम्मि होदि जं लद्धं[1] ।
स च्चेय[1] वड्ढि-हाणी उवरिम-लोयस्स वासाणं ॥१९५॥

४९ ८

अर्थ :—श्रेणी (७ राजू) को आठसे गुणितकर उसमे ४९ का भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उतना ऊर्ध्वलोकके व्यासकी वृद्धि और हानिका प्रमाण है ॥१९५॥

यथा—श्रेणी=७×८=५६ । ५६–४९=$\frac{७}{७}$ राजू क्षय-वृद्धिका प्रमाण ।

ऊर्ध्वलोकके दश क्षेत्रोके अधोभागका विस्तार एव उसकी आकृति

रज्जूए सत्त-भागं दससु ट्ठाणेसु ठाविदूण तदो ।
सत्तोणवीस - इगितीस - पंचतीसेक्कतीसेहि ॥१९६॥

[2]सत्ताहियवीसेहिं तेवीसेहि तहोणवीसेण ।
पण्णरस वि सत्तेहि तम्मि हदे उवरि वासाणि ॥१९७॥

। ४९ ७ । ४९ १९ । ४९ ३१ । ४९ ३५ । ४९ ३१ । ४९ २७ । ४९ २३ । ४९ १९ । ४९ १५ । ४९ ७ ।

अर्थ :—राजूके सातवे भागको क्रमश दस स्थानोमे रखकर उसको सात, उन्नीस, इकतीस, पैतीस, इकतीस, सत्ताईस, तेईस, उन्नीस, पन्द्रह और सात से गुणा करनेपर ऊपरके क्षेत्रोका व्यास निकलता है ॥१९६-१९७॥

विशेषार्थ :—ऊर्ध्वलोकके प्रारम्भसे लोक पर्यन्त क्षेत्रके दस भाग होते है । उन उपरिम दस क्षेत्रोके अधोभागमे विस्तारका क्रम इसप्रकार है—

ब्रह्मलोक के समीप भूमि ५ राजू, मुख एक राजू और ऊँचाई ३$\frac{१}{२}$ राजू है तथा प्रथम युगलकी ऊँचाई १$\frac{१}{२}$ राजू है । भूमि ५ — १ मुख =४ राजू अवशेष रहे । जबकि $\frac{७}{२}$ राजू ऊँचाई पर ४ राजूकी वृद्धि होती है, तब १$\frac{१}{२}$ राजू पर ($\frac{४}{१}$×$\frac{२}{७}$×$\frac{३}{२}$)=$\frac{१२}{७}$ राजू वृद्धि प्राप्त हुई । प्रारम्भमे ऊर्ध्वलोकका विस्तार एक राजू है, उसमे $\frac{१२}{७}$ राजू वृद्धि जोडनेसे प्रथम युगलके समीपका व्यास ($\frac{१}{१}$+$\frac{१२}{७}$)=$\frac{१९}{७}$ राजू प्राप्त होता है । प्रथम युगलसे दूसरा युगल भी १$\frac{१}{२}$ राजू ऊँचा है अत ($\frac{१९}{७}$ + $\frac{१२}{७}$)=$\frac{३१}{७}$ राजू व्यास सानत्कुमार-माहेन्द्र स्वर्गके समीप है । यहाँसे ब्रह्मलोक $\frac{१}{२}$ राजू ऊँचा

१ ब. क सव्वे य । २. द क ज. ठ सत्तादिय, ब. सत्तादिविसेहि ।

$\frac{\equiv\ ३९}{३४३ । २}$ | $\frac{\equiv\ ७५}{३४३ । २}$ | $\frac{\equiv\ ३३}{३४३ । २}$ | $\frac{\equiv\ ३३}{३४३ । २}$ | $\frac{\equiv\ २९}{३४३ । २}$ | $\frac{\equiv\ २५}{३४३ । २}$ | $\frac{\equiv\ २१}{३४३ । २}$ |

$\frac{\equiv\ १७}{३४३ । २}$ | $\frac{\equiv\ २२}{३४३ । २}$ |

अर्थ —उनतालीस, पचहत्तर, तेतीस, तेतीस, उनतीस, पच्चीस, इक्कीस, सत्तरह और वाईस, इनमेसे प्रत्येकको घनराजूके अर्धभागसे गुणा करनेपर मेरु-तलसे ऊपर-ऊपर क्रमश घनफलका प्रमाण आता है ।।१९८-१९९।।

उदाहरण—'मुहभूमिजोगदले' इत्यादि नियमके अनुसार सौधर्मसे सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त क्षेत्रोका घनफल इसप्रकार है—

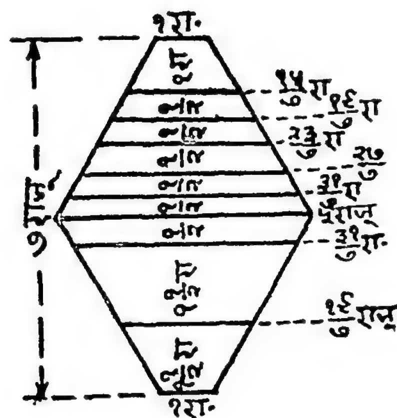
क्र	युगलो के नाम	भूमि +	मुख =	योग ×	अर्धभाग =	फल ×	ऊँचाई ×	मोटाई =	घनफल
१	सौधर्मैशान	$\frac{१९}{७}$ +	$\frac{७}{७}$ =	$\frac{२६}{७}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{२६}{१४}$ ×	$\frac{३}{२}$ ×	७ =	$\frac{३९}{२}$ या १९$\frac{१}{२}$ घ० रा०
२	सानत्कुमार-माहेन्द्र	$\frac{३१}{७}$ +	$\frac{१९}{७}$ =	$\frac{५०}{७}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{५०}{१४}$ ×	$\frac{३}{२}$ ×	७ =	$\frac{७५}{२}$ या ३७$\frac{१}{२}$,, ,,
३	ब्रह्मब्रह्मोत्तर	$\frac{३५}{७}$ +	$\frac{३१}{७}$ =	$\frac{६६}{७}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{६६}{१४}$ ×	$\frac{१}{२}$ ×	७ =	$\frac{३३}{२}$ या १६$\frac{१}{२}$,, ,,
४	लातव-का०	$\frac{३५}{७}$ +	$\frac{३१}{७}$ =	$\frac{६६}{७}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{६६}{१४}$ ×	$\frac{१}{२}$ ×	७ =	$\frac{३३}{२}$ या १६$\frac{१}{२}$,, ,,
५	शुक्र-महाशुक्र	$\frac{३१}{७}$ +	$\frac{२७}{७}$ =	$\frac{५८}{७}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{५८}{१४}$ ×	$\frac{१}{२}$ ×	७ =	$\frac{२९}{२}$ या १४$\frac{१}{२}$,, ,,
६	सतार-सह०	$\frac{२७}{७}$ +	$\frac{२३}{७}$ =	$\frac{५०}{७}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{५०}{१४}$ ×	$\frac{१}{२}$ ×	७ =	$\frac{२५}{२}$ या १२$\frac{१}{२}$,, ,,
७	आनत-प्रा०	$\frac{२३}{७}$ +	$\frac{१९}{७}$ =	$\frac{४२}{७}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{४२}{१४}$ ×	$\frac{१}{२}$ ×	७ =	$\frac{२१}{२}$ या १०$\frac{१}{२}$,, ,,
८	आरण-अच्युत	$\frac{१९}{७}$ +	$\frac{१५}{७}$ =	$\frac{३४}{७}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{३४}{१४}$ ×	$\frac{१}{२}$ ×	७ =	$\frac{१७}{२}$ या ८$\frac{१}{२}$,, ,,
९	उपरिम क्षेत्र	$\frac{१५}{७}$ +	$\frac{७}{७}$ =	$\frac{२२}{७}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{२२}{१४}$ ×	१ ×	७ =	$\frac{२२}{२}$ या ११ ,, ,,

घनफल योग $=\frac{३९}{२}+\frac{७५}{२}+\frac{३३}{२}+\frac{३३}{२}+\frac{२९}{२}+\frac{२५}{२}+\frac{२१}{२}+\frac{१७}{२}+\frac{२२}{२}=$ १४७ घनराजू सम्पूर्ण ऊर्ध्वलोकका घनफल प्राप्त हुआ ।

है। जबकि $\frac{7}{2}$ राजूकी ऊँचाईपर ४ राजूकी वृद्धि होती है, तब $\frac{1}{2}$ राजू पर ($\frac{4}{1}\times\frac{2}{7}\times\frac{1}{2}$) $=\frac{4}{7}$ की वृद्धि होगी। इसे $\frac{31}{7}$ मे जोड देनेपर ($\frac{31}{7}+\frac{4}{7}$) $=\frac{35}{7}$ राजू या ५ राजू व्यास तीसरे युगलके समीप प्राप्त होता है।

इसके आगे प्रत्येक युगल $\frac{1}{2}$ राजूकी ऊँचाई पर है, अत हानिका प्रमाण भी $\frac{4}{7}$ राजू ही होगा। $\frac{35}{7}-\frac{4}{7}=\frac{31}{7}$ राजू व्यास लान्तव-कापिष्टके समीप $\frac{31}{7}-\frac{4}{7}=\frac{27}{7}$ राजू व्यास शुक्र-महाशुक्रके समीप, $\frac{27}{7}-\frac{4}{7}=\frac{23}{7}$ राजू व्यास सतार-सहस्रारके समीप, $\frac{23}{7}-\frac{4}{7}=\frac{19}{7}$ राजू व्यास आनत-प्राणतके समीप और $\frac{19}{7}-\frac{4}{7}=\frac{15}{7}$ राजू व्यास आरण-अच्युत युगलके समीप प्राप्त होता है।

यहाँसे लोकके अन्त तककी ऊँचाई एक राजू है। जब $\frac{7}{2}$ राजूकी ऊँचाई पर ४ राजूकी हानि है, तब एक राजूकी ऊँचाईपर ($\frac{4}{1}\times\frac{2}{7}\times\frac{1}{1}$) $=\frac{8}{7}$ राजूकी हानि प्राप्त हुई। इसे $\frac{15}{7}$ राजूमेसे घटाने पर ($\frac{15}{7}-\frac{8}{7}$) $=\frac{7}{7}$ अर्थात् लोकके अन्तभागका व्यास एक राजू प्राप्त होता है। यथा—



ऊर्ध्वलोकके दशो क्षेत्रोके घनफलका प्रमाण

उणदालं पण्णत्तरि तेत्तीसं तेत्तियं च उणतीसं।
[1]पणवीसमेकवीसं [2]सत्तरसं तह य बावीसं ॥१९८॥

एदाणि य पत्तेक्कं घण-रज्जूए दलेण गुणिदाणि।
मेरु-तलादो उवरिं उवरिं जायंति विदफला ॥१९९॥

१ ब पणुवीस। २. द ज. ठ सत्तारस।

स्तम्भ-अन्तरित क्षेत्रोका घनफल

छप्पण-हरिदो[1] लोओ [2]ठाणेसु दोसु [3]ठविय गुणिदव्वो ।
एक्क-तिएहिं एदं थंभंतरिदाण[4] विदफलं ॥२०१॥

एदं विय[5],

विदफलं संमेलिय चउ-गुणिदं होदि तस्स कादूण ।
मज्झिम-खेत्ते मिलिदे तिय-गुणिदो सग-हिदो लोओ ॥२०२॥

| ≡/५६ १ | ≡/५६ ३ | ≡/७ ३ |[6]

अर्थ :—छप्पनसे विभाजित लोक दो जगह रखकर उसे क्रमश एक और तीनसे गुणा करनेपर स्तम्भ-अन्तरित दो क्षेत्रोका घनफल प्राप्त होता है ॥२०१॥

इस घनफल को मिलाकर और उसको चारसे गुणाकर उसमे मध्यक्षेत्र के घनफल को मिला देने पर पूर्ण ऊर्ध्वलोकका घनफल होता है । यह घनफल तीनसे गुणित और सातसे भाजित लोकके प्रमाण है ।

३४३÷५६×१=६१/८, ३४३—५६×३=१८३/८, ३४३×३—७=१४७ घनराजू घनफल ।

विशेषार्थ :—गाथा २०० से सम्बन्धित चित्रणमे स्तम्भोसे अन्तरित एक पार्श्वभागमे ऊपरकी ओर सर्वप्रथम प फ और म से वेष्टित त्रिकोण क्षेत्रका घनफल इसप्रकार है—

उपर्युक्त त्रिकोणमे फ म भुजा एक राजू है । इसमे प्रतिभुजा का अभाव है । इस क्षेत्रकी ऊँचाई ७/४ राजू है, अत (१×१/२×७/४×७/१)=४९/८ अर्थात् ६१/८ घनराजू प्रथम क्षेत्रका घनफल हुआ ।

उसी पार्श्वभागमे प म च छ जो विषम-चतुर्भुज है, उसकी छ च भुजा ७/२ और प म प्रतिभुजा ७/४ है । ७/२+७/४=२१/४ । २१/४ × १/२ × [illegible] × ७/१=१४७/८ अर्थात् १८३/८ घनराजू घनफल प्राप्त होता है । इन दोनो घनफलोको मिलाकर योगफलको ४ से गुणित कर देना चाहिए क्योकि ऊर्ध्वलोकके दोनो

---

१ क ब. हरिदलोउ । ज द ठ हरिदलोओ । २ द. ठ ज. वाणेसु । ३ द ब क ज. रविय । ४ क पदत्थ भत्तरिदाण । ५ द. ब. एदव्विय । ६ क ६ । १/८ । ≡/७ ३ । द ज ठ. ≡/७ ३ ।

स्तम्भोंकी ऊँचाई एवं उनकी आकृति

थंभुच्छेहा[१] पुव्वावरभाए बम्हकप्प-पणिधीसु ।
एक्क-दु-रज्जु-पवेसे हेट्ठोवरि [२]चउ-दु-गहिदे सेढी ॥२००॥

४ । ८ ।

अर्थ :—ब्रह्मस्वर्गके समीप पूर्व-पश्चिम भागमें एक और दो राजू प्रवेश करनेपर क्रमशः नीचे-ऊपर चार और दो से भाजित जगच्छ्रेणी प्रमाण स्तम्भोंकी ऊँचाई है ॥२००॥

स्तम्भोत्सेध :—१ राजूके प्रवेश में $\frac{7}{4}$ राजू, दो राजूके प्रवेशमें $\frac{7}{2}$ राजू ।

विशेषार्थ :—ऊर्ध्वलोकमें ब्रह्मस्वर्गके समीप पूर्व दिशाके लोकान्तभागसे पश्चिमकी ओर एक राजू आगे जाकर लम्बायमान (अ ब) रेखा खींचने पर उसकी ऊँचाई $\frac{7}{4}$ राजू होती है । इसी प्रकार नीचेकी ओर भी (अ स) रेखा की लम्बाई $\frac{7}{4}$ राजू प्रमाण है । इसी पूर्व दिशासे दो राजू आगे जाकर ऊपर-नीचे क ग और य ग रेखाओंकी ऊँचाई $\frac{7}{2}$ राजू प्राप्त होती है । यथा

[illegible]

[1]सहसार-उवरिमंते सग-हिद-रज्जू य खुल्ल-भुजरुंदं ।
पाणद-उवरिम-चरिमे छ रज्जूओ हवंति सत्त-हिदा ॥२०६॥

। ४९ १ । ४९ ६ ।[2]

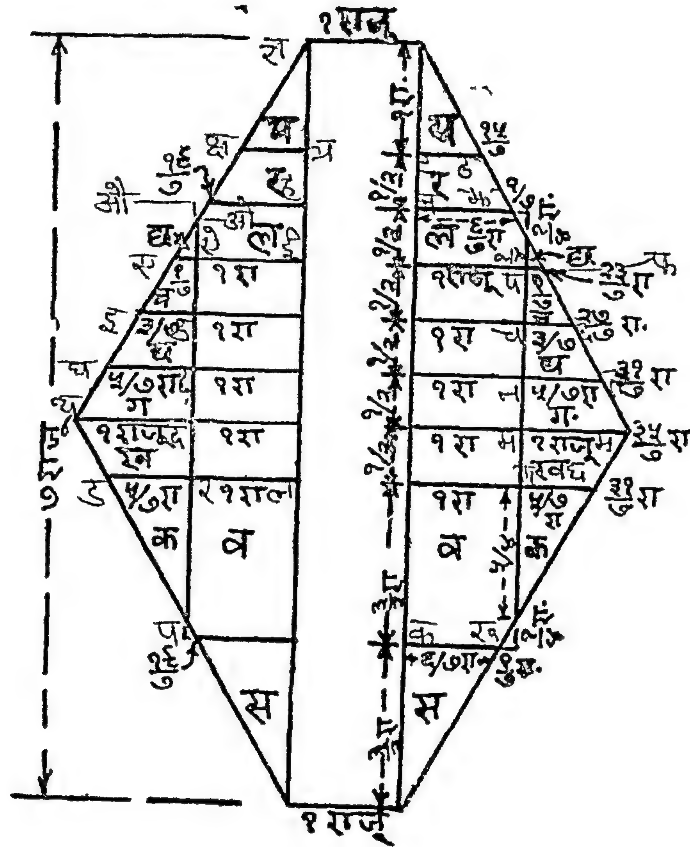
अर्थ :—सहस्रारके ऊपर अन्तमे सातसे भाजित एक राजू प्रमाण और प्राणतके ऊपर अन्तमे सातसे भाजित छह राजू प्रमाण छोटी-भुजाका विस्तार है ॥२०६॥ सह० $\frac{१}{७}$ राजू, प्रा० $\frac{६}{७}$ राजू ।

पणिधीसु आरणच्चुद-कप्पाणं चरिम-इंदय-धयाणं ।
खुल्लय-भुजस्स रुंदं चउ रज्जूओ हवंति सत्त-हिदा ॥२०७॥

४९ ४ ।

अर्थ :—आरण और अच्युत स्वर्गके पास अन्तिम इन्द्रक विमानके ध्वज-दण्डके समीप छोटी-भुजाका विस्तार सातसे भाजित चार राजू प्रमाण है ॥२०७॥ आरण-अच्युत $\frac{४}{७}$ राजू ।

विशेषार्थ :—गाथा २०३ से २०७ तक का विषय निम्नाकित चित्रके आधार पर समझा जा सकता है :—



---

१ ज ठ मदरस्स । २ द ४९ । ४९ १ ।

पार्श्वभागोमे इसप्रकारके चार त्रिभुज और चार ही चतुर्भुज है। इस गुणनफलमे त्रसनालीका (१ × ७ × ७) = ४९ घनराजू घनफल और मिला देनेपर सम्पूर्ण ऊर्ध्वलोकका घनफल प्राप्त हो जाता है। यथा—$\frac{४९}{८} + \frac{१४७}{८} = \frac{१९६}{८} \times ४ = ९८$ घनराजू आठ क्षेत्रोका घनफल + ४९ घनराजू त्रसनालीका घनफल = १४७ घनराजू सम्पूर्ण ऊर्ध्वलोकका घनफल प्राप्त होता है।

यह घनफल तीनसे गुणित और सातसे भाजित लोकप्रमाण मात्र है अर्थात् $\frac{३४३ \times ३}{७}$ = १४७ घनराजू प्रमाण है।

ऊर्ध्वलोकमे आठ क्षुद्र-भुजाओका विस्तार एव आकृति

सोहम्मीसाणोवरि छ्च्चेय [1]रज्जूउ सत्त-पविभत्ता।
खुल्लय-भुजस्स रुंदं इगिपासे होदि लोयस्स ॥२०३॥

४९ ६ ।

अर्थ :—सौधर्म और ईशान स्वर्गके ऊपर लोकके एक पार्श्वभागमे छोटी भुजाका विस्तार सातसे विभक्त छह ($\frac{६}{७}$) राजू प्रमाण है ॥२०३॥

माहिंद-उवरिमंते[2] रज्जूओपंच होंति सत्त-हिदा।
[3]उणवण्ण-हिदा सेढी सत्त-गुणा बम्ह-पणिधीए ॥२०४॥

। ४९ ५ । ४९ ७ ।

अर्थ '—माहेन्द्रस्वर्गके ऊपर अन्तमे सातसे भाजित पाँच' राजू और ब्रह्मस्वर्गके पास उनचाससे भाजित और सातसे गुणित जगच्छ्रेणी प्रमाण छोटी भुजाका विस्तार है ॥२०४॥

माहेन्द्र कल्प $\frac{५}{७}$ राजू, ब्रह्मकल्प ज० श्रे० = ७ अर्थात् $\frac{७ \times ७}{४९} = \frac{४९}{४९}$ = १ राजू ।

कापिट्ठ-उवरिमंते रज्जूओ पंच होंति सत्त-हिदा।
सुक्कस्स उवरिमते सत्त-हिदा ति-गुणिदो रज्जू ॥२०५॥

। ४९ ५ । ४९ ३ ।

अर्थ :—कापिष्ठ स्वर्गके ऊपर अन्तमे सातसे भाजित पाँच राजू, और शुक्रके ऊपर अन्तमे सातसे भाजित और तीनसे गुणित राजू प्रमाण छोटी-भुजाका विस्तार हे ॥२०५॥ का० $\frac{५}{७}$ रा०; शु० $\frac{३}{७}$ रा० ।

---

१ द छच्चेय रज्जूओ,। २ द ब क ज ठ. मेत्त। ३ द ज. उणवण्णहिदा रज्जू।

बम्हुत्तर-हेट्ठुवरिं रज्जु-घणा तिण्णि होंति पत्तेक्कं ।
लंतव-कप्पम्मि दुगं रज्जु-घणो[1] सुक्क-कप्पम्मि ॥२१०॥

$\frac{\equiv}{३४३}\,३ \mid \frac{\equiv}{३४३}\,३ \mid \frac{\equiv}{३४३}\,२ \mid \frac{\equiv}{३४३}\,१ \mid$

अर्थ :—ब्रह्मोत्तर स्वर्गके नीचे और ऊपर प्रत्येक बाह्य क्षेत्रका घनफल तीन घनराजू प्रमाण है। लातव स्वर्गतक दो घनराजू और शुक्र कल्प तक एक घनराजू प्रमाण घनफल है ॥२१०॥

विशेषार्थ :—ब्रह्मोत्तर स्वर्गके नीचे और ऊपर अर्थात् क्षेत्र थ ड र द और ध थ द ढ समान माप वाले है। इनकी भुजा $\frac{७}{७}$ राजू और प्रतिभुजा $\frac{५}{७}$ राजू प्रमाण है, अत ब्रह्मोत्तर कल्पके नीचे और ऊपर वाले प्रत्येक क्षेत्र हेतु $\frac{७}{७}+\frac{५}{७}=\frac{१२}{७}$, तथा घनफल $=\frac{१२}{७}\times\frac{१}{२}\times\frac{१}{२}\times ७=३$ घनराजू प्रमाण है।

लातव–कापिष्ट पर इ ध ढ उ से वेष्टित क्षेत्र हेतु $(\frac{५}{७}+\frac{३}{७})=\frac{८}{७}$, तथा घनफल $=\frac{८}{७}\times\frac{१}{२}\times\frac{१}{२}\times ७=२$ घनराजू प्रमाण है।

शुक्र कल्पतक ए इ उ ऐ से वेष्टित क्षेत्र हेतु $(\frac{३}{७}+\frac{१}{७})=\frac{४}{७}$, तथा घनफल $=\frac{४}{७}\times\frac{१}{२}\times\frac{१}{२}\times ७=१$ घनराजू प्रमाण है।

अट्ठाणउदि-विहत्तो लोओ सदरस्स उभय-विदफलं ।
तस्स य बाहिर-भागे रज्जु-घणो अट्ठमो अंसो ॥२११॥

$\frac{२ \equiv ७}{३४३ । २} \mid \frac{\equiv १}{३४३ । ८} \mid$

तम्मिस्स-सुद्ध-सेसे हवेदि अब्भंतरम्मि विदफलं ।
[3]सत्तावीसेहि [4]हदं रज्जू-घणमाणमट्ठ-हिदं ॥२१२॥

$\mid \frac{\equiv २७}{३४३ । ८} \mid$

---

१ द ब रज्जुघणा। २. द $\frac{\equiv}{४९}$, ब. $\frac{\equiv}{३४९}$। ३ द ज. ठ सत्तावसेहि। ४. ज. ठ दोद।

सौधर्मैशान स्वर्गके ऊपर लोकके एक पार्श्वभागमे क ख नामक छोटी भुजाका विस्तार $\frac{६}{७}$ राजू है। माहेन्द्र स्वर्गके ऊपर अन्तमे ग घ भुजाका विस्तार $\frac{५}{७}$ राजू, ब्रह्मस्वर्गके पास म भ भुजाका विस्तार एक राजू, कापिष्ट स्वर्गके पास न त भुजाका विस्तार $\frac{५}{७}$ राजू, शुक्रके ऊपर अन्तमे च छ भुजाका विस्तार $\frac{३}{७}$ राजू, सहस्रारके ऊपर अन्तमे प फ छोटी-भुजाका विस्तार $\frac{१}{७}$ राजू, प्राणतके ऊपर अन्तमे ज झ भुजाका विस्तार $\frac{६}{७}$ राजू और आरण-अच्युत स्वर्गके पास अन्तिम इन्द्रक विमानके ध्वजदण्डके समीप ट ठ छोटी-भुजाका विस्तार $\frac{४}{७}$ राजू प्रमाण है।

ऊर्ध्वलोकके ग्यारह त्रिभुज एव चतुर्भुज क्षेत्रोका घनफल

सोहम्मे दलजुत्ता घणरज्जूओ हवंति चत्तारि।
अद्धजुदाओ दि तेरस सणक्कुमारम्मि रज्जूओ ॥२०८॥
अट्ठंसेण जुदाओ घणरज्जूओ हवंति तिण्णि बहिं।
तं मिस्स सुद्ध-सेसं तेसीदी[1] अट्ठ-पविहत्ता[2] ॥२०९॥

अर्थ :—सौधर्मयुगल तक त्रिकोण क्षेत्रका घनफल अर्धघनराजूसे कम पाँच ($४\frac{१}{२}$) घनराजू प्रमाण है। सनत्कुमार युगल तक बाह्य और अभ्यन्तर दोनो क्षेत्रोका मिश्र घनफल साढे तेरह घनराजू प्रमाण है। इस मिश्र घनफलमेसे बाह्य त्रिकोण क्षेत्रका घनफल ($\frac{२५}{८}$) कम कर देनेपर शेष आठसे भाजित तेरासी घनराजू अभ्यन्तर क्षेत्रका घनफल होता है ॥२०८-२०९॥

संदृष्टि —$\frac{६}{७} \div २ \times \frac{३}{२} \times ७ = \frac{९}{२}$ घनराजू घनफल सौधर्मयुगल तक, $\frac{५}{७} - २ \times \frac{५}{४} \times ७ = \frac{२५}{८}$ घनराजू घनफल सनत्कुमार कल्प तक बाह्य क्षेत्रका, $[(\frac{१२}{७} + \frac{६}{७}) - २ \times \frac{३}{२} \times ७] = \frac{२७}{२}$ बाह्य और अभ्यन्तर क्षेत्रका मिश्र घनफल, $\frac{२७}{२} - \frac{२५}{८} = \frac{८३}{८}$ घनराजू अभ्यन्तर क्षेत्रका घनफल है।

विशेषार्थ —गाथा २०३–२०७ से सम्बन्धित चित्रणमे सौधर्मयुगल पर अ ब स से वेष्टित एक त्रिकोण है, जिसमे प्रतिभुजाका अभाव है। भुजा ब स का विस्तार $\frac{६}{७}$ राजू है, अत $\frac{६}{७} \times \frac{१}{२} \times \frac{३}{२} \times \frac{७}{१} = \frac{९}{२}$ घनराजू घनफल सौधर्मयुगल पर प्राप्त हुआ।

सनत्कुमार युगल पर्यन्त ड य ब स ल बाह्याभ्यन्तर क्षेत्र है। र ल रेखा $\frac{७}{७}$ और ड र रेखा $\frac{५}{७}$ है, अर्थात् ड ल रेखा $(\frac{७}{७} + \frac{५}{७}) = \frac{१२}{७}$ राजू हुई। प्रतिभुजा ब स का विस्तार $\frac{६}{७}$ राजू है, अत $\frac{१२}{७} + \frac{६}{७} = \frac{१८}{७}$ तथा $\frac{१८}{७} \times \frac{१}{२} \times \frac{३}{२} \times ७ = \frac{२७}{२}$ घनराजू बाह्याभ्यन्तर मिश्रित क्षेत्रका घनफल प्राप्त हुआ। इसमेसे ड य र बाह्य त्रिकोणका घनफल $\frac{५}{७} \times \frac{१}{२} \times \frac{५}{४} \times ७ = \frac{२५}{८}$ घनराजू घटा देनेपर र य ब स ल अभ्यन्तर क्षेत्रका घनफल $\frac{२७}{२} - \frac{२५}{८} = \frac{८३}{८}$ घनराजू प्राप्त होता है।

१ द ब. तेंसि इदि। २. ब पविहत्था।

बम्हुत्तर-हेट्ठुवरिं रज्जु-घणा तिण्णि होंति पत्तेक्कं ।
लंतव-कप्पम्मि दुगं रज्जु-घणो[1] सुक्क-कप्पम्मि ॥२१०॥

$\frac{\equiv}{३४३}\ ३ \mid \frac{\equiv}{३४३}\ ३ \mid \frac{\equiv}{३४३}\ २ \mid \frac{\equiv}{३४३}\ १ \mid$

अर्थ :—ब्रह्मोत्तर स्वर्गके नीचे और ऊपर प्रत्येक बाह्य क्षेत्रका घनफल तीन घनराजू प्रमाण है। लातव स्वर्गतक दो घनराजू और शुक्र कल्प तक एक घनराजू प्रमाण घनफल है ॥२१०॥

विशेषार्थ :—ब्रह्मोत्तर स्वर्गके नीचे और ऊपर अर्थात् क्षेत्र थ ड र द और ध थ द ढ समान माप वाले है । इनकी भुजा $\frac{७}{७}$ राजू और प्रतिभुजा $\frac{५}{७}$ राजू प्रमाण है, अत ब्रह्मोत्तर कल्पके नीचे और ऊपर वाले प्रत्येक क्षेत्र हेतु $\frac{७}{७}+\frac{५}{७}=\frac{१२}{७}$, तथा घनफल $=\frac{१२}{७}\times\frac{१}{२}\times\frac{१}{२}\times ७=३$ घनराजू प्रमाण है ।

लातव–कापिप्ट पर इ ध ढ उ से वेष्टित क्षेत्र हेतु $(\frac{५}{७}+\frac{३}{७})=\frac{८}{७}$, तथा घनफल $=\frac{८}{७}\times\frac{१}{२}\times\frac{१}{२}\times ७=२$ घनराजू प्रमाण है ।

शुक्र कल्पतक ए इ उ ऐ से वेष्टित क्षेत्र हेतु $(\frac{३}{७}+\frac{१}{७})=\frac{४}{७}$, तथा घनफल $=\frac{४}{७}\times\frac{१}{२}\times\frac{१}{२}\times ७=१$ घनराजू प्रमाण है ।

अट्ठाणउदि-विहत्तो लोओ सदरस्स उभय-विदफलं ।
तस्स य बाहिर-भागे रज्जु-घणो अट्ठमो अंसो ॥२११॥

$^{२}\frac{\equiv}{३४३\ ।\ २}\ ७ \mid \frac{\equiv}{३४३\ ।\ ८}\ १ \mid$

तम्मिस्स-सुद्ध-सेसे हवेदि अब्भंतरम्मि विदफलं ।
[3]सत्तावीसेहि [4]हदं रज्जू-घणमाणमट्ठ-हिदं ॥२१२॥

$\mid \frac{\equiv}{३४३\ ।\ ८}\ २७ \mid$

---

१. द ब रज्जुघणा । २ द $\frac{\equiv}{४९}$, ब. $\frac{\equiv}{३४९}$ । ३ द ज. ठ सत्तावसेहि । ४. ज. ठ दोद ।

अर्थ :—शतारस्वर्ग तक उभय अर्थात् अभ्यन्तर और बाह्यक्षेत्रका मिश्र घनफल अट्ठानवै से भाजित लोकके प्रमाण है। तथा इसके बाह्यक्षेत्रका घनफल घनराजूका अष्टमांश है ॥२११॥

अर्थ :—उपर्युक्त उभय क्षेत्रके घनफलमेसे बाह्यक्षेत्रके घनफलको घटा देनेपर जो शेष रहे उतना अभ्यन्तर क्षेत्रका घनफल होता है। वह सत्ताईससे गुणित और आठसे भाजित घनराजूके प्रमाण है ॥२१२॥

विशेषार्थ :—शतारस्वर्ग पर्यन्त औ ओ ए ई ह से वेष्टित बाह्याभ्यन्तर क्षेत्र है। ऐ ई रेखा ६/७ और ए ऐ रेखा १/७ राजू है अर्थात् ए ई रेखा (६/७ + १/७) = ७/७ है। प्रतिभुजा औ ह रेखा का विस्तार ७/७ राजू है, अत ७/७ + ७/७ = १४/७, तथा १४/७ × १/२ × १/२ × ७ = ७/२ घनराजू उभय क्षेत्रोका घनफल है, इसमेसे ओ ए ऐ बाह्य त्रिकोणका घनफल १/७ × १/२ × १/४ × ७ = १/८ घनराजू घटा देनेपर औ ओ ऐ ई ह अभ्यन्तर क्षेत्रका घनफल (७/२ — १/८) = २७/८ अर्थात् ३ ३/८ घनराजू प्राप्त होता है, जो २७ से गुणित और ८ से भाजित घनराजू प्रमाण (१ × २७ = २७, तथा २७ — ८ = ३ ३/८ घनराजू) है।

रज्जु-घरणा ठाण-दुगे अड्ढाइज्जेहिं दोहि गुणिदव्वा ।
सव्वं मेलिय दु-गुणिय तस्सि ठावेज्ज जुत्तेण ॥२१३॥

≡/३४३ । ५/२ | ≡/३४३ २ | ≡/३४३ ७० |[1]

अर्थ :—घनराजूको क्रमश ढाई और दो से गुणा करनेपर जो गुणनफल प्राप्त हो, उतना शेष दो स्थानोके घनफलका प्रमाण है। इन सब घनफलोको जोडकर उसे दुगुनाकर सयुक्तरूपसे रखना चाहिए ॥२१३॥

विशेषार्थ :—आनतकल्पके ऊपर क्ष औ ह त्र क्षेत्र हेतु (६/७ + ४/७) = १०/७, तथा घनफल = १०/७ × १/२ × १/२ × ७ = ५/२ घनराजू प्रमाण है।

आरणकल्पके उपरिम क्षेत्र अर्थात् ज्ञ क्ष त्र क्षेत्रका घनफल ४/७ × १/२ × १/१ × ७/१ = ४/२ = २ घनराजू प्रमाण है। इन सम्पूर्ण घनफलोका योग इसप्रकार है—

---

१. ज. ठ. ≡/३४३ | ५ | ≡/३४३ ३ | ≡/३४३ ७० | द. ≡/३४३ ५६ | ≡/३४३ ३ | ≡/३४३ ७० | क. ≡/३४३ ५/२ | ≡/३४३ १ | ≡/३४३ ७० |

$\frac{९}{२}+\frac{२५}{८}+\frac{८३}{८}+\frac{६}{२}+\frac{६}{२}+\frac{४}{२}+\frac{२}{२}+\frac{१}{८}+\frac{२७}{८}+\frac{५}{२}+\frac{४}{२}=$

$\frac{३६+२५+८३+२४+२४+१६+८+१+२७+२०+१६}{८}=\frac{२८०}{८}$ घनराजू

त्रिभुज और चतुर्भुज क्षेत्र ऊर्ध्वलोकके दोनो पार्श्व भागोमे है, अत $\frac{२८०}{८}$ घनराजूको दो से गुणित करनेपर ($\frac{२८०}{८}\times\frac{२}{१}$) दोनो पार्श्वभागोमे स्थित ग्यारह क्षेत्रोका घनफल ७० घनराजू प्रमाण प्राप्त होता है ।

आठ आयताकार क्षेत्रोका और त्रसनालीका घनफल

एत्तो दल-रज्जूणं घण-रज्जूओ हवंति अडवीसं ।
एक्कोणवण्ण-गुणिदा मज्झिम-खेत्तम्मि रज्जु-घणा ।।२१४।।

| ≡ ३४३ २८ | ≡ ३४३ ४९ |

अर्थ :—इसके अतिरिक्त दल (अर्ध) राजुओका घनफल अट्ठाईस घनराजू और मध्यम-क्षेत्र (त्रसनाली) का घनफल ४९ से गुणित एक घनराजू प्रमाण अर्थात् उनचास घनराजू प्रमाण है ।।२१४।।

विशेषार्थ :—ग्यारह क्षेत्रोके अतिरिक्त ऊर्ध्वलोकमे एक राजू चौडे और अर्धराजू ऊँचे विस्तार वाले आठ क्षेत्र है जिनका घनफल ($\frac{१}{१}\times\frac{१}{२}\times\frac{७}{१}\times\frac{८}{१}$) = २८ घनराजू प्राप्त होता है । इसीप्रकार ऊर्ध्वलोक स्थित त्रसनालीका घनफल (१ × ७ × ७) = ४९ घनराजू है ।

सम्पूर्ण ऊर्ध्वलोकका सम्मिलित घनफल

[1]पुव्व-वण्णिद-खिदीणं रज्जूए घणा सत्तरी होंति ।
एदे तिण्णि वि रासी सत्तत्तालुत्तर-सयं मेलिदा ।।२१५।।

| ≡ ३४३ ७० | ≡ ३४३ १४७ |[2]

अर्थ :—पूर्वमे वर्णित इन पृथ्वियोका घनफल सत्तर घनराजू प्रमाण होता है । इसप्रकार इन तीनो राशियोका योग एकसौ सेतालीस घनराजू है, जो सम्पूर्ण ऊर्ध्वलोकका घनफल समझना चाहिए ।।२१५।।

---

१ द ब. पुव्वणिद । २ द ≡ ३४३ ७८ | ≡ ३४३ १४७ |

विशेषार्थ :—ग्यारह क्षेत्रोका घनफल ७० घनराजू, मध्यवर्ती आठ क्षेत्रोका घनफल २८ घनराजू और त्रसनालीका घनफल ४९ घनराजू है। इन तीनोका योग (७०+२८+४९)=१४७ घनराजू होता है। यही सम्पूर्ण ऊर्ध्वलोकका घनफल है।

सम्पूर्ण लोकके आठ भेद एव उनके नाम

अट्ठ-विहं सव्व-जगं सामण्णं तह य दोण्णि[1] चउरस्सं।
जवमुरअं जवमज्झं मंदर-दूसाइ-गिरिगडयं ॥२१६॥

अर्थ—सम्पूर्ण लोक—१ सामान्य, दो चतुरस्र अर्थात् २ आयत-चौरस और ३ तिर्यगायत-चतुरस्र, ४ यवमुरज, ५ यवमध्य, ६ मन्दर, ७ दूष्य और ८ गिरिकटकके भेदसे आठ प्रकार का है ॥२१६॥

सामान्य लोकका घनफल एव उसकी आकृति

सामण्णं सेढि-घणं आयद-चउरस्स वेद-कोडि-भुजा।
सेढी सेढी-अद्धं दु-गुणिद-सेढी कमा होंति ॥२१७॥

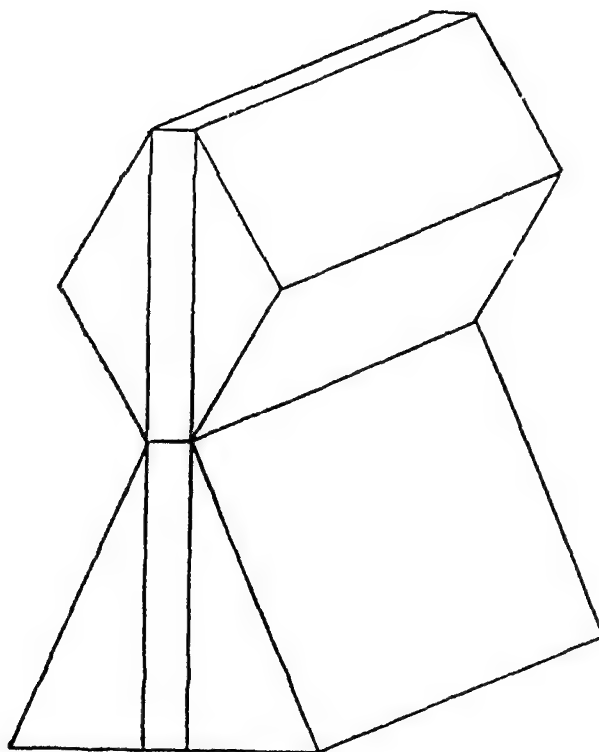
। ≡ । — । $\frac{-}{2}$ । $\frac{-}{2}$ ।

अर्थ :—सामान्यलोक जगच्छ्रेणीके घनप्रमाण है। आयत-चौरस अर्थात् इसकी चारो भुजाएँ समान प्रमाण वाली है। (तिर्यगायत चतुरस्र) क्षेत्रके, वेध, कोटि और भुजा ये तीनो क्रमश जगच्छ्रेणी (७ राजू), जगच्छ्रेणीके अर्धभाग (३½ राजू) और जगच्छ्रेणीसे दुगुने (१४ राजू) प्रमाण है ॥२१७॥

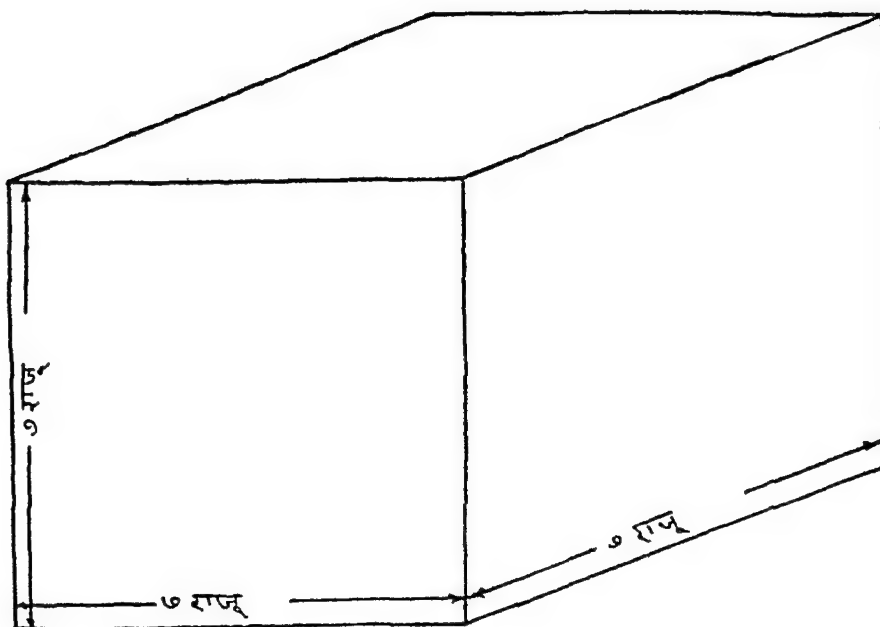
विशेषार्थ :—सामान्य लोक निम्नाकित चित्रणके अनुसार जगच्छ्रेणी अर्थात् ७ राजूके घन (३४३ घनराजू) प्रमाण है। यथा—

---

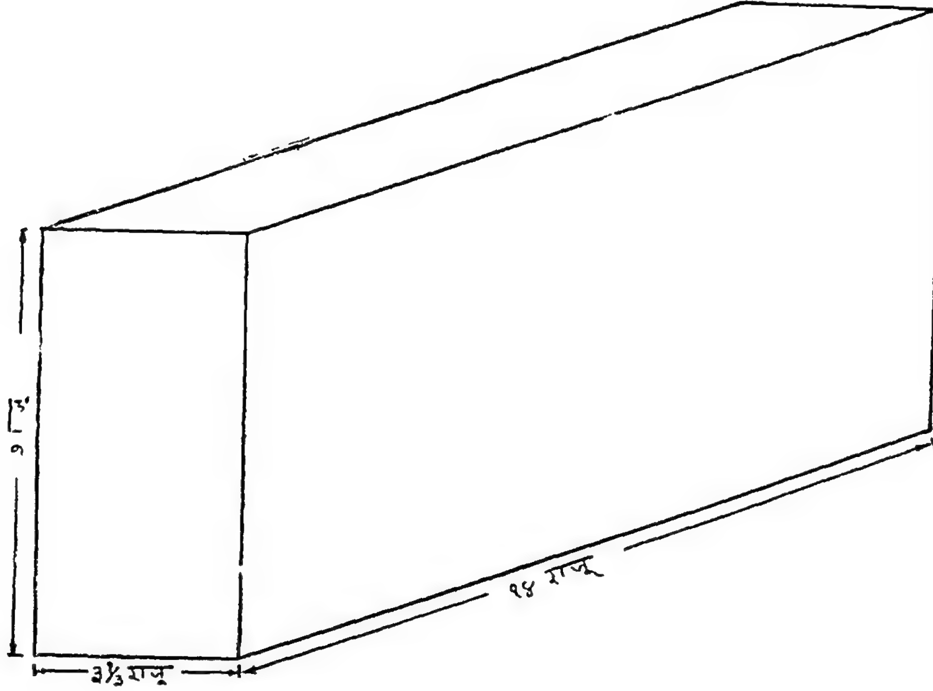
१ व तह दोण्णि।



२ आयत-चौरस क्षेत्र निम्नाकित चित्रणके सदृश अर्थात् समान लम्बाई, चौडाई, ऊँचाई एव मोटाई को लिए हुए है। यथा—



३ तिर्यगायत क्षेत्र का वेध सात राजू, कोटि ३½ राजू और भुजा चौदह-राजू प्रमाण है। यथा—



यवका प्रमाण, यवमुरजका घनफल एव उसकी आकृति

भुजकोडी वेदेसु पत्तेक्कं एक्कसेढि परिमाणं।
समचउरस्स खिदोए लोगा दोण्हं पि विंदफलं ॥२१८॥

। — । — । ≡ । ≡ ।

सत्तरि हिद-सेढि-घरणा एक्काए जवखिदीए विंदफलं।
तं पंचवीस पहदं जवमुरय महीए जवखेत्तं ॥२१९॥

| ≡ / ७० | ≡ / १४ ५ |

[1]पहदो णवेहि लोग्रो चोद्दस-भजिदो य मुरव-विंदफलं।
सेढिस्स घण-पमाणं उभयं पि [2]हवेदि जव-मुरवे ॥२२०॥

१. द. एद दो, क. ज. ठ. एहदो। २. द ज ठ यवेदि।

$\frac{\equiv}{१४}$ ९ | ≡ |

अर्थ :—समचतुरस्र क्षेत्रवाले लोकके भुजा, कोटि एवं वेध ये प्रत्येक एक-एक श्रेणि (—) प्रमाण वाले हैं जिससे (लोक का) घनफल घनश्रेणि (≡) अर्थात् ३४३ घनराजू प्रमाण होता है। इसे दो स्थानों में स्थापित करना चाहिए ॥२१८॥

(उसके पश्चात् प्रथम जगह स्थापित) श्रेणिके घन (≡) को ७० से भाजित करने पर एक जवक्षेत्रका घनफल प्राप्त होता है और दूसरी जगह स्थापित लोक [श्रेणिघन (≡)] को ७० से भाजितकर लब्धराशिको २५ से गुणित करने पर यवमुरज क्षेत्रमें यवक्षेत्रका घनफल $\frac{\equiv}{७०}$ २५ अथवा $\frac{\equiv}{१४}$ ५ प्राप्त होता है ॥२१९॥

नौसे गुणित लोकमें चौदहका भाग देनेपर मुरजक्षेत्रका घनफल आता है। इन दोनोंके घनफलको जोड़नेसे जगच्छ्रेणीके घनरूप सम्पूर्ण यवमुरज क्षेत्रका घनफल होता है ॥२२०।

विशेषार्थ :—लोक अर्थात् ३४३ घनराजूको यवमुरजकी आकृतिमें लानेके लिए लोककी लम्बाई (ऊँचाई) १४ राजू, भूमि ६ राजू, मध्यम व्यास ३½ राजू और मुख एक राजू मानना होगा, क्योंकि यहां लोककी आकृतिसे प्रयोजन नहीं है, उसके घनफलसे प्रयोजन है। यथा—

यवमुरजाकृति—

उपर्युक्त आकृतिमे एक मुरज और दोनों पार्श्व भागोमे ५० अर्धयव अर्थात् २५ यव प्राप्त होते है। प्रत्येक अर्धयव $\frac{१}{२}$ राजू चौडा, $\frac{७}{२}$ राजू ऊँचा और ७ राजू मोटा है। मुरज १४ राजू ऊँची, ऊपर-नीचे एक-एक राजू चौडी एव मध्यमे ३$\frac{१}{२}$ राजू चौडी है। इसकी मोटाई भी ७ राजू है।

अर्धयवका घनफल $\frac{१}{२} \times \frac{१}{२} \times \frac{७}{२} \times \frac{७}{१} = \frac{४९}{८}$ घनराजू है, अत पूर्ण यवका घनफल $\frac{४९}{८} \times \frac{२}{१} = \frac{४९}{४}$ अर्थात् $\frac{३४३}{२८}$ घनराजू प्राप्त होता है। इन पूर्ण यवोकी सख्या २५ है इसलिए गाथामे ७० से भाजित लोकको २५ से गुणित करने हेतु कहा गया है।

मुरजकी चौडाई मध्यमे ३$\frac{१}{२}$ राजू और अन्तमे एक राजू है। ३$\frac{१}{२}$ + १ = $\frac{९}{२}$ राजू हुआ। इसका आधा करने पर $\frac{९}{२} \times \frac{१}{२} = \frac{९}{४}$ राजू मुरजका सामान्य व्यास प्राप्त होता है। इसे मुरजकी १४ राजू ऊँचाई और ७ राजू मोटाईसे गुणित करनेपर $\frac{९}{४} \times \frac{१४}{१} \times \frac{७}{१} = \frac{४९ \times ९}{२}$ प्राप्त हुआ। अश और हरको ७ से गुणित करनेपर $\frac{३४३ \times ९}{१४}$ घनराजू प्राप्त होता है इसलिए गाथामे नौमे गुणित लोकमे १४ का भाग देनेको कहा गया है।

यवमुरजका सम्मिलित घनफल इसप्रकार है—

जबकि अर्धयवका घनफल $(\frac{१}{२} \times \frac{१}{२} \times \frac{७}{२} \times \frac{७}{१}) = \frac{४९}{८}$ घनराजू है तव दोनो पार्श्वभागोके ५० अर्धयवोका कितना घनफल होगा? इसप्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{४९}{८} \times \frac{५०}{१} = \frac{२४५}{२}$ अर्थात् १२२$\frac{१}{२}$ घनराजू प्राप्त हुए।

इसीप्रकार अर्धमुरज हेतु ($\frac{७}{२}$ भूमि + $\frac{१}{१}$ मुख) = $\frac{९}{२}$, तथा घनफल = $\frac{९}{२} \times \frac{१}{२} \times \frac{७}{१} \times \frac{७}{१} = \frac{४४१}{४}$ घनराजू है। जबकि अर्धमुरजका घनफल $\frac{४४१}{४}$ घनराजू है तब सम्पूर्ण (एक) मुरजका कितना होगा? $\frac{४४१}{४} \times \frac{२}{१} = \frac{४४१}{२}$ अर्थात् २२०$\frac{१}{२}$ घनराजू होता है। इन दोनोका योग कर देनेसे (१२२$\frac{१}{२}$ + २२०$\frac{१}{२}$) = ३४३ घनराजू सम्पूर्ण यवमुरजका घनफल प्राप्त होता है।

यव मध्यक्षेत्रका घनफल एव उसकी आकृति

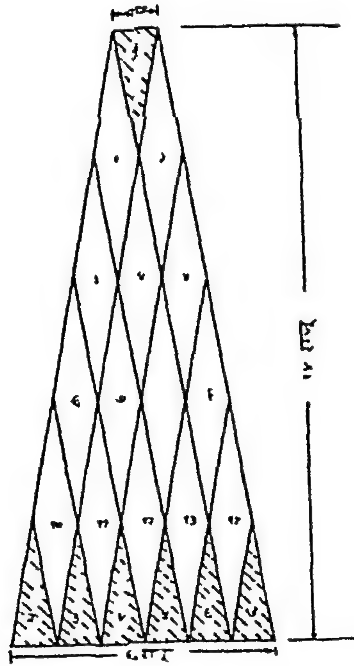
घण-फलमेक्कम्मि जवे [1]पंचत्तीसद्ध-भाजिदो लोओ।
तं पणतीसद्ध[2]-हदं सेढि-घणं होदि जव-खेत्ते ॥२२१॥

| ≡ / ३५ २ | ≡ |

१ द ब पचतीसदुभाजिदो। २ द. ब तप्पणतीस दुहद।

अर्थ :—यवमध्य क्षेत्रमे एक यवका घनफल पैंतीसके आधे साढे-सत्तरहमे भाजित लोक-प्रमाण है। इसको पैंतीसके आधे साढे सत्तरहसे गुणा करनेपर जगच्छ्रेणीके घन-प्रमाण सम्पूर्ण यवमध्य क्षेत्रका घनफल निकलता है ।।२२१।।

विशेषार्थ —यवमध्यक्षेत्रकी आकृति निम्न प्रकार है। इसकी रचना भी लोक अर्थात् ३४३ घनराजूके प्रमाणको दृष्टिमे रखकर की जा रही है। यथा—

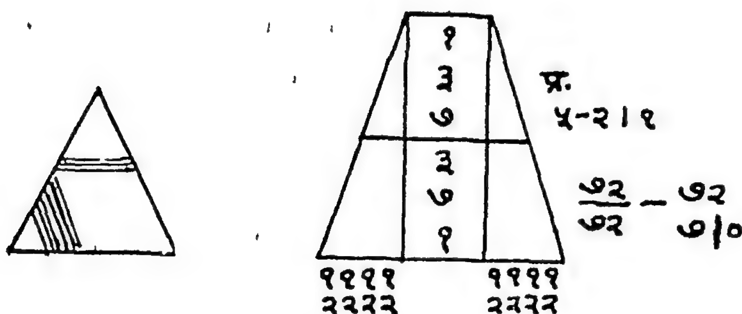


इस आकृतिकी ऊँचाई १४ राजू, भूमि ६ राजू और मुख एक राजू है। इसमे एक राजू चौडे, $\frac{१४}{५}$ राजू ऊँचे और ७ राजू मोटाई वाले ३५ अर्धयव वनते है, अर्थात् १७ यव पूर्ण और एक यव आधा वनता है इसीलिए गाथामे लोक (३४३ घनराजू) को १७½ से भाजितकर एक यवका क्षेत्रफल १९$\frac{३}{५}$ घनराजू निकाला गया है और इसे पुन १७½ से गुणित करके सम्पूर्ण लोकका घनफल ३४३ घनराजू निकाला गया है।

एक अर्धयवका घनफल $\frac{१}{२} \times \frac{१}{१} \times \frac{१४}{५} \times \frac{७}{१} = \frac{४९}{५}$ अर्थात् ९$\frac{४}{५}$ घनराजू है। पूर्ण यवका घनफल $\frac{४९}{५} \times \frac{२}{१} = \frac{९८}{५}$ अर्थात् १९$\frac{३}{५}$ घनराजू है। जव एक अर्धयवका घनफल $\frac{४९}{५}$ घनराजू है तव ३५ अर्धयवोका घनफल कितना होगा ? ऐमा त्रैराशिक करनेपर $\frac{४९}{५} \times \frac{३५}{१} = ३४३$ घनराजू होगा।

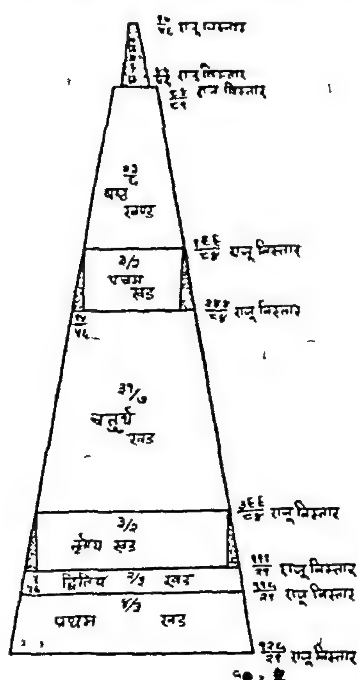
लोकमे मन्दर मेरुकी ऊँचाई एव उसकी आकृति

[1]चउ-दु-ति-इगितीसेहिं तिय-तेवीसेहि गुणिद-रज्जूओ ।
तिय-तिय-दु-छ-दु-छ भजिदा मंदर-खेत्तस्स उस्सेहो ॥२२२॥



अर्थ :—चार, दो, तीन, इकतीस, तीन और तेईससे गुणित, तथा क्रमश तीन, तीन, दो, छह, दो और छहसे भाजित राजू प्रमाण मन्दरक्षेत्रकी ऊँचाई है ॥२२२॥

विशेषार्थ :—३४३ घनराजू मापवाले लोकको भूमि ६ राजू, मुख एक राजू और ऊँचाई १४ राजू मानकर मन्दराकार अर्थात् लोकमे सुदर्शन मेरुकी रचना इसप्रकारसे की गई है —



१. द व चदुतिइगितीसहिं ।

इस आकृतिमे $\frac{४}{३}$ राजू पृथिवीमे सुदर्शन मेरुकी नीव (जड) अर्थात् १००० योजनका, $\frac{२}{३}$ राजू भद्रशालवनसे नन्दनवन तककी ऊँचाई अर्थात् ५०० योजनका, $\frac{३}{२}$ राजू नन्दनवनसे ऊपर समरुन्द्र भाग (समान विस्तार) तकका अर्थात् ११००० योजनका, $\frac{३१}{६}$ सौमनस वनके प्रमाण अर्थात् ५१५०० योजनका, उसके ऊपर $\frac{३}{२}$ राजू समविस्तार अर्थात् ११००० योजनका और उसके बाद $\frac{२३}{६}$ राजू समविस्तारके अन्तसे पाण्डुकवन अर्थात् २५००० योजनका प्रतीक है ।

अन्तरवर्ती चार त्रिकोणोसे चूलिकाकी सिद्धि एव उसका प्रमाण

पण्णरस-हदा रज्जू छप्पण्ण-हिदा [1]तडाण वित्थारो ।
पत्तेक्कं [2]तक्करणे खंडिद-खेत्तेण चूलिया सिद्धा ।।२२३।।

३६२ १५[3]

पणदाल-हदा रज्जू छप्पण्ण-हिदा हवेदि भू-वासो ।
उदओ दिवड्ढ-रज्जू भूमि-ति-भागेण मुह-वासो ।।२२४।।

अर्थ :—पन्द्रहसे गुणित और छप्पनसे भाजित राजू प्रमाण चूलिकाके प्रत्येक तटोका विस्तार है। उस प्रत्येक अन्तरवर्ती करणाकार अर्थात् त्रिकोण खण्डितक्षेत्रसे चूलिका सिद्ध होती है ।।२२३।।

चूलिकाकी भूमिका विस्तार पैतालीससे गुणित और छप्पनसे भाजित एक राजू प्रमाण ($\frac{४५}{५६}$ राजू) है। उसी चूलिकाकी ऊँचाई डेढ राजू ($१\frac{१}{२}$) और मुख-विस्तार भूमिके विस्तारका तीसरा भाग अर्थात् तृतीयाश ($\frac{१५}{५६}$) है ।।२२४।।

विशेषार्थ :—मन्दराकृतिमे नन्दन और सौमनसवनोके ऊपरी भागको समतल करनेके लिए दोनो पार्श्वभागोमे जो चार त्रिकोण काटे गये है, उनमे प्रत्येककी चौडाई $\frac{१५}{५६}$ राजू और ऊँचाई $१\frac{१}{२}$ राजू है। इन चारों त्रिकोणोमेसे तीन त्रिकोणोको सीधा और एक त्रिकोणको पलटकर उलटा रखनेसे चूलिकाकी भूमिका विस्तार $\frac{४५}{५६}$ राजू, मुख विस्तार $\frac{१५}{५६}$ राजू और ऊँचाई $१\frac{१}{२}$ राजू प्रमाण प्राप्त होती है ।

---

१ द. ज क ठ तदाण । २ ज ठ तक्कारण । ३. द. ज ३६२ ४५ । क २५ ।

हानि-वृद्धि (चय) एव विस्तारका प्रमाण

भूमीअ मुहं[1] सोहिय उदय-हिदे भूमुहादु हाणि-चया ।
[2]छक्केक्कक्कु-मुह-रज्जू उस्सेहा दुगुण-सेढीए ॥२२५॥

। ७६ । ७१ । -२ ।

तक्खय-वड्ढि-विमाणं चोद्दस-भजिदाइ पंच-रूवाणि ।
णिय-णिय-उदए पहदं आणेज्जं[3] तस्स तस्स खिदि-वासं ॥२२६॥

$\left|\frac{५}{१४}\right|$

अर्थ :—भूमिमेसे मुखको घटाकर शेषमे ऊँचाईका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना भूमिकी अपेक्षा हानि और मुखकी अपेक्षा वृद्धिका प्रमाण होता है। यहाँ भूमिका प्रमाण छह राजू, मुखका प्रमाण एक राजू, और ऊँचाईका प्रमाण दुगुणित श्रेणी अर्थात् चौदह राजू है ॥२२५॥

अर्थ :—हानि और वृद्धिका वह प्रमाण चौदहसे भाजित पाँच, अर्थात् एक राजूके चौदह भागोमेसे पाँच भागमात्र है। इस क्षय-वृद्धिके प्रमाणको अपनी-अपनी ऊँचाईसे गुणा करके विवक्षित पृथिवी (क्षेत्र) के विस्तारको ले आना चाहिए ॥२२६॥

विशेषार्थ :—इस मन्दराकृति लोककी भूमि ६ राजू और मुख विस्तार एक राजू है। यह मध्यमे किस अनुपातसे घटा है उसका चय निकालनेके लिए भूमिमेसे मुखको घटाकर शेष (६ — १)=५ राजूमे १४ राजू ऊँचाईका भाग देनेपर हानि-वृद्धिका $\frac{५}{१४}$ चय प्राप्त होता है। इस चयका अपनी ऊँचाईमे गुणा करदेनेसे हानिका प्रमाण प्राप्त होता है। उस हानि प्रमाणको पूर्व विस्तारमेसे घटा देनेपर ऊपरका विस्तार प्राप्त हो जाता है।

मेरु सदृश लोकके सात स्थानोका विस्तार प्राप्त करने हेतु गुणकार एव भागहार

मेरु-सरिच्छम्मि जगे सत्त-ट्ठाणेसु ठविय उड्ढुड्ढं ।
रज्जूओ रुंदट्ठे [4]वोच्छं गुणयार-हाराणि ॥२२७॥

---

१ द ज ठ मुहवासो, ब क मुहसोही। २ द कुमह। ३. द ब ज ठ अणेज्जघत्तस्स, क अणेज्जय तस्स तस्स। ४. द ज ठ. रुदे वोच्छ, ब क रुदे दो वोच्छ।

छव्वीसब्भहिय-सयं सोलस-एक्कारसादिरित्त-सया ।
[1]इगिवीसेहि विहत्ता तिसु ट्ठाणेसु हवंति हेट्ठादो ।।२२८।।

$\frac{१२६}{१४७}$ । $\frac{११६}{१४७}$ । $\frac{१११}{१४७}$ ।

एक्कोरण-चउसयाइं दु-सया-चउदाल-दुसयमेक्कोणं ।
चउसीदी चउठाणे होदि हु चउसीदि-पविहत्ता ।।२२९।।

। $\frac{३९९}{५८८}$ । $\frac{२४४}{५८८}$ । $\frac{१९९}{५८८}$ । $\frac{८४}{५८८}$ ।

अर्थ :—मेरुके सदृश लोकमे, ऊपर-ऊपर सात स्थानोमे राजूको रखकर विस्तारको लानेके लिए गुणकार और भागहारोको कहता हू ।।२२७।।

अर्थ :—नीचेसे तीन स्थानोमे इक्कीससे विभक्त एकसौ छब्बीस, एकसौ सोलह और एकसौ ग्यारह गुणकार है ।।२२८।।

$\frac{७ \times १२६}{१४७} = \frac{१२६}{२१}$, $\frac{७ \times ११६}{१४७} = \frac{११६}{२१}$, $\frac{७ \times १११}{१४७} = \frac{१११}{२१}$ ।

अर्थ :—इसके आगे चार स्थानोमे क्रमश. चौरासीसे विभक्त एक कम चारसौ (३९९), दो सौ चवालीस, एक कम दो सौ (१९९) और चौरासी, ये चार गुणकार है ।।२२९।।

$\frac{७ \times ३९९}{५८८} = \frac{३९९}{८४}$, $\frac{७ \times २४४}{५८८} = \frac{२४४}{८४}$, $\frac{७ \times १९९}{५८८} = \frac{१९९}{८४}$, $\frac{७ \times ८४}{५८८} = \frac{८४}{८४}$ ।

विशेषार्थ :—मेरु सदृश लोकका विस्तार तलभागमे ६ राजू है। इससे $\frac{४}{३}$ राजू ऊपर जाकर लोकमेरुका विस्तार इसप्रकार प्राप्त होता है। यथा—एक राजू ऊपर जानेपर $\frac{५}{१४}$ राजूकी हानि होती है अत. $\frac{४}{३}$ राजूकी ऊँचाई पर $(\frac{५}{१४} \times \frac{४}{३}) = \frac{१०}{२१}$ राजूकी हानि हुई। इसे ६ राजू विस्तारमे से घटा देने पर $(\frac{६}{१} — \frac{१०}{२१}) = \frac{११६}{२१}$ राजू भद्रशालवनपर लोकमेरुका विस्तार है क्योकि एक राजू पर $\frac{५}{१४}$ राजूकी हानि होती है अत. $\frac{२}{३}$ राजूकी ऊँचाई पर $(\frac{५}{१४} \times \frac{२}{३}) = \frac{५}{२१}$ राजूकी हानि हुई। इसे पूर्ण विस्तार $\frac{११६}{२१}$ मे से घटा देनेपर $(\frac{११६}{२१} — \frac{५}{२१}) = \frac{१११}{२१}$ राजू विस्तार नन्दनवनपर लोकमेरुका है। क्योकि एक राजू पर $\frac{५}{१४}$ राजूकी हानि होती है अत $\frac{३}{२}$ राजू पर $(\frac{५}{१४} — \frac{३}{२}) = \frac{१५}{२८}$ राजूकी हानि प्राप्त हुई। इसे पूर्व विस्तार $\frac{१११}{२१}$ मेसे घटाने पर $(\frac{१११}{२१} — \frac{१५}{२८}) = \frac{३९९}{८४}$ राजू समविस्तारके

१ ब. क इगवीसे वि । द. इगवीसे वि तहत्था तिसु ठाणेसु ठविय हवति । ज ठ तिहत्ता ।

ऊपरका विस्तार प्राप्त होता है। क्योकि एक राजूकी ऊँचाईपर ५/१४ राजूकी हानि होती है अत ३१/६ राजूपर (३१/६ × ५/१४) = १५५/८४ राजूकी हानि हुई।

इसे पूर्व विस्तार ३९९/८४ मेसे घटादेने पर (३९९/८४ — १५५/८४) = २४४/८४ राजू सौमनस वनपर लोकमेरुका विस्तार होता है। क्योकि एक राजूपर ५/१४ राजूकी हानि होती है अत ३/२ राजूपर (३/२ × ५/१४) = १५/२८ राजूकी हानि हुई। इसे पूर्वोक्त विस्तार २४४/८४ मेसे घटानेपर (२४४/८४ — १५/२८) = १९९/८४ राजू सौमनस वनके समरुन्द्रभागके ऊपरका विस्तार है। क्योकि एक राजूपर ५/१४ राजूकी हानि होती है अत २३/६ राजूपर (२३/६ × ५/१४) = ११५/८४ राजूकी हानि हुई। इसे पूर्वोक्त विस्तार १९९/८४ मेसे घटा देनेपर (१९९/८४ — ११५/८४) = ८४/८४ अर्थात् पाण्डुकवन पर लोकमेरुका विस्तार एक राजू प्राप्त होता है।

घनफल प्राप्त करने हेतु गुणकार एव भागहार

मंदर-सरिसम्मि जगे सत्तसु ठाणेसु ठविय रज्जु-घणं।
हेट्ठादु घणफलं स य वोच्छं गुणगार-हाराणि ॥२३०॥

चउसीदि-चउसयाणं सत्तावीसाधिया य दोण्णि सया।
एक्कोण-चउ-सयाइं वीस-सहस्सा विहीण-सगसट्ठी ॥२३१॥

एक्कोणा दोण्णि-सया पण-सट्ठि-सयाइ णव-जुदाणि पि।
पंचत्तालं एदे गुणगारा सत्त-ठाणेसु ॥२३२॥

अर्थ :—मन्दरके सदृश लोकमे घनफल लानेके लिए नीचेसे सात स्थानोमे घनराजूको रखकर गुणकार और भागहार कहते है ॥२३०॥

अर्थ :—चारसौ चौरासी, दो सौ सत्ताईस, एक कम चारसौ अर्थात् तीनसौ निन्यानवै, सडसठ कम बीस हजार, एक कम दोसौ, नौ अधिक पैसठसौ और पैतालीस, ये क्रमसे सात स्थानोमे सात गुणकार है ॥२३१-२३२॥

विशेषार्थ :—लोकमेरुके सात खण्ड किये गये है। इन सातो-खण्डोका भिन्न-भिन्न घनफल प्राप्त करनेके लिए "मुख-भूमि जोगदले पदहदे" सूत्रानुसार प्रक्रिया करनी चाहिए। यथा—लोकमेरु अर्थात् प्रथम खण्डकी जडकी भूमि १२१/२१ + १२१/२१ मुख = २४२/२१, तथा घनफल = २४२/२१ × १/२ × ४/३ × ७/१ = ४८४/९ घनराजू है। [यहाँ भूमि और मुखके योगको आधा करके ४/३ राजू ऊँचाई और ७ राजू मोटाईसे गुणित किया गया है। यही नियम सर्वत्र जानना चाहिए]

भद्रशालवनसे नन्दनवन अर्थात् द्वितीय खण्डकी भूमि $\frac{११६}{२१}$ + $\frac{१११}{२१}$ मुख = $\frac{२२७}{२१}$, तथा घनफल = $\frac{२२७}{२१} \times \frac{१}{२} \times \frac{२}{३} \times \frac{७}{१} = \frac{२२७}{९}$ घनराजू प्राप्त होता है।

नन्दनवनसे समविस्तार क्षेत्र तक अर्थात् तृतीय खण्डकी भूमि $\frac{३९९}{८४}$ + $\frac{३९९}{८४}$ मुख, $\frac{७९८}{८४}$ तथा घनफल = $\frac{७९८}{८४} \times \frac{१}{२} \times \frac{३}{२} \times \frac{७}{१} = \frac{३९९}{८}$ घनराजू तृतीय खण्डका घनफल है।

समविस्तारसे सौमनसवन अर्थात् चतुर्थखण्डकी भूमि $\frac{३९९}{८४}$ + $\frac{२४४}{८४}$ मुख = $\frac{६४३}{८४}$, तथा घनफल = $\frac{६४३}{८४} \times \frac{१}{२} \times \frac{३१}{६} \times \frac{७}{१} = \frac{१९९३३}{१४४}$ घनराजू चतुर्थ खण्डका घनफल है।

सौमनसवनके ऊपर समविस्तार क्षेत्रतक अर्थात् पचमखण्डकी भूमि $\frac{१९९}{८४}$ + $\frac{१९९}{८४} = \frac{३९८}{८४}$, तथा घनफल = $\frac{३९८}{८४} \times \frac{१}{२} \times \frac{३}{२} \times \frac{७}{१} = \frac{१९९}{८}$ घनराजू है।

समविस्तार क्षेत्रसे ऊपर पाण्डुकवन तक अर्थात् षष्ठ खण्डकी भूमि $\frac{१९९}{८४}$ + $\frac{८४}{८४}$ मुख = $\frac{२८३}{८४}$ तथा घनफल = $\frac{२८३}{८४} \times \frac{१}{२} \times \frac{२३}{६} \times \frac{७}{१} = \frac{६५०९}{१४४}$ घनराजू प्राप्त होता है।

पाण्डुकवनके ऊपर चूलिका अर्थात् सप्तम खण्डकी भूमि $\frac{४५}{५६}$ + $\frac{१५}{५६}$ मुख = $\frac{६०}{५६}$, तथा घनफल = $\frac{६०}{५६} \times \frac{१}{२} \times \frac{३}{२} \times \frac{७}{१} = \frac{४५}{८}$ घनराजू चूलिका का घनफल है।

सप्त स्थानोके भागहार एव मन्दरमेरु लोकका घनफल

णव णव [1]अट्ठ य बारस-वग्गो अट्ठं सयं च चउदालं।
अट्ठं एदे कमसो हारा सत्तेसु ठाणेसु ॥२३३॥

$\frac{\equiv}{३४३}$ । $\frac{४८४}{९}$	$\frac{\equiv}{३४३}$ । $\frac{२२७}{९}$	$\frac{\equiv}{३४३}$ । $\frac{३९९}{८}$	$\frac{\equiv}{३४३}$ । $\frac{१९९३३}{१४४}$	$\frac{\equiv}{३४३}$ । $\frac{१९९}{८}$	$\frac{\equiv}{३४३}$ । $\frac{६५०९}{१४४}$	$\frac{\equiv}{३४३}$ । $\frac{४५}{८}$

अर्थ :—नौ, नौ, आठ, बारह का वर्ग, आठ, एक सौ चवालीस और आठ, ये क्रमशः सात स्थानोमे सात—भागहार है ॥२३३॥

विशेषार्थ :—इन सातो खण्डोके घनफलोका योग इसप्रकार है :—

---

१. द. व अद्ध वारसवग्गे णवणव अट्ठय। ज. क. ठ. अट्ठ वारसवग्गे णवणव अट्ठय।

$$\frac{४८४}{९}+\frac{२२७}{९}+\frac{३९९}{८}+\frac{१९९३३}{१४४}+\frac{१९९}{८}+\frac{६५०९}{१४४}+\frac{४५}{८}=$$

$$\frac{७७४४+३६३२+७१८२+१९९३३+३५८२+६५०९+८१०}{१४४}=\frac{४९३९२}{१४४}$$

अर्थात् लोकमन्दरमेरुका सम्पूर्ण घनफल ३४३ घनराजू प्राप्त होता है।

दूष्यलोकका घनफल और उसकी आकृति

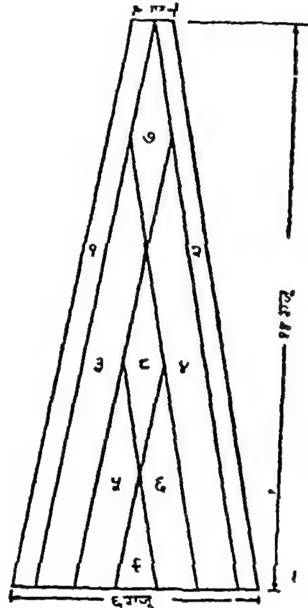
[२]सत्त-हिद-दु-गुण-लोगो विंदफलं बाहिरुभय-बाहूणं।

$$\left|\frac{\equiv}{७}\ २\right|\frac{\equiv}{५}\ २\left|\right.$$

पण-भजि-दु-गुणं लोगो दूसस्सब्भंतरोभय-भुजाणं ॥२३४॥

अर्थ :—दूष्यक्षेत्रकी बाहरी दोनो भुजाओंका घनफल सातसे भाजित और दोसे गुणित लोकप्रमाण होता है। तथा भीतरी दोनो भुजाओंका घनफल पाँचसे भाजित और दोसे गुणित लोकप्रमाण है ॥२३४॥

विशेषार्थ :—दूष्य नाम डेरेका है। ३४३ घनराजू प्रमाण वाले लोककी रचना दूष्याकार करनेपर इसकी आकृति इसप्रकार से होगी :—



२ ज ठ. सत्त हिद दुगु लोगो। द. सत्त हिद दुगु लोगो।

इस लोक दूष्याकारकी भूमि ६ राजू, मुख एक राजू, ऊँचाई १४ राजू और वेध ७ राजू है। इस दूष्य क्षेत्रकी दोनो बाहरी भुजाओ अर्थात् क्षेत्र सख्या १ ओर २ का घनफल इसप्रकार है :—

सख्या एक और दोके क्षेत्रोमे भूमि और मुखका अभाव है। क्षेत्र विस्तार $\frac{१}{२}$ राजू, ऊँचाई १४ राजू और वेध ७ राजू है, अत $\frac{१}{२} \times \frac{१४}{१} \times \frac{७}{१} \times \frac{२}{१} = ९८$ घनराजू घनफल दोनो बाहरी भुजाओ वाले क्षेत्रोका है।

भीतरी दोनो भुजाओका अर्थात् क्षेत्र सख्या ३ और ४ का घनफल इसप्रकार है—इन क्षेत्रोकी ऊँचाईमे मुख $\frac{५६}{५}$ और भूमि $\frac{४२}{५}$ राजू है। दोनोका योग $\frac{५६}{५} + \frac{४२}{५} = \frac{९८}{५}$ राजू हुआ। इनका विस्तार एक राजू और वेध (मोटाई) ७ राजू है, अत $\frac{९८}{५} \times \frac{१}{२} \times \frac{१}{१} \times \frac{७}{१} \times \frac{२}{१} = \frac{६८६}{५}$ अर्थात् १३७$\frac{१}{५}$ घनराजू दोनो भीतरी क्षेत्रोका घनफल प्राप्त होता है।

तस्साइं लहु-बाहुं [1]छग्गुण-लोओ अ पणत्तीस-हिदो।
विंदफलं जव-खेत्ते लोओ [2]सत्तेहि पविहत्तो ॥२३५॥

| $\frac{\equiv}{३५}$ ६ | $\equiv$ ७ |

अर्थ :—इसी क्षेत्रमे उसके लघु बाहुका घनफल छहसे गुणित और पैतीससे भाजित लोक-प्रमाण, तथा यवक्षेत्रका घनफल सातसे विभक्त लोकप्रमाण है ॥२३५॥

विशेषार्थ :—अभ्यन्तर लघु बाहुओ अर्थात् क्षेत्र सख्या ५ ओर ६ का घनफल इसप्रकार है—दोनो क्षेत्रोकी भूमि ऊँचाईमे $\frac{१४}{५}$ और मुख $\frac{२८}{५}$ राजू है। दोनोका योगफल ($\frac{२८}{५} \times \frac{१४}{५}$) $= \frac{४२}{५}$ राजू है, अत $\frac{४२}{५} \times \frac{१}{२} \times \frac{१}{१} \times \frac{७}{१} \times \frac{२}{१} = \frac{२९४}{५}$ अर्थात् ५८$\frac{४}{५}$ घनराजू हुआ। आकृतिके मध्यमे बने हुए दो पूर्ण यव और एक अर्धयव अर्थात् क्षेत्र सख्या ७–८ और ९ का घनफल इसप्रकार है :—

अर्धयवकी भूमि १ राजू, मुख ०, ऊँचाई $\frac{२८}{५}$ राजू तथा वेध ७ राजू है। आकृतिमे दो यव पूर्ण एव एक यव आधा है, अत $\frac{५}{२}$ से गुणित करने पर घनफल $= (\frac{१}{१} + ०) \times \frac{१}{२} \times \frac{२८}{५} \times \frac{७}{१} \times \frac{५}{२} =$ ४९ घनराजू यव क्षेत्रोका घनफल प्राप्त होता है। इन चारो क्षेत्रोका अर्थात् दूष्यक्षेत्रका एकत्र घनफल इसप्रकार होगा —

$९८ + १३७\frac{१}{५} + ५८\frac{४}{५} + ४९ = ३४३$ घनराजू घनफल प्राप्त होता है।

---

१ द. क. ज. ठ तग्गुणलोओ अप्पट्ठिसहिदाओ। व तग्गुणलोओ अ पट्ठिसहिदाओ। २. द व क ज. ठ. सत्त वि।

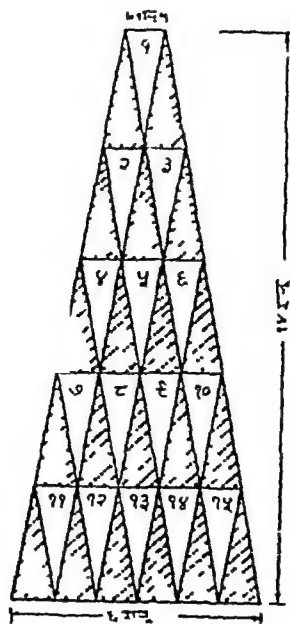
गिरिकटक लोकका घनफल और उसकी आकृति

एक्कस्सि गिरिगडरा विदफलं पंचतीस हिद लोगो ।
तं पणतीसप्पहिदं सेढि-घणं घणफलं तम्हि ॥२३६॥

| ≡/३५ | ≡ |

अर्थ :—एक गिरिकटकका घनफल लोकके घनफलमे ३५ का भाग देनेपर (≡/३५ रूप मे) प्राप्त होता है। जव इसमे (३४३/३५ मे) ३५ का गुणा किया जाता है तव (सम्पूर्ण गिरिकटक लोकका) घनफल श्रेणिधन (≡ रूपमे) प्राप्त हो जाता है ॥२३६॥

विशेषार्थ —३४३ घनराजू प्रमाण वाले लोकका गिरिकटककी रचनाके माध्यमसे घनफल निकाला गया है। गिरि (पर्वत) नीचे चौडे और ऊपर सँकरे होते हैं किन्तु कटक इनसे विपरीत अर्थात् नीचे सँकरे और ऊपर चौडे होते हैं। यथा :—



उपर्युक्त लोकगिरिकटकके चित्रणमे २० गिरि और १५ कटक प्राप्त होते है, इन गिरि और कटक दोनोका विस्तार एव ऊँचाई आदि सदृश ही है। इनका घनफल इसप्रकार है :—

एक गिरि या कटकका भूमि-विस्तार १ राजू, मुख ०, ऊँचाई $\frac{१४}{५}$ राजू और वेध ७ राजू है अतः $\{ (\frac{१}{१}+०)=\frac{१}{१} \}\times\frac{१}{२}\times\frac{१४}{५}\times\frac{७}{१}=\frac{४९}{५}$ घनराजू एक गिरि या एक कटकका घनफल प्राप्त हुआ। जब एक गिरि या कटकका घनफल $\frac{३४३}{३५}$ अर्थात् $\frac{४९}{५}$ घनराजू है तब (२०+१५)=३५ गिरि-कटकोका कितना घनफल होगा ? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर $\frac{४९}{५}\times\frac{३५}{१}=३४३$ घनराजू अर्थात् ३५ गिरिकटकोसे व्याप्त सम्पूर्ण लोकका घनफल ३४३ घनराजू प्राप्त होता है।

अधोलोकका घनफल कहनेकी प्रतिज्ञा

एवं अट्ठ-वियप्पा सयलजगे वण्णिदा समासेण।
एण्हं अट्ठ-पयारं हेट्ठिम लोयस्स वोच्छामि ।।२३७।।

अर्थ :—इसप्रकार आठ विकल्पोसे समस्त लोकोका सक्षेपमे वर्णन किया गया है। इसी प्रकार अधोलोकके आठ प्रकारोका वर्णन करूँगा ।।२३७।।

सामान्य एव ऊर्द्धायत (आयत चतुरस्र) अधोलोकका घनफल एव आकृतियाँ

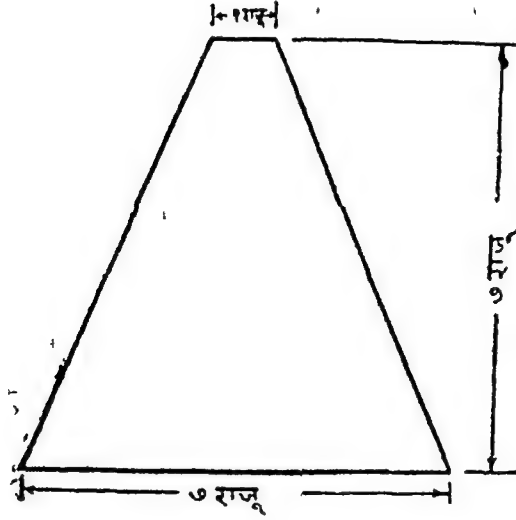
सामण्णे विंदफलं सत्तहिदो होदि चउगुणो लोगो।
विदिए वेद भुजाओ सेढी कोडी य चउरज्जू ।।२३८।।

$$\left| \frac{\equiv}{७}\ ४ \right| - \left| - \right| \frac{-}{७}\ ४ \Big|$$

अर्थ :—सामान्य अधोलोकका घनफल लोकके घनफल (☰) मे ४ का गुणा एव ७ का भाग देनेपर प्राप्त होता है और दूसरे आयत चतुरस्र क्षेत्रकी भुजा एव वेध श्रेणि प्रमाण तथा कोटि ४ राजू प्रमाण है। अर्थात् भुजा ७ राजू, वेध सात राजू और कोटि चार राजू प्रमाण है ।।२३८।।

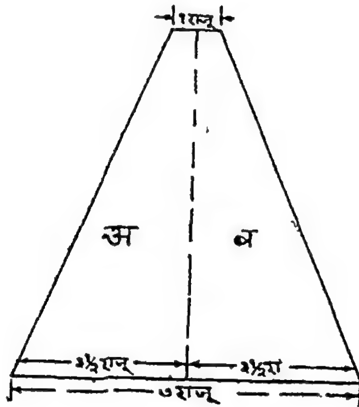
विशेषार्थ :—१ सामान्य अधोलोकका घनफल—

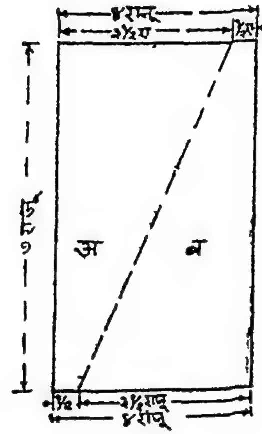
सामान्य अधोलोककी भूमि ७ राजू और मुख एक राजू है, इन दोनोको जोडकर उसका आधा करनेसे जो लब्ध प्राप्त हो उसमे ७ राजू ऊँचाई और ७ राजू वेधका गुणा करनेसे घनफल प्राप्त होता है। यथा—(७+१)=८÷२=४×७×७=१९६ घनराजू सामान्य अधोलोकका घनफल है। इसका चित्रण इसप्रकार है—



२ आयतचतुरस्र अर्थात् ऊर्द्धायत अधोलोकका घनफल :—

ऊर्द्धता अर्थात् लम्वे और चौकोर क्षेत्रके धनफलको ऊर्द्धायत घनफल कहते है। सामान्य अधोलोककी चौडाईके मध्यमे अ और व नामके दो खण्ड कर व खण्डके समीप अ खण्डको उल्टा रख देनेसे आयत चतुरस्रक्षेत्र बन जाता है। यथा—

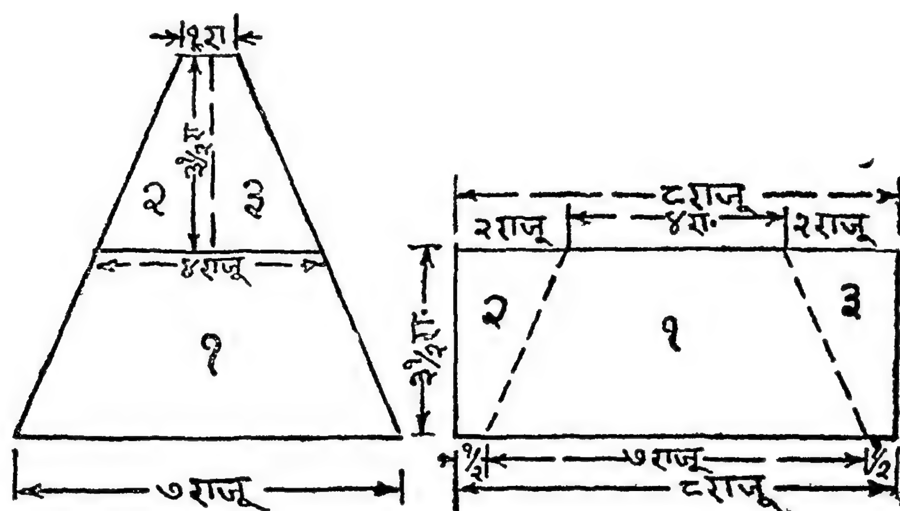




घनफल—इस आयतचतुरस्र (ऊर्द्धायत) क्षेत्रकी भुजा, श्रेणी प्रमाण अर्थात् ७ राजू, कोटि ४ राजू और वेध ७ राजू है, अत ७×४×७=१९६ घनराजू आयतचतुरस्र अधोलोकका घनफल है।

३ तिर्यगायत अधोलोकका घनफल —(त्रिलोकसार गा० ११५ के आधारसे)

जिस क्षेत्रकी लम्बाई अधिक और ऊँचाई कम हो उसे तिर्यगायत क्षेत्र कहते है । अधोलोक-की भूमि ७ राजू और मुख १ राजू है । ७ राजू ऊँचाई के समान दो भाग करने पर नीचे (सख्या १) का भाग ३$\frac{१}{२}$ राजू ऊँचा, ७ राजू भूमि, ४ राजू मुख और ७ राजू वेध (मोटाई) वाला हो जाता है । ऊपरके भागके चौडाईकी अपेक्षा दो भाग करनेपर प्रत्येक भाग ३$\frac{१}{२}$ राजू ऊँचा, २ राजू भूमि, $\frac{१}{२}$ राजू मुख और ७ राजू वेध वाला प्राप्त होता है । इन दोनो (सख्या २ और सख्या ३) भागोको नीचे वाले (सख्या १) भागके दायी और बायी ओर उलट कर स्थापन करनेसे ३$\frac{१}{२}$ राजू ऊँचा और आठ राजू लम्बा तिर्यगायत क्षेत्र बन जाता है ।



घनफल —यह आयतक्षेत्र ८ राजू लम्बा, ३$\frac{१}{२}$ राजू चौडा और ७ राजू मोटा है, अत $\frac{८}{१} \times \frac{७}{२} \times \frac{७}{१}$=१९६ घनराजू तिर्यगायत अधोलोकका घनफल प्राप्त हो जाता है ।

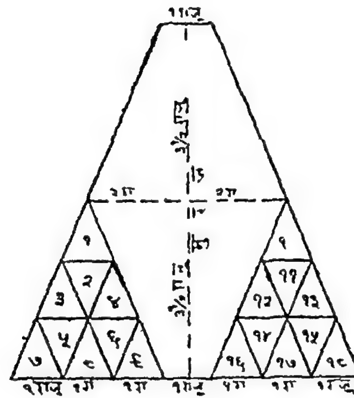
यवमुरज अधोलोकको आकृति एव घनफल

खेत्त-जवे विदफल चोद्दस-भजिदो य तिय-गुणो लोओ ।
मुरव-मही विदफल चोद्दस भजिदो य पण-गुणो लोओ ॥२३९॥

| $\frac{\equiv}{१४}$ ३ | $\frac{\equiv}{१४}$ ५ |

अर्थ:—(यव-मुरज क्षेत्रमे) यवाकार क्षेत्रका घनफल चौदहसे भाजित और तीनसे गुणित लोक प्रमाण तथा मुरजक्षेत्रका घनफल चौदहसे भाजित और पाँचसे गुणित लोकप्रमाण है ।।२३९।।

४ अधोलोकको यव (जौ अन्न) और मुरज (मृदङ्ग) के आकारमे विभाजित करना यवमुरजाकार कहलाता है । इसकी आकृति इसप्रकार है —



उपर्युक्त चित्रणगत अधोलोकमे यवक्षेत्रका घनफल—

अधोलोकके दोनो पार्श्वभागोमे १८ अर्धयव प्राप्त होते है । एक अर्धयवकी भूमि १ राजू, मुख०, उत्सेध $\frac{७}{६}$ राजू और वेध ७ राजू है, अत $\frac{१}{१}\times\frac{१}{२}\times\frac{७}{६}\times\frac{७}{१}=\frac{४९}{१२}$ घनराजू घनफल प्राप्त हुआ । यत १ अर्धयवका $\frac{४९}{१२}$ घनराजू घनफल है अत १८ अर्धयवोका $\frac{४९}{१२}\times\frac{१८}{१}=\frac{१४७}{२}$ अर्थात् ७३$\frac{१}{२}$ घनराजू घनफल प्राप्त होता है । लोक (३४३) को १४ से भाजित करनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसे ३ से गुणित करदेने पर भी (३४३ — १४ = २४$\frac{१}{२}$) × ३ = ७३$\frac{१}{२}$ घनराजू प्राप्त होते है, इसीलिए गाथामे चौदहसे भाजित और तीनसे गुणित लोक-प्रमाण घनफल कहा है ।

मुरजका घनफल —मुरजाकार क्षेत्रको बीचसे आधा करनेपर अर्धमुरजकी भूमि ४ राजू, मुख १ राजू, उत्सेध ३$\frac{१}{२}$ राजू और वेध ७ राजू है, अत (४ + १ = $\frac{५}{१}$) $\times\frac{१}{२}\times\frac{७}{२}\times\frac{७}{१}=\frac{२४५}{४}$ घनराजू घनफल हुआ । यत $\frac{१}{२}$ मुरज का घनफल $\frac{२४५}{४}$ घनराजू है अत सम्पूर्ण मुरजका $\frac{२४५}{४}\times\frac{२}{१}=\frac{२४५}{२}$ अर्थात् १२२$\frac{१}{२}$ घनराजू हुआ । लोक (३४३) को १४ से भाजित कर, लब्धको ५ से गुणित

करने पर भी (३४३÷१४=२४½)×५=१२२½ घनराजू प्राप्त होता है, इसीलिए गाथामे चौदहसे भाजित और पाँचसे गुणित मुरजका घनफल कहा है। इसप्रकार ७३½+१२२½=१९६ घनराजू यवमुरज अधोलोकका घनफल प्राप्त होता है।

यवमध्य अधोलोकका घनफल एव आकृति

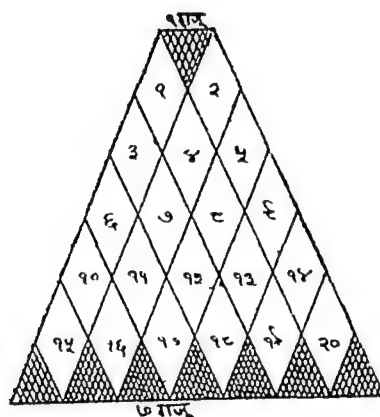
घणफलमेक्कम्मि जवे लोओ [1]बादाल-भाजिदो होदि ।
तं चउवीसप्पहदं सत्त-हिदो चउ-गुणो लोओ ॥२४०॥

$$\left| \frac{\equiv}{४२} \right| \frac{\equiv}{७}\ ४ \right|$$

अर्थ :—यवाकार क्षेत्रमे एक यवका घनफल बयालीससे भाजित लोकप्रमाण है। उसको चौबीससे गुणा करनेपर सातसे भाजित और चारसे गुणित लोकप्रमाण समस्त यवमध्यक्षेत्रका घनफल निकलता है ॥२४०॥

५ यवमध्य अधोलोकका घनफल —

विशेषार्थ :—अधोलोकके सम्पूर्ण क्षेत्रमे यवोकी रचना करनेको यवमध्य कहते है। सम्पूर्ण अधोलोकमे यवोकी रचना करनेपर २० पूर्ण यव और ८ अर्धयव प्राप्त होते है। जिनकी आकृति इसप्रकार है —



१ क. बादार ण भाजिदो।

राजू, भद्रशालवनसे नन्दनवन तक की ऊँचाई अर्थात् ५०० योजनके प्रतीक है। इनके ऊपरका तृतीय खण्ड $\frac{७}{१२}$ राजूका है जो नन्दनवनसे ऊपर समविस्तार क्षेत्र अर्थात् ११००० का द्योतक है। इसके ऊपरका चतुर्थखण्ड $\frac{४३}{१२}$ राजूका है, जो समविस्तारसे ऊपर सौमनसवन तक अर्थात् ५१५०० योजनके स्थानीय है। इसके ऊपर पचमखण्ड $\frac{७}{१२}$ राजूका है जो सौमनसवनके ऊपर वाले समविस्तार अर्थात् ११००० योजनका प्रतीक है। इसके ऊपर षष्ठखण्ड $\frac{३}{२}$ राजूका है, जो समविस्तारसे ऊपर पाण्डुकवन तक अर्थात् २५००० योजनका द्योतक है। इन समस्त खण्डोका योग ७ राजू होता है।

यथा—$(\frac{१}{२}+\frac{१}{४})=\frac{३}{४}+\frac{७}{१२}+\frac{४३}{१२}+\frac{७}{१२}+\frac{३}{२}=\frac{८४}{१२}=७$ राजू।

अट्ठावीस-विहत्ता सेढी मंदर-समम्मि [1]तड-वासे।
[2]चउ-तड-करणक्खंडिद-खेत्तेणं चूलिया होदि ॥२४३॥

। २८१ ।

अट्ठावीस-विहत्ता सेढी चूलीय होदि मुह-रुंदं।
तत्तिगुणं भू-वासं सेढी बारस-हिदा तदुच्छेहो ॥२४४॥

। २८१ । २८३ । १२ ।

अर्थ :—मन्दर सदृश क्षेत्रमे तट भागके विस्तारमेसे अट्ठाईससे विभक्त जगच्छ्रेणी प्रमाण चार तटवर्ती करणाकार खण्डित क्षेत्रोसे चूलिका होती है। अर्थात् तटवर्ती प्रत्येक त्रिकोणोकी भूमि (२८१) $\frac{१}{४}$ राजू प्रमाण है ॥२४३॥

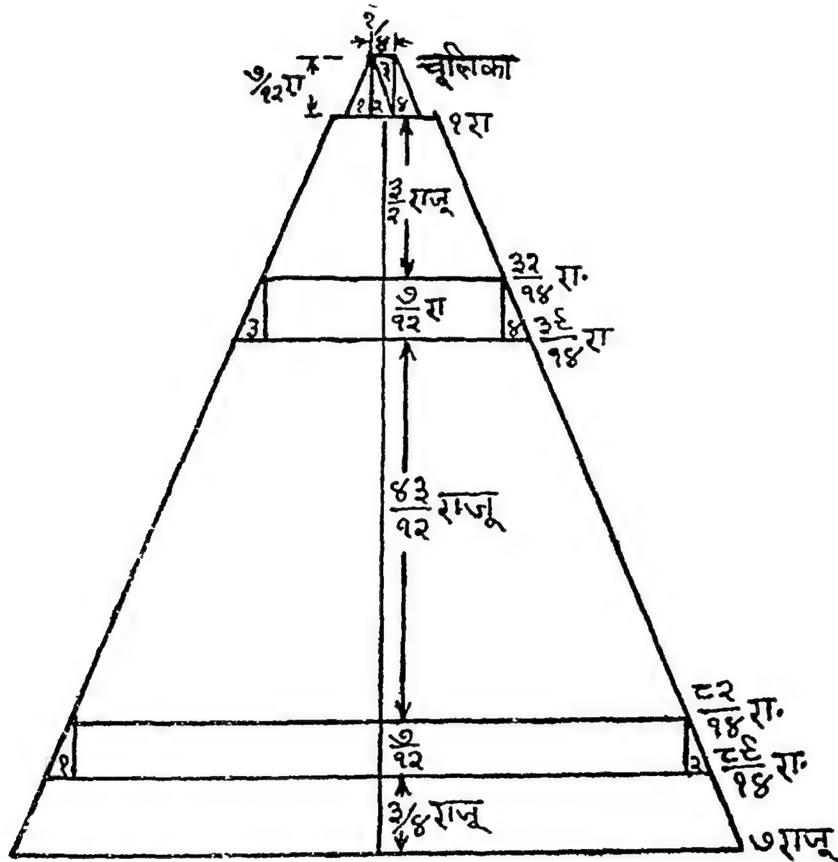
अर्थ :—इस चूलिकाका मुख विस्तार अट्ठाईससे विभक्त जगच्छ्रेणी (२८१) अर्थात् $\frac{१}{४}$ राजू, भूमि विस्तार इससे तिगुना (२८३) अर्थात् $\frac{३}{४}$ राजू और ऊँचाई बारहसे भाजित जगच्छ्रेणी (१२) अर्थात् $\frac{७}{१२}$ राजू प्रमाण है ॥२४४॥

विशेषार्थ :—दोनो समविस्तार क्षेत्रोके दोनो पार्श्वभागोमे चार त्रिकोण काटे जाते है, उनमेसे प्रत्येक त्रिकोणकी भूमि $\frac{१}{४}$ राजू और ऊँचाई $\frac{७}{१२}$ राजू है। इन चारो त्रिकोणोमेसे तीन त्रिकोण सीधे और एक त्रिकोणको पलटकर उल्टा रखनेसे चूलिका बन जाती है, जिसकी भूमि $\frac{३१}{२८}$ अर्थात् $\frac{३}{४}$ राजू, मुख $\frac{१}{२८}$ अर्थात् $\frac{१}{४}$ राजू और ऊँचाई $\frac{७}{१२}$ राजू प्रमाण है।

इस मन्दराकृतिका चित्रण इसप्रकार है—

---

१ द ब ज क. ठ तलवासे। २. द ब ज क ठ चउतदकारणखडिदखेत्तेण।



अट्ठाणवदि-विहत्तं सत्तट्ठाणेसु सेढि उड्ढुड्ढं ।
ठविदूण वास-हेदुं गुणगारं वत्तइस्सामि ॥२४५॥

'अडणउदी बाणउदी उणणवदी तह कमेण बासीदी ।
उणदालं बत्तीसं चोद्दस इय होंति गुणगारा ॥२४६॥

इद९८ । इद९२ । इद८९ । इद८२ । इद३९ । इद३२ । इद१४ ।

अर्थ :—अट्ठानवेसे विभक्त जगच्छ्रेणीको ऊपर-ऊपर सात स्थानोमे रखकर विस्तार लानेके लिए गुणकार कहता हू ॥२४५॥

अर्थ :—अट्ठानवे, बानवे, नवासी, बयासी, उनतालीस, बत्तीस और चौदह, ये क्रमशः उक्त सात स्थानोमे सात गुणकार है ॥२४६॥

---

१ क. गुणगारा पणणवदि तह कमेण छासीदी ।

विशेषार्थ :—९८ से विभक्त जगच्छ्रेणी अर्थात् $\frac{७}{९८}$ अर्थात् $\frac{१}{१४}$ को ऊपर-ऊपर सात स्थानो पर रखकर क्रमसे ९८, ९२, ८९, ८२, ३९, ३२ और १४ का गुणा करनेसे प्रत्येक क्षेत्रका आयाम प्राप्त हो जाता है। यह आयाम निम्नलिखित प्रक्रियासे भी प्राप्त होता है। यथा —

इस मन्दराकृति अधोलोककी भूमि ७ राजू और मुख १ राजू (७—१) = ६ राजू अवशेष रहा। क्योकि ७ राजूकी ऊँचाई पर ६ राजूकी हानि होती है, अत $\frac{१}{२}$ राजूपर ($\frac{६}{७} \times \frac{१}{२}$) = $\frac{३}{७}$ राजूकी हानि हुई। इसे ७ राजू आयाममेसे घटा देनेपर ($\frac{७}{१}$ — $\frac{३}{७}$) = $\frac{४६}{७}$ राजू आयाम $\frac{१}{२}$ राजूकी ऊँचाईके उपरितन क्षेत्रका है। [यहाँ $\frac{१}{१४} \times \frac{९८}{१}$ = ७ राजू भूमि विस्तार और $\frac{१}{१४} \times {}^{९२}$ = ६$\frac{४}{७}$ राजू सुमेरुकी जडके ऊपरका विस्तार है।] क्योकि ७ राजूपर ६ राजूकी हानि होती है अत $\frac{१}{४}$ पर ($\frac{६}{७} \times \frac{१}{४}$) = $\frac{३}{१४}$ राजूकी हानि हुई, इसे उपरितन विस्तार $\frac{४६}{७}$ मेसे घटानेपर ($\frac{४६}{७}$—$\frac{३}{१४}$) = $\frac{८९}{१४}$ अर्थात् ६$\frac{५}{१४}$ राजू नन्दनवनकी तलहटीका विस्तार है। क्योकि ७ राजूपर ६ राजूकी हानि होती है अत. $\frac{७}{१२}$ राजूपर ($\frac{६}{७} \times \frac{७}{१२}$) = $\frac{१}{२}$ राजूकी हानि हुई। इसे नन्दनवनकी तलहटीके विस्तार $\frac{८९}{१४}$ राजूमेसे घटा देनेपर $\frac{८९}{१४}$ — $\frac{१}{२}$ = $\frac{८२}{१४}$ = ५$\frac{६}{७}$ राजू समविस्तारके उपरितन क्षेत्रका आयाम है।

जब ७ राजूकी ऊँचाईपर ६ राजूकी हानि होती है तब $\frac{४३}{१२}$ राजूपर ($\frac{६}{७} \times \frac{४३}{१२}$) = $\frac{४३}{१४}$ अर्थात् ३$\frac{१}{१४}$ राजूकी हानि हुई। इसे उपरितन आयाम $\frac{८२}{१४}$ राजूमेसे घटादेने पर $\frac{८२}{१४}$—$\frac{४३}{१४}$ = $\frac{३९}{१४}$ या २$\frac{११}{१४}$ राजू सौमनसवनके उपरितन क्षेत्रका आयाम है, क्योकि ७ राजू पर ६ राजूकी हानि होती है अत $\frac{७}{१२}$ राजू पर ($\frac{६}{७} \times \frac{७}{१२}$) = $\frac{१}{२}$ राजूकी हानि हुई, इसे $\frac{३९}{१४}$ राजू मे से घटा देने पर $\frac{३९}{१४}$—$\frac{१}{२}$ = $\frac{३२}{१४}$ अर्थात् २$\frac{४}{७}$ राजू समविस्तार के उपरितन क्षेत्रका आयाम है। क्योकि ७ राजू पर ६ राजू की हानि होती है अत. $\frac{३}{२}$ राजू पर ($\frac{६}{७} \times \frac{३}{२}$) = $\frac{९}{७}$ राजूकी हानि हुई। इसे उपरिम विस्तार $\frac{३२}{१४}$ राजूमे से घटा देने पर ($\frac{३२}{१४}$−$\frac{९}{७}$) = $\frac{१४}{१४}$ अर्थात् १ राजूका विस्तार पाण्डुकवनकी तलहटीका आयाम है ॥

हेट्ठादो रज्जु-घणा सत्तट्ठाणेसु ठविय उड्ढुड्ढे।
[1]गुणगार-भागहारे विदफले तण्णिरूवेमो ॥२४७॥

गुणगारा पणणउदी [2]एक्कासीदेहि जुत्तमेक्क-सयं।
[3]सगसीदेहिं दु-सयं तियधियदुसया पण-सहस्सा ॥२४८॥

अडवीसं उणहत्तरि, उणवण्णं उवरि-उवरि हारा य।
चउ चउवग्गं बारस अडदालं ति-चउक्क-चउवीसं ॥२४९॥

---

१ द ठेविदूण वासहेदु, ब ज ठ ठविदूण वासहेदु, क ठविदूण वासहेदु गुणगार वत्त इस्सामि। २. द. ब क ज ठ एक्कासेदेहि। ३ द ब सगतीसेदि दुस्सतियधियदुसेया।

$\frac{\equiv}{३४३}$ । $\frac{९५}{४}$	$\frac{\equiv}{३४३}$ । $\frac{१८१}{१६}$	$\frac{\equiv}{३४३}$ । $\frac{२८७}{१२}$	$\frac{\equiv}{३४३}$ । $\frac{५२०३}{४८}$	$\frac{\equiv}{३४३}$ । $\frac{२८}{३}$	$\frac{\equiv}{३४३}$ । $\frac{६९}{४}$	$\frac{\equiv}{३४३}$ । $\frac{४९}{२४}$

अर्थ :—नीचेसे ऊपर-ऊपर सात स्थानोमे घनराजूको रखकर घनफलको जाननेके लिए गुणकार और भागहारको कहता हू ।।२४७।।

उक्त सात स्थानोमे पचानवे, एक सौ इक्यासी, दो सौ सतासी, पाँच हजार दो सौ तीन, अट्ठाईस, उनहत्तर और उनचास ये सात गुणकार तथा चार, चारका वर्ग (१६), बारह, अडतालीस, तीन, चार और चौबीस ये सात भागहार है ।।२४८-२४९।।

विशेषार्थ —मन्दराकृति अधोलोकके सात खण्ड किये गये है, इन सातो खण्डोका पृथक्-पृथक् घनफल इसप्रकार है —

प्रथमखण्ड :—भूमि ७ राजू, मुख $\frac{९२}{१४}$ राजू, ऊँचाई $\frac{१}{२}$ राजू और वेध ७ राजू है अत $(\frac{७}{१}+\frac{९२}{१४})=\frac{१९०}{१४}\times\frac{१}{२}\times\frac{१}{२}\times\frac{७}{१}=\frac{९५}{४}$ घनराजू प्रथमखण्डका घनफल है ।

द्वितीयखण्ड :—इसकी भूमि $\frac{९२}{१४}$ राजू, मुख $\frac{८९}{१४}$ राजू, ऊँचाई $\frac{१}{४}$ राजू, वेध ७ राजू है, अत $(\frac{९२}{१४}+\frac{८९}{१४})=\frac{१८१}{१४}\times\frac{१}{२}\times\frac{१}{४}\times\frac{७}{१}=\frac{१८१}{१६}$ घनराजू द्वितीय खण्डका घनफल है ।

तृतीय खण्ड —इसकी भूमि $\frac{८२}{१४}$ राजू, मुख $\frac{८२}{१४}$ राजू, ऊँचाई $\frac{७}{१२}$ राजू और वेध ७ राजू है अत $(\frac{८२}{१४}+\frac{८२}{१४})=\frac{१६४}{१४}\times\frac{१}{२}\times\frac{७}{१२}\times\frac{७}{१}=\frac{२८७}{१२}$ घनराजू तृतीय खण्डका घनफल है ।

चतुर्थखण्ड —इसकी भूमि $\frac{८२}{१४}$ राजू, मुख $\frac{३९}{१४}$ राजू, ऊँचाई $\frac{४३}{१२}$ राजू और वेध ७ राजू है अत $(\frac{८२}{१४}+\frac{३९}{१४})=\frac{१२१}{१४}\times\frac{१}{२}\times\frac{४३}{१२}\times\frac{७}{१}=\frac{५२०३}{४८}$ घनराजू चतुर्थखण्डका घनफल है ।

पंचमखण्ड :—इसकी भूमि $\frac{३२}{१४}$ राजू, मुख $\frac{३२}{१४}$ राजू, ऊँचाई $\frac{७}{१२}$ राजू और वेध ७ राजू है, अत $(\frac{३२}{१४}+\frac{३२}{१४})=\frac{६४}{१४}\times\frac{१}{२}\times\frac{७}{१२}\times\frac{७}{१}=\frac{२८}{३}$ घनराजू पचमखण्डका घनफल है ।

नोट —तृतीय और पचमखण्डकी भूमि क्रमश $\frac{८९}{१४}$ राजू और $\frac{३९}{१४}$ राजू थी; किन्तु चार त्रिकोण कट जानेके कारण $\frac{८२}{१४}$ और $\frac{३२}{१४}$ राजू ही ग्रहण किये गये है ।

षष्ट खण्ड :—इसकी भूमि $\frac{३२}{१४}$ राजू, मुख $\frac{१४}{१४}$ राजू, ऊँचाई $\frac{३}{२}$ राजू और वेध ७ राजू है अतः $(\frac{३२}{१४}+\frac{१४}{१४})=\frac{४६}{१४}\times\frac{१}{२}\times\frac{३}{२}\times\frac{७}{१}=\frac{६९}{४}$ घनराजू षष्ठ खण्डका घनफल है ।

सप्तम खण्ड :—इसकी भूमि $\frac{२१}{२८}$ राजू, मुख $\frac{७}{२८}$ राजू, ऊँचाई $\frac{७}{१२}$ राजू और वेध ७ राजू है अत· $(\frac{२१}{२८}+\frac{७}{२८})=\frac{२८}{२८}\times\frac{१}{२}\times\frac{७}{१२}\times\frac{७}{१}=\frac{४९}{२४}$ घनराजू सप्तमखण्ड अर्थात् चूलिकाका घनफल हे ।

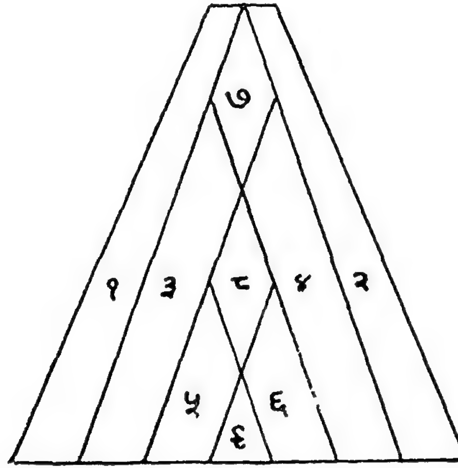
इस प्रकार— $\frac{९५}{४}+\frac{१८१}{१६}+\frac{२८७}{१२}+\frac{५२०३}{४८}+\frac{२८}{३}+\frac{६९}{४}+\frac{४९}{२४}$

$=\frac{११४०+५४३+११४८+५२०३+४४८+८२८+९८}{४८}=\frac{९४०८}{४८}$

अर्थात् १९६ घनराजू सम्पूर्ण मन्दरमेरु अधोलोकका घनफल है ।

दूष्य अधोलोककी आकृति

७ दूष्य अधोलोकका घनफल :—दूष्यका अर्थ डेरा [TENT] होता है अधोलोकके मध्यक्षेत्रमे डेरोकी रचना करके घनफल निकालनेको दूष्य घनफल कहते है । इसकी आकृति इसप्रकार है :—



दूष्य अधोलोकका घनफल

चोद्दस-भजिदो [1]ति-गुणो विंदफलं बाहिरुभय-बाहूणं ।
लोओ पंच-विहत्तो[2] दूसस्सब्भंतरोभय-भुजाणं ॥२५०॥

| $\frac{\equiv}{१४}$ ३ | $\equiv$ ५ |

[3]तस्साइं लहु-बाहू ति-गुणिय लोओ य पंचतीस-हिदो ।
विंदफलं जव-खेत्ते चोद्दस-भजिदो हवे लोओ ॥२५१॥

| $\frac{\equiv}{३५}$ ३ | $\frac{\equiv}{१४}$ |

१. द ब ज क ठ वियदि । २. द ब ज. ठ एक विहत्त । ३. ब. क. ज ठ. सत्ताइ ।

अर्थ :—दूष्य क्षेत्रमे १४ से भाजित और ३ से गुणित लोकप्रमाण वाह्य उभय वाहुओका और पाँचसे विभक्त लोक प्रमाण अभ्यन्तर दोनो बाहुओका घनफल है ।।२५०।।

इसी क्षेत्रमे लघु बाहुओ का घनफल तीनसे गुणित और पैंतीससे भाजित लोक प्रमाण तथा यवक्षेत्रका घनफल चौदहसे भाजित लोक प्रमाण है ।।२५१।।

विशेषार्थ :—इस दूष्य क्षेत्रकी वाह्य भुजा अर्थात् सख्या १ और २ का घनफल निम्न-प्रकार है —

भूमि १ राजू, मुख $\frac{१}{२}$ राजू, ऊँचाई ७ राजू और वेध ७ राजू है अत ($\frac{१}{१}+\frac{१}{२}$)= $\frac{३}{२}\times\frac{१}{२}\times\frac{७}{१}\times\frac{७}{१}\times\frac{२}{१}=\frac{१४७}{२}$ अर्थात् ७३$\frac{१}{२}$ घनराजू घनफल है । लोक (३४३) को १४ से भाजित कर जो लब्ध आवे उसको ३ से गुणित कर देनेपर भी (३४३—१४=२४$\frac{१}{२}$ × ३)=७३$\frac{१}{२}$ घनराजू ही आते है इसलिए गाथामे बाह्य बाहुओका घनफल चौदहसे भाजित और तीनसे गुणित (७३$\frac{१}{२}$) कहा है ।

अभ्यन्तर दोनो बाहुओ अर्थात् क्षेत्र सख्या ३ और ४ का घनफल इसप्रकार है—(ऊँचाईमे भूमि $\frac{२८}{५}+\frac{२१}{५}$ मुख=$\frac{४९}{५}$)$\times\frac{१}{२}\times\frac{१}{१}\times\frac{७}{१}\times\frac{२}{१}=\frac{३४३}{५}$ अर्थात् ६८$\frac{३}{५}$ घनराजू घनफल है, इसीलिए गाथामे पाँचसे भाजित लोकप्रमाण घनफल अभ्यन्तर बाहुओका कहा है ।

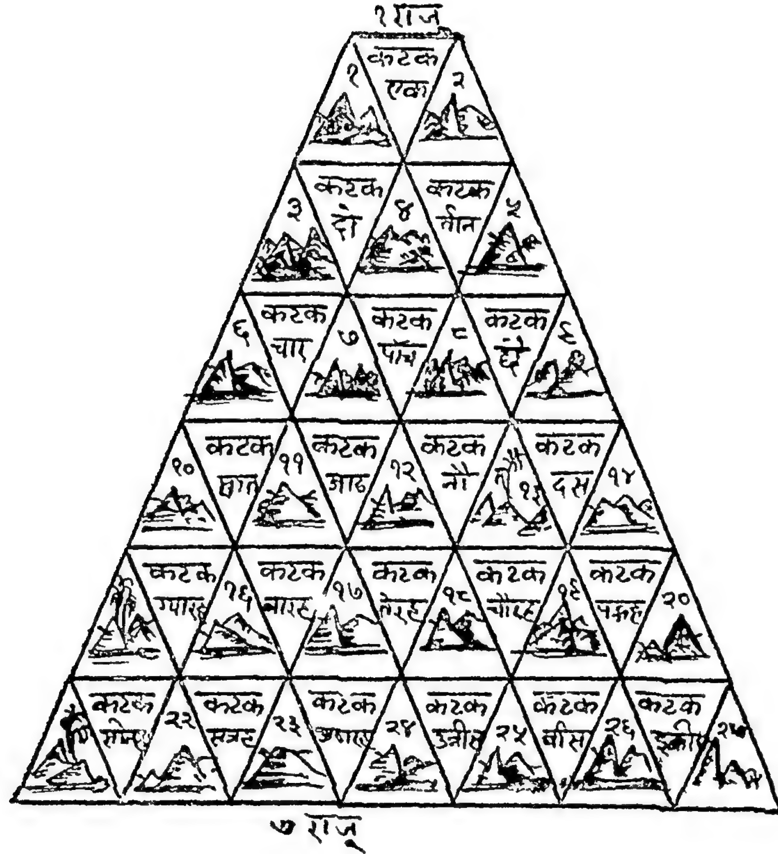
अभ्यन्तर दोनो लघु-बाहुओ अर्थात् क्षेत्र सख्या ५ और ६ का घनफल इसप्रकार है—(ऊँचाईमे भूमि $\frac{१४}{५}+\frac{७}{५}$ मुख=$\frac{२१}{५}$)$\times\frac{१}{२}\times\frac{१}{१}\times\frac{७}{१}\times\frac{२}{१}=\frac{१४७}{५}$=२९$\frac{२}{५}$ घनराजू घनफल है । लोक (३४३) को तीनसे गुणित करके लब्धमे ३५ का भाग देनेपर भी (३४३ × ३=१०२९÷३५)=२९$\frac{२}{५}$ घनराजू ही प्राप्त होते है इसलिए गाथामे तीनसे गुणित और ३५ से भाजित अभ्यन्तर दोनो लघु-बाहुओका घनफल कहा गया है ।

२$\frac{१}{२}$ यवो अर्थात् क्षेत्र सख्या ७, ८ और ९ का घनफल इसप्रकार है—एक यवकी भूमि १ राजू, मुख ०, ऊँचाई $\frac{१४}{५}$ और वेध ७ है, तथा ऐसे यव $\frac{५}{२}$ है, अत ($\frac{१}{१}$+०=$\frac{१}{१}$)$\times\frac{१}{२}\times\frac{१४}{५}\times\frac{७}{१}\times\frac{५}{२}$ =$\frac{४९}{२}$ अर्थात् २४$\frac{१}{२}$ घनराजू घनफल २$\frac{१}{२}$ यवोका है । लोकको चौदहसे भाजित करने पर भी (३४३÷१४)=२४$\frac{१}{२}$ घनराजू ही आते है इसीलिए गाथामे चौदहसे भाजित लोक कहा है । इसप्रकार ७३$\frac{१}{२}$+६८$\frac{३}{५}$+२९$\frac{२}{५}$+२४$\frac{१}{२}$=१९६ घनराजू घनफल सम्पूर्ण दूष्य अधोलोकका है ।

८ गिरि-कटक अधोलोकका घनफल :—

गिरि (पहाडी) नीचे चौडी और ऊपर सँकरी अर्थात् चोटी युक्त होती है किन्तु कटक इससे विपरीत अर्थात् नीचे सँकरा और ऊपर चौडा होता है । अधोलोकमे गिरि-कटककी रचना करनेसे २७ गिरि और २१ कटक प्राप्त होते है । यथा —

गिरिकटक अधोलोककी आकृति



गिरिकटक अधोलोकका घनफल

एक्कस्सिं गिरिगडए[1] चउसीदी-भाजिदो हवे लोओ ।
तं [2]अट्ठतालपहदं विंदफलं तम्मि खेत्तम्मि ॥२५२॥

$$\left| \frac{\equiv}{८४} \right| \frac{\equiv}{८४} ४८ \left| \right.$$

अर्थ :—एक गिरिकटक (अर्धयव) क्षेत्रका घनफल चौरासीसे भाजित लोकप्रमाण है । इसको अडतालीससे गुणा करने पर कुल गिरिकटक क्षेत्रका घनफल होता है ॥२५२॥

---

१ द ब. गिरिविडए । क ज. ठ. गिरिविदए । २ क अट्ठमाल ।

विशेषार्थ :—उपर्युक्त आकृतिमे प्रत्येक गिरि एव कटककी भूमि १ राजू, मुख ०, उत्सेध $\frac{७}{६}$ राजू और वेध ७ राजू है अत $(\frac{१}{१}+०=\frac{१}{१})\times\frac{१}{२}\times\frac{७}{६}\times\frac{७}{१}=\frac{४९}{१२}$ घनराजू प्राप्त है। लोक (३४३) को ८४ से भाजित करने पर भी $(३४३-८४)=\frac{४९}{१२}$ प्राप्त होते है, इसीलिए गाथामे लोकको चौरासीसे भाजित करनेको कहा गया है।

क्योकि एक गिरिका घनफल $\frac{४९}{१२}$ घनराजू है अत २७ पहाडियोका घनफल $\frac{४९}{१२}\times\frac{२७}{१}=\frac{४४१}{४}=११०\frac{१}{४}$ घनराजू होगा। इसीप्रकार जब एक कटकका घनफल $\frac{४९}{१२}$ घनराजू है, तब २१ कटको का घनफल $\frac{४९}{१२}\times\frac{२१}{१}=\frac{३४३}{४}=८५\frac{३}{४}$ घनराजू होता है। इन दोनो घनफलोका योग कर देनेपर $(११०\frac{१}{४}+८५\frac{३}{४})=१९६$ घनराजू घनफल सम्पूर्ण गिरिकटक अधोलोक क्षेत्रका प्राप्त होता है।

अधोलोकके वर्णनकी समाप्ति एव ऊर्ध्वलोकके वर्णनकी सूचना

एवं अट्ठ-वियप्पो[1] हेट्ठिम-लोओ य वण्णिदो एसो।
एण्हि उवरिम-लोयं अट्ठ-पयारं णिरूवेमो ॥२५३॥

अर्थ :—इसप्रकार आठ भेदरूप अधोलोकका वर्णन किया जा चुका है। अब यहाँसे आगे आठ प्रकारके ऊर्ध्वलोकका निरूपण करते है ॥२५३॥

विशेषार्थ :—इसप्रकार आठभेदरूप अधोलोकका वर्णन समाप्त करके पूज्य यतिवृषभाचार्य आगे १ सामान्य ऊर्ध्वलोक, २. ऊर्ध्वायत चतुरस्र ऊर्ध्वलोक, ३ तिर्यगायत चतुरस्र ऊर्ध्वलोक, ४ यवमुरज ऊर्ध्वलोक, ५. यवमध्य ऊर्ध्वलोक, ६ मन्दरमेरु ऊर्ध्वलोक, ७ दूष्य ऊर्ध्वलोक और ८ गिरिकटक ऊर्ध्वलोकके भेदसे ऊर्ध्वलोकका घनफल आठ प्रकारसे कहते है।

सामान्य तथा ऊर्ध्वायत चतुरस्र ऊर्ध्वलोकके घनफल एव आकृतियाँ

सामण्णे विदफलं सत्त-हिदो होइ ति-गुणिदो[2] लोओ।
विदिए वेद-भुजाए[3] सेढी कोडी ति-रज्जूओ ॥२५४॥

| $\frac{\equiv}{७}$ ३ | — | — | $\frac{-}{७}$ ३ |

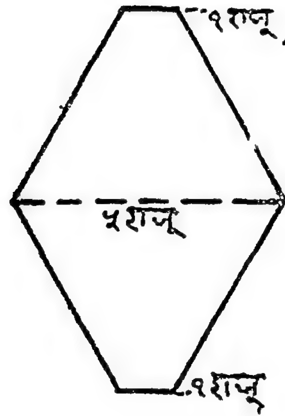
---

१ द ब. क ज ठ वियप्पा हेट्ठिम-लोउए। २ द. ब तिगुणिदा। ३ द ब क ज ठ भुजासे।

अर्थ :—सामान्य ऊर्ध्वलोकका घनफल सातसे भाजित और तीनसे गुणित लोकके प्रमाण अर्थात् एक सौ सैतालीस राजूमात्र है।

द्वितीय ऊर्ध्वायतचतुरस्र क्षेत्रमे वेध और भुजा जगच्छ्रेणी प्रमाण, तथा कोटि तीन राजू मात्र है ।।२५४।।

विशेषार्थ —सामान्य ऊर्ध्वलोककी आकृति :—



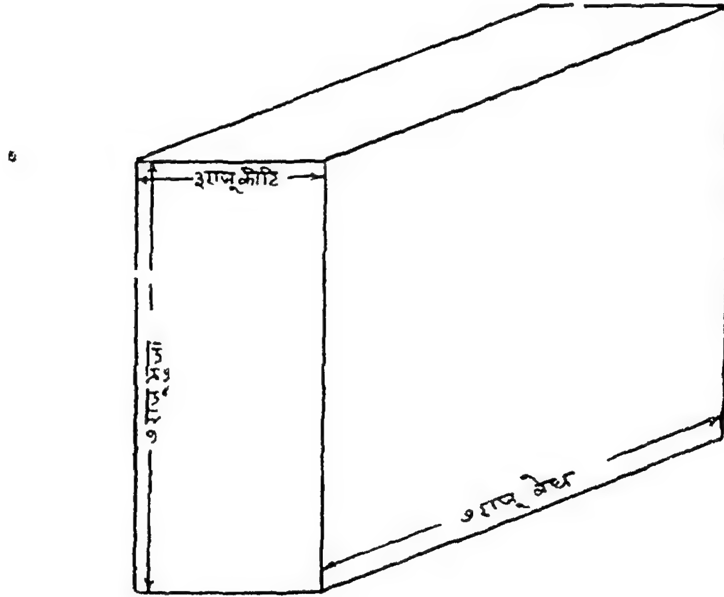
सामान्य ऊर्ध्वलोक ब्रह्मस्वर्गके समीप ५ राजू विस्तार वाला एव ऊपर नीचे एक-एक राजू विस्तार वाला है अत ५ राजू भूमि, १ राजू मुख, $\frac{७}{२}$ राजू ऊँचाई और ७ राजू वेध वाले इस ऊर्ध्व-लोकके दो भाग करलेनेपर इसका घनफल-इसप्रकार होता है—

(भूमि ५ + १ मुख = $\frac{६}{१}$) $\times \frac{१}{२} \times \frac{७}{२} \times \frac{७}{१} \times \frac{२}{१}$ = १४७ घनराजू सामान्य ऊर्ध्वलोकका घनफल है।

२ ऊर्ध्वायत चतुरस्र ऊर्ध्वलोकका घनफल —

ऊर्ध्वायत चतुरस्रक्षेत्रकी भुजा जगच्छ्रेणी (७ राजू), वेध ७ राजू और कोटि ३ राजू प्रमाण है। यथा—

(चित्र अगले पृष्ठ पर देखिये)



भुजा ७ राजू × कोटि ३ रा० × वेध ७ रा० = १४७ घनराजू ऊर्ध्वायित चतुरस्र क्षेत्रका घनफल है।

नोट :— ऊर्ध्वलोकका घनफल प्राप्त करते समय सामान्य ऊर्ध्वलोकको छोडकर शेष आकृतियोमे ऊर्ध्वलोककी मूल आकृतिसे प्रयोजन नही रखा गया है।

तिर्यगायत चतुरस्र तथा यवमुरज ऊर्ध्वलोक एव आकृतियाँ

तदिए [1]भुय-कोडीओ सेढी वेदो[2] वि तिण्णि रज्जूओ।
बहु-जव-मध्ये मुरये[3] जव-मुरयं होदि तक्खेत्त ॥२५५॥

। − १ । − १ । ७३ ।

तम्मि जवे विंदफलं लोओ सत्तेहि भाजिदो होदि।
मुरयम्मि य विंदफलं सत्त-हिदो दु-गुणिदो लोओ ॥२५६॥

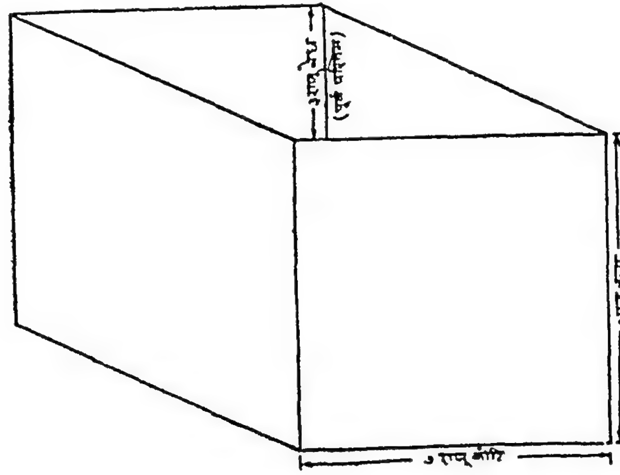
| $\frac{\equiv}{७}$ | $\frac{\equiv}{७}$ २ |

---

१ द व. क ज ठ भुविकोडीओ। २ [वेधो]। ३ द. व. क ज ठ. मुरय।

अर्थ :—तीसरे तिर्यगायत चतुरस्रक्षेत्रमे भुजा और कोटि जगच्छ्रेणी प्रमाण तथा वेध तीन राजू मात्र है। वहुलसे यवो युक्त मुरज-क्षेत्रमे वह क्षेत्र यव और मुरज रूप होता है। इसमेसे यव-क्षेत्रका घनफल सातसे भाजित लोकप्रमाण और मुरजक्षेत्रका घनफल सातसे भाजित और दोसे गुणित लोकके प्रमाण होता है ।।२५५-२५६।।

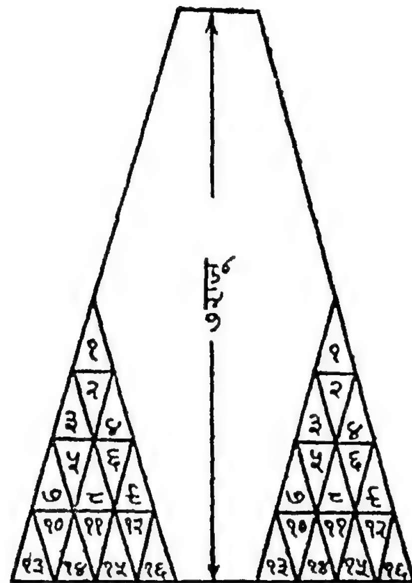
विशेषार्थ :—(३) तिर्यगायत चतुरस्रक्षेत्रमे भुजा और कोटि श्रेणी (७ रा०) प्रमाण तथा वेध (मोटाई) तीन राजू प्रमाण है। यथा —



घनफल—यहाँ भुजा अर्थात् ऊँचाई ७ राजू है, उत्तर-दक्षिण कोटि ७ राजू और पूर्व-पश्चिम वेध ३ राजू है, अत ७ × ७ × ३ = १४७ घनराजू तिर्यगायत ऊर्ध्वलोकका घनफल प्राप्त होता है।

४ यवमुरज ऊर्ध्वलोकका घनफल —इस यवमुरजक्षेत्रकी भूमि ५ राजू, मुख १ राजू और ऊँचाई ७ राजू है। यथा—

(चित्र अगले पृष्ठ पर देखिये)



उपर्युक्त आकृतिके मध्यमे एक मुरज और दोनो पार्श्वभागोमे सोलह-सोलह अर्धयव प्राप्त होते है। दोनो पार्श्वभागोके ३२ अर्धयवोके पूर्णयव १६ होते है। एक यवका विस्तार $\frac{१}{२}$ राजू, ऊँचाई $\frac{७}{४}$ राजू और वेध ७ राजू है, अत. $\frac{१}{२} \times \frac{१}{२}$ (अर्धकिया) $\times \frac{७}{४} \times \frac{७}{१} = \frac{४९}{१६}$ घनराजू घनफल प्राप्त होता है। यत एक यवका घनफल $\frac{४९}{१६}$ घनराजू है, अतः १६ यवोका ($\frac{४९}{१६} \times \frac{१६}{१}$) = ४९ घनराजू घनफल प्राप्त हुआ।

मुरजके बीचसे दो भाग करनेपर अर्धमुरजकी भूमि ३ राजू मुख १ राजू, ऊँचाई $\frac{७}{२}$ राजू और वेध ७ राजू है, इसप्रकारके अर्धमुरज दो है, अत $(३+१=\frac{४}{१}) \times \frac{१}{२} \times \frac{७}{२} \times \frac{७}{१} \times \frac{२}{१} = ९८$ घनराजू पूर्ण मुरजका घनफल होता है और दोनोका योग कर देने पर (४९ + ९८) = १४७ घनराजू घनफल यवमुरज ऊर्ध्वलोकका प्राप्त होता है। लोक (३४३) को ७ से भाजित करने पर ४९ और उसी लोक (३४३) को ७ से भाजित कर दो से गुणित करदेनेसे ९८ घनफल प्राप्त हो जाता है। यही बात गाथामे दर्शायी गई है।

यवमध्य ऊर्ध्वलोकका घनफल एव आकृति

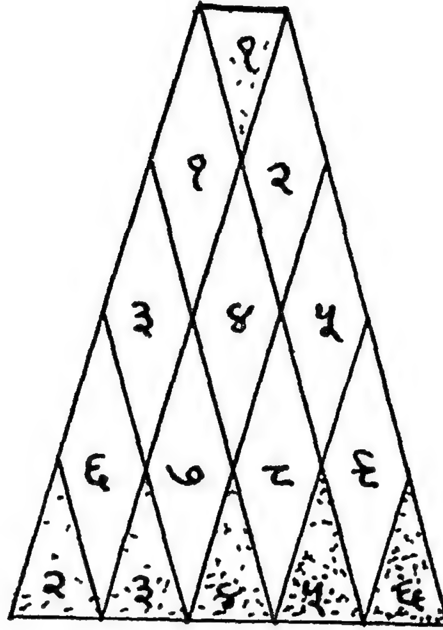
घणफलमेक्कम्मि जवे अट्ठावीसेहि भाजिदो लोओ।
तं बारसेहि गुणिदं जव-खेत्ते होदि विदफलं ॥२५७॥

| ≡ / २८ | ≡ / ७ ३ |

अर्थ :—यवमध्य क्षेत्रमे एक यवका घनफल अट्ठाईससे भाजित लोकप्रमाण है। इसको बारहसे गुणा करनेपर सम्पूर्ण यवमध्य क्षेत्रका घनफल निकलता है ॥२५७॥

विशेषार्थ :—(५) यवमध्य ऊर्ध्वलोकका घनफल :—

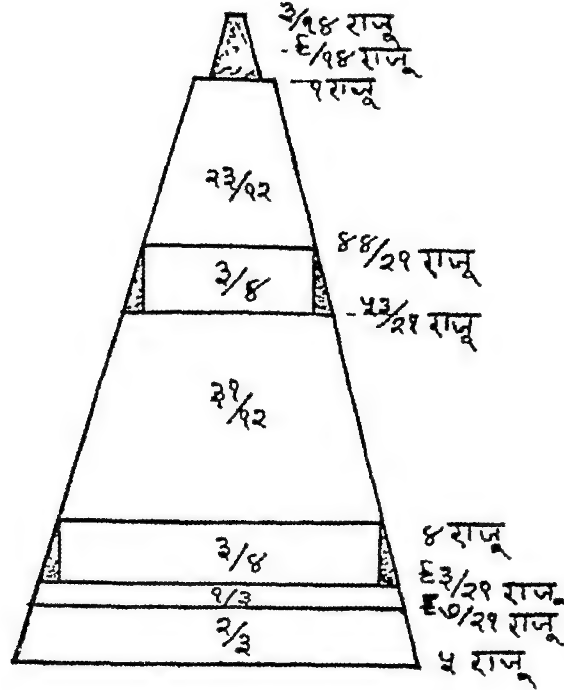
५ राजू भूमि, १ राजू मुख और ७ राजू ऊँचाई वाले सम्पूर्ण ऊर्ध्वलोक क्षेत्रमे यवोकी रचना इसप्रकार है :—



इस आकृतिमे पूर्ण-यव ९ और अर्धयव ६ है। ६ अर्धयवोके पूर्ण यव बनाकर पूर्ण यवोमे जोड देनेपर (९+३)=१२ पूर्ण यव प्राप्त हो जाते है। एक यवका विस्तार १ राजू, ऊँचाई $\frac{७}{२}$ राजू और वेध ७ राजू है अत $\frac{१}{१}\times\frac{१}{२}\times\frac{७}{२}\times\frac{७}{१}=\frac{४९}{४}$ घनराजू एक यवका घनफल प्राप्त होता है। क्योकि एक यवका घनफल $\frac{४९}{४}$ घनराजू है अत· १२ यवोका $\frac{४९}{४}\times\frac{१२}{१}=१४७$ घनराजू सम्पूर्ण यवमध्य ऊर्ध्वलोक क्षेत्रका घनफल प्राप्त होता है। लोक (३४३) को २८ से भाजितकर १२ से गुणित करनेपर भी ($\frac{३४३}{२८}\times\frac{१२}{१}$)=१४७ घनराजू ही प्राप्त होता है। इसीलिए गाथामे लोकको अट्ठाईससे भाजितकर बारहसे गुणा करनेको कहा गया है।

६ मन्दर-ऊर्ध्वलोकका घनफल —५ राजू भूमि, १ राजूमुख और ७ राजू ऊँचाई वाले ऊर्ध्वलोक मन्दर (मेरु) की रचना करके घनफल निकाला जायगा। यथा :—

मन्दरमेरु ऊर्ध्वलोककी आकृति



मन्दरमेरु ऊर्ध्वलोकका घनफल

ति-हिदो दु-गुणिद-रज्जू तिय-भजिदा[1] चउ-हिदा ति-गुण-रज्जू ।
एक्कतीसं च रज्जू बारस-भजिदा हवंति उड्ढुड्ढं ॥२५८॥

चउ-हिद-ति-गुणिद-रज्जू तेवीसं ताओ बार-पडिहत्ता ।
मंदर-सरिसायारे[2] उस्सेहो उड्ढ-खेत्तम्मि ॥२५९॥

२/३ । १/३ । ३/४ । ३१/१२ । ३/४ । २३/१२ ।

अर्थ :—मन्दर सदृश आकारवाले ऊर्ध्वक्षेत्रमे ऊपर-ऊपर ऊँचाई क्रमसे तीनसे भाजित दो राजू, तीनसे भाजित एक राजू, चारसे भाजित तीन राजू, बारहसे भाजित इकतीस राजू, चारसे भाजित तीन राजू और बारहसे भाजित तेईस राजू मात्र है ॥२५८-२५९॥

१. ज ठ भणिदा । २ द सरिसायारो ।

विशेषार्थ :—उपर्युक्त आकृतिमे $\frac{२}{३}$ राजू पृथिवीमे सुदर्शन मेरुकी जड़ अर्थात् १००० योजनका, $\frac{१}{३}$ राजू भद्रशालवनसे नन्दनवन पर्यन्तकी ऊँचाई अर्थात् ५०० योजनका, $\frac{३}{४}$ राजू नन्दनवनसे समविस्तार क्षेत्र अर्थात् ११००० योजनका, $\frac{३}{१२}$ राजू समविस्तारक्षेत्रसे सौमनस वन अर्थात् ५१५०० योजनका, $\frac{३}{४}$ राजू सौमनसवनसे समविस्तार क्षेत्र अर्थात् ११००० योजनका और उसके ऊपर $\frac{२३}{१२}$ राजू समविस्तारसे पाण्डुकवन अर्थात् २५००० योजनका प्रतीक है ।

अट्ठाणवदि-विहत्ता ति-गुणा सेढी तडाण[1] वित्थारो[2] ।
[3]चउतड-करणक्खंडिद-खेत्तेणं चूलिया होदि ॥२६०॥

९८ ३

तिण्णि तडा[4] भू-वासो ताण ति-भागेण होदि मुह-रुंदं ।
तच्चूलियाए उदओ चउ-भजिदो ति-गुणिदो रज्जू ॥२६१॥

९८ ३ । ९८ ९ ।

अर्थ :—तटोका विस्तार अट्ठानवेसे विभक्त और तीनसे गुणित जगच्छ्रेणी प्रमाण है । ऐसे चार तटवर्ती करणाकार खण्डित क्षेत्रोसे चूलिका होती है, उस चूलिकाकी भूमिका विस्तार तीन-तटोके प्रमाण, मुखका विस्तार इसका तीसरा-भाग तथा ऊँचाई चारसे भाजित और तीनसे गुणित, राजू मात्र है ॥२६०–२६१॥

विशेषार्थ :—मन्दराकृतिमे नन्दन और सौमनसवनोके ऊपरी भागको समविस्तार करनेके लिए दोनो पार्श्वभागोमे चार त्रिकोण काटे गये है, उनमे प्रत्येकका विस्तार ($\frac{७ \times ३}{९८} = \frac{२१}{९८} =$) $\frac{३}{१४}$ राजू और ऊँचाई $\frac{३}{४}$ राजू है । इन चारो त्रिकोणोमेसे तीन त्रिकोणोको सीधा और एक त्रिकोणको पलटकर उल्टा रखनेसे पाण्डुकवनके ऊपर चूलिका बन जाती है, जिसका भूमि विस्तार $\frac{९}{१४}$ राजू, मुख $\frac{३}{१४}$ राजू, ऊँचाई $\frac{३}{४}$ राजू और वेध ७ राजू है ।

सत्तट्ठाणे रज्जू उड्ढुड्ढं एक्कवीस-पविभत्तं ।
ठविदूण वास-हेदुं गुणगारं तेसु साहेमि ॥२६२॥

---

१ द व तदाण । २ द. विहत्ता रिरे तिण्णि गुणा । ३. द. क. ज. ठ चउतदकारणखडिद, व चउदत्तकारणखडिद । ४ द. व तदा ।

[1]पंचुत्तर-एक्कसयं सत्ताणउदी तियधिय-णउदीओ ।
चउसीदी तेवण्णा चउदालं एक्कवीस गुणगारा ।।२६३।।

ज४७ १०५ । ज४७ ९७ । ज४७ ९३ । ज४७ ८४ । ज४७ ५३ । ज४७ ४४ । ज४७ २१ ।

अर्थ :—सातो स्थानोमे ऊपर-ऊपर इक्कीससे विभक्त राजू रखकर उनमे विस्तारके निमित्तभूत गुणकार कहता हू ।।२६२।।

अर्थ :—एकसौ पाँच, सत्तानवे, तेरानवे, चौरासी, तिरेपन, चवालीस और इक्कीस उपर्युक्त सात स्थानोमे ये सात गुणकार हे ।।२६३।।

विशेषार्थ :—इस मन्दराकृतिक्षेत्रका भूमि विस्तार ५ राजू, मुख विस्तार १ राजू और ऊँचाई ७ राजू है । भूमिमेसे मुख घटा देनेपर (५—१)=४ राजू हानि ७ राजू ऊँचाई परहोती है अर्थात् प्रत्येक एक-एक राजूकी ऊँचाईपर $\frac{४}{७}$ राजूकी हानि प्राप्त होती हे । इस हानि-चयको अपनी-अपनी ऊँचाईसे गुणित करनेपर हानिका प्रमाण प्राप्त हो जाता है । उस हानिको पूर्व-पूर्व विस्तारमेसे घटा देनेपर ऊपर-ऊपरका विस्तार प्राप्त होता जाता है । यथा —

तलभाग ५ राजू अर्थात् $\frac{१०५}{२१}$ राजू, $\frac{२}{३}$ राजूकी ऊँचाईपर $\frac{९७}{२१}$ राजू, $\frac{१}{३}$ राजूकी ऊँचाईपर $\frac{९३}{२१}$ राजू, $\frac{३}{४}$ राजूकी ऊँचाईपर $\frac{८४}{२१}$ राजू, $\frac{३१}{१२}$ राजूकी ऊँचाईपर $\frac{५३}{२१}$ राजू, $\frac{३}{४}$ राजूकी ऊँचाईपर $\frac{४४}{२१}$ राजू और $\frac{२३}{१२}$ राजूकी ऊँचाईपर $\frac{२१}{२१}$ राजू विस्तार है ।

उड्ढुड्ढं रज्जु-घणं सत्तसु ठाणेसु ठविय हेट्ठादो ।
विदफल-जाणणट्ठं वोच्छं गुणगार-हाराणि ।।२६४।।
दुजुदाणि दुसयाणि पंचाणउदी य एक्कवीसं च ।
सत्तत्तालजुदाणि बादाल-सयाणि एक्करसं ।।२६५।।
पणणवदियधिय-चउदस-सयाणि णव इय हवंति गुणगारा ।
हारा णव णव एक्कं बाहत्तरि इगि विहत्तरी चउरो ।।२६६।।

$\frac{\equiv}{३४३}$ $\frac{२०२}{९}$ | $\frac{\equiv}{३४३}$ $\frac{९५}{९}$ | $\frac{\equiv}{३४३}$ $\frac{२१}{१}$ | $\frac{\equiv}{३४३}$ $\frac{४२४७}{७२}$ | $\frac{\equiv}{३४३}$ $\frac{११}{१}$ |

$\frac{\equiv}{३४३}$ $\frac{१४९५}{७२}$ | $\frac{\equiv}{३४३}$ $\frac{९}{४}$

१ ज क ठ व पचुत्त एक्कसय ।

अर्थ :—सात स्थानोमे नीचेसे ऊपर-ऊपर घनराजूको रखकर घनफल जाननेके लिए गुणकार और भागहार कहता हू ॥२६४॥

अर्थ :—इन सात स्थानोमे क्रमश दोसौ दो, पचानबे, इक्कीस, बयालीससौ सैतालीस, ग्यारह, चौदहसौ पचानबे और नौ, ये सात गुणकार है तथा भागहार यहाँ नौ, नौ, एक, बहत्तर, एक, बहत्तर और चार है ॥२६५-२६६॥

विशेषार्थ :—"मुखभूमिजोगदले-पद-हृदे" सूत्रानुसार प्रत्येक खण्डकी भूमि और मुखको जोडकर, आधा करके उसमे अपनी-अपनी ऊँचाई और ७ राजू वेधसे गुणित करनेपर प्रत्येक खण्डका घनफल प्राप्त हो जाता है । यथा —

खण्ड	भूमि +	मुख =	योग ×	अर्धकिया ×	ऊँ ×	मोटाई =	घनफल
प्रथम खण्ड	$\frac{१०५}{२१}$ +	$\frac{९७}{२१}$ =	$\frac{२०२}{२१}$ ×	$\frac{१}{२}$ ×	$\frac{२}{३}$ ×	$\frac{७}{१}$ =	$\frac{२०२}{९}$ घनराजू घनफल
द्वितीय खण्ड	$\frac{९७}{२१}$ +	$\frac{९३}{२१}$ =	$\frac{१९०}{२१}$ ×	$\frac{१}{२}$ ×	$\frac{१}{३}$ ×	$\frac{७}{१}$ =	$\frac{९५}{९}$ घनराजू घनफल
तृतीय खण्ड	$\frac{८४}{२१}$ +	$\frac{८४}{२१}$ =	$\frac{१६८}{२१}$ ×	$\frac{१}{२}$ ×	$\frac{३}{४}$ ×	$\frac{७}{१}$ =	$\frac{२१}{१}$ घनराजू घनफल
चतुर्थ खण्ड	$\frac{८४}{२१}$ +	$\frac{५३}{२१}$ =	$\frac{१३७}{२१}$ ×	$\frac{१}{२}$ ×	$\frac{३१}{१२}$ ×	$\frac{७}{१}$ =	$\frac{४२४७}{७२}$ घनराजू घनफल
पचम खण्ड	$\frac{४४}{२१}$ +	$\frac{४४}{२१}$ =	$\frac{८८}{२१}$ ×	$\frac{१}{२}$ ×	$\frac{३}{४}$ ×	$\frac{७}{१}$ =	$\frac{११}{१}$ घनराजू घनफल
षष्ठ खण्ड	$\frac{४४}{२१}$ +	$\frac{२१}{२१}$ =	$\frac{६५}{२१}$ ×	$\frac{१}{२}$ ×	$\frac{२३}{१२}$ ×	$\frac{७}{१}$ =	$\frac{१४९५}{७२}$ घनराजू घनफल
सप्तम खण्ड (चूलिका)	$\frac{९}{१४}$ +	$\frac{३}{१४}$ =	$\frac{१२}{१४}$ ×	$\frac{१}{२}$ ×	$\frac{३}{४}$ ×	$\frac{७}{१}$ =	$\frac{९}{४}$ घनराजू घनफल

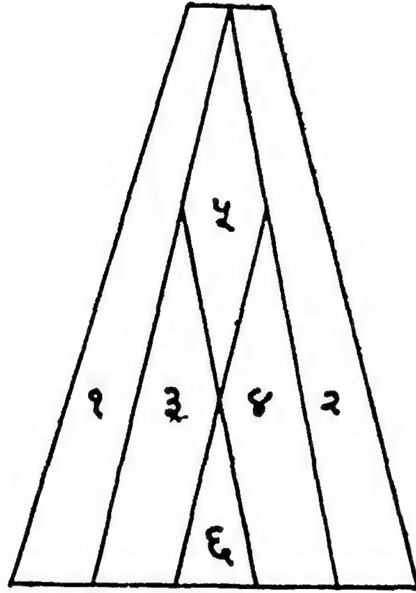
सर्वयोग—$\frac{२०२}{९}+\frac{९५}{९}+\frac{२१}{१}+\frac{४२४७}{७२}+\frac{११}{१}+\frac{१४९५}{७२}+\frac{९}{४}=$

$$\frac{१६१६+७६०+१५१२+४२४७+७९२+१४९५+१६२}{७२}=\frac{१०५८४}{७२}=१४७$$

घनराजू मन्दर-ऊर्ध्वलोकका घनफल है ।

७ दूष्य ऊर्ध्वलोकका घनफल—

५ राजू भूमि, १ राजू मुख और ७ राजू ऊँचाई प्रमाण वाले ऊर्ध्वलोकमे दूष्यकी रचनाकर घनफल प्राप्त करना है, जिसकी आकृति इसप्रकार है । यथा —



दूष्य क्षेत्रका घनफल एव गिरि-कटकक्षेत्र कहनेकी प्रतिज्ञा

चोदस-भजिदो तिउणो विंदफलं बाहिरोभय-भुजाणं ।
लोग्रो दुगुणो चोद्दस-हिदो य अब्भंतरम्मि दूसस्स ।।२६७।।

$\left| \frac{\equiv}{१४} ३ \right| \frac{\equiv}{१४} २ \left| \right.$

तस्स य जव-खेत्ताणं लोग्रो चोद्दस-हिदो-दु-विंदफलं ।
एत्तो [1]गिरिगड-खंडं वोच्छामो आणुपुव्वीए ।।२६८।।

$\left| \frac{\equiv}{१४} \right|$

अर्थ :—दूष्यक्षेत्रकी बाहरी उभय भुजाओंका घनफल चौदहसे भाजित और तीनसे गुणित लोकप्रमाण, तथा अभ्यन्तर दोनो भुजाओंका घनफल चौदहसे भाजित और दोसे गुणित लोकप्रमाण है ।।२६७।।

---

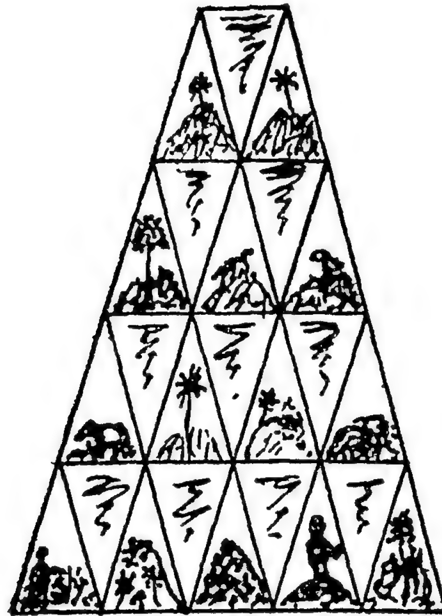
१ द ब ज क ठ गिरिविडखड ।

अर्थ :—इस दूष्यक्षेत्रके यव-क्षेत्रोका घनफल चौदहसे भाजित लोकप्रमाण है। अब यहाँसे आगे अनुक्रमसे गिरिकटक खण्डका वर्णन करते है ।।२६८।।

विशेषार्थ :—इस दूष्यक्षेत्रकी बाहरी उभय भुजाओ अर्थात् क्षेत्र सख्या १ और २ का घनफल —[(भूमि १ राजू + मुख $\frac{१}{२}$ रा० = $\frac{३}{२}$) × $\frac{१}{२}$ × $\frac{७}{१}$ × $\frac{७}{१}$ × $\frac{२}{१}$] = $\frac{१४७}{२}$ घनराजू है। अभ्यन्तर उभय भुजाओ अर्थात् क्षेत्र सख्या ३ और ४ का घनफल [ऊँचाईमे भूमि ($\frac{१४}{३}$ + $\frac{७}{३}$ मुख = $\frac{२१}{३}$) × $\frac{१}{२}$ × $\frac{१}{१}$ × $\frac{७}{१}$ × $\frac{२}{१}$] = ४९ घनराजू है। डेढ यवो अर्थात् क्षेत्र सख्या ५ और ६ का घनफल [(भूमि १ रा० + मुख० = $\frac{१}{१}$) × $\frac{१}{२}$ × $\frac{१४}{३}$ × $\frac{७}{१}$ × $\frac{३}{२}$] = $\frac{४९}{२}$ घनराजू है। इसप्रकार सम्पूर्ण $\frac{१४७}{२}$ + $\frac{४९}{१}$ + $\frac{४९}{२}$ = $\frac{१४७+९८+४९}{२}$ = $\frac{२९४}{२}$ = १४७ घनराजू दूष्यऊर्ध्वलोकका घनफल है।

८ गिरि-कटक ऊर्ध्वलोकका घनफल :—

भूमि ५ राजू, मुख १ राजू और ७ राजू ऊँचाईवाले ऊर्ध्वलोकमे गिरिकटककी रचना करके घनफल निकाला गया है। इसकी आकृति इसप्रकार है :—



गिरि-कटक ऊर्ध्वलोकका घनफल

छप्पण्ण-हिदो लोओ एक्कस्सि [1]गिरिगडम्मि विंदफलं ।
तं चउवीसप्पहदं सत्त-हिदो ति-गुणिदो लोओ ।।२६९।।

| $\frac{\equiv}{५६}$ | $\frac{\equiv}{७}$ ३ |

अर्थ :—एक गिरि-कटकका घनफल छप्पनसे भाजित लोकप्रमाण है । इसको चौवीससे गुणा करनेपर सातसे भाजित और तीनसे गुणित लोकप्रमाण सम्पूर्ण गिरि-कटक क्षेत्रका घनफल आता है ।।२६९।।

विशेषार्थ —उपर्युक्त आकृतिमे १४ गिरि और १० कटक वने है, जिसमेसे प्रत्येक गिरि एव कटककी भूमि १ राजू, मुख ०, उत्सेध $\frac{७}{४}$ राजू और वेध ७ राजू है, अतः [(१+०)=$\frac{१}{१}$]×$\frac{१}{२}$×$\frac{७}{४}$×$\frac{७}{१}$=$\frac{४९}{८}$ घनराजू घनफल एक गिरि या एक कटकका है । लोकको ५६ से भाजित करनेपर भी ($\frac{३४३}{५६}$) $\frac{४९}{८}$ ही प्राप्त होता है, इसलिए गाथामे एक गिरि या कटकका घनफल छप्पनसे भाजित लोकप्रमाण कहा है । क्योकि एक गिरिका घनफल $\frac{४९}{८}$ घनराजू है अत १४ गिरिका ($\frac{४९}{८}$×$\frac{१४}{१}$)= $\frac{३४३}{४}$ अर्थात् ८५$\frac{३}{४}$ घनराजू घनफल हुआ ।

इसीप्रकार जव एक कटकका घनफल $\frac{४९}{८}$ घनराजू है अत १० कटकोका ($\frac{४९}{८}$×$\frac{१०}{१}$)= $\frac{२४५}{४}$ अर्थात् ६१$\frac{१}{४}$ घनराजू घनफल हुआ । इन दोनोका योगकर देनेपर (८५$\frac{३}{४}$+६१$\frac{१}{४}$)=१४७ घनराजू घनफल सम्पूर्ण गिरिकटक ऊर्ध्वलोकका प्राप्त होता है । लोक (३४३) को ७ से भाजितकर तीनसे गुणा करनेपर भी (३४३—७=४९)×३=१४७ घनराजू ही आते है, इसीलिए गाथामे सातसे भाजित और तीनसे गुणित लोकप्रमाण सम्पूर्ण गिरिकटक क्षेत्रका घनफल कहा गया है ।

वातवलयके आकार कहनेकी प्रतिज्ञा

अट्ठ-विहप्पं साहिय सामण्णं हेट्ठ-उड्ढ-होदि जयं ।
एण्हि साहेमि पुढ संठाणं वादवलयाणं ।।२७०।।

अर्थ :—सामान्य, अध और ऊर्ध्वके भेदसे जो तीनप्रकारका जग अर्थात् लोक कहा गया है, उसे आठप्रकारसे कहकर अब वातवलयोके पृथक्-पृथक् आकारका वर्णन करता हू ।।२७०।।

---

१ ज क ठ गिरिगदम्मि ।

लोकको परिवेष्ठित करनेवाली वायुका स्वरूप

गोमुत्त-मुग्ग-वण्णा [1]घणोदधी तह घणाणिलो वाऊ ।
तणु-वादो बहु-वण्णो रुक्खस्स तयं व वलय-तियं ॥२७१॥

पढमो लोयाधारो घणोवही इह घणाणिलो तत्तो ।
तप्परदो तणुवादो अंतम्मि णहं णिआधारं ॥२७२॥

अर्थ :—गोमूत्रके सदृश वर्णवाला घनोदधि, मूँगके सदृश वर्णवाला घनवात तथा अनेक वर्णवाला तनुवात इसप्रकारके ये तीनो वातवलय वृक्षकी त्वचाके सदृश (लोकको घेरे हुए) है। इनमे से प्रथम घनोदधिवातवलय लोकका आधारभूत है। उसके पश्चात् घनवातवलय, उसके-पश्चात् तनुवातवलय और फिर अन्तमे निजाधार आकाश है ॥२७१-२७२॥

वातवलयोके बाहल्य (मोटाई) का प्रमाण

जोयण-वीस-सहस्सा बहलं तम्मारुदाण पत्तेक्कं ।
अट्ठ-खिदीणं हेट्ठे लोअ-तले उवरि जाव इगि-रज्जू ॥२७३॥

२०००० । २०००० । २०००० ।

अर्थ :— आठ पृथ्वियोके नीचे, लोकके तल-भागमे एव एक राजूकी ऊँचाई तक उन वायु-मण्डलोमेसे प्रत्येककी मोटाई बीस हजार योजन प्रमाण है ॥२७३॥

विशेषार्थ :—आठो भूमियोके नीचे, लोकाकाशके अधोभागमे एव दोनो पार्श्वभागोमे नीचेसे एक राजू ऊँचाई पर्यन्त तीनो वातवलय बीस-बीस हजार योजन मोटे है ।

सग-पण-चउ-जोयणयं [2]सत्तम-णारयम्मि पुहवि-पणधीए[3] ।
पंच-चउ-तिय-पमाणं तिरीय-खेत्तस्य पणिधीए ॥२७४॥

। ७ । ५ । ४ । ५ । ४ । ३ ।

सग-पंच-चउ-समाणा पणिधीए होंति बम्ह-कप्पस्स ।
पण-चउ-तिय-जोयणया उवरिम-लोयस्स अंतम्मि ॥२७५॥

। ७ । ५ । ४ । ५ । ४ । ३ ।

---

१ द ज ठ घणदधि । २ द ज सत्तमणयमि, ब सत्तमसारयम्मि । ३ द पणदीए, ब पणधीए ।

अर्थ :—सातवे नरकमे पृथिवीके पार्श्वभागमे क्रमशः इन तीनो वातवलयोकी मोटाई सात, पाच और चार योजन तथा इसके ऊपर तिर्यग्लोक (मध्यलोक) के पार्श्वभागमे पाँच, चार और तीन योजन प्रमाण है ।।२७४।।

अर्थ :—इसके आगे तीनो वायुओकी मोटाई ब्रह्मस्वर्गके पार्श्वभागमे क्रमश सात, पाँच और चार योजन प्रमाण तथा ऊर्ध्वलोकके अन्त (पार्श्वभाग) मे पाच, चार और तीन योजन प्रमाण है ।।२७५।।

विशेषार्थ :—दोनो पार्श्वभागोमे एक राजूके ऊपर सप्तमपृथिवीके निकट घनोदधिवातवलय सात योजन, घनवातवलय पाँच योजन और तनुवातवलय चार योजन मोटाईवाले है। इस सप्तम पृथिवीके ऊपर क्रमश घटते हुए तिर्यग्लोकके समीप तीनो वातवलय क्रमश पाँच, चार और तीन योजन बाहल्य वाले तथा यहाँसे ब्रह्मलोक पर्यन्त क्रमश बढते हुए सात, पाँच और चार योजन बाहल्य वाले हो जाते है तथा ब्रह्मलोकके क्रमानुसार हीन होते हुए तीनो वातवलय ऊर्ध्वलोकके निकट तिर्यग्लोक सदृश पाँच, चार और तीन योजन बाहल्य वाले हो जाते है।

कोस-दुगमेक्क-कोसं किंचूणेक्कं च लोय-सिहरम्मि ।
ऊण-पमाणं दंडा चउस्सया पंच-वीस-जुदा ।।२७६।।

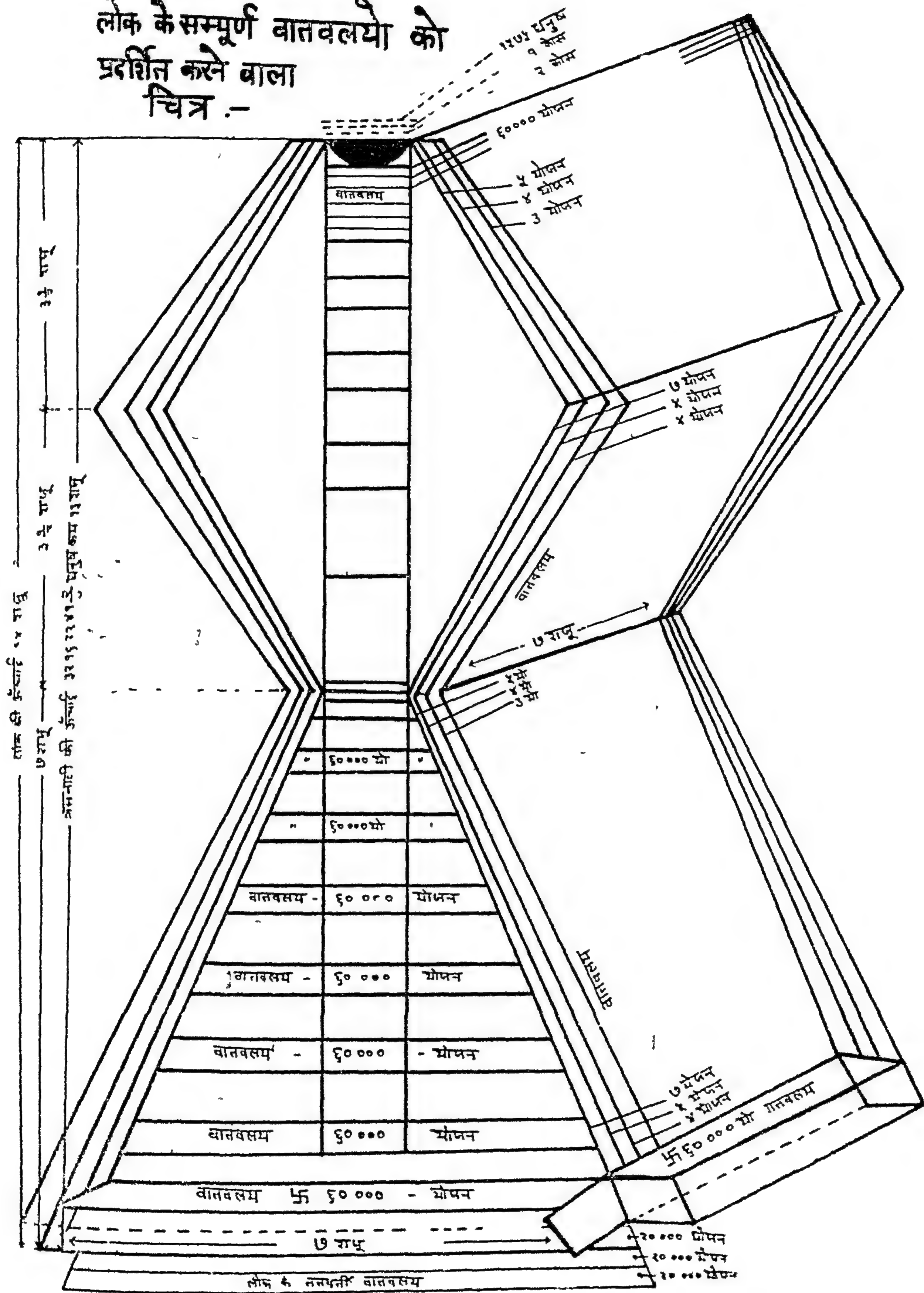
। २ को० । १ को० । १५७५ दड ।

अर्थ :—लोकके शिखरपर उक्त तीनो वातवलयोका बाहल्य क्रमश दो कोस, एक कोस और कुछ कम एक कोस है। यहाँ तनुवातवलयकी मोटाई जो एक कोससे कुछ कम बतलाई है, उस कमीका प्रमाण चारसौ पच्चीस धनुप है ।।२७६।।

विशेषार्थ :—लोकके अग्रभागपर घनोदधिवातवलयकी मोटाई २ कोस, घनवातवलयकी एक कोस और तनुवातवलयकी ४२५ धनुप कम एक कोस अर्थात् १५७५ धनुप प्रमाण है।

लोकके सम्पूर्ण वातवलयोको प्रदर्शित करनेवाला चित्र

[चित्र अगले पृष्ठ पर देखिये]



लोक के सम्पूर्ण वातवलयो को
प्रदर्शित करने वाला
चित्र :-
१२०५ धनुष
१ कोस
२ कोस
६०००० योजन
५ योजन
४ योजन
3 योजन
वातवलय
३½ राजू
७ योजन
५ योजन
४ योजन
वातवलय
७ राजू
लोक की ऊँचाई १४ राजू
६०००० यो
वातवलय - ६० ००० योजन
वातवलय - ६० ००० योजन
वातवलय - ६० ००० - योजन
वातवलय ६० ००० योजन
वातवलय ६० ००० - योजन
७ योजन
५ योजन
४ योजन
६० ००० यो वातवलय
७ राजू
२०००० योजन
२०००० योजन
२०००० योजन
लोक के तलवर्ती वातवलय

एक राजू पर होने वाली हानि-वृद्धिका प्रमाण

तिरियक्खेत्तप्पणिधिं गदस्स पवणत्तयस्स बहलत्तं ।
मेलिय [1]सत्तम-पुढवी-पणिधीगय-मरुद-बहलम्मि ।।२७७।।

तं सोधिदूण तत्तो भजिदव्वं छप्पमाण-रज्जूहि ।
लद्धं पडिप्पदेसं जायंते हाणि-वड्ढीओ ।।२७८।।

। १६ । १२ । $\frac{४}{६}$ ।[2]

अर्थ :—तिर्यक्क्षेत्र (मध्यलोक) के पार्श्वभागमे स्थित तीनो वायुओके बाहल्यको मिलाकर जो योगफल प्राप्त हो, उसको सातवी पृथिवीके पार्श्वभागमे स्थित वायुओके बाहल्यमेसे घटाकर शेषमे छह प्रमाण राजुओका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतनी सातवी पृथिवीसे लेकर मध्यलोक पर्यन्त प्रत्येक प्रदेश क्रमश एक राजूपर वायुकी हानि और वृद्धि होती है ।।२७७-२७८।।

विशेषार्थ :—सप्तम पृथिवीके निकट तीनो पवनोका बाहल्य (७+५+४)=१६ योजन है, यह भूमि है । तथा तिर्यग्लोकके निकट (५+४+३)=१२ योजन है, यह मुख है । भूमिमेसे मुख घटानेपर (१६ — १२)=४ योजन अवशेष रहे । सातवी पृथिवीसे तिर्यग्लोक ६ राजू ऊँचा है, अत अवशेष रहे ४ योजनोमे ६ का भाग देनेपर $\frac{४}{६}$ योजन प्रतिप्रदेश क्रमश एक राजूपर होने वाली हानिका प्रमाण प्राप्त हुआ ।

पार्श्वभागोमे वातवलयोका बाहल्य

अट्ठ-छ-चउ-दुगदेयं तालं तालट्ठ-तीस-छत्तीसं ।
तिय-भजिदा हेट्ठादो मरु-बहलं सयल-पासेसु ।।२७९।।

। $\frac{४८}{3}$ । $\frac{४६}{3}$ । $\frac{४४}{3}$ । $\frac{४२}{3}$ । $\frac{४०}{3}$ । $\frac{३८}{3}$ । $\frac{३६}{3}$ ।

अर्थ :—अडतालीस, छयालीस, चवालीस, बयालीस, चालीस, अडतीस और छत्तीसमे तीनका भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उतना क्रमश नीचेसे लेकर सब (सात पृथ्वियोके) पार्श्वभागोमे वातवलयोका बाहल्य है ।।२७९।।

---

१ द ब. क ज ठ सट्ठमपोढवी° । २ द. १२।४।१० । ज ठ १२।४।७ । क १२।४।६।

विशेषार्थ :— सातवी पृथिवीके समीप तीनो-पवनोका बाहल्य $\frac{४८}{३}$ अर्थात् १६ योजन है ।

छठवी	पृथिवीके	समीप	तीनो-पवनोका	बाहल्य	$\frac{४७}{३}$	अर्थात्	$१५\frac{२}{३}$	यो०	है ।
पाँचवी	,,	,,	,,	,,	$\frac{४४}{३}$	,,	$१४\frac{२}{३}$	,,	,,
चौथी	,,	,,	,,	,,	$\frac{४२}{३}$	,,	१४	,,	,,
तीसरी	,,	,,	,,	,,	$\frac{४०}{३}$	,,	$१३\frac{१}{३}$	,,	,,
दूसरी	,,	,,	,,	,,	$\frac{३८}{३}$	,,	$१२\frac{२}{३}$	,,	,,
पहली	,,	,,	,,	,,	$\frac{३६}{३}$	,,	१२	,,	,,

वातमण्डलकी मोटाई प्राप्त करनेका विधान

उड्ढ-जगे खलु वड्ढी इगि-सेढी-भजिद-अट्ठ-जोयणया[1] ।
एदं इच्छप्पहदं सोहिय मेलिज्ज भूमि-मुहे ॥२८०॥

८
—

अर्थ —ऊर्ध्वलोकमे निश्चयसे एक जगच्छ्रेणीसे भाजित आठ योजन प्रमाण वृद्धि है । इस वृद्धि प्रमाणको इच्छा राशिसे गुणित करनेपर जो राशि उत्पन्न हो, उसे भूमिमेसे कम कर देना चाहिए और मुखमे मिला देना चाहिए । (ऐसा करनेसे ऊर्ध्वलोकमे अभीष्ट स्थानके वायुमण्डलोकी मोटाईका प्रमाण निकल आता है) ॥२८०॥

विशेषार्थ :— ऊर्ध्वलोकमे वृद्धिका प्रमाण $\frac{८}{७}$ योजन है । इसे इच्छा अर्थात् अपनी अपनी ऊँचाईसे गुणितकर, लब्ध राशिको भूमिमेसे घटाने और मुखमे जोड़ देनेसे इच्छित स्थानके वायु-मण्डलकी मोटाईका प्रमाण निकल आता है । यथा—जब $३\frac{१}{२}$ राजूपर ४ राजूकी वृद्धि है, तब १ राजूपर $\frac{८}{७}$ राजूकी वृद्धि प्राप्त हुई । यहाँ ब्रह्मलोकके समीप वायु १६ योजन मोटी है । सानत्कुमार-माहेन्द्रके समीप वायुकी मोटाई प्राप्त करना है । यहाँ १६ योजन भूमि है । यह युगल ब्रह्मलोकसे $\frac{१}{२}$ राजू नीचे है, यहाँ $\frac{१}{२}$ राजू इच्छा राशि है, अत वृद्धिके प्रमाण $\frac{८}{७}$ राजूमे इच्छा राशि $\frac{१}{२}$ राजूका गुणा कर, गुणनफल ($\frac{८}{७}\times\frac{१}{२}=\frac{४}{७}$) को १६ राजू भूमिमेसे घटानेपर ($१६-\frac{४}{७}$) $=१५\frac{३}{७}$ राजू मोटाई प्राप्त होती है । मुखकी अपेक्षा दूसरे युगलकी ऊँचाई ३ राजू है, अत ($\frac{८}{७}\times\frac{३}{१}$) $=\frac{२४}{७}$ तथा $१२+\frac{२४}{७}=१५\frac{३}{७}$ राजू प्राप्त हुए ।

---

१ द. ज ठ जोयणसया ।

मेरुतलमे ऊपर वातवलयोकी मोटाईका प्रमाण

मेरु-तलादो उवरिं कप्पाणं सिद्ध-खेत्त-पणिधीए ।
चउसीदी छण्णउदी अडजुद-सय बारसुत्तरं च सयं ॥२८१॥

एत्तो चउ-चउ-हीणं सत्तसु ठाणेसु ठविय पत्तेक्कं ।
सत्त-विहत्ते होदि हु मारुद-वलयाण बहलत्तं ॥२८२॥

$\frac{८४}{७}$	$\frac{९६}{७}$	$\frac{१०८}{७}$	$\frac{११२}{७}$	$\frac{१०८}{७}$	$\frac{१०४}{७}$	$\frac{१००}{७}$	$\frac{९६}{७}$	$\frac{९२}{७}$	$\frac{८८}{७}$	$\frac{८४}{७}$

अर्थ :—मेरुतलसे ऊपर सर्वकल्प तथा सिद्धक्षेत्रके पार्श्वभागमे चौरासी, छ्यानवे, एकसौ आठ, एकसौ बारह और फिर इसके आगे सात स्थानोमे उक्त एकसौ बारहमेसे उत्तरोत्तर चार-चार कम सख्याको रखकर प्रत्येकमे सातका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना वातवलयोकी मोटाईका प्रमाण है ॥२८१-२८२॥

विशेषार्थ —जव $३\frac{१}{२}$ राजूकी ऊँचाईपर ४ राजूकी वृद्धि है तव $१\frac{१}{२}$ राजू और $\frac{१}{२}$ राजूकी ऊँचाईपर कितनी वृद्धि होगी ? इसप्रकार दो त्रैराशिक करनेपर वृद्धिका प्रमाण क्रमश $\frac{१२}{७}$ राजू और $\frac{४}{७}$ राजू प्राप्त होता है ।

मेरुतलसे ऊपर सौधर्म युगलके अधोभागमे वायुका वाहुल्य $\frac{८४}{७}$ योजन, सौधर्मैशानके उपरिम भागमे $\frac{८४}{७}+\frac{१२}{७}=\frac{९६}{७}$ योजन और सानत्कुमार-माहेन्द्रके निकट $\frac{९६}{७}+\frac{१२}{७}=\frac{१०८}{७}$ योजन है । अब प्रत्येक युगलकी ऊँचाई आधा-आधा राजू है, जिसकी वृद्धि एव हानिका प्रमाण $\frac{४}{७}$ राजू है, अत ब्र० ब्रह्मो० के निकट $\frac{१०८}{७}+\frac{४}{७}=\frac{११२}{७}$ योजन, ला० का० के निकट $\frac{११२}{७}-\frac{४}{७}=\frac{१०८}{७}$ योजन, शु० महाशुक्रके समीप $\frac{१०८}{७}-\frac{४}{७}=\frac{१०४}{७}$ यो०, सतार सह० के समीप $\frac{१०४}{७}-\frac{४}{७}=\frac{१००}{७}$ योजन, आ० प्रा० के समीप $\frac{१००}{७}-\frac{४}{७}=\frac{९६}{७}$ योजन आ० अ० के समीप $\frac{९६}{७}-\frac{४}{७}=\frac{९२}{७}$ यो०, ग्रैवेयकादिके समीप $\frac{९२}{७}-\frac{४}{७}=\frac{८८}{७}$ योजन और सिद्धक्षेत्रके समीप $\frac{८८}{७}-\frac{४}{७}=\frac{८४}{७}$ अर्थात् १२ योजनकी मोटाई है ।

पार्श्वभागोमे तथा लोकशिखरपर पवनोकी मोटाई

तीसं इगिदाल-दलं कोसा तिय-भाजिदा य उणवण्णा ।
सत्तम-खिदि-पणिधीए बम्हजुगे वाउ-बहलत्तं ॥२८३॥

घनो०	घ०	तनु०
३०	$\frac{४१}{२}$	$\frac{४९}{३}$

दोछब्बारसभागब्भहिओ कोसो कमेण वाउ-घणं ।
लोय-उवरिम्मि एवं लोय-विभायम्मि पण्णत्तं ।।२८४।।

। $१\frac{१}{२}$ । $१\frac{१}{६}$ । $१\frac{१}{१२}$ । पाठान्तर[1]

अर्थ :—सातवी पृथिवी और ब्रह्मयुगलके पार्श्वभागमे तीनो वायुओकी मोटाई क्रमश तीस, इकतालीसके आधे और तीनसे भाजित उनचास कोस है ।।२८३।।

अर्थ :—लोकके ऊपर अर्थात् लोकशिखरपर तीनो वातवलयोकी मोटाई क्रमश दूसरे भागसे अधिक एक कोस, छठे भागसे अधिक एक कोस और बारहवे भागसे अधिक एक कोस है, ऐसा "लोकविभाग मे" कहा गया है ।।२८४।। पाठान्तर

विशेषार्थ :—लोकविभागानुसार सप्तम पृथिवी और ब्रह्मयुगलके समीप घनोदधिवात ३० कोस, घनवात $\frac{४१}{२}$ कोस और तनुवात $\frac{४९}{३}$ कोस है तथा लोकशिखरपर घनोदधिवातकी मोटाई $१\frac{१}{२}$ कोस, घनवातकी $१\frac{१}{६}$ कोस और तनुवातकी मोटाई $१\frac{१}{१२}$ कोस है ।

वायुरुद्धक्षेत्र आदिके घनफलोके निरूपणकी प्रतिज्ञा

[2]वादव-रुद्धक्खेत्ते विंदफलं तह य अट्ठ-पुढवीए ।
सुद्धायास-खिदीणं[3] लव-मेत्तं वत्तइस्सामो ।।२८५।।

अर्थ :—यहाँ वायुसे रोके गये क्षेत्र, आठ पृथिवियाँ और शुद्ध-आकाश-प्रदेशके घनफलको लवमात्र (सक्षेपमे) कहते है ।।२८५।।

वातावरुद्ध क्षेत्र निकालनेका विधान एव घनफल

संपहि लोग-पेरंत-ट्ठिद-वादवलय[4]-रुद्ध-खेत्ताणं आणयण[5] विधाणं उच्चदे—

लोगस्स तले [6]तिण्णि-वादाणं बहलं पत्तेक्कं वीस-सहस्सा य जोयणमेत्तं । [7]तं सव्वमेगट्ठं कदे सट्ठि-जोयण-सहस्स-बाहल्लं जगपदरं होदि ।

---

१. द. ब प्रत्यो 'पाठान्तर' इति पद २८०-२८१ गाथयोर्मध्य उपलभ्यते । २ द. वादरुद्ध, ब. वादवरुद्ध । ३. द ब. खिदिण । ४ द ब. क. ज. ठ. वादवलयरुधचित्ताण । ५. द. ब क ज ठ. याणयण । ६ द तिण्ण । ७. द क ज ठ त सम्मेगट्ठ, कदेगसट्ठि, ब तेसमेगट्ठ कदे वासट्ठि ।

णवरि दोसु वि अंतेसु सट्ठि-जोयण-सहस्स-उस्सेह-परिहाणि[1]-खेत्तेण ऊणं एदमजोएदूणं सट्ठि-सहस्स बाहल्लं जगपदरमिदि संकप्पिय तच्छेदूण पुढं ठवेदव्वं[2] ।= ६०००० ।

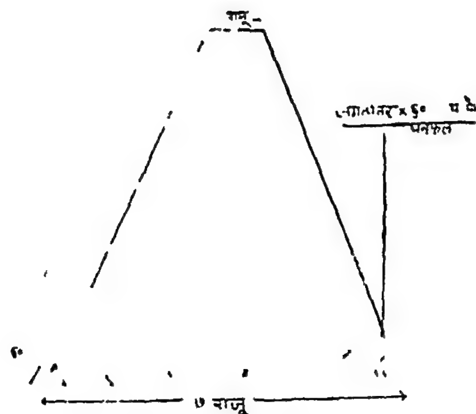
अर्थ —अब लोक-पर्यन्तमे स्थित वातवलयोसे रोके गये क्षेत्रोको निकालनेका विधान कहते है —

लोकके नीचे तीनो पवनोमे प्रत्येकका बाहल्य (मोटाई) बीस हजार योजन प्रमाण है। इन तीनो पवनोके बाहल्यको इकट्ठा करने पर साठ हजार योजन बाहल्य-प्रमाण जगत्प्रतर होता है ।

यहाँ मात्र इतनी विशेषता है कि लोकके दोनो ही अन्तो (पूर्व-पश्चिमके अन्तिम भागो) मे साठ हजार योजनकी ऊँचाई पर्यन्त क्षेत्र यद्यपि हानि-रूप है, फिर भी उसे न छोडकर 'साठ हजार योजन बाहल्य वाला जगत्प्रतर है' इसप्रकार सकल्पपूर्वक उसको छेदकर पृथक् स्थापित करना चाहिए । यो० ६००००×४६ ।

विशेषार्थ : लोकके नीचे तीनो-पवनोका बाहल्य (२०+२०+२०)=६० हजार योजन है । इनकी लम्बाई, चौडाई जगच्छ्रेणी प्रमाण है, अत जगच्छ्रेणीमे जगच्छ्रेणीका परस्पर गुणा करनेसे (जगच्छ्रेणी × जगच्छ्रेणी)=जगत्प्रतरकी प्राप्ति होती है ।

लोककी दक्षिणोत्तर चौड़ाई सर्वत्र जगच्छ्रेणी (७ राजू) प्रमाण है, किन्तु पूर्व-पश्चिम चौडाई ७ राजूसे कुछ कम है, फिर भी उसे गौणकर लोकके नीचे तीनो-पवनोसे अवरुद्ध क्षेत्रका घनफल=[७×७=४६ वर्ग राजू अर्थात् जगत्प्रतर]×६०००० योजन कहा गया है । यथा—



१ [परिहीण], २ द ब क. ज ठ पुढ ति दव्व ।

पुणो एग-रज्जुस्सेधेण सत्त-रज्जू-आयामेण सट्ठिजोयण सहस्स-बाहल्लेण दोसु पासेसु ठिद-वाद-खेत्तं बुद्धीए[1] पुध करिय जग-पदर-पमाणेण ठिवदे वीसुत्तर-सहस्साहिय-जोयण-लक्खस्स सत्त-भाग-बाहल्लं जग-पदरं होदि ।=$\frac{१२००००}{७}$ ।

अर्थ :—अनन्तर एक (१) राजू उत्सेध, सात राजू आयाम और साठ हजार योजन बाहल्य वाले वातवलयकी अपेक्षा दोनों पार्श्व-भागोंमें स्थित वात-क्षेत्रको बुद्धिसे पृथक् करके जगत्प्रतर प्रमाणसे सम्बद्ध करनेपर सातसे भाजित एक लाख बीस हजार योजन जगत्प्रतर होता है ।

विशेषार्थ :—अधोलोकके एक राजू ऊपरके पार्श्वभागोंमें स्थित पवनोंकी ऊँचाई एक-राजू, आयाम ७ राजू और मोटाई ६० हजार योजन है । इसका घनफल कृपया करनेसे ($\frac{१}{१}$ × $\frac{७}{१}$ × ६०००० योजन) = $\frac{४९}{१}$ × $\frac{६० \text{ हजार योजन}}{७}$ एक पार्श्वभागका घनफल प्राप्त होता है । दोनों पार्श्वभागोंका घनफल निकालने हेतु दोसे गुणित करनेपर ($\frac{४९}{१}$ × $\frac{६० \text{ हजार}}{७}$ × $\frac{२}{१}$) = ($\frac{४९}{१}$ अर्थात् जगत्प्रतर) × $\frac{१२००००}{७}$ योजन घनफल प्राप्त होता है । यथा –

तं पुव्विल्लखेत्तस्सुवरि ठिदे चालीस-जोयण-सहस्साहिय-पंचलक्खं [illegible] सत्त-भाग-बाहल्लं जग-पदरं होदि ।=$\frac{५४००००}{७}$ ।

---

१. द., ब., क., ज. [illegible]

अर्थ :—इसको पूर्वोक्त क्षेत्रके ऊपर स्थापित करनेपर पाचलाख चालीस हजार योजनके सातवेभाग बाहल्य प्रमाण जगत्प्रतर होता है ।

विशेषार्थ :—लोकके नीचे वातवलयका घनफल ४९ वर्ग राजू × ६०००० योजन था और दोनो पार्श्व भागोका ४९ वर्ग राजू × $\frac{१२००००}{७}$ योजन है । इन दोनोका योग करनेके लिए जगत्प्रतरके स्थानीय ४९ को छोडकर $\frac{६००००}{१} + \frac{१२००००}{७} = \frac{४२०००० + १२००००}{७} = \frac{५४००००}{७}$ योजन प्राप्त हुआ । इसे जगत्प्रतरसे युक्त करनेपर $\frac{४९ \times ५४००००}{७}$ योगफल प्राप्त हुआ ।

पुणो अवरासु दोसु दिसासु एग-रज्जुस्सेधेण तले सत्त-रज्जू-आयामेण[1] मुहे सत्त-भागाहिय-छ-रज्जु-रुंदत्तेण सट्ठि-जोयण-सहस्स-बाहल्लेण [2]ठिद-वाद-खेत्ते जग-पदर-पमाणेण कदे वीस-जोयण-सहस्साहिय-पंच-पंचासज्जोयण-लक्खाणं तेदालीस-तिसद-भाग-बाहल्लं जग-पदरं होदि । $= \frac{५५२००००}{३४३}$

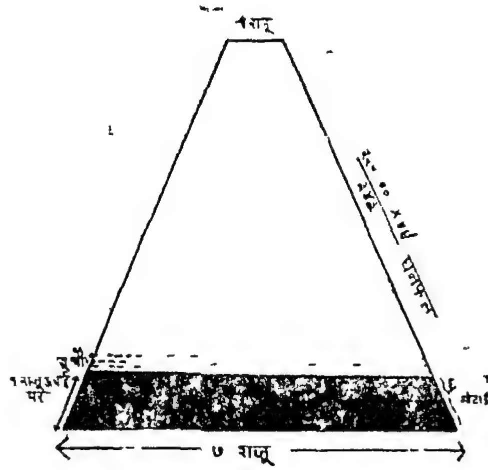
अर्थ —इसके आगे इतर दो-दिशाओ (दक्षिण और उत्तर) की अपेक्षा एक राजू उत्सेध-रूप, तलभागमे सात राजू आयामरूप, मुखमे सातवे-भागसे अधिक छह राजू विस्ताररूप और साठ हजार योजन बाहल्यरूप वायुमण्डलकी अपेक्षा स्थित वातक्षेत्रके जगत्प्रतर प्रमाणसे करनेपर पचपन लाख बीस हजार योजनके तीनसौ तैतालीसवे-भाग बाहल्यप्रमाण जगत्प्रतर होता है ।

विशेषार्थ —लोकके नीचेकी चौडाईका प्रमाण ७ राजू है, यह भूमि है, सातवी-पृथिवीके निकट लोककी चौडाईका प्रमाण ६$\frac{१}{७}$ राजू है, यह मुख है । लोकके नीचे सप्तम-पृथिवी-पर्यन्त ऊँचाई $\frac{४९}{४९}$ (१ राजू) है, तथा यहाँ पर तीनो-पवनोकी मोटाई ६० हजार योजन है । इन सबका घनफल इसप्रकार है :—

भूमि $\frac{७}{१} + \frac{४३}{७}$ मुख $= \frac{९२}{७}$, तथा घनफल $= \frac{९२}{७} \times \frac{१}{२} \times \frac{७}{१} \times \frac{४९}{४९}$ वर्ग राजू × $\frac{६००००}{१}$ योजन = ४९ वर्ग राजू × $\frac{५५२००००}{३४३}$ योजन घनफल प्राप्त हुआ । यथा—

[चित्र अगले पृष्ठ पर देखिये]

१ द आलियामेण । ज ठ आलियमण । २ द व क. ज ठ ठिदवादखेत्तेण ।



एदे[1] पुव्विल्ल-खेत्तस्सुवरिं पक्खित्ते एगूणवीस-लक्ख-असीदि-सहस्स-जोयणाहिय-तिण्हं कोडीणं तेदालीस-तिसद-भाग-बाहल्लं जग-पदरं होदि । = $\frac{३१९८००००}{३४३}$ ।

अर्थ :— इस उपर्युक्त घनफलके प्रमाणको पूर्वोक्त क्षेत्रके ऊपर रखनेपर तीन करोड, उन्नीस लाख, अस्सी हजार योजनके तीनसौ तैतालीसवे-भाग बाहल्य प्रमाण जगत्प्रतर होता है ।

विशेषार्थ :— पूर्वोक्त योगफल $\frac{४९ \times ५४००००}{७}$ था । लोककी एक राजू ऊँचाईपर दोनो पार्श्वभागोका घनफल $\frac{५५२०००० \times ४९}{३४३}$ प्राप्त हुआ । यहाँ दोनो जगह ४९ जगत्प्रतरके स्थानीय है, अतः योजन [($\frac{५४००००}{७}$ + $\frac{५५२००००}{३४३}$) = $\frac{३१९८००००}{३४३}$] × ४९ वर्ग राजू अर्थात् जगत्प्रतर × $\frac{३१९८००००}{३४३}$ घनफल प्राप्त हुआ ।

पार्श्वभागोका घनफल

पुणो सत्त-रज्जु-विक्खंभ-तेरह-रज्जु-आयाम-सोलह[2]-बारह- [—सोलसबारह—] जोयण-बाहल्लेण दोसु वि पासेसु ठिद-वाद-खेत्ते जग-पदर-पमाणेण कदे चउ-सट्ठि-सद-जोयणूण-अट्ठारह-सहस्स-जोयणाणं तेदालीस-तिसद-भाग-बाहल्लं जग-पदरमुप्पज्जदि । = $\frac{१७८३६}{३४३}$ ।

अर्थ :— इसके अनन्तर सात राजू विष्कम्भ, तेरह राजू आयाम तथा सोलह, बारह (सोलह एव बारह) योजन बाहल्यरूप अर्थात् सातवी पृथिवीके पार्श्वभागमे सोलह, मध्यलोकके

---

१ एद पुव्विल्ल । २ द सोलस ।

पार्श्वभागमे वारह (ब्रह्मस्वर्गके पार्श्वभागमे सोलह और सिद्धलोकके पार्श्वभागमे वारह) योजन बाहल्यरूप वातवलयकी अपेक्षा दोनो ही पार्श्वभागोमे स्थित वातक्षेत्रको जगत्प्रतर प्रमाणसे करनेपर एकसौ चौसठ योजन कम अठारह हजार योजनके तीनसौ तैतालीसवे-भाग बाहल्य प्रमाण जगत्प्रतर होता है ।

विशेषार्थ :—सप्तम पृथिवीसे सिद्धलोक पर्यन्त ऊँचाई १३ राजू, विष्कम्भ ७ राजू वातवलयोकी मोटाईका औसत (१६ + १२ = २८ − २ = १४), १४ योजन तथा पार्श्वभाग दो हे, अत १३ × ७ × १४ × २ = २५४८ प्राप्त हुए, इन्हे जगत्प्रतररूपसे करनेके लिए $\frac{२५४८}{१} \times \frac{३४३}{३४३}$ अर्थात् $\frac{१७८३६ \times ४९}{३४३}$ घनफल प्राप्त हुआ । ग्रन्थकारने इसे $= \frac{१७८३६}{३४३}$ रूपमे प्रस्तुत किया है ।

पुणो सत्त-भागाहिय-छ-रज्जु-मूल-विक्खंभेण छ-रज्जूच्छेहेण एग-रज्जु-मुहेण सोलह-बारह-जोयण-बाहल्लेण दोसु वि पासेसु ठिद-वाद-खेत्तं जगपदर-पमाणेण कदे बादालीस-जोयण-सदस्स[1] [2]तेदालीस-तिसद-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि । $= \frac{४२००}{३४३}$[3] ।

अर्थ :—पुन सातवेभागसे अधिक छह राजू मूलमे विस्ताररूप, छह राजू उत्सेधरूप, मुखमे एक राजू विस्ताररूप और सोलह-वारह योजन बाहल्यरूप (सातवी पृथिवी और मध्यलोकके पार्श्वभागमे) वातवलयकी अपेक्षा दोनो ही पार्श्वभागोमे स्थित वातक्षेत्रको जगत्प्रतरप्रमाणसे करनेपर बयालीस सौ योजनके तीनसौ तैतालीसवे-भाग बाहल्यप्रमाण जगत्प्रतर होता है ।

विशेषार्थ :—सप्तमपृथ्वीके निकट पवनोकी चौडाई ६$\frac{१}{७}$ अर्थात् $\frac{४३}{७}$ राजू है, यह भूमि है । तिर्यग्लोकके निकट पवनोकी चौडाई १ राजू अर्थात् $\frac{७}{७}$ राजू है, यह मुख है । सप्तमपृथिवीसे मध्य-लोक पर्यन्त पवनोकी ऊँचाई ६ राजू, मोटाई (१६ + १४ = २८ − २) = १४ राजू है तथा पार्श्वभाग दो है, अत [$\frac{४३}{७} + \frac{७}{७} = \frac{५०}{७}$] $\times \frac{१}{२} \times \frac{२}{१} \times \frac{१४}{१} \times \frac{६}{१} = ६००$ प्राप्त हुए, इन्हे जगत्प्रतरस्वरूप बनाने हेतु ३४३ से गुणित किया और ३४३ से ही भाजित किया । यथा—$\frac{६०० \times ३४३}{३४३}$ अर्थात् $= \frac{४२०० \times ४९}{३४३}$ घनफल प्राप्त हुआ । इसे ४९ वर्गराजू × $\frac{४२००}{३४३}$ योजन रूपमे प्राप्त किया जानेसे ग्रन्थकारने $= \frac{४२००}{३४३}$ रूपमे प्रस्तुत किया है ।

पुणो एग-पंच-एग-रज्जु-विक्खंभेण सत्त-रज्जूच्छेहेण बारह-सोलह-बारह-जोयण-बाहल्लेण उवरिम-दोसु वि पासेसु ठिद-वाद-खेत्तं [4]जगपदर-पमाणेण कदे अट्ठासीदि-समहिय-पंच-जोयण-सदाणं एगूणवण्णासभाग-बाहल्लं जगपदरं होदि । $= \frac{५८८}{४९}$ ।

---

१ द व सदा । २ द जोयणलक्खतेदालीससदभागहिवाहल्ल । ३ व. ४२००० ।
४ द जगदपदर° ।

अर्थ :—अनन्तर एक, पांच एव एक राजू विष्कम्भरूप (क्रमसे मध्यलोक, ब्रह्मस्वर्ग और सिद्धक्षेत्रके पार्श्वभागमे), सात राजू उत्सेध रूप और क्रमग. मध्यलोक, ब्रह्मस्वर्ग एव सिद्धलोकके पार्श्वभागमे वारह, सोलह और वारह योजन बाहल्यरूप वातवलयकी अपेक्षा ऊपर दोनो ही पार्श्व-भागोमे स्थित वातक्षेत्रको जगत्प्रतरप्रमाणसे करनेपर पाँचसौ अठासी योजनके एक कम पचासवे अर्थात् उनचासवे भाग वाहल्यप्रमाण जगत्प्रतर होता है ।

विशेषार्थ :—ऊर्ध्वलोक ब्रह्मस्वर्गके समीप पाँच राजू चौडा है यही भूमि है । तिर्यग्लोक एव सिद्धलोकके समीप १ योजन चौडा है यही मुख है । उत्सेध ७ राजू, तीनो पवनोका औसत १४ योजन और पार्श्वभाग दो है, अत भूमि ५+१ मुख=६÷२=३×७×१४×२=५८८ इसे जगत्प्रतर प्रमाण करनेपर $\frac{५८८ \times ४९}{४९}$ घनफल प्राप्त होता है । यह ४९ वर्ग राजू × $\frac{५८८}{४९}$ योजन रूपमे होनेसे ग्रन्थकारने =$\frac{५८८}{४९}$ सदृष्टि रूपमे लिखा है ।

लोकके शिखरपर वायुरुद्ध क्षेत्रका घनफल

उवरि रज्जु-विक्खंभेण सत्त-रज्जु-आयामेण किंचूण-जोयण-बाहल्लेण ठिद-वाद-खेत्तं जगपदर-पमाणेण कदे ति-उत्तर-तिसदाणं बे-सहस्स-विसद-चालीस-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि ।$=\frac{३०३}{२२४०}$ **।**

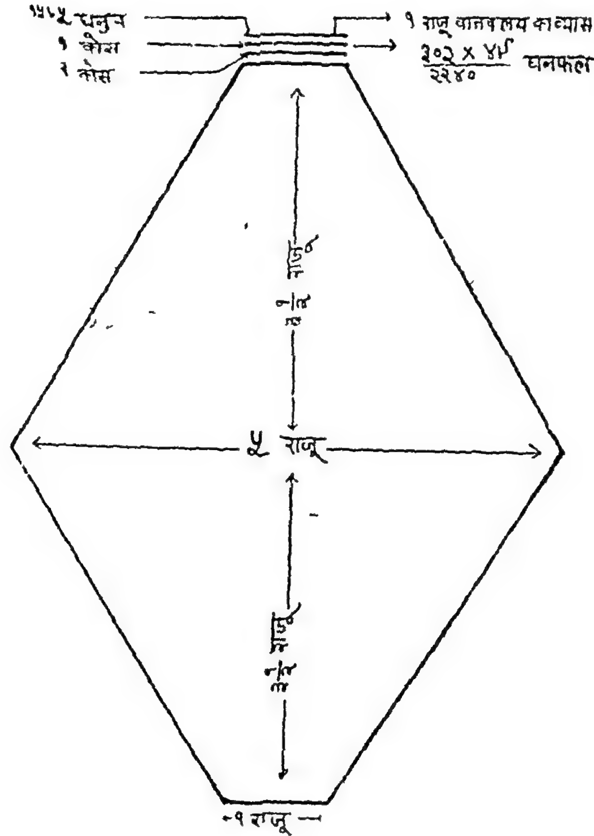
अर्थ :—ऊपर एक राजू विस्ताररूप, सात राजू आयामरूप और कुछ कम एक योजन वाहल्यरूप वातवलयकी अपेक्षा स्थित वातक्षेत्रको जगत्प्रतर प्रमाणसे करनेपर तीनसौ तीन योजनके दो हजार, दोसौ चालीसवे भाग वाहल्यप्रमाण जगत्प्रतर होता है ।

विशेषार्थ :—लोकके अग्रभागपर पूर्व-पश्चिम अपेक्षा वातवलयका व्यास १ राजू, ऊँचाई $\frac{३०३}{३२०}$ योजन और दक्षिणोत्तर चौडाई ७ राजू है । इनका परस्पर गुणाकर जगत्प्रतरस्वरूप करनेसे $\frac{१}{१} \times \frac{७}{१} \times \frac{३०३}{३२०} \times \frac{४९}{४९} = \frac{३०३ \times ४९}{२२४०}$ घनफल प्राप्त होता है । यह ४९ वर्गराजू × $\frac{३०३}{२२४०}$ योजन होनेसे ग्रन्थकारने सदृष्टि रूपमे =$\frac{३०३}{२२४०}$ लिखा है ।

यहाँ $\frac{३०३}{३२०}$ कैसे प्राप्त होते है, इसका बीज कहते है —

८००० धनुपका एक योजन और २००० धनुषका एक कोस होता है लोकके अग्रभागपर घनोदधिवातवलय दो कोस मोटा है, जिसके ४००० धनुप हुए । घनवात एक कोस मोटा है जिसके २००० धनुष हुए और तनुवात १५७५ धनुष मोटा है । इन तीनोका योग (४०००+२०००+१५७५) =७५७५ धनुप होता है । जब ८००० धनुपका एक योजन होता है तब ७५७५ धनुपके कितने योजन

होगे ? इसप्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{१}{८०००} \times \frac{७५७५}{१} = \frac{३०३}{३२०}$ योजन मोटाई लोकके अग्रभागमे कही गई है। (त्रिलोकसार गाथा १३८)



पवनोसे रुद्ध समस्त क्षेत्रके घनफलोका योग

एदं [1]सव्वमेगत्थ मेलाविदे चउवीस-कोडि-समहिय-सहस्स-कोडीओ एगूणवीस-लक्ख-तेसीदि-सहस्स-चउसद-सत्तासीदि-जोयणाणं णव-सहस्स-सत्त-सय-सट्ठि-रूवाहिय-लक्खाए अवहिदेग-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि । $= \frac{१०२४१९८३४८७}{१०९७६०}$ ।

अर्थ —इन सबको इकट्ठा करके मिला देनेपर एक हजार चौवीस करोड, उन्नीस लाख, तयासीहजार, चारसौ सत्तासी योजनोमे एक लाख नौहजार सातसौ साठका भाग देनेपर लब्ध एक भाग वाहल्यप्रमाण जगत्प्रतर होता है।

१. ब. सव्वमग पथमेलाविदे, द ज. ठ. सव्वमेग पमेलाविदे ।

विशेषार्थ :—१. लोकके नीचे तीनो-पवनोसे अवरुद्ध क्षेत्रके घनफल,

२ लोकके एक राजू ऊपर पूर्व-पश्चिम मे अवरुद्ध क्षेत्र के घनफल,

३. लोकके एक राजू ऊपर दक्षिणोत्तरमे अवरुद्ध क्षेत्रके घनफल

४ सप्तमपृथिवीसे सिद्धलोक पर्यन्त अवरुद्ध क्षेत्रके घनफल,

५ सप्तमपृथिवीसे मध्यलोक पर्यन्त दक्षिणोत्तरमे अवरुद्ध क्षेत्रके घनफल,

६ ऊर्ध्वलोकके अवरुद्ध क्षेत्रके घनफलको और ७ लोक के अग्रभागपर वातवलयोसे अवरुद्ध क्षेत्रके घनफलको एकत्र करनेपर योग इसप्रकार होगा :—

जगत्प्रतर अथवा ४९ × $\frac{३१९८००००}{३४३}$ + जगत्प्रतर या ४९ × $\frac{१७८३६}{३४३}$ + जगत्प्रतर या ४९ × $\frac{४२००}{३४३}$ + जगत्प्रतर या ४९ × $\frac{५८८}{४९}$ + जगत्प्रतर या ४९ × $\frac{३०३}{२२४०}$ । इनको जोडनेकी प्रक्रिया—

जगत्प्रतर × $\frac{३१९८००००}{३४३} + \frac{१७८३६}{३४३} + \frac{४२००}{३४३} + \frac{५८८}{४९} + \frac{३०३}{२२४०}$

= जगत्प्रतर × $\frac{१०२३३६००००० + ५७०७५२० + १३४४००० + १३१७१२० + १४८४७}{१०९७६०}$

= जगत्प्रतर × $\frac{१०२४१९८३४८७}{१०९७६०}$ अथवा = $\frac{१०२४१९८३४८७}{१०९७६०}$ पवनोसे रुद्ध समस्त क्षेत्रका घनफल प्राप्त हुआ ।

पृथिवियोके नीचे पवनसे रुद्ध क्षेत्रोका घनफल

पुणो अट्ठण्हं पुढवीणं हेट्ठिम-भागावरुद्ध-वाद-खेत्त-घणफलं वत्तइस्सामो—

तत्थ पढम-पुढवीए हेट्ठिम-भागावरुद्ध-वाद-खेत्त-घणफलं एक-रज्जु-विक्खंभ-सत्त-रज्जु-दीहा सट्ठि-जोयण-सहस्स-बाहल्लं एसा अप्पणो बाहल्लस्स सत्तम-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि । = $\frac{६००००}{७}$ ।

अर्थ —इसके बाद आठो पृथिवियोके अधस्तनभागमे वायुसे अवरुद्ध क्षेत्रका घनफल कहते है—

इन आठो पृथिवियोमेसे प्रथम पृथिवीके अधस्तनभागमे अवरुद्ध वायुके क्षेत्रका घनफल कहते है—एक राजू विष्कम्भ, सात राजू लम्बाई और साठ हजार योजन बाहल्लवाला प्रथम पृथिवीका

वातरुद्ध क्षेत्र होता है। इसका घनफल अपने बाहल्ल अर्थात् साठ हजार योजनके सातवे-भाग बाहल्य प्रमाण जगत्प्रतर होता है।

विशेषार्थ :—प्रथम पृथिवी अर्थात् मध्यलोकके समीप पवनोकी चौडाई एक राजू, लम्बाई ७ राजू और मोटाई ६०००० योजन है। इसके घनफल को जगत्प्रतरस्वरूप करनेपर इसप्रकार होता है—

$= \frac{१ \times ७ \times १००००० \times ४९}{४९} = \frac{४९ \times १००००० \times ७}{४९}$ घनफल प्राप्त हुआ।

विदिय-पुढवीए हेट्ठिम-भागावरुद्ध-वाद-खेत्त-घणफलं सत्त-भागूण-बे रज्जु-विक्खंभा सत्त-रज्जु-आयदा सट्ठि-जोयण-सहस्स-बाहल्ला असीदि-सहस्साहिय-सत्तण्ह लक्खाणं एगूणपण्णास-भाग-बाहल्लं जगपदर होदि। $= \frac{७८००००}{४९}$।

अर्थ :—दूसरी पृथिवीके अधस्तन भागमे वातावरुद्ध क्षेत्रका घनफल कहते है :—सातवे-भाग कम दो राजू विष्कम्भवाला, सात राजू आयत और ६० हजार योजन वाहल्लवाला दूसरी पृथिवीका वातरुद्ध क्षेत्र है। उसका घनफल सात लाख, अस्सी हजार, योजनके उनचासवेभाग वाहल्य-प्रमाण जगत्प्रतर होता है।

विशेषार्थ —अधोलोककी भूमि सात राजू और मुख एकराजू है। भूमिमेंसे मुख घटाने पर (७ — १) = ६ राजू अवशेप रहा। क्योकि ७ राजू ऊँचाईपर ६ राजू घटते है, अतः एक राजूपर $\frac{६}{७}$ राजू घटेगा, इसप्रकार प्रत्येक एक राजू ऊपर-ऊपर जाने पर घटेगा। प्रत्येक एक राजूपर $\frac{६}{७}$ राजू घटाते जानेसे नीचेसे क्रमश $\frac{४३}{७}$, $\frac{३७}{७}$, $\frac{३१}{७}$, $\frac{२५}{७}$, $\frac{१९}{७}$, $\frac{१३}{७}$ और $\frac{७}{७}$ राजू व्यास प्राप्त होता है। इसीलिए गाथामे दूसरी पृथिवीका व्यास $\frac{१३}{७}$ राजू कहा गया है। $= \frac{७}{१} \times \frac{१३}{७} \times \frac{१००००}{१} = \frac{७ \times ७८००००० \times ७}{७ \times ७} = \frac{४९ \times ७८०००००}{४९}$ घनफल दूसरी पृथिवीके वातरुद्ध क्षेत्रका प्राप्त हुआ।

तदिय-पुढवीए हेट्ठिम-भागावरुद्ध-वाद-खेत्त-घणफलं बे-सत्तम-भाग-हीण-तिण्णि-रज्जु-विक्खंभा सत्त-रज्जु-आयदा सट्ठि-जोयण-सहस्स-बाहल्ला चालीस-सहस्साधिय-एक्कारस-लक्ख-जोयणाणं एगूणपण्णास-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि। $= \frac{११४००००}{४९}$।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीके अधस्तन-भागमे वातरुद्ध क्षेत्रका घनफल कहते है —दो बटे सात भाग ($\frac{२}{७}$) कम तीन राजू विष्कम्भ युक्त, सात राजू लम्बा और साठ हजार योजन बाहल्य-वाला तीसरी पृथिवीका वातरुद्ध क्षेत्र है। इसका घनफल ग्यारह लाख चालीस हजार योजनके उनचासवे भाग बाहल्यप्रमाण जगत्प्रतर होता है।

विशेषार्थ :—तीसरी पृथिवीके अधस्तन पवनोका विष्कम्भ $\frac{१९}{७}$ राजू, लम्बाई ७ राजू और मोटाई ६०००० योजन है। अत. $\frac{७}{१} \times \frac{१९}{७} \times \frac{६००००}{१} = \frac{७ \times ११४०००० \times ७}{७ \times ७} = \frac{४९ \times ११४००००}{४९}$ घनफल प्राप्त हुआ।

चउत्थ-पुढवीए हेट्ठिम-भागावरुद्ध-वाद-खेत्त-घणफलं तिण्णि-सत्तम-भागूण-चत्तारि-रज्जु-विक्खंभा सत्त-रज्जु-आयदा सट्ठि-जोयण-सहस्स-बाहल्ला पण्णरस-लक्ख-जोयणाणं एगूणपण्णास-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि। $= \frac{१५०००००}{४९}$।

अर्थ :—चौथी पृथिवीके अधस्तन भागमे वातरुद्ध क्षेत्रके घनफलको कहते है :—

चौथी पृथिवीका वातरुद्ध क्षेत्र तीन बटे सात ($\frac{३}{७}$) भाग कम चार राजू विस्तार वाला, सात राजू लम्बा और साठ हजार योजन मोटा है। इसका घनफल पन्द्रह लाख योजनके उनचासवे-भाग वाहल्ल प्रमाण जगत्प्रतर होता है।

विशेषार्थ :—चौथी पृथिवीके अधस्तन पवनोका विष्कम्भ $\frac{२५}{७}$ राजू, लम्बाई ७ राजू और मोटाई ६०००० योजन है। अत $\frac{२५}{७} \times \frac{७}{१} \times \frac{६००००}{१} = \frac{७ \times १५००००० \times ७}{७ \times ७} = \frac{१५००००० \times ४९}{४९}$ घनफल प्राप्त हुआ।

पंचम पुढवीए हेट्ठिम-भागावरुद्ध-वाद-खेत्त-घणफलं चत्तारि-सत्तम-भागूण[1]-पंच-रज्जु-विक्खंभा सत्त-रज्जु-आयदा सट्ठि-जोयण-सहस्स-बाहल्ला सट्ठि-सहस्साहिय-अट्ठारस-लक्खाणं एगूणपण्णास-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि। $= \frac{१८६००००}{४९}$।

अर्थ :—पाँचवी पृथिवीके अधस्तनभागमे अवरुद्ध वातक्षेत्रका घनफल कहते है—

पाँचवी पृथिवीके अधोभागमे वातावरुद्धक्षेत्र चार बटे सात ($\frac{४}{७}$) भाग कम पाँच राजू विस्ताररूप, सात राजू लम्बा और साठ हजार योजन मोटा है। इसका घनफल अठारह लाख, साठ हजार योजनके उनचासवे-भाग बाहल्य प्रमाण जगत्प्रतर होता है।

विशेषार्थ :—पाँचवी पृथिवीके अधस्तन पवनोका विष्कम्भ $\frac{३१}{७}$ राजू, लम्वाई ७ राजू और मोटाई ६०००० योजन है। अत $\frac{३१}{७} \times \frac{७}{१} \times \frac{६००००}{१} = \frac{७ \times १८६०००० \times ७}{७ \times ७} = \frac{१८६०००० \times ४९}{४९}$ घनफल प्राप्त हुआ।

---

१ द भागूणछरज्जु।

छट्ठ-पुढवीए [1]हेट्ठिम-भागावरुद्ध-वाद-खेत्त-घणफलं पंच-सत्तम-भागूण-छ-रज्जु-विक्खंभा सत्त-रज्जु-आयदा सट्ठि-जोयण-सहस्स-बाहल्ला वीस-सहस्साहिय-बावीस-लक्खाणमेगूणपण्णास-भाग-बाहल्ल जगपदरं होदि । $= \frac{२२२००००}{४९}$ ।

अर्थ :—छठी पृथिवीके अधस्तनभागमे वातावरुद्ध क्षेत्रके घनफलको कहते है—पॉच बटे सात ($\frac{५}{७}$) भाग कम छह राजू विस्तार वाला, सात राजू लम्बा और साठ हजार योजन बाहल्यवाला छठी पृथिवीके नीचे वातरुद्ध क्षेत्र है, इसका घनफल बाईस लाख, बीस हजार योजनके उनचासवे-भाग बाहल्य प्रमाण जगत्प्रतर होता है ।

विशेषार्थ —छठी पृथिवीके अधस्तन पवनोका विष्कम्भ $\frac{३७}{७}$ राजू, लम्बाई ७ राजू और मोटाई ६०००० योजन है । अत $\frac{३७}{७} \times \frac{७}{१} \times \frac{६००००}{१} = \frac{२२२०००० \times ७ \times ७}{७ \times ७} = \frac{२२२०००० \times ४९}{४९}$ घनफल प्राप्त हुआ ।

सत्तम-पुढवीए हेट्ठिम-भागावरुद्ध-वाद-खेत्त-घणफलं छ-सत्तम-भागूण-सत्त-रज्जु-विक्खंभा सत्त-रज्जु-आयदा सट्ठि-जोयण-सहस्स-बाहल्ला सीदि-सहस्साधिय-पंच-वीस-लक्खाणं एगूणपण्णास-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि । $= \frac{२५८००००}{४९}$ ।

अर्थ :—सातवी पृथिवीके अधोभागमे वातरुद्धक्षेत्रके घनफलको कहते है—सातवी पृथिवीके नीचे वातावरुद्धक्षेत्र छह बटे सात ($\frac{६}{७}$) भाग कम सात राजू विस्तार वाला, सात राजू लम्बा और साठ हजार योजन मोटा है । इसका घनफल पच्चीस लाख, अस्सी हजार योजनके उनचासवे-भाग बाहल्य प्रमाण जगत्प्रतर होता है ।

विशेषार्थ :—सातवी पृथिवीके अधस्तन पवनोका विष्कम्भ $\frac{४३}{७}$ राजू लम्बाई ७ राजू और मोटाई ६०००० योजन प्रमाण है । अत $\frac{४३}{७} \times \frac{७}{१} \times \frac{६००००}{१} = \frac{७ \times २५८०००० \times ७}{७ \times ७} = \frac{२५८०००० \times ४९}{४९}$ घनफल प्राप्त हुआ ।

अट्ठम-पुढवीए हेट्ठिम-भाग-वादावरुद्ध-खेत्त-घणफलं सत्त-रज्जु-आयदा एग-रज्जु-विक्खंभा सट्ठि-जोयण-सहस्स-बाहल्ला एसा अप्पणो बाहल्लस्स[2] सत्त-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि । $= \frac{६००००}{७}$ ।

---

१ द हेट्ठिभागा । २ द ब बाहल्ल से ।

अर्थ :—आठवी पृथिवीके अधस्तन-भागमे वातावरुद्धक्षेत्रके घनफल को कहते है—आठवी पृथिवीके अधस्तन-भागमे वातावरुद्ध क्षेत्र ७ राजू लम्बा, एक राजू विस्तार-युक्त और साठ हजार योजन बाहल्य वाला है। इसका घनफल अपने बाहल्यके सातवे-भाग बाहल्य प्रमाण जगत्प्रतर होता है।

विशेषार्थ :—आठवी पृथिवीके अधस्तन-पवनोका विस्तार एक राजू, लम्बाई ७ राजू और मोटाई ६०००० योजन है। अत $\frac{१}{१} \times \frac{७}{१} \times \frac{६००००}{१} = \frac{७ \times ६०००० \times ४९}{४९}$ अर्थात् $\frac{४२०००० \times ४९}{४९}$ घनफल प्राप्त हुआ।

आठो पृथिवियोके सम्पूर्ण घनफलोका योग

एदं [1]सव्वमेगट्ठ मेलाविदे येत्तियं होदि । $= \frac{१०९२००००}{४९}$ ।

॥ एव वादावरुद्ध-खेत्त-घणफल समत्त ॥

अर्थ :—इन सबको इकट्ठा मिलानेपर कुल घनफल इसप्रकार होता है —

$\frac{४९ \times ६०००० \times ७}{४९} + \frac{४९ \times ७८००००}{४९} + \frac{४९ \times ११४००००}{४९} + \frac{४९ \times १५०००००}{४९} + \frac{४९ \times १८६००००}{४९} + \frac{४९ \times २२२००००}{४९} + \frac{४९ \times २५८००००}{४९} + \frac{४९ \times ४२००००}{४९}$ ।

नोट —आठो पृथिवियो के उपर्युक्त (घनफल निकालते समय) घनफल को जगत्प्रतर स्वरूप करने हेतु सर्वत्र $\frac{४९}{४९}$ का गुणा किया गया है।

उपर्युक्त घनफलो मे अश का (ऊपर वाला) ४९ जगत्प्रतर स्वरूप है, अत उसे अन्यत्र स्थापित कर देनेपर घनफलोका स्वरूप इसप्रकार बनता है।

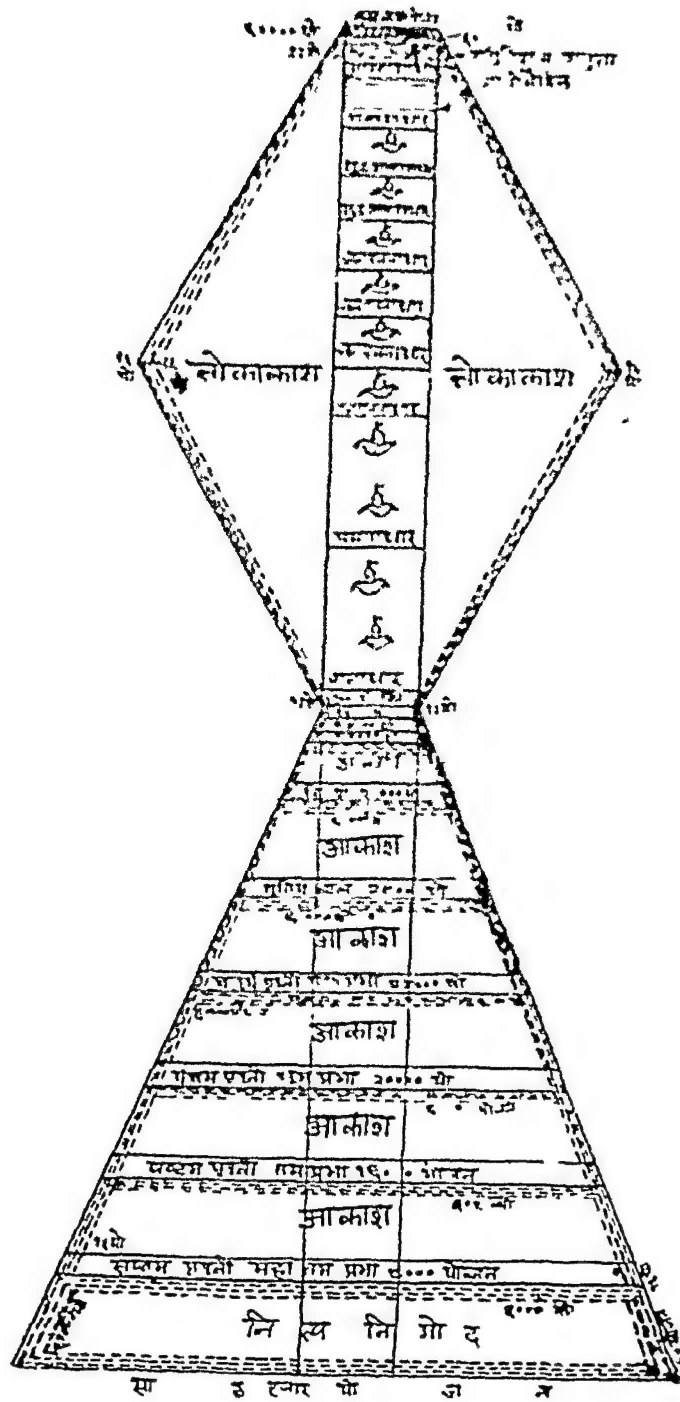
$४९ \times \frac{४२००००}{४९} + \frac{७८००००}{४९} + \frac{११४००००}{४९} + \frac{१५०००००}{४९} + \frac{१८६००००}{४९} + \frac{२२२००००}{४९} + \frac{२५८००००}{४९} + \frac{४२००००}{४९} = ४९ \times \frac{१०९२००००}{४९}$ अर्थात् जगत्प्रतर $\times \frac{१०९२००००}{४९}$ या $= \frac{१०९२००००}{४९}$ घनफल सम्पूर्ण (आठो) पृथिवियोके अधस्तन भागका प्राप्त हुआ।

इसप्रकार वातावरुद्ध क्षेत्रके घनफलका वर्णन समाप्त हुआ।

लोक स्थित आठो पृथिवियोके वायुमण्डलका चित्रण इसप्रकार है—

---

१. द व. सव्वमेग पमेलाविदे ।


लोकाकाश
लोकाकाश
आकाश
आकाश
आकाश
आकाश
आकाश
नि त्य नि गो द

प्रत्येक पृथिवीके घनफल-कथनका निर्देश

संपहि अट्ठण्हं पुढवीणं पत्तेक्कं विदफलं थोरुच्चएण वत्तइस्सामो—

तत्थ पढम-पुढवीए एग-रज्जु-विक्खंभा सत्त-रज्जु-दीहा वीस-सहस्सूण-बे-जोयण-लक्ख-बाहल्ला एसा अप्पणो बाहल्लस्स सत्तम-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि । $=\frac{\text{१८००००}}{\text{७}}$ ।

अर्थ :—अब आठो पृथिवियोमेसे प्रत्येक पृथिवीके घनफलको सक्षेपमे कहते है —

इन आठो पृथिवियोमेसे पहली पृथिवी एक राजू विस्तृत, सात राजू लम्बी और बीस हजार कम दो लाख योजन मोटी है । इसका घनफल अपने बाहल्यके सातवे भाग बाहल्य प्रमाण जगत्प्रतर होता है ।

विशेषार्थ :—रत्नप्रभा नामक पहली पृथिवी एक राजू चौडी, ७ राजू लम्बी और १८०००० योजन मोटी है, इनको परस्पर गुणित कर घनफल को जगत्प्रतर करने हेतु $\frac{\text{७}}{\text{७}}$ से पुन गुणा किया गया है । यथा—

$\frac{\text{१}}{\text{१}}\times\frac{\text{७}}{\text{१}}\times\frac{\text{१८००००}}{\text{१}}=\frac{\text{७}\times\text{१८००००}\times\text{७}}{\text{७}}=\text{४९}$ वर्ग राजू $\times\frac{\text{१८००००}}{\text{७}}$ योजन घनफल प्रथम रत्नप्रभा पृ० का प्राप्त हुआ ।

दूसरी पृथिवीका घनफल

विदिय-पुढवीए सत्त-भागूण-बे-रज्जु-विक्खंभा सत्त-रज्जु आयदा बत्तीस-जोयण-सहस्स-बाहल्ला सोलस-सहस्साहिय-चदुण्हं[1] लक्खाणमेगूण[2]पण्णास-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि । $=\frac{\text{४१६०००}}{\text{४९}}$ ।

अर्थः—दूसरी पृथिवी सातवेभाग कम दो राजू विस्तृत, सात राजू आयत और बत्तीस-हजार योजन मोटी है, इसका घनफल चार लाख सोलह हजार योजनके उनचासवेभाग बाहल्य प्रमाण जगत्प्रतर होता है

---

१ व क चउण्ह । २ द लक्खाण एगूण° ।

विशेषार्थ :—दूसरी शर्करापृथिवी पूर्व-पश्चिम $\frac{१३}{७}$ राजू विस्तृत, दक्षिणोत्तर ७ राजू लम्बी और ३२००० योजन मोटी है। इसके घनफलको जगत्प्रतरस्वरूप करने हेतु $\frac{७}{७}$ से गुणा करनेपर $\frac{१३}{७} \times \frac{७}{१} \times \frac{३२०००}{१} = \frac{७ \times ४१६००० \times ७}{७ \times ७} =$ ४९ वर्ग राजू $\times \frac{४१६०००}{४९}$ योजन घनफल प्राप्त होता है।

तीसरी पृथिवीका घनफल

तदिय-पुढवीए बे-सत्तम-भाग-हीण-तिण्णि-रज्जु-विक्खंभा सत्त-रज्जु-आयदा अट्ठावीस-जोयण-सहस्स-बाहल्ला बत्तीस-सहस्साहिय-पंच-लक्ख-जोयणाणं एगूणपण्णास-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि । $= \frac{५३२०००}{४९}$ ।

अर्थ —तीसरी पृथिवी दो बटे सात ($\frac{२}{७}$) भाग कम तीन राजू विस्तृत, सात राजू आयत और अट्ठाईस हजार योजन मोटी है। इसका घनफल पाँच लाख, बत्तीस हजार योजनके उनचासवे-भाग बाहल्य प्रमाण जगत्प्रतर होता है।

विशेषार्थ :—तीसरी बालुका पृथिवी पूर्व-पश्चिम $\frac{१९}{७}$ राजू विस्तृत, दक्षिणोत्तर ७ राजू लम्बी और २८००० योजन मोटी है। इसके घनफलको जगत्प्रतरस्वरूप करने हेतु $\frac{७}{७}$ से गुणा करनेपर $\frac{१९}{७} \times \frac{७}{१} \times \frac{२८०००}{१} = \frac{७ \times ५३२००० \times ७}{७ \times ७} =$ ४९ वर्ग राजू $\times \frac{५३२०००}{४९}$ योजन घनफल प्राप्त होता है।

चतुर्थ पृथिवीका घनफल

चउत्थ-पुढवीए तिण्णि-सत्तम-भागूण-चत्तारि-रज्जु-विक्खंभा सत्त-रज्जु-आयदा चउवीस-जोयण-सहस्स-बाहल्ला छ-जोयण-लक्खाणं एगूणपण्णास-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि । $= \frac{६०००००}{४९}$ ।

अर्थ :—चौथी पृथिवी तीन बटे सात ($\frac{३}{७}$) भाग कम चार राजू विस्तृत, सात राजू आयत और चौबीस हजार योजन मोटी है। इसका घनफल छह लाख योजनके उनचासवे-भाग प्रमाण जगत्प्रतर होता है।

विशेषार्थ —चौथी पंकप्रभा पृथिवी पूर्व-पश्चिम $\frac{२५}{७}$ राजू विस्तृत, दक्षिणोत्तर ७ राजू लम्बी और २४००० योजन मोटी है। इसके घनफलको जगत्प्रतर स्वरूप करने हेतु $\frac{७}{७}$ से गुणा करने पर $\frac{२५}{७} \times \frac{७}{१} \times \frac{२४०००}{१} = \frac{७ \times १०००००}{७ \times ७} =$ ४९ वर्गराजू $\times \frac{१०००००}{४९}$ योजन घनफल प्राप्त हुआ।

पाँचवी पृथिवीका घनफल

पंचम-पुढवीए चत्तारि-सत्त-भागूण-पंच-रज्जु-विक्खंभा सत्त-रज्जु-आयदा बीस-जोयण-सहस्स-बाहल्ला बीस-सहस्साहिय-छण्णं लक्खाणमेगूणपण्णास-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि । $= \frac{६२००००}{४९}$ ।

अर्थ :—पाँचवी पृथिवी चार बटे सात ($\frac{४}{७}$) भाग कम पाँच राजू विस्तृत, सात राजू आयत और बीस हजार योजन मोटी है । इसका घनफल छह लाख, बीस हजार योजनके उनचासवे-भाग बाहल्य प्रमाण जगत्प्रतर होता है ।

विशेषार्थ :—पाँचवी धूमप्रभा पृथिवी पूर्व-पश्चिम $\frac{३१}{७}$ राजू विस्तृत, दक्षिणोत्तर ७ राजू लम्बी और २०००० योजन मोटी है । इसके घनफलको जगत्प्रतरस्वरूप करने हेतु $\frac{७}{७}$ से गुणा करने पर $\frac{३१}{७} \times \frac{७}{१} \times \frac{२००००}{१} = \frac{७ \times १२०००० \times ७}{७ \times ७} = ४९$ वर्ग राजू $\times \frac{१२००००}{४९}$ योजन घनफल प्राप्त हुआ ।

छठी पृथिवीका घनफल

छट्ठम-पुढवीए पंच-सत्त-भागूण-छ-रज्जु-विक्खंभा सत्त-रज्जु-आयदा सोलस-जोयण-सहस्स-बाहल्ला बाणउदि-सहस्साहिय-पंचण्हं लक्खाणमेगूणपण्णास-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि । $= \frac{५९२०००}{४९}$ ।

अर्थ :—छठी पृथिवी पाँच बटे सात ($\frac{५}{७}$) भाग कम छह राजू विस्तृत, सात राजू आयत और सोलह हजार योजन बाहल्यवाली है । इसका घनफल पाँच लाख, बानवै हजार योजनके उनचासवे-भाग बाहल्य-प्रमाण जगत्प्रतर होता है ।

विशेषार्थ :—छठी तम प्रभा पृथिवी पूर्व-पश्चिम $\frac{३७}{७}$ राजू विस्तृत, दक्षिणोत्तर ७ राजू लम्बी और १६००० योजन मोटी है । इसके घनफलको जगत्प्रतर करनेके लिए $\frac{७}{७}$ से गुणा करनेपर $\frac{३७}{७} \times \frac{७}{१} \times \frac{१६०००}{१} = \frac{७ \times ५९२००० \times ७}{७ \times ७} = ४९$ वर्गराजू $\times \frac{५९२०००}{४९}$ योजन घनफल प्राप्त होता है ।

सानवी पृथिवीका घनफल

सत्तम-पुढवीए छ-[1]सत्तम-भागूण-सत्त-रज्जु-विक्खंभा सत्त-रज्जु-आयदा अट्ठ-

---

१. द ससत्तभागूण° ।

जोयण-सहस्स-बाहल्ला चउदाल-सहस्साहिय-तिण्णं लक्खाणमेगूणपण्णास-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि । = $\frac{३४४०००}{४९}$ ।

अर्थ :—सातवी पृथिवी छह बटे सात ($\frac{६}{७}$) भाग कम सात राजू विस्तृत, सात राजू आयत और आठ हजार योजन बाहल्य वाली है। इसका घनफल तीन लाख चवालीस हजार योजनके उनचासवे-भाग-बाहल्य-प्रमाण जगत्प्रतर होता है।

विशेषार्थ :—सातवी महातम प्रभा पृथिवी पूर्व-पश्चिम $\frac{४३}{७}$ राजू विस्तृत, दक्षिणोत्तर ७ राजू लम्बी और ८००० योजन मोटी है। इसके घनफलको जगत्प्रतरस्वरूप करनेके लिए $\frac{७}{७}$ से गुणा करनेपर $\frac{४३}{७} \times \frac{७}{१} \times \frac{८०००}{१} = \frac{७ \times ३४४००० \times ७}{७ \times ७} = ४९$ वर्गराजू $\times \frac{५१२०००}{४९}$ योजन घनफल प्राप्त होता है।

आठवी पृथिवीका घनफल

अट्ठम-पुढवीए सत्त-रज्जु-आयदा [1]एक्क-रज्जु-रुंदा अट्ठ-जोयण[2]-बाहल्ला सत्तम-[3]भागाहियएगज्जोयण-बाहल्लं जगपदरं होदि । = $\frac{८}{७}$ ।

अर्थ —आठवी पृथिवी सात राजू आयत, एक राजू विस्तृत और आठ योजन मोटी है। इसका घनफल सातवे-भाग सहित एक योजन बाहल्ल प्रमाण जग-प्रतर होता है।

विशेषार्थ :- आठवी ईषत्-प्राग्भार पृथिवी पूर्व-पश्चिम एक राजू विस्तृत, दक्षिणोत्तर ७ राजू लम्बी और ८ योजन मोटी है। इसके घनफलको जगत्प्रतरस्वरूप करनेके लिए $\frac{७}{७}$ से गुणा करनेपर $१ \times ७ \times ८ = \frac{७ \times ८ \times ७}{७} = ४९$ वर्गराजू $\times \frac{८}{७}$ योजन घनफल प्राप्त होता है।

सम्पूर्ण घनफलोका योग

एदाणि सव्व-मेलिदे एत्तियं होदि । = $\frac{४३६४०५६}{४९}$ ।

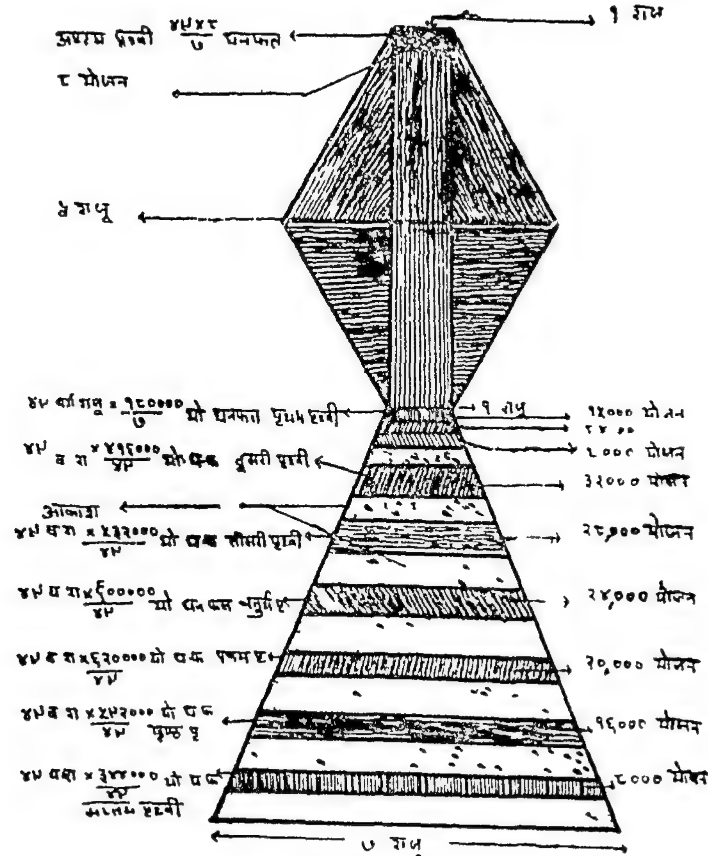
अर्थ —इन सब घनफलोको मिलानेपर निम्नलिखित प्रमाण होता है—

$४९ \times \frac{१८००००}{७}$ या $४९ \times \frac{१२६००००}{४९} + ४९ \times \frac{४१६०००}{४९} + ४९ \times \frac{५३२०००}{४९} + ४९ \times \frac{१०००००}{४९} + ४९ \times \frac{१२००००}{४९} + ४९ \times \frac{५१२०००}{४९} + ४९ \times \frac{३४४०००}{४९} + ४९ \times \frac{८}{७}$ या $४९ \times \frac{५६}{४९}$। यहाँ अशके ४९ जगत्प्रतर स्वरूप है। अत —

१ द एगरज्जु°। २ द अट्ठसहस्सजोयण°। ३ द भागाहिययेयज्जो°।

$$४९ \times \frac{१२६०००० + ४१६००० + ५३२००० + ६००००० + ६२०००० + ५९२००० + ३४४००० + ५६}{४९}$$

$= ४९$ वर्गराजू $\times \frac{४३६४०५६}{४९}$ योजन या जगत्प्रतर $\times \frac{४३६४०५६}{४९}$ घनफल प्राप्त होता है।

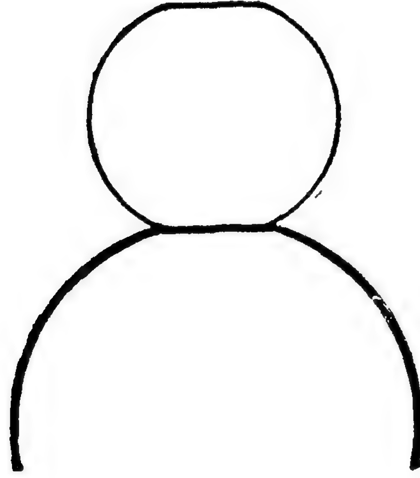


लोकके शुद्धाकाशका प्रमाण

एदेहिं दोहिं खेत्ताणं विदफलं संमेलिय सयल-लोयम्मि अवणीदे अवसेसं सुद्धायास-पमाणं होदि।

तस्स ठवणा—

[चित्र अगले पृष्ठ पर देखिये]



अर्थ :—उपर्युक्त इन दोनो क्षेत्रो (वातावरुद्ध और आठ भूमियो) के घनफलको मिलाकर उसे सम्पूर्ण लोकमेसे घटा देने पर अवशिष्ट शुद्ध-आकाशका प्रमाण प्राप्त होता है। उसकी स्थापना यह है—सदृष्टि मूलमे देखिये (इस सदृष्टिका भाव समझमे नही आया)।

अधिकारान्त मङ्गलाचरण

केवलणाण-तिणेत्तं चोत्तीसादिसय-भूदि-संपण्णं ।
णाभेय-जिणं तिहुवण-णमंसणिज्जं णमंसामि ।।२८६।।

एवमाइरिय-परंपरागय-तिलोयपण्णत्तीए सामण्ण-जगसरूव-णिरूवण-पण्णत्ती णाम ।

पढमो महाहियारो सम्मत्तो ।।१।।

अर्थ :—केवलज्ञानरूपी तीसरे नेत्रके धारक, चौतीस अतिशयरूपी विभूतिसे सम्पन्न और तीनो लोकोके द्वारा नमस्करणीय, ऐसे नाभेय जिन अर्थात् ऋषभ जिनेन्द्रको मै नमस्कार करता हू ।।२८६।।

इसप्रकार आचार्य-परम्परागत त्रिलोक-प्रज्ञप्तिमे सामान्य
जगत्स्वरूप निरूपण-प्रज्ञप्ति नामक

प्रथम महाधिकार समाप्त हुआ ।



विदुओ महाहियारो



मङ्गलाचरण पूर्वक नारक लोक कथनकी प्रतिज्ञा

अजिय-जिणं जिय-मयणं दुरित-हरं आजवंजवातीदं ।
पणमिय णिरुवमाणं णारय-लोयं णिरूवेमो ।।१।।

अर्थ :—कामदेवको जीतनेवाले, पापको नष्ट करनेवाले, ससारसे अतीत और अनुपम अजितनाथ भगवानको नमस्कार करके नारकलोकका निरूपण करता हू ।।१।।

पन्द्रह अधिकारोका निर्देश

[1]णेरइय-णिवास-खिदी-परिमाणं आउ-उदय-ओहीए ।
गुणठाणादीणं संखा उप्पज्जमाण जीवाणं ।।२।।

७ ।

जम्मण-मरणाणंतर-काल-पमाणादि एक्क समयम्मि ।
उप्पज्जय-मरणाण य परिमाणं तह य आगमणं ।।३।।

३ ।

णिरय-गदि-आउबंधण-परिणामा तह य जम्म-भूमीओ ।
णाणादुक्ख-सरूवं दंसण-गहणस्स हेदु जोणीओ ।।४।।

५ ।

एवं पण्णरस-विहा अहियारा वण्णिदा समासेण ।
तित्थयर-वयण-णिग्गय-णारय-पण्णत्ति-णामाए ।।५।।

---

१. द. क. ब णिद्धइ ।

अर्थ :—नारकियोकी निवास १ भूमि, २ परिमाण (सख्या), ३ आयु, ४ उत्सेध, ५ अवधिज्ञान, ६ गुणस्थानादिकोका वर्णन, ७ उत्पद्यमान जीवोकी सख्या, ८ जन्म-मरणके अन्तर-कालका प्रमाण, ९ एक समयमे उत्पन्न होनेवाले और मरनेवाले जीवोका प्रमाण, १० नरकसे निकलनेवाले जीवोका वर्णन, ११ नरकगतिके आयु-बन्धक परिणाम, १२ जन्मभूमि, १३ नानादु खोका स्वरूप, १४ सम्यक्त्व-ग्रहणके कारण और १५ नरकमे उत्पन्न होनेके कारणोका कथन, तीर्थङ्करके वचनसे निकले हुए इसप्रकार ये पन्द्रह अधिकार इस नारक-प्रज्ञप्ति नामक महाधिकारमे सक्षेपसे कहे गये है ।।२–५।।

त्रसनालीका स्वरूप एव ऊँचाई

लोय-बहु-मज्झ-देसे तरुम्मि सारं व रज्जु-पदर-जुदा ।
तेरस-रज्जुच्छेहा किचूणा होदि तस-णाली ।।६।।

ऊण-पमाणं दंडा कोडि-तियं एक्कवीस-लक्खाणं ।
बासट्ठि च सहस्सा दुसया इगिदाल दुतिभाया ।।७।।

। ३२१६२२४१ । $\frac{२}{३}$ ।

अर्थ :—वृक्षमे (स्थित) सारकी तरह, लोकके बहुमध्यभागमे एक राजू लम्बी-चौडी और कुछ कम तेरह राजू ऊँची त्रसनाली है। त्रसनालीकी कमीका प्रमाण तीन करोड, इक्कीस लाख, बासठ हजार, दोसौ इकतालीस धनुष एव एक धनुषके तीन-भागोमेसे दो ($\frac{२}{३}$) भाग है ।।६–७।।

विशेषार्थ :—त्रसनालीकी ऊँचाई १४ राजू प्रमाण है। इसमे सातवे नरकके नीचे एक राजू प्रमाण कलकल नामक स्थावर लोक है, यहाँ त्रस जीव नही रहते अत उसे (१४ — १) = १३ राजू कहा गया है। इसमे भी सप्तम नरकके मध्यभागमे ही नारकी (त्रस) है। नीचेके ३९९९$\frac{१}{३}$ योजन (३१९९४६६६$\frac{२}{३}$ धनुष) मे नही है।

इसीप्रकार ऊर्ध्वलोकमे सर्वार्थसिद्धिसे ईषत्प्राग्भार नामक आठवी पृथिवीके मध्य १२ योजन (९६००० धनुष) का अन्तराल है, आठवी पृथिवीकी मोटाई ८ योजन (६४००० धनुष) है और इसके ऊपर दो कोस (४००० धनुष), एक कोस (२००० धनुष) एव १५७५ धनुष मोटाई वाले तीन वातवलय है। इस सम्पूर्ण क्षेत्रमे भी त्रस जीव नही है इसलिए गाथामे १३ राजू ऊँची त्रस नालीमेसे (३१९९४६६६$\frac{२}{३}$ धनुष + ९६००० धनुप + ६४००० धनुष + ४००० धनुष + २००० धनुष और + १५७५ धनुष) = ३२१६२२४१$\frac{२}{३}$ धनुप कम करनेको कहा गया है।

सर्वलोकको त्रसनालीपनेकी विवक्षा

अहवा—

उववाद-मारणंतिय-परिणद-तस-लोय-पूरणेण गदो ।
केवलिणो अवलंबिय सव्व-जगो होदि तस-णाली ।।८।।

अर्थ :—अथवा–उपपाद और मारणातिक समुद्घातमे परिणत त्रस तथा लोकपूरणसमुद्घातको प्राप्त केवलीका आश्रय करके सारा लोक त्रस-नाली है ।।८।।

विशेषार्थ :—जीवका अपनी पूर्व पर्यायको छोडकर नवीन पर्यायजन्य आयुके प्रथम समयको उपपाद कहते है । पर्यायके अन्तमे मरणके निकट होनेपर बद्धायुके अनुसार जहाँ उत्पन्न होना है, वहाँके क्षेत्रको स्पर्श करनेके लिए आत्मप्रदेशोका शरीरसे बाहर निकलना मारणान्तिक समुद्घात है । १३ वे गुणस्थानके अन्तमे आयुकर्मके अतिरिक्त शेष तीन अघातिया कर्मोकी स्थितिक्षयके लिए केवलीके (दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूर्ण आकारसे) आत्मप्रदेशोका शरीरसे बाहर निकलना केवली समुद्घात है, इन तीनो अवस्थाओमे त्रसजीव त्रस-नालीके बाहर भी पाये जाते है ।

रत्नप्रभा-पृथिवीके तीन-भाग एव उनका बाहल्य

खर-पंकप्पब्बहुला भागा [1]रयणप्पहाए पुढवीए ।
बहलत्तणं सहस्सा [2]सोलस चउसीदि सीदी य ।।९।।

१६००० । ८४००० । ८०००० ।

अर्थ :—रत्नप्रभापृथिवीके खर, पक और अब्बहुलभाग क्रमशः सोलह हजार, चौरासी हजार और अस्सी हजार योजन प्रमाण बाहल्यवाले है ।।९।।

विशेषार्थ :—रत्नप्रभापृथिवीका—(१) खरभाग १६००० योजन, (२) पकभाग ८४००० योजन और (३) अब्बहुलभाग ८०००० योजन मोटा है ।

खरभागके एव चित्रापृथिवीके भेद

खरभागो णादव्वो सोलस-भेदेहिं संजुदो णियमा ।
चित्तादीओ खिदिओ तेंसि चित्ता बहु-वियप्पा ।।१०।।

---

१. द रयणप्पहायि पुढवीग, व रयणप्पहा य पुढवीए । २. द ब सोल ।

अर्थ :—इन तीनोमे खरभाग नियमसे सोलह भेदो सहित जानना चाहिए। ये सोलह भेद चित्रादिक सोलह पृथिवीरूप है। इनमेसे चित्रा पृथिवी अनेक प्रकार है ॥१०॥

'चित्रा' नामकी सार्थकता

णाणाविह-वण्णाओ मट्टीओ तह सिलातला उवला[1]।
वालुव-सक्कर-सीसय-रुप्प-सुवण्णाण वइरं च ॥११॥

अय-दंब-तउर-सासय-मणिस्सिला-हिंगुलाणि [2]हरिदाल।
अंजण-पवाल-गोमज्जगाणि रुजगं कअब्भ-पदराणि ॥१२॥

तह अब्भवालुकाओ फलिहं जलकंत-सूरकंताणि।
चंदप्पह-वेलुरियं गेरुव-चंदणय-लोहिदंकाणि ॥१३॥

बंबय-बगमोअ-सारग्ग-पहुदीणि विविह-वण्णाणि।
जा होंति त्ति एत्तेण चित्तेचि [3]पवण्णिदा एसा ॥१४॥

अर्थ :—यहाँपर अनेकप्रकारके वर्णोसे युक्त मिट्टी, शिलातल, उपल, वालु, शक्कर, शीशा, चाँदी, स्वर्ण तथा वज्र, अयस् (लोहा), तावा, त्रपु (रागा), सस्यक (सीसा), मणिशिला, हिंगुल (सिगरफ), हरिताल, अजन, प्रवाल (मूँगा), गोमेदक (मणिविशेष), रुचक, कदव (धातुविशेष), प्रतर (धातुविशेष), अभ्रवालुका (लालरेत), स्फटिकमणि, जलकान्तमणि, सूर्यकान्तमणि, चन्द्रप्रभ (चन्द्रकान्तमणि), वैडूर्यमणि, गेरू, चन्द्राश्म, (रत्नविशेष) लोहिताक (लोहिताक्ष ?), ववय (पप्रक ?), (बगमोच ?) और सारग इत्यादि विविध वर्णवाली धातुएँ है, इसीलिए इस पृथिवीका 'चित्रा' इस नामसे वर्णन किया गया है ॥११-१४॥

चित्रा-पृथिवीकी मोटाई

एदाए[4] बहलत्तं एक्क-सहस्सा हवंति[5] जोयणया।
तीए हेट्ठा कमसो चोद्दस रयणा[6] य खंड मही ॥१५॥

अर्थ :—इस चित्रा पृथिवीकी मोटाई एक हजार योजन है। इसके नीचे क्रमश: चौदह रत्नमयी पृथिवीखण्ड (पृथिवियाँ) स्थित है ॥१५॥

---

१. ब. सिलातला ओववादा। २ द अरिदाल। ३. द व वण्णिदो एसो। ४ ब एदाव। ५ द हुवति। ६ ब द. क. ठ रण्णा य खिदमही।

अन्य १४ पृथिवियोके नाम एव उनका बाहल्य

तण्णामा वेरुलियं लोहिययंकं[1] असारगल्लं च ।
गोमेज्जयं पवालं जोदिरसं अंजणं णाम ॥१६॥

अंजणमूलं अंकं फलिहचंदणं च [2]बच्चगयं ।
बउलं सेला[3] एदा पत्तेक्कं इगि-सहस्स-बहलाइं ॥१७॥

अर्थ :—वैडूर्य, लोहिताक (लोहिताक्ष), असारगल्ल (मसारकल्पा), गोमेदक, प्रवाल, ज्योतिरस, अजन, अजनमूल, अक, स्फटिक, चन्दन, वर्चगत (सर्वार्थका), बकुल और शैला ये उन उपर्युक्त चौदह पृथिवियोके नाम है। इनमेसे प्रत्येककी मोटाई एक-एक हजार योजन है ॥१६-१७॥

सोलहवी पृथिवीका नाम, स्वरूप एव बाहल्य

ताण खिदीणं हेट्ठा पासाणं णाम [4]रयण-सेल-समा ।
जोयण-सहस्स-बहलं वेत्तासण-सण्णिहाउ[5] संठाओ[6] ॥१८॥

अर्थ :—उन (१५) पृथिवियोके नीचे पाषाण नामकी एक (सोलहवी) पृथिवी है, जो रत्नपाषाण सदृश है। इसकी मोटाई भी एक हजार योजन प्रमाण है। ये सब पृथिवियाँ वेत्रासनके सदृश स्थित है ॥१८॥

पकभाग एव अब्बहुलभागका स्वरूप

पंकाजिरो य [7]दीसदि एवं पंक-बहुल-भागो वि ।
अप्पबहुलो वि भागो सलिल-सरूवस्सवो होदि ॥१९॥

अर्थ :—इसीप्रकार पकबहुलभाग भी पकसे परिपूर्ण देखा जाता है। उसीप्रकार अब्ब-हुलभाग जलस्वरूपके आश्रयसे है ॥१९॥

---

१ [लोहिययक्ख मसार]। २. ठ चचब्बगय। ३ द. क ब. सेल इय एदाइ। ४. ब क ठ. रयणसोलसम। ५ द ब सण्णिहो। ६ क ठ सबओ। ७ द क. ठ दिसदि एदा एव, ब. दिसदि एव।

रत्नप्रभा नामकी सार्थकता

एवं बहुविह-रयणप्पयार-भरिदो विराजदे जम्हा ।
रयणप्पहो[1] त्ति तम्हा भणिदा णिउणेहि गुणणामा ।।२०।।

अर्थ :—इसप्रकार क्योकि यह पृथिवी बहुत प्रकारके रत्नोसे भरी हुई शोभायमान होती है, इसीलिए निपुण-पुरुषोने इसका 'रत्नप्रभा' यह सार्थक नाम कहा है ।।२०।।

शेप छह पृथिवियोके नाम एव उनकी सार्थकता

सक्कर-वालुव-पंका धूमतमा तमतमा हि सहचरिया ।
जाओ[2] अवसेसाओ[3] छप्पुढवीओ वि गुणणामा ।।२१।।

अर्थ —शेष छह पृथिवियाँ क्रमश. शक्कर, वालू, कीचड, धूम, अन्धकार और महान्धकारकी प्रभासे सहचरित है, इसीलिए इनके भी उपर्युक्त नाम सार्थक है ।।२१।।

विशेषार्थ :—रत्नप्रभापृथिवीके नीचे शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पकप्रभा, धूमप्रभा, तम प्रभा और तमस्तम. प्रभा (महातम· प्रभा) ये छह पृथिवियाँ क्रमश शर्करा आदिकी प्रभासदृश सार्थक नाम वाली है ।

शर्करा-आदि पृथिवियोका बाहल्य

बत्तीसट्ठावीसं चउवीसं वीस-सोलसट्ठं च ।
हेट्ठिम-छप्पुढवीणं बहलत्तं जोयण-सहस्सा ।।२२।।

३२००० । २८००० । २४००० । २०००० । १६००० । ८००० ।

अर्थ :—इन छह अधस्तन पृथिवियोकी मोटाई क्रमश बत्तीस हजार, अट्ठाईस हजार, चौबीस हजार, बीस हजार, सोलह हजार और आठ हजार योजन प्रमाण है ।।२२।।

विशेषार्थ —शर्करा पृथिवीकी मोटाई ३२००० योजन, वालुकाकी २८००० योजन, पकप्रभाकी २४००० योजन, धूमप्रभाकी २०००० योजन, तम प्रभाकी १६००० योजन और महातम प्रभाकी ८००० यो० मोटाई है ।

---

१ [रयणप्पह त्ति], ठ रयणप्पह होत्ति । २. द व क. ठ जेत । ३. ठ अवसेवासो ।

प्रकारान्तरसे पृथिवियोका बाहल्य

वि-गुणिय-छ-च्चउ-सट्ठी-सट्ठी-उणसट्ठी-अट्ठ[1]-चउवण्णा ।
बहलत्तणं सहस्सा हेट्ठिम-पुढवीण-छण्णं पि ।।२३।।

पाठान्तरम् ।

१३२००० । १२८००० । १२०००० । ११८००० । ११६००० । १०८०००

अर्थ:—छयासठ, चौसठ, साठ, उनसठ, अट्ठावन और चौवन इनके दुगुने हजार योजन प्रमाण उन अधस्तन छह पृथिवियोकी मोटाई है ।।२३।।

विशेषार्थ —शर्करा पृथिवीकी मोटाई (६६ हजार × २ =) १३२००० योजन बालुकाकी (६४ हजार × २) = १,२८००० यो०, पकप्रभाकी (६० हजार × २) = १२०००० यो०, धूमप्रभाकी (५९ ह० × २) = ११८००० यो०, तम प्रभाकी (५८ ह० × २) = ११६००० यो० और महातम. प्रभाकी (५४ ह० × २) = १०८००० योजन प्रमाण है ।

पृथिवियोसे घनोदधि वायुकी सलग्नता एव आकार

सत्त च्चिय भूमीओ णव-दिस-भाएण घणोवहि-विलग्गा[2] ।
अट्ठम-भूमी दस-दिस-भागेसु घणोवहि[3] छिवदि ।।२४।।
पुव्वावर-दिब्भाए वेत्तासण-सण्णिहाओ संठाओ ।
उत्तर-दक्खिण-दीहा अणादि-णिहणा य पुढवीओ ।।२५।।

अर्थ :—सातो पृथिवियाँ (ऊर्ध्वदिशाको छोडकर शेष) नौ दिशाओके भागसे घनोदधि वातवलयसे लगी हुई है परन्तु आठवी पृथिवी दसो दिशाओके सभी भागोमे घनोदधि वातवलयको छूती है । ये पृथिवियाँ पूर्व और पश्चिम दिशाके अन्तरालमे वेत्रासनके सदृश आकारवाली तथा उत्तर और दक्षिणमे समानरूपसे दीर्घ एव अनादिनिधन है ।।२४-२५।।

नरक बिलोका प्रमाण

चुलसीदी [4]लक्खाणं णिरय-बिला होंति सव्व-पुढवीसु ।
पुढवि पडि पत्तेक्कं ताण पमाणं परूवेमो ।।२६।।

८४००००० ।

१ द क ब. दुविसट्ठि । ठ. छचउट्ठि सट्ठिदविसट्ठिठ । २ ठ. पुणवहीण । ३ ठ. पुणोवहि ।
४. क ठ लक्खाणि ।

अर्थ —सर्व पृथिवियोमे नारकियोके बिल कुल चौरासी लाख (८४०००००) है। अब इनमेसे प्रत्येक पृथिवीका आश्रय करके उन बिलोके प्रमाणका निरूपण करता हू ॥२६॥

पृथिवीक्रमसे बिलोकी सख्या

तीसं [1]पणवीसं पण्णरसं दस तिण्णि होंति लक्खाणि ।
पण-रहिदेक्कं लक्खं पंच य [2]रयणादि-पुढवीण ॥२७॥

३०००००० । २५००००० । १५००००० । १०००००० । ३००००० । ९९९९५ । ५ ।

अर्थ :—रत्नप्रभा आदिक पृथिवियोमे क्रमश तीस लाख, पच्चीस लाख, पन्द्रह लाख, दस लाख, तीन लाख, पाँच—कम एक लाख और केवल पाँच ही बिल है ॥२७॥

विशेषार्थ —प्रथम नरकमे ३००००००, दूसरेमे २५०००००, तीसरेमे १५०००००, चौथेमे १००००००, पॉचवेमे ३०००००, छठेमे ९९९९५ और सातवे नरकमे ५ बिल है।

सातो नरक पृथिवियोकी प्रभा, बाहल्य एव बिल संख्या
गा० ९, २१-२३ और २७

क्रमाक	नाम	प्रभा	बाहल्य योजनोमे	मतान्तरसे बाहल्य योजनोमे	बिलोकी सख्या
१	रत्नप्रभा	रत्नो सदृश	१८००००	१८००००	३००००००
२	शर्कराप्रभा	शक्कर ,,	३२०००	१३२०००	२५०००००
३	बालुकाप्रभा	बालू ,,	२८०००	१२८०००	१५०००००
४	पकप्रभा	कीचड ,,	२४०००	१२४०००	१००००००
५	धूमप्रभा	धूम ,,	२००००	१२००००	३०००००
६	तमप्रभा	अन्धकार ,,	१६०००	११६०००	९९९९५
७	महातमप्रभा	महान्धकार ,,	८०००	१०८०००	५

१ द पणुवीस। २ द ब क रयणेइ।

बिलोका स्थान

सत्तम-खिदि-बहु-मज्झे [1]बिलाणि सेसेसु अप्पबहुलंतं ।
उवरिं हेट्ठे जोयण-सहस्समुज्झिय हवंति [2]पडल-कमे ।।२८।।

अर्थ :—सातवी पृथिवीके तो ठीक मध्यभागमे बिल है, परन्तु अब्बहुलभाग पर्यन्त शेष छह पृथिवियोमे नीचे एव ऊपर एक-एक हजार योजन छोडकर पटलोके क्रमसे नारकियोके बिल होते है ।।२८।।

विशेषार्थ :—सातवी पृथिवी आठ हजार योजन मोटी है । इसमे ऊपर और नीचे बहुत मोटाई छोडकर मात्र बीचमे एक बिल है, किन्तु अन्य पाँच पृथिवियोमे और प्रथम पृथिवीके अब्बहुलभागमे नीचे ऊपरकी एक-एक हजार योजन मोटाई छोडकर बीचमे जितने-जितने पटल बने है, उनमे अनुक्रमसे बिल पाये जाते है ।

नरकबिलोमे उष्णताका विभाग

पढमादि-बि-ति-चउक्के पंचम-पुढवीए[3] ति-चउक्क-भागंतं ।
अदि-उण्हा णिरय-बिला तट्ठिय-जीवाण तिव्व-दाघ-करा ।।२९।।

अर्थ :—पहली पृथिवीसे लेकर दूसरी, तीसरी, चौथी और पाँचवी पृथिवीके चारभागोमेसे तीन ($\frac{3}{4}$) भागोमे स्थित नारकियोके बिल अत्यन्त उष्ण होनेसे वहाँ रहने वाले जीवोको गर्मीकी तीव्र वेदना पहुचाने वाले है ।।२९।।

नरकबिलोमे शीतताका विभाग

पंचमि-खिदिए तुरिमे भागे छट्ठीअ सत्तमे महिए[4] ।
अदि-सीदा णिरय-बिला तट्ठिय-जीवाण घोर-सीद-करा ।।३०।।

अर्थ :—पाँचवी पृथिवीके अवशिष्ट चतुर्थभागमे तथा छठी और सातवी पृथिवीमे स्थित नारकियोके बिल अत्यन्त शीत होनेसे वहाँ रहनेवाले जीवोको भयानक शीतकी वेदना उत्पन्न करने वाले है ।।३०।

---

१ द ब. क ठ बिलाए। २ ब पडालकमे। ३. द पुढवीय। ४. ब क. महीए।

उष्ण एव शीतबिलोकी सख्या

वासीदीलक्खाणं उण्ह-बिला पंचवीसदि-सहस्सा ।
पणहत्तरिं सहस्सा अदि-[1]सीद-बिलाणि इगिलक्खं ।।३१।।

८२२५००० । १७५०००

अर्थ —नारकियोके उपर्युक्त चौरासीलाख बिलोमेसे बयासीलाख पच्चीस हजार बिल उष्ण और एक लाख पचहत्तर हजार बिल अत्यन्त शीत है ।।३१।।

विशेषार्थ :– रत्नप्रभापृथिवीके बिलोसे चतुर्थपृथ्वी पर्यन्तके बिल एव पाँचवी धूमप्रभा पृथिवीकी बिल राशिके तीनबटेचारभाग ($\frac{३०००००×३}{४}$), अर्थात् ३० लाख+२५ लाख+१५ लाख+१० लाख+२२५०००=८२२५००० बिलो पर्यन्त अति उष्ण वेदना है । पाँचवी पृथिवीके शेष बिलोके एक बटे चारभाग ($\frac{३०००००×१}{४}$) से सातवी पृथिवी पर्यन्त बिल अर्थात् ७५०००+९९९९५+५=१७५००० बिलोमे अत्यन्त शीत वेदना है ।

बिलोकी अति उष्णताका वर्णन

मेरु-सम-लोह-पिंडं सीदं उण्हे बिलम्मि पक्खित्तं ।
ण लहदि तलप्पदेसं विलीयदे मयण-खंडं व ।।३२।।

अर्थ —उष्ण बिलोमे मेरुके बराबर लोहेका शीतल पिण्ड डाल दिया जाय, तो वह तल-प्रदेश तक न पहुचकर बीचमे ही मैण (मोम) के टुकडेके सदृश पिघलकर नष्ट हो जायगा । तात्पर्य यह है कि इन बिलोमे उष्णताकी वेदना अत्यधिक है ।।३२।।

बिलोकी अति-शीतलताका वर्णन

मेरु-सम-लोह-पिंडं उण्हं सीदे बिलम्मि पक्खित्तं ।
ण लहदि तलप्पदेसं विलीयदे लवण-खंडं व ।।३३।।

अर्थ —इसीप्रकार, यदि मेरुपर्वतके बराबर लोहेका उष्ण पिण्ड उन शीतल बिलोमे डाल दिया जाय, तो वह भी तल-प्रदेश तक नही पहुचकर बीचमे ही नमकके टुकडेके समान विलीन हो जावेगा ।।३३।।

---

१ द ब अदिसीदि ।

बिलोकी अति दुर्गन्धताका वर्णन

अज-गज-महिस-तुरंगम-खरोट्ठ-मज्जार-अहि-णरादीणं ।
कुहिदाणं गंधादो णिरय-बिला ते अणंत-गुणा ।।३४।।

अर्थ —नारकियोके वे बिल बकरी, हाथी, भैस, घोडा, गधा, ऊँट, बिल्ली, सर्प और मनुष्यादिकके सडे हुए शरीरोके गधकी अपेक्षा अनन्तगुणी दुर्गन्धसे युक्त है ।।३४।।

बिलोकी अति-भयानकताका वर्णन

करवत्तकं छुरीदो[1] [2]खइरिंगालाति-तिक्ख-सूईए ।
कुंजर-चिक्कारादो णिरय-बिला दारुण-तम-सहावा ।।३५।।

अर्थ :—स्वभावत अन्धकारसे परिपूर्ण-नारकियोके ये बिल करोत या आरी, छुरिका, खदिर (खैर) के अगार, अतितीक्ष्ण सुई और हाथियोकी चिघाडसे अत्यन्त भयानक है ।।३५।।

बिलोके भेद

इंदय-सेढीबद्धा पइण्णयाइ य हवंति [3]तिवियप्पा ।
ते सव्वे णिरय-बिला दारुण-दुक्खाण संजणणा ।।३६।।

अर्थ :—इन्द्रक, श्रेणीवद्ध और प्रकीर्णकके भेदसे तीन प्रकारके ये सभी नरकबिल नारकियोको भयानक दु ख उत्पन्न करनेवाले होते है ।।३६।।

विशेषार्थ :—सातो नरक पृथिवियोमे जीवोकी उत्पत्ति स्थानोके इन्द्रक, श्रेणीवद्ध और प्रकीर्णक—ये तीन नाम है । जो अपने पटलके सर्व बिलोके ठीक मध्यमे होता है, उसे इन्द्रक बिल कहते है । इन्द्रक बिलकी चारो दिशाओ एव विदिशाओमे जो बिल पक्तिरूपसे स्थित है उन्हे श्रेणीबद्ध तथा जो श्रेणीबद्ध बिलोके बीचमे बिखरे हुए पुष्पोके समान यत्र तत्र स्थित है उन्हे प्रकीर्णक कहते है ।

रत्नप्रभा-आदिक-पृथिवियोके इन्द्रक-बिलोकी सख्या

तेरस-एक्कारस-णव-सग-पंच-ति-एक्कइंदया होंति ।
रयणप्पह-पहुदीसुं पुढवीसुं आणु-पुव्वीए ।।३७।।

---

१ द ठ करवकवछुरीदो । क कुरवकवघुरीदो । [कक्खककवाणछुरिदो] । २ द व खइरिं-गालातिक्खसूईए । ३ द व हवति वियप्पा ।

अर्थ :—प्रथम सीमन्तक तथा द्वितीयादि निरय, रौरुक, भ्रान्त, उद्भ्रान्त, सभ्रान्त, असभ्रान्त, विभ्रान्त, तप्त, त्रसित, वक्रान्त, अवक्रान्त और विक्रान्त इसप्रकार ये तेरह इन्द्रक बिल प्रथम पृथिवीमे है। स्तनक, तनक, मनक, वनक, घात, सघात, जिह्वा, जिह्वक, लोल, लोलक और स्तनलोलुक नामवाले ग्यारह इन्द्रक-बिल दूसरी पृथिवीमे है ।।४०-४२।।

तत्तो[1] तसिदो तवणो तावण-णामो णिदाह-पज्जलिदो ।
उज्जलिदो संजलिदो संपज्जलिदो य तदिय-पुढवीए ।।४३।।

९

अर्थ :—तप्त, त्रस्त, तपन, तापन, निदाघ, प्रज्वलित, उज्ज्वलित, सज्वलित और सप्रज्वलित ये नौ इन्द्रक बिल तीसरी पृथिवीमे है ।।४३।।

आरो[2] मारो तारो तच्चो तमगो तहेव खाडे य ।
खडखड-णामा तुरिमक्खोणीए इंदया [3]सत्त ।।४४।।

७

अर्थ :—आर, मार, तार, तत्त्व (चर्चा) तमक, खाड और खडखड नामक सात इन्द्रक बिल चौथी पृथिवीमे है ।।४४।।

तम-भम-झस-अद्धाविय-तिमिसो धूम-पहाए[4] छट्ठीए ।
हिम वद्दल-लल्लंका सत्तम-अवणीए अवधिठाणो त्ति ।।४५।।

५ । ३ । १ ।

अर्थ :—तमक, भ्रमक, झषक, अन्ध और तिमिस्र ये पाँच इन्द्रक बिल धूमप्रभा पृथिवीमे है। छठी पृथिवीमे हिम, वर्दल और लल्लक इसप्रकार तीन तथा सातवी पृथिवीमे केवल एक अवधि-स्थान नामका इन्द्रक बिल है ।।४५।।

दिशाक्रमसे सातो-पृथिवियोके प्रथम श्रेणीबद्ध बिलोके निरूपणकी प्रतिज्ञा

घम्मादी-पुढवीणं पढमिंदय-पढम-सेढिबद्धाणं ।
णामाणि णिरूवेमो पुव्वादि-[5]पदाहिण-क्कमेण ।।४६।।

अर्थ .—घर्मादिक सातो पृथिवियो सम्बन्धी प्रथम इन्द्रक बिलोके समीपवर्ती प्रथम श्रेणीवद्ध बिलोके नामोका पूर्वादिक दिशाओमे प्रदक्षिण-क्रमसे निरूपण करता हू ।।४६।।

घर्मा-पृथिवीके प्रथम-श्रेणीबद्ध-बिलोके नाम

कंखा-पिपास-णामा महकंखा अदिपिपास-णामा य ।
आदिम-सेढीबद्धा चत्तारो होंति सीमंते ।।४७।।

अर्थ :—घर्मा पृथिवीमें सीमन्त-इन्द्रक बिलके समीप पूर्वादिक चारो दिशाओमे क्रमशः काक्षा, पिपासा एव महाकाक्षा और अतिपिपासा नामक चार प्रथम श्रेणीबद्ध बिल है ।।४७।।

बशापृथिवीके प्रथम-श्रेणीबद्ध बिलोके नाम

पढमो अणिच्चणामो बिदिओ विज्जो तहा [1]महाणिच्चो ।
महविज्जो य चउत्थो पुव्वादिसु होंति [2]थणगम्हि ।।४८।।

अर्थ :—वशा पृथिवीमे प्रथम अनिच्छ, दूसरा अविन्ध्य, तीसरा महानिच्छ और चतुर्थ महाविन्ध्य, ये चार श्रेणीबद्ध बिल पूर्वादिक दिशाओमे स्तनक इन्द्रक बिलके समीप है ।।४८।।

मेघा-पृथिवीके प्रथम श्रेणीबद्ध-बिलोके नाम

दुक्खा य वेदणामा महदुक्खा तुरिमया अ महवेदा ।
तत्तिदयस्स[3] एदे पुव्वादिसु होंति चत्तारो ।।४९।।

अर्थ —मेघा पृथिवीमे दु खा, वेदा, महादु.खा और महावेदा, ये चार श्रेणीबद्ध बिल पूर्वादिक दिशाओमे तप्त इन्द्रकके समीप है ।।४९।।

अजना-पृथिवीके प्रथम-श्रेणीबद्ध बिलोके नाम

आरिंदए [4]णिसट्ठो पढमो बिदिओ वि अंजण-णिरोधो ।
तदिओ [5]य अदिणिसत्तो महणिरोधो चउत्थो त्ति ।।५०।।

---

१. द. ब महाणिज्जो । २. द घलगम्हि, ब क ठ. घणगम्हि । ३ ब. तत्तिदियस्स ।
४ ठ णिमट्ठो । ५ ब ततिउ य ।

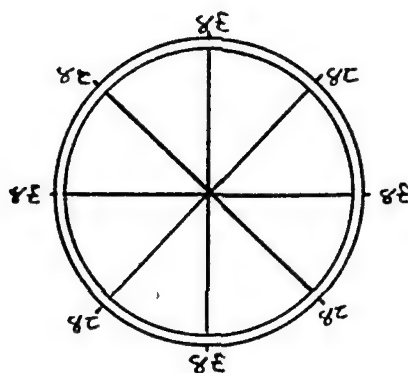
१३ । ११ । ६ । ७ । ५ । ३ । १ ।

अर्थः—रत्नप्रभा आदिक पृथिवियोमे क्रमशः तेरह, ग्यारह, नौ, सात, पाँच, तीन और एक, इसप्रकार कुल उनचास इन्द्रक बिल है ।।३७।।

विशेषार्थः—प्रथम नरकमे १३, दूसरेमे ११, तीसरेमे ६, चौथेमे ७, पाँचवेमे ५, छठेमे ३ और सातवे नरकमे एक इन्द्रक बिल है । एक-एक पटलमे एक-एक इन्द्रक बिल है, अत पटलभी ४६ ही है ।

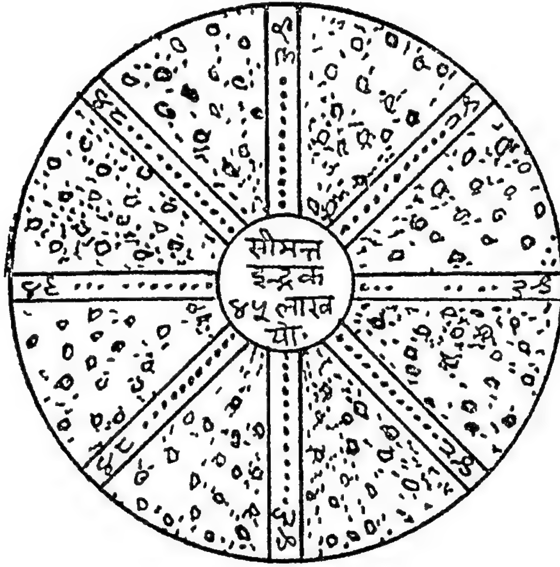
इन्द्रक बिलोके आश्रित श्रेणीबद्ध बिलोकी संख्या

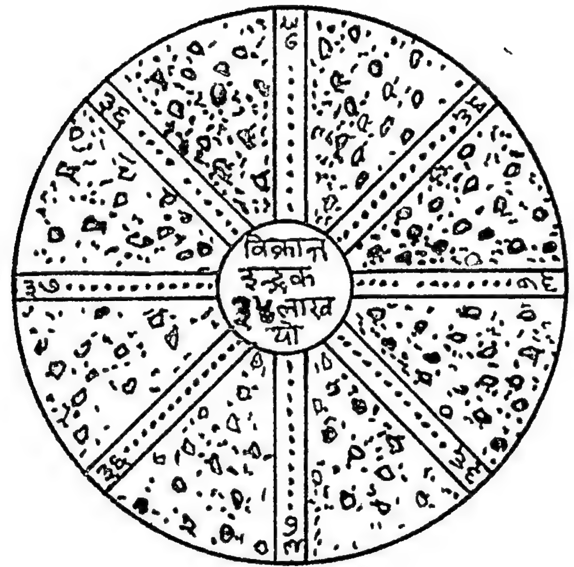
पढमम्हि इंदयम्हि य दिसासु उणवण्ण-सेढिबद्धा य ।
अडदालं विदिसासु विदियादिसु एक्क-परिहीणा ।।३८।।



अर्थः—पहले इन्द्रक बिलकी आश्रित दिशाओमे उनचास और विदिशाओमे अडतालीस श्रेणीबद्ध बिल है । इसके आगे द्वितीयादि इन्द्रक बिलोके आश्रित रहनेवाले श्रेणीबद्ध बिलोमेंसे एक-एक बिल कम होता गया है ।।३८।।

[चित्र अगले पृष्ठ पर देखिये]





सात-पृथिवियोके इन्द्रक बिलोकी सख्या

एक्कंत-तेरसादी सत्तसु ठाणेसु [1]मिलिद-परिसंखा ।
उणवण्णा पढमादो इंदय-णामा इमा होंति ।।३९।।

अर्थ :—प्रथम पृथिवीसे सातो पृथिवियोमे तेरहको आदि लेकर एक पर्यन्त कुल मिलाकर उनचास सख्यावाले इन्द्रक नामके बिल होते है ।।३९।।

पृथिवी क्रमसे इन्द्रक बिलोके नाम

सीमंतगो य पढमो णिरयो रोरुग य भंत-उब्भंता ।
संभंत-असंभंता विब्भंता [2]तत्त तसिदा य ।।४०।।
वक्कंत अवक्कंता विक्कंतो होंति पढम-पुढवीए ।
[3]थणगो तणगो मणगो वणगो घाडो[4] असंघाडो ।।४१।।
जिब्भा-जिब्भग-लोला लोलय-[5]थणलोलुगाभिहाणा य ।
एदे बिदिय खिदीए एक्कारस इंदया होंति ।।४२।।

१३ । ११ ।

---

१. क मिलदि । २ ब. तध । ३ द थलगो । ४. ब. दाघो । क. दाघो । ५ द. लोलय-घण । ठ. लोलयघण ।

अर्थ :—अजना पृथिवीमे आर इन्द्रकके समीप प्रथम निसृष्ट, द्वितीय निरोध, तृतीय अति-निसृष्ट और चतुर्थ महानिरोध ये चार श्रेणीवद्ध विल है ।।५०।।

अरिष्टा-पृथिवीके प्रथम श्रेणीवद्ध विलोके नाम

तमंकिदए[1] णिरुद्धो विमद्दणो अदि-[2]णिरुद्ध-णामो य ।
तुरिमो महाविमद्दण-णामो पुव्वादिसु दिसासु ।।५१।।

अर्थ —तमक इन्द्रक विलके समीप निरुद्ध, विमर्दन, अतिनिरुद्ध और चतुर्थ महामर्दन नामक चार श्रेणीवद्ध विल पूर्वादिक चारो दिशाओमे विद्यमान है ।।५१।।

मघवी पृथिवीके प्रथम-श्रेणीवद्ध-विलोके नाम

हिम-इंदयम्हि होंति हु णीला पंका य तह य महणीला ।
महपंका पुव्वादिसु सेढीबद्धा इमे चउरो ।।५२।।

अर्थ :—हिम इन्द्रक बिलके समीप नीला, पका, महानीला और महापका, ये चार श्रेणी-वद्ध विल क्रमश पूर्वादिक दिशाओमे स्थित है ।।५२।।

माघवी-पृथिवीके प्रथम-श्रेणीवद्ध विलोके नाम

कालो रोरव-णामो महकालो पुव्व-पहुदि-दिब्भाए ।
महरोरओ चउत्थो अवधी-ठाणस्स चिट्ठेदि ।।५३।।

अर्थ :—अवधिस्थान इन्द्रक बिलके समीप पूर्वादिक चारोदिशाओमे काल, रौरव, महा-काल और चतुर्थ महारौरव ये चार श्रेणीबद्ध बिल है ।।५३।।

अन्य विलोके नामोके नष्ट होनेकी सूचना

अवसेस-इंदयाणं पुव्वादि-दिसासु सेढिबद्धाणं ।
[3]णट्ठाइं णामाइं पढमाणं बिदिय-पहुदि-सेढीणं ।।५४।।

अर्थ :—शेष द्वितीयादिक इन्द्रकबिलोके समीप पूर्वादिक दिशाओमे स्थित श्रेणीवद्ध बिलोके नाम और पहले इन्द्रकबिलोके समीप स्थित द्वितीयादिक श्रेणीबद्ध बिलोके नाम नष्ट हो गये है ।।५४।।

---

१ द ब ठ. तमंकिडये । २ द. व क. ठ. यदिणिधुणामो । ३. द ब क ठ णत्ताइ ।

इन्द्रक एव श्रेणीबद्ध बिलोकी सख्या

दिसि-विदिसाणं मिलिदा अट्ठासीदी-जुदा य तिण्णि सया ।
सीमंतएण जुत्ता उणणवदी समहिया होंति ॥५५॥

३८८ । ३८९ ।

अर्थ :—सभी दिशाओ और विदिशाओके कुल मिलाकर तीनसौ अठासी श्रेणीबद्ध बिल है । इनमे सीमन्त इन्द्रक बिल मिला देने पर सब तीनसौ नवासी होते है ॥५५॥

विशेषार्थ : – प्रथम पृथिवीमे १३ पाथडे (पटल) है, उनमेसे प्रथम पाथडेकी दिशा और विदिशाके श्रेणीबद्ध बिलोको जोडकर चारसे गुणा करनेपर सीमन्तक इन्द्रक सम्बन्धी श्रेणीबद्ध बिल (४९+४८=९७×४)=३८८ प्राप्त होते है और इनमे सीमन्त इन्द्रक बिल और जोड देनेसे (३८८+१)=३८९ बिल प्राप्त होते है ।

क्रमश श्रेणीबद्ध-बिलोकी हानि

उणणवदी तिण्णि सया पढमाए पढम-पत्थडे[1] होंति ।
बिदियादिसु हीयंते माघवियाए पुढं पंच ॥५६॥

। ३८९ ।

अर्थ :—इसप्रकार प्रथम पृथिवीके प्रथम पाथडेमे इन्द्रकसहित श्रेणीबद्ध बिल तीनसौ ा (३८९) है । इसके आगे द्वितीयादिक पृथिवियोमे हीन होते-होते माघवी पृथिवीमे मात्र पाॅच ही बिल रह गये है ॥५६॥

अट्ठाणं पि दिसाणं एक्केक्कं हीयदे जहा-कमसो ।
एक्केक्क-हीयमाणे पंच [2]च्चिय होति परिहाणे ॥५७॥

अर्थ —आठो ही दिशाओमे यथाक्रम एक-एक बिल कम होता गया है। इसप्रकार एक-एक विल कम होनेसे अर्थात् सम्पूर्ण हानिके होनेपर अन्तमे पाॅच ही बिल शेष रह जाते है ॥५७॥

विशेषार्थ :—सातो पृथिवियोके ४९ पटल और ४९ ही इन्द्रक बिल है । प्रथम पृथिवीके प्रथम पटलके प्रथम इन्द्रककी एक-एक दिशामे उनचास-उनचास श्रेणीबद्ध बिल और एक-एक

---

१ क पथडे । २ द. यरजिय, ब. ठ. यरज्जिय । क ज रज्जिय ।

विदिशामे अडतालीस-अडतालीस श्रेणीबद्ध विल है तथा द्वितीयादि पटलसे सप्तम पृथिवीके अन्तिम पटल पर्यन्त एक-एक दिशा एव विदिशामे क्रमश एक-एक घटते हुए श्रेणीबद्ध विल है, अतः सप्तम पृथिवीके पटलकी दिशाओमे तो एक-एक श्रेणीबद्ध है किन्तु विदिशाओमे उनका अभाव है इसीलिए सप्तम पृथिवीमे (एक इन्द्रक और चार दिशाओके चार श्रेणीबद्ध इसप्रकार मात्र) पाँच विल कहे गये है ।

श्रेणीबद्ध बिलोके प्रमाण निकालनेकी विधि

इट्ठिदयप्पमाणं रूऊणं [1]अट्ठ-ताडिया णियमा ।
उणणवदीतिसएसु अवणिय सेसो [2]हवंति तप्पडला ।।५८।।

अर्थ —इष्ट इन्द्रक प्रमाणमेसे एक कम कर अवशिष्टको आठसे गुणा करनेपर जो गुणनफल प्राप्त हो उसे तीनसौ नवासीमेसे घटा देनेपर नियमसे शेष विवक्षित पाथडेके श्रेणीवद्ध सहित इन्द्रकका प्रमाण होता है ।।५८।।

विशेषार्थ :—मानलो—इष्ट इन्द्रक प्रमाण ४ है । इसमेसे एक कम कर ८ से गुणित करे, पश्चात् गुणनफलको (प्रथम पृथिवीके प्रथम पाथडेमे इन्द्रक सहित श्रेणीबद्ध बिलोकी सख्या) ३८९ मेसे घटा देनेपर इष्ट प्रमाण प्राप्त होता है । यथा—इष्ट इन्द्रक प्रमाण (४ — १ = ३) × ८ = २४ । ३८९ — २४ = ३६५ चतुर्थ पाथडेके इन्द्रक सहित श्रेणीबद्ध विलोका प्रमाण प्राप्त हुआ । ऐसे अन्यत्र भी जानना चाहिए ।

प्रकारान्तरसे प्रमाण निकालनेकी विधि

अहवा—

इच्छे[3] पदर-विहीणा उणवण्णा अट्ठ-ताडिया णियमा ।
सा पंच-रूव-जुत्ता इच्छिद-सेढिंदया होंति ।।५९।।

अर्थ :—अथवा—इष्ट प्रतरके प्रमाणको उनचासमेसे कम कर देनेपर जो अवशिष्ट रहे उसको नियमपूर्वक आठसे गुणा कर प्राप्त राशिमे पाँच मिलादे । इसप्रकार अन्तमे जो सख्या प्राप्त हो वही विवक्षित पटलके इन्द्रकसहित श्रेणीबद्ध विलोका प्रमाण होती है ।।५९।।

विशेषार्थ :—कुल प्रतर प्रमाण सख्या ४९ मेसे इष्ट प्रतर सख्या ४ को कमकर अवशेषको ८ से गुणित करे, पश्चात् ५ जोड दे । यथा—(४९ — ४ = ४५) × ८ = ३६० + ५ = ३६५ विवक्षित

---

१ द इट्ठतदिया । २ द ठ हुवति । ३ [इट्ठे] ।

विशेषार्थ :—सकलित धन निकालनेका सूत्र—

सकलित धन=[{ (गच्छ-इच्छा)×चय } + { (इच्छा-१) ×चय } + मुख×२]× गच्छ/२

प्रथम पृथ्वीका सकलित धन=[(१३ — १)×८+(१ — १)×८+२९३×२]× १३/२=४४३३ ।

दूसरी पृथ्वीका सकलित धन=[(११ — २)×८+(२ — १)×८+२०५ × २]× ११/२=२६९५ ।

तीसरी पृथ्वीका सकलित धन=[(९ — ३)×८ +(३ — १)×८+१३३×२]× ९/२=१४८५ ।

चौथी पृथ्वीका सकलित धन=[(७ — ४)×८+ (४ — १)×८+७७×२]× ७/२=७०७ ।

पाँचवी पृ० का सकलित धन=[(५ — ५)×८+(५ — १)×८+३७ × २]× ५/२=२६५ ।

छठी पृ० का सकलित धन=[(३ — ६)×८+(६ — १)×८+१३ × २]× ६/२=६३ ।

प्रकारान्तरसे सकलितधन निकालनेका प्रमाण

एक्कोणमवणि[1]-इंदयमद्धिय[2] वग्गेज्ज मूल-संजुत्तं ।
अट्ठ-गुणं पंच-जुदं पुढविंदय-ताडिदम्मि पुढवि-धणं ।।६५।।

अर्थ :—एक कम इष्ट पृथिवीके इन्द्रकप्रमाणको आधा करके उसका वर्ग करनेपर जो प्रमाण प्राप्त हो उसमे मूलको जोडकर आठसे गुणा करे और पाँच जोड दे । पश्चात् विवक्षित पृथिवीके इन्द्रकका जो प्रमाण हो उससे गुणा करनेपर विवक्षित पृथिवीका धन अर्थात् इन्द्रक एवं श्रेणीबद्ध बिलोका प्रमाण निकलता है ।।६५।।

---

१ द ब मण्ण । २ ब. मट्टिय, द मद्दिय ।

अर्थ :—दोसौ तेरानवै, दोसौ पाँच, एकसौ तैंतीस, सतहत्तर, सैंतीस और तेरह यह क्रमश. रत्नप्रभादिक छह पृथिवियोमे आदिका प्रमाण है ।।६२।।

विशेषार्थ —रत्नप्रभासे तम प्रभा पर्यन्त छह पृथिवियोके अन्तिम पटलकी दिशा-विदिशाओके श्रेणीबद्ध एव इन्द्रक सहित क्रमश २९३, २०५, १३३, ७७, ३७ और १३ बिल प्राप्त होते है, अपनी-अपनी पृथिवीका यही आदि या मुख या प्रभव है ।

गच्छ एव चयका प्रमाण

तेरस-एक्कारस-णव-सग-पंच-तियाणि होंति गच्छाणि ।
सव्वत्थुत्तरमट्ठं[1] [2]रयणप्पह-पहुदि-पुढवीसु ।।६३।।

१३ । ११ । ९ । ७ । ५ । ३ सव्वत्थुत्तरमट्ठ[3] ८ ।

अर्थ :—रत्नप्रभादिक पृथिवियोमे क्रमश तेरह, ग्यारह, नौ, सात, पाँच और तीन गच्छ है । उत्तर या चय सव जगह आठ होते है ।।६३।।

विशेषार्थ :—रत्नप्रभादि छह पृथिवियोमे गच्छका प्रमाण क्रमश १३, ११, ९, ७, ५ और ३ है तथा सर्वत्र उत्तर या चय ८ है ।

सकलित-धन निकालनेका विधान

चय-हदमिच्छूण-पदं[4] रूवूणिच्छाए गुणिद-चय-जुत्तं ।
दुगुणिद[5]-वदणेण जुदं पद-दल-गुणिदं हवेदि संकलिदं ।।६४।।

चय-हदमिच्छूण-पदं $\frac{1}{13}$ । ८ ।
रूवूणिच्छाए[6] गुणिद-चयं $\frac{1}{1}$ । ८ । जुदं ९६ ।
दुगुणिद-वदणादि सुगमं ।

अर्थ :—इच्छासे, हीन गच्छको चयसे गुणा करके उसमे एक-कम इच्छासे गुणित चयको जोडकर प्राप्त हुए योगफलमे दुगुने मुखको जोड देनेके पश्चात् उसको गच्छके अर्धभागसे गुणा करनेपर सकलित धनका प्रमाण आता है ।

---

१. द. ब क ठ सव्वट्ठुत्तरमत । २ द ब क रयणपहाए । ३ द ब सव्वदुट्ठर । ४. द ब. मिक्कूण-पद । ५ द ब क ठ गुणिद वदणेण । ६ द ब चय-पदमित्थूण-पद १३३ । ८ रूउणिच्छाए गुणिद-चय $\frac{1}{3}$ । ८ । जुद ९ । दुगुणि-देवादि सुगम । इति पाठ ७६ तम-गाथाया' पश्चादुपलभ्यते ।

विशेषार्थ :—सकलित धन निकालनेका सूत्र—

सकलित धन=[{ (गच्छ-इच्छा) × चय } + { (इच्छा-१) × चय } + मुख × २] × $\frac{\text{गच्छ}}{२}$

प्रथम पृथ्वीका सकलित धन=[(१३ — १) × ८ + (१ — १) × ८ + २९३ × २] × $\frac{१३}{२}$ = ४४३३ ।

दूसरी पृथ्वीका सकलित धन=[(११ — २) × ८ + (२ — १) × ८ + २०५ × २] × $\frac{११}{२}$ = २६९५ ।

तीसरी पृथ्वीका सकलित धन=[(९ — ३) × ८ + (३ — १) × ८ + १३३ × २] × $\frac{९}{२}$ = १४८५ ।

चौथी पृथ्वीका सकलित धन=[(७ — ४) × ८ + (४ — १) × ८ + ७७ × २] × $\frac{७}{२}$ = ७०७ ।

पाँचवी पृ० का सकलित धन=[(५ — ५) × ८ + (५ — १) × ८ + ३७ × २] × $\frac{५}{२}$ = २६५ ।

छठी पृ० का सकलित धन=[(३ — ६) × ८ + (६ — १) × ८ + १३ × २] × $\frac{३}{२}$ = ६३ ।

प्रकारान्तरसे सकलितधन निकालनेका प्रमाण

एक्कोणमवणि[1]-इंदयमद्धिय[2] वग्गेज्ज मूल-संजुत्तं ।
अट्ठ-गुणं पंच-जुदं पुढविंदय-ताडिदम्मि पुढवि-धणं ।।६५।।

अर्थ :—एक कम इष्ट पृथिवीके इन्द्रकप्रमाणको आधा करके उसका वर्ग करनेपर जो प्रमाण प्राप्त हो उसमे मूलको जोडकर आठसे गुणा करे और पाँच जोड दे। पश्चात् विवक्षित पृथिवीके इन्द्रकका जो प्रमाण हो उससे गुणा करनेपर विवक्षित पृथिवीका धन अर्थात् इन्द्रक एवं श्रेणीबद्ध बिलोका प्रमाण निकलता है ।।६५।।

---

१ द ब मण्ण। २ ब मट्ठिग, द मट्ठिय।

विशेषार्थ :—जैसे—प्रथम पृ० के इन्द्रक १३ — १=१२, १२ ÷ २=६, ६×६=३६ वर्ग फल, ३६+६ मूलराशि=४२, ४२×८=३३६, ३३६+५=३४१, ३४१×१३ इन्द्रक सख्या=४४३३ प्रमाण प्रथम पृ० के इन्द्रक सहित श्रेणीबद्ध विलोका प्राप्त हुआ।

समस्त पृथिवियोके इन्द्रक एव श्रेणीबद्ध विलोकी सख्या

पढमा[1] इंदय-सेढी चउदाल-सयाणि होंति तेत्तीसं।
छस्सय-दुसहस्साणि पणणउदी बिदिय-पुढवीए ॥६६॥

४४३३। २६९५।

अर्थ :—पहली पृथिवीमे इन्द्रक और श्रेणीबद्ध बिल चार हजार चार सौ तेतीस है और दूसरी पृथिवीमे दो हजार छह सौ पचानवै (इन्द्रक एव श्रेणीबद्ध बिल) है ॥६६॥

विशेषार्थ .—(१३ — १=१२)—२=६। (६×६=३६)+६=४२। ४२×८=३३६। (३३६+५=३४१)×१३=४४३३ पहली पृ० के इन्द्रक और श्रेणीबद्ध विलोका प्रमाण है।

(११ — १=१०)—२=५। (५×५=२५)+५=३०। ३०×८=२४०।

(२४०+५=२४५)×११=२६९५ दूसरी पृ० के इन्द्रक+श्रेणीबद्ध।

तिय-पुढवीए इंदय-सेढी [2]चउदस-सयाणि पणसीदी।
सत्तुत्तराणि सत्त य सयाणि ते होंति तुरिमाए ॥६७॥

१४८५। ७०७।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीमे इन्द्रक एव श्रेणीबद्ध बिल चौदहसौ पचासी और चौथी पृथिवीमे सातसौ सात है ॥६७॥

विशेषार्थ :—(९ — १=८)—२=४। (४×४=१६)+४=२०। २०×८=१६०, (१६०+५)×९=१४८५ तीसरी पृ० के इन्द्रक और श्रेणीबद्ध।

पणसट्ठी दोण्णि सया इंदय-सेढीए पंचम-खिदीए।
तेसट्ठी छट्ठीए चरिमाए पंच णादव्वा ॥६८॥

२६५। ६३। ५।

१ व पुढमा। २ द वद्धस्स।

अर्थ :—पाँचवी पृथिवीमे दोसौ पैसठ, छठीमे तिरेसठ और अन्तिम सातवी पृथिवीमे मात्र पाँच ही इन्द्रक और श्रेणीबद्ध बिल है, ऐसा जानना चाहिए। ६८॥

विशेषार्थ :—(५ — १ = ४) — २ = २, (२ × २ = ४) + २ = ६। ६ × ८ = ४८, (४८ + ५ = ५३) × ५ = २६५ पाँचवी पृ० के इन्द्रक और श्रेणीबद्ध। (३ — १ = २) — २ = १। (१ × १ = १) + १ = २। २ × ८ = १६। (१६ + ५ = २१) × ३ = ६३ छठी पृथिवीके इन्द्रक और श्रेणीबद्ध बिलोका प्रमाण। (१ — १ = ०) — २ = ०, (० × ० = ०) + ० = ०। ० × ८ = ०। (० + ५ = ५) × १ = ५ सातवी पृथिवीके इन्द्रक और श्रेणीबद्ध बिलोका प्रमाण।

सम्मिलित प्रमाण निकालनेके लिए आदि चय एव गच्छका प्रमाण

पंचादी अट्ठ चयं उणवण्णा होंति गच्छ-परिमाण।
सव्वाणं पुढवीणं सेढीबद्धिदयाण [1]इमं ॥६९॥

[2]चय-हदमिट्ठाधिय-पदमेक्काधिय-इट्ठ-गुणिद-चय-हीणं।
दुगुणिद-वदणेण जुदं पद-दल-गुणिदम्मि होदि सकलिदं ॥७०॥

अर्थ :—सम्पूर्ण पृथिवियोके इन्द्रक एव श्रेणीबद्ध बिलोके प्रमाणको निकालनेके लिए आदि पाँच, चय आठ और गच्छका प्रमाण उनचास है ॥६९॥

इष्टसे अधिक पदको चयसे गुणा करके उसमेसे, एक अधिक इष्टसे गुणित चयको घटा देनेपर जो शेष रहे उसमे दुगुने मुखको जोडकर गच्छके अर्धभागसे गुणा करनेपर सकलित धन प्राप्त होता है ॥७०॥

विशेषार्थ —सातो पृथिवियोके इन्द्रक और श्रेणीबद्धोकी सामूहिक सख्या निकालने हेतु आदि अर्थात् मुख ५, चय ८ और गच्छ या पदका प्रमाण ४९ है। यहाँ पर इष्ट ७ है अत इष्टसे अधिक पदको अर्थात् (४९ + ७) = ५६ को ८ (चय) से गुणा करनेपर (५६ × ८) = ४४८ प्राप्त हुए, इसमेसे एक अधिक इष्टसे गुणित चय अर्थात् (७ + १ = ८) × ८ = ६४ घटा देनेपर (४४८ — ६४) = ३८४ शेष रहे, इसमे दुगुने मुख (५ × २) = १० को जोडकर जो ३९४ प्राप्त हुए उसमे $\frac{४९}{२}$ का गुणा कर देनेपर ($\frac{३९४}{१} \times \frac{४९}{२}$) = ९६५३ सातो पृथिवियोका सकलित धन अर्थात् इन्द्रक और श्रेणीबद्धोका प्रमाण प्राप्त हुआ।

---

१ द ब. इदम। २ द क चयपदमिट्ठादियपदमेक्कादिय, ब चयहदमिट्ठदिय पदेमक्कादिय।

समस्त पृथिवियोका सकलित धन निकालनेका विधान

अहवा—

अट्ठत्तालं दलिदं गुणिदं अट्ठेहि पंच-रूव-जुदं ।
उणवण्णाए पहद सव्व-धणं होइ पुढवीणं ।।७१।।

अर्थ :—अथवा—अडतालीसके आधेको आठसे गुणा करके उसमे पाँच मिला देनेपर प्राप्त हुई राशिको उनचाससे गुणा करे तो सातो पृथिवियोका सर्वधन प्राप्त हो जाता है ।

विशेषार्थ :—$\frac{४८}{२}$ × ८ = १९२, १९२ + ५ = १९७, १९७ × ४९ = ९६५३ सर्व पृथिवियोका सकलित धन ।

प्रकारान्तरसे सकलित धन-निकालनेका विधान

इंदय-सेढीबद्धा णवय-सहस्साणि छस्सयाणं पि ।
तेवण्णं अधियाइं सव्वासु वि होंति खोणीसु ।।७२।।

। ९६५३ ।

अर्थ :—सम्पूर्ण पृथिवियोमे कुल नौहजार छहसौ तिरेपन (९६५३) इन्द्रक और श्रेणी-बद्ध बिल है ।।७२।।

समस्त पृथिवियोके इन्द्रक और श्रेणीबद्ध विलोकी सख्या

णिय-णिय-चरिमिंदय[1]-धणमेक्कोण[2] होदि आदि-परिमाणं ।
णिय-णिय-पदरा गच्छा पचया सव्वत्थ [3]अट्ठेव ।।७३।।

अर्थ :—प्रत्येक पृथिवीके श्रेणीधनको निकालनेके लिए एक कम अपने-अपने चरम इन्द्रक-का प्रमाण आदि, अपने-अपने पटलका प्रमाण गच्छ और चय सर्वत्र आठ ही है ।।७३।।

प्रथमादि पृथिवियोके श्रेणीबद्ध विलोकी सख्या निकालनेके लिए आदि गच्छ एव चयका निर्देश

बाणउदि-जुत्त-दुसया [4]चउ-जुद दु-सया सयं च बत्तीसं ।
छावत्तरि छत्तीसं बारस रयणप्पहादि-आदीओ ।।७४।।

---

१ क चरमिंद धय । २ क मेक्काण । ३. व अलद्धेव, द ठ लट्ठेव । ४ क चउ-अधियसय ।

२६२ । २०४ । १३२ । ७६ । ३६ । १२

अर्थ :—दोसौ बानबै, दोसौ चार, एकसौ बत्तीस, छयत्तर, छत्तीस और बारह, इसप्रकार रत्नप्रभादि छह पृथिवियोमे आदिका प्रमाण है ।।७४।।

विशेषार्थ :—प्रत्येक पृथिवीके अन्तिम पटलकी दिशा-विदिशाओके श्रेणीबद्ध बिलोका प्रमाण क्रमश. २६२, २०४, १३२, ७६, ३६ और १२ है। आदि (मुख) का प्रमाण भी यही है ।

तेरस-एक्कारस-णव-सग-पंच-तियाणि होंति गच्छाणि ।
सव्वत्थुत्तरमट्ठं सेढि-धणं सव्व-पुढवीणं ।।७५।।

अर्थ :—सब पृथिवियोके (पृथक्-पृथक्) श्रेणी-धनको निकालनेके लिए गच्छका प्रमाण तेरह, ग्यारह, नौ, सात, पाँच और तीन है, चय सर्वत्र आठ ही है ।।७५।।

प्रथमादि-पृथिवियोके श्रेणीबद्ध बिलोकी सख्या निकालनेका विधान

पद-वग्गं चय-पहदं[1] दुगुणिद-गच्छेण गुणिद-मुह[2]-जुत्तं ।
[3]वड्ढि-हद-पद-विहीणं दलिदं जाणेज्ज संकलिदं ।।७६।।

अर्थ :—पदके वर्गको चयसे गुणा करके उसमे दुगुने पदसे गुणित मुखको जोड देनेपर जो राशि उत्पन्न हो उसमेसे चयसे गुणित पदप्रमाणको घटाकर शेषको आधा करनेपर प्राप्त हुई राशिके प्रमाण सकलित श्रेणीबद्ध बिलोकी सख्या जानना चाहिए ।।७६।।

प्रथमादि-पृथिवियोमे श्रेणीबद्ध-बिलोकी सख्या

चत्तारि सहस्साणि चउस्सया वीस होंति पढमाए ।
सेढि-गदा बिदियाए दु-सहस्सा [4]छस्सयाणि चुलसीदी ।।७७।।

४४२० । २६८४

अर्थ :—पहली पृथिवीमे चार हजार चार सौ बीस और दूसरी पृथिवीमे दो हजार छहसौ चौरासी श्रेणीबद्ध बिल है ।।७७ ।

विशेषार्थ — $\frac{(१३^२ \times ८)+(१३ \times २ \times २९२)-(८ \times १३)}{२} = \frac{८८४०}{२} = ४४२०$

पहली पृथिवीगत श्रेणीबद्ध-बिलोका कुल प्रमाण ।

---

१. द ब. चयपहिद । २. द ब. मुवजुत्तं । ३. ब चट्टिहद । ठ. घडअधिय । ४. ब छसयाण ।

$\frac{(११^२ \times ८) + (११ \times २ \times २०४) - (८ \times ११)}{२} = \frac{५३६८}{२} = २६८४$ दूसरी पृथिवीगत श्रेणीबद्ध बिलोका कुल प्रमाण । यहाँ गाथा ॥७६॥ के निम्न सूत्रका प्रयोग हुआ है :—

सकलित धन $= [(पद)^२ \times चय + (२\ पद \times मुख) - पद \times चय] \times \frac{१}{२}$

चोद्दस-सयाणि छाहत्तरीय तदियाए तह य सत्त-सया ।
तुरिमाए सट्ठि-जुदं दु-सयाणि पचमीए[1] वि ॥७८॥

१४७६ । ७०० । २६० ।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीमे चौदहसौ छयत्तर, चौथीमे सातसौ और पाँचवो पृथिवीमे दोसौ साठ श्रेणीबद्ध बिल है, ऐसा जानना चाहिए ॥७८॥

विशेषार्थ :— $\frac{(९^२ \times ८) + (९ \times २ \times १३२) - (८ \times ९)}{२} = \frac{२९५२}{२} = १४७६$ तीसरी पृथिवीगत श्रेणीबद्ध बिलोका कुल प्रमाण ।

$\frac{(७^२ \times ८) + (७ \times २ \times ७६) - (८ \times ७)}{२} = \frac{१४००}{२} = ७००$ चौथी पृथिवीगत श्रेणीबद्ध बिलोका कुल प्रमाण ।

$\frac{(५^२ \times ८) + (५ \times २ \times ३६) - (८ \times ५)}{२} = \frac{५२०}{२} = २६०$ पाँचवी पृथिवीगत श्रेणीबद्ध बिलोका कुल प्रमाण ।

सट्ठी तमप्पहाए चरिम-धरित्तीए होंति [2]चत्तारि ।
एवं सेढीबद्धा पत्तेक्कं सत्त-खोणीसु[3] ॥७९॥

६० । ४ ।

अर्थ :—तम प्रभा पृथिवीमे साठ और अन्तिम महातम प्रभा पृथिवीमे चार श्रेणीबद्ध बिल है । इसप्रकार सात पृथिवियोमेसे प्रत्येकमे श्रेणीबद्ध बिलोका प्रमाण समझना चाहिए ॥७९॥

---

१ द. व क पचमिए होदि णायव्व । ठ. पचमिए होदि णादव्व । २. ठ. वंतिरिए । ३ द. ब क ठ खोणीए ।

विशेषार्थ :— $\frac{(३^२\times८)+(३\times२\times१२)-(८\times३)}{२}=\frac{१२०}{२}=६०$ छठी पृथिवीगत श्रेणीबद्ध बिलोका कुल प्रमाण ।

सातवी पृथिवीमे मात्र ४ ही श्रेणीबद्ध बिल है ।

सब पृथिवियोके समस्त श्रेणीबद्ध बिलोकी सख्या निकालनेके लिए आदि, चय और गच्छका निर्देश

चउ-रूवाइं आदिं पचय-पमाणं पि अट्ठ-रूवाइं ।
गच्छस्स य परिमाणं हवेदि एक्कोणपण्णासा ।।८०।।

४ । ८ । ४९ ।

अर्थ :—(रत्नप्रभादिक पृथिवियोमे सम्पूर्ण श्रेणीबद्ध बिलोका प्रमाण निकालनेके लिए) आदिका प्रमाण चार, चयका प्रमाण आठ और गच्छ या पदका प्रमाण एक कम पचास अर्थात् ४९ होता है ।।८०।।

सब पृथिवियोके समस्त श्रेणीबद्ध बिलोकी सख्या निकालनेका विधान

पद-वग्गं पद-रहिदं चय-गुणिदं पद-हदादि-जुदमद्धं[1] ।
मुह-दल-गुणिद-पदेणं[2] संजुत्तं होदि संकलिदं ।।८१।।

अर्थ —पदका वर्गकर उसमेसे पदके प्रमाणको कम करके अवशिष्ट राशिको चयके प्रमाणसे गुणा करना चाहिए । पश्चात् उसमे पदसे गुणित आदिको मिलाकर और उसका आधा कर प्राप्त राशिमे मुखके अर्ध-भागसे गुणित पदके मिला देनेपर सकलित धनका प्रमाण निकलता है ।।८१।।

विशेषार्थ :— $\frac{(४९^२-४९)\times८+(४९\times४)}{२}+(२\times४९)=$

$\frac{(२४०१-४९)\times८+(१९६)}{२}+(९८)=\frac{२३५२\times८+१९६}{२}+९८=९६०४$ सकलित धन ।

समस्त श्रेणीबद्ध-बिलोकी सख्या

रयणप्पह-पहुदीसुं पुढवीसुं सव्व-सेढिबद्धाणं ।
चउरुत्तर-[3]छच्च-सया णव य सहस्साणि परिमाणं ।।८२।।

९६०४

१ द. जुदमद, ब. जुदमट्ठ । २ द. एदेण । ३ द. व रुत्तरछस्ससया ।

अर्थ .—रत्नप्रभादिक पृथिवियोमे सम्पूर्ण श्रेणीबद्ध बिलोका प्रमाण नौ हजार छहसौ चार (९६०४) है ।।८२।।

आदि (मुख) निकालनेकी विधि

पद-दल-हिद-संकलिदं[1] इच्छाए गुणिद-पचय-संजुत्तं ।
रूऊणिच्छाधिय-पद-चय-गुणिदं अवणि-अद्धिए आदी ।।८३।।

अर्थ —पदके अर्धभागसे भाजित सकलित धनमे इच्छासे गुणित चयको जोडकर और उसमेसे चयसे गुणित एक कम इच्छासे अधिक पदको कम करके शेषको आधा करनेपर आदिका प्रमाण आता है ।।८३।।

विशेषार्थ :—यहाँ पद ४९, सकलित धन ९६०४, इच्छा राशि ७ और चय ८ है ।=

$$\frac{(९६०४ \div \frac{४९}{२}) + (८ \times ७) — (७ — १ + ४९) \times ८}{२} = \frac{३९२ + ५६ — ४४०}{२} = \frac{४४८ — ४४०}{२}$$

=$\frac{८}{२}$ अर्थात् ४ आदि या मुखका प्रमाण प्राप्त होता है ।

इस गाथाका सूत्र —आदि=[(सकलित धन − पद/२) + (इच्छा × चय)—{(इच्छा—१) +पद } चय] $\frac{१}{२}$ ।

चय निकालनेकी विधि

[2]पद-दल-हद-वेक-पदावहरिद-संकलिद-वित्त-परिमाणे ।
वेकपदद्धेण[3] हिदं आदिं सोहेज्ज[4] तत्थ सेस चयं ।।८४।।

९६०४ ।

९६०४[5] अपवर्तिते, वेकपदद्धेण[6] $\frac{४९}{२}$ । ४८[7] हिदं आदिं $\frac{४}{२४}$[8] सोहेज्ज[9] शोधित शेषमिदं $\frac{४९}{१}$[10] अपवर्तिते ८[11] ।

---

१ व क बलहिदलसलिद । २ द पडलहदवेकपादावहरिद · परिमाणो । क. व पडलहद वेकपाहावहरिद ····· परिमाणो । ३ द. व क ठ. वेकपददेण । ४ द. व ठ सोगेज्ज । ५ द व. क ठ ४६ । ६ द. ब वेकपददेण $\frac{४४९}{२}$ । ७. द. व. प्रत्यो. इद ८५ तम गाथाया. पश्चादुपलभ्यते । ८ द. $\frac{४}{२०}$ । ९ द. व. क. सोदेज्ज, ठ कोदेज्ज । १० द. $\frac{४८}{२०}$ । ब. क. ठ $\frac{४८}{२०}$ । ११ द. व क. ठ. ९ ।

अर्थ —पदके अर्धभागसे गुणित जो एक कम पद, उससे भाजित सकलित धनके प्रमाणमेसे एक कम पदके अर्धभागसे भाजित मुखको कम कर देनेपर शेष चयका प्रमाण होता है ।।८४।।

विशेषार्थ :—पदका अर्धभाग $\frac{४९}{२}$, एक कम पद (४९ — १)=४८, सकलित धन ९६०४, एक कम पदका अर्ध भाग (४९ —१)=४८, मुख ४ । अर्थात् ९६०४—(४९ — १ × $\frac{४९}{२}$) — (४ ÷ $\frac{४९—१}{२}$)=९६०४ ÷ ११७६—$\frac{४}{२४}$=$\frac{१९६०४}{११७६}$ — $\frac{४}{२४}$=८ चय प्राप्त हुआ ।

इस गाथाका सूत्र—

चय=सकलित धन ÷ [(पद—१) $\frac{पद}{२}$] — (मुख ÷ $\frac{पद—१}{२}$)

दो प्रकारसे गच्छ-निकालनेकी विधि

चय-दल-हद-संकलिदं चय-दल-रहिदादि अद्ध-कदि-जुत्तं ।
मूलं [1]पुरिमूलूणं पचयद्ध-हिदम्मि[2] तं तु [3]पदं ।।८५।।

अहवा—

संदृष्टि—[4]चय-दल-हद-संकलिदं ४४२० । ४ । चय-दल-रहिदादि २८८ । अद्ध १४४ । कदि २०७३६ । जुत्तं ३८४१६ । मूलं १९६ । पुरिमूल १४४ । ऊणं ५२ । पचयद्ध ४ । हिदं १३ ।

अर्थ :—चयके अर्धभागसे गुणित सकलित धनमे चयके अर्धभागसे रहित आदि (मुख) के अर्धभागके वर्गको मिला देनेपर जो राशि उत्पन्न हो उसका वर्गमूल निकाले, पश्चात् उसमेसे पूर्व मूलको (जिसके वर्गको सकलित धनमे जोडा था) घटाकर अवशिष्ट राशिमे चयके अर्धभागका भाग देनेपर पदका प्रमाण निकलता है ।।८५।।

विशेषार्थ :—चय ८, इसका दल अर्थात् आधा ४, इससे गुणित सकलित धन ४४२०, अर्थात् ४४२० × ४ । चय-दल-रहितादि अर्थात् २९२ मुखमेसे चय (८) का अर्धभाग (४) घटानेपर

---

१ क पुरिमूलूण, ठ उरिमूलूण । २ व हिदमित्तं । ३ द व पदयथवा । ४ द व मूलूण पूर्व-मूले माण ५२ । चय-भजिद ५२=१ । चय-दल-हद-सकलिद ४४२० । ४ । चय-दल-रहिदाहिदादि २८८ । अद्धं १४४ । १०७३७ । जुत्त ३८४१६ । ४ । मूल १९६ । पुरि २= । दु २ । चयद्ठ-हदं संकलिद ४४२० । १६ चय ८ । द ४ । वदन २९२ । अतरस्स २८८ । वग्गजुद ३३६ । मूल इदं ३९२ । पुरिमूल २८८ । चय-भजिद १०४ । पद १३=८ । इति पाठ. ८९ तम गाथाया पश्चादुपलभ्यते ।

२८८ अवशेष रहे, तथा इसका आधा १४४ हुए। इसका (१४४) वर्ग २०७३६ हुआ, इसे (४४२०×४=)१७६८० मे मिला देनेपर ३८४१६ होते है। इस राशिका वर्गमूल १९६ आता है। इस वर्गमूल-मेसे पूर्वमूल अर्थात् १४४ घटा देनेपर ५२ शेष बचे। इसमे अर्ध-चय (४) का भाग देनेपर पदका प्रमाण १३ प्राप्त हो जाता है।

यथा—$$\left\{ \sqrt{\left(\frac{८}{२}\times ४४२०\right)+\left(\frac{२९२-\frac{८}{२}}{२}\right)^{२}} - \left(\frac{२९२-\frac{८}{२}}{२}\right) \right\} \div \frac{८}{२}$$

$$=\frac{\sqrt{१७६८०+१४४^{२}}-१४४}{४}=\frac{१९६-१४४}{४}=\frac{५२}{४}=१३$$ पहली पृ० का पद-प्रमाण।

इस गाथाका सूत्र—

$$\text{पद}=\left\{ \sqrt{\left(\text{सकलित धन}\times\frac{\text{चय}}{२}\right)+\left(\frac{\text{आदि}-\frac{\text{चय}}{२}}{२}\right)^{२}}-\left(\frac{\text{आदि}-\frac{\text{चय}}{२}}{२}\right)\right\}\div\frac{\text{चय}}{२}$$

अहवा—

दु-चय-हदं संकलिदं चय-दल-वदणंतरस्स वग्ग-जुदं।
मूलं पुरिमूलूणं चय-भजिदं होदि तं तु पदं ॥८६॥

अहवा—

संदृष्टि—दु २। चय ८। दु-चय-हदं सकलिदं ४४२०। १६। चयदल ४। वदन २९२। अंतरस्स २८८। वग्ग $\overline{३९२}$। मूलं ३९२ पुरिमूल २८८। ऊणं १०४। चय-भजिदं $\frac{१०४}{८}$। पदं १३।

अर्थ :—अथवा—दुगुने चयसे गुणित सकलित धनमे चयके अर्धभाग और मुखके अन्तररूप सख्याके वर्गको जोडकर उसका वर्गमूल निकालनेपर जो सख्या प्राप्त हो उसमेसे पूर्व मूलको (जिसके वर्गको सकलित धनमे जोडा था) घटाकर शेषमे चयका भाग देनेपर विवक्षित पृथिवीके पदका प्रमाण निकलता है ॥८६॥

विशेषार्थ :—दुगुणित चय ८×२=१६, इससे गुणित सकलित धन ४४२०×१६, चयका अर्धभाग ४, मुख, २९२, मुख २९२ मेसे ४ घटाने पर २८८ अवशेष रहे, इसका वर्ग ८२९४४ प्राप्त हुआ, इसमे १६ गुणित सङ्कलित धन ७०७२० जोड देनेपर १५३६६४ प्राप्त हुए और इसका वर्गमूल ३९२ आया। इस वर्गमूलमेसे पूर्वमूल अर्थात् २८८ घटानेपर १०४ अवशिष्ट रहे। इसमे चय ८ (आठ) का भाग देनेपर ($\frac{१०४}{८}$=) १३ प्र० पृ० के पदका प्रमाण प्राप्त हुआ। यथा—

$$\left\{ \sqrt{(\text{२}\times\text{८}\times\text{४४२०})+(\text{२९२}-\tfrac{\text{८}}{\text{२}})^{\text{२}}}-(\text{२९२}-\tfrac{\text{८}}{\text{२}}) \right\}\div\text{८}$$

$$=\frac{\sqrt{\text{७०७२०}+\text{८२९९}}-\text{२८८}}{\text{८}}=\frac{\text{१०४}}{\text{८}}=\text{१३}$$ प्रथम पृ० के पदका प्रमाण ।

इस गाथाका सूत्र :—

$$\text{पद}=\left\{ \sqrt{(\text{२ चय}\times\text{सकलित धन})+(\text{आदि}-\tfrac{\text{चय}}{\text{२}})^{\text{२}}}-(\text{आदि}-\tfrac{\text{चय}}{\text{२}}) \right\}\div\text{चय}$$

प्रत्येक पृथिवीके प्रकीर्णक बिलोका प्रमाण निकालनेकी विधि—

पत्तेयं रयणादी-सव्व-बिलाणं ठवेज्ज परिसंखं ।
णिय-णिय-सेढीबद्धं[1] य इंदय-रहिदा पइण्णया होंति ।।८७।।

अर्थ :—रत्नप्रभादिक प्रत्येक पृथिवीके सम्पूर्ण बिलोकी सख्या रखकर उसमेसे अपने-अपने श्रेणीबद्ध और इन्द्रक बिलोकी सख्या घटा देनेसे उस-उस पृथिवीके शेप प्रकीर्णक बिलोका प्रमाण प्राप्त होता है ।।८७।।

उणतीसं लक्खाणि पंचाणउदी-सहस्स-पंच-सया ।
सगसट्ठी-संजुत्ता पइण्णया पढम-पुढवीए ।।८८।।

। २९९५५६७ ।

अर्थ :—प्रथम पृथिवीमे उनतीस लाख, पचान्नवै हजार पाँचसौ सडसठ प्रकीर्णक बिल है ।।८८।।

विशेषार्थ :—प्रथम पृथिवीमे कुल बिल ३०००००० है, इनमेसे १३ इन्द्रक और ४४२० श्रेणीबद्ध घटा देनेपर ३०००००० —(१३+४४२०)=२९९५५६७ प्रथम पृथिवीके प्रकीर्णक बिलोकी सख्या प्राप्त हो जाती है ।

चउवीसं लक्खाणि सत्ताणवदी-सहस्स-ति-सयाणि ।
पंचुत्तराणि होंति हु पइण्णया विदिय-खोणीए ।।८९।।

२४९७३०५ ।

---

१. द सेढीया, ब. सेढिया । ठ सेढीआ,

अर्थ —द्वितीय पृथिवीमे चौवीस लाख सत्तानवै हजार तीनसौ पाँच प्रकीर्णक बिल है ॥८९॥

विशेषार्थ :—दूसरी पृथिवीमे कुल बिल २५००००० है, इनमे से ११ इन्द्रक और २६८४ श्रेणीबद्ध बिल घटा देनेपर शेष २४९७३०५ प्रकीर्णक बिल है।

[1]चोद्दस-लक्खाणि तहा अट्ठाणउदी-सहस्स-पंच-सया।
पण्णदसेहिं जुत्ता पइण्णया तदिय-वसुहाए ॥९०॥

१४९८५१५।

अर्थ —तीसरी पृथिवीमे चोदह लाख, अट्ठानवै हजार पाँचसौ पन्द्रह प्रकीर्णक बिल है ॥९०॥

विशेषार्थ :—तीसरी पृथिवीमे कुल बिल १५००००० है, इनमेसे ९ इन्द्रक बिल और १४७६ श्रेणीबद्ध बिल घटा देनेपर शेष १४९८५१५ प्रकीर्णक बिल प्राप्त होते है।

णव-लक्खा णवणउदी-सहस्सया दो-सयाणि [2]तेणउदी।
तुरियाए वसुमइए पइण्णयाणं च परिमाणं ॥९१॥

९९९२९३।

अर्थ :—चतुर्थ पृथिवीमे प्रकीर्णक बिलोका प्रमाण नौ लाख, निन्यानवै हजार दोसौ तेरानवै है ॥९१॥

विशेषार्थ :—चतुर्थ पृथिवीमे कुल बिल १०००००० है, इनमेसे ७ इन्द्रक और ७०० श्रेणीबद्ध बिल घटा देनेपर शेष प्रकीर्णक बिलोकी सख्या ९९९२९३ प्राप्त होती है।

दो लक्खाणि सहस्सा [3]णवणउदी सग-सयाणि पणतीसं।
पंचम-वसुधायाए पइण्णया होंति णियमेणं ॥९२॥

२९९७३५।

अर्थ :—पाँचवी पृथिवीमे नियमसे दो लाख, निन्यानवै हजार सातसौ पैंतीस प्रकीर्णक बिल है ॥९२॥

विशेषार्थ :—पाँचवी पृथिवीमे कुल बिल ३००००० है, इनमेसे ५ इन्द्रक और २६० श्रेणीबद्ध बिल घटा देनेपर शेष प्रकीर्णक बिलोकी सख्या २,९९,७३५ प्राप्त होती है।

---

१ द चोद्दसय जाणि, व चोद्दसए जाणि। ठ चोद्दसए भाणि। क चोद्दसए जाणि। २ क तेणवदी। ३ द णउणउदी।

अट्ठासट्ठी-हीणं लक्खं छट्ठीए[1] मेदिणीए वि ।
अवणीए सत्तमिए पइण्णया णत्थि णियमेणं ।।९३।।

९९९३२ ।

अर्थ :—छठी पृथिवीमे अडसठ कम एक लाख प्रकीर्णक बिल है। सातवी पृथिवीमे नियमसे प्रकीर्णक बिल नही है ।।९३।।

विशेषार्थ —छठी पृथिवीमे कुल बिल ९९९९५ है, इनमेसे तीन इन्द्रक और ६० श्रेणी-बद्ध बिल घटा देनेपर प्रकीर्णक बिलोकी सख्या ९९९३२ प्राप्त होती है। सप्तम पृथिवीमे एक इन्द्रक और चारो दिशाओमे एक-एक श्रेणीबद्ध, इसप्रकार कुल पाँच ही बिल है। प्रकीर्णक बिल वहाँ नही है।

छह-पृथिवियोके समस्त प्रकीर्णक बिलोकी सख्या

तेसीदि लक्खाणि णउदि-सहस्साणि ति-सय-सगदालं ।
छप्पुढवीणं मिलिदा सव्वे वि पइण्णया होंति ।।९४।।

८३९०३४७ ।

अर्थ :—छह पृथिवियोक सभी प्रकीर्णक बिलोका योग तेरासी लाख, नव्वै हजार तीनसौ सैतालीस है ।।९४।।

[विशेषार्थ अगले पृष्ठ पर देखिये]

---

१. द. छट्ठी, व क छट्ठीइ ।

विशेषार्थ :—

पृथिवियाँ	सर्वविल —	इन्द्रक +	श्रेणीवद्ध =	प्रकीर्णक
प्र० पृ०	३०००००० —	१३ +	४४२० =	२९९५५६७
द्वि० पृ०	२५००००० —	११ +	२६८४ =	२४९७३०५
तृ० पृ०	१५००००० —	९ +	१४७६ =	१४९८५१५
च० पृ०	१०००००० —	७ +	७०० =	९९९२९३
प० पृ०	३००००० —	५ +	२६० =	२९९७३५
ष० पृ०	९९९९५ —	३ +	६० =	९९९३२
स० पृ०	५—	१ +	४ =	०

८३,९०,३४७ सर्व पृथिवियोके प्रकीर्णक विलोका प्रमाण।

इन्द्रादिक विलोका विस्तार

संखेज्जमिंदयाणं रुंदं सेढीगयाण जोयणया।
तं होदि [1]असंखेज्जं पइण्णयाणुभय-मिस्सं [2]च ॥९५॥

७। रि। ७ रि।[3]

अर्थ :—इन्द्रक विलोका विस्तार संख्यात योजन, श्रेणीवद्ध विलोका असख्यात योजन और प्रकीर्णक विलोका विस्तार उभयमिश्र अर्थात् कुछका सख्यात और कुछका असख्यात योजन है ॥९५॥

सख्यात एव असख्यात योजन विस्तारवाले विलोका प्रमाण

संखेज्जा वित्थारा णिरयाणं पंचमस्स परिमाणा।
सेस चउ-पंच-भागा होंति असंखेज्ज-रुंदाइं ॥९६॥

८४००००० । १६८०००० । ६७२०००० ।

१ द ब. यसखेज्ज। २ द ब. क ठ णुभयमस्सरूव। ३ [७। २। ७। ६। २। ७।]

अर्थ :—सम्पूर्ण बिलसंख्याके पाँच भागोमेसे एक भाग ($\frac{1}{5}$) प्रमाण बिलोंका विस्तार सख्यात योजन और शेष चारभाग ($\frac{4}{5}$) प्रमाण बिलोंका विस्तार असख्यात योजन है ॥९६॥

विशेषार्थ :—सातो पृथिवियोके समस्त बिलोका प्रमाण ८४००००० है। इसका $\frac{1}{5}$ भाग अर्थात् ८४००००० × $\frac{1}{5}$ = १६८०००० बिल सख्यात योजन प्रमाण वाले और ८४००००० × $\frac{4}{5}$ = ६७२०००० बिल असख्यात योजन प्रमाण वाले है।

रत्नप्रभादिक पृथिवियोमे सख्यात एव असख्यात योजन विस्तार वाले बिलोका

पृथक्-पृथक् प्रमाण

छ-प्पंच-ति-दुग-लक्खा सट्ठि-सहस्साणि तह य एक्कोरणा ।
वीस-सहस्सा एक्कं [1]रयणादिसु संख-वित्थारा ॥९७॥

६००००० । ५००००० । ३००००० । २००००० । ६०००० । १९९९९ । १ ।

अर्थ :—रत्नप्रभादिक पृथिवियोमे क्रमशः छह लाख, पाँच लाख, तीन लाख, दो लाख, साठ हजार, एक कम बीस हजार और एक, इतने बिलोका विस्तार सख्यात योजन प्रमाण है ॥९७॥

विशेषार्थ —रत्नप्रभादिक प्रत्येक पृथिवीके सम्पूर्ण बिलोके $\frac{1}{5}$ वे भाग प्रमाण बिल संख्यात योजन विस्तार वाले है। यथा—

पहली पृ० मे—३०००००० का $\frac{1}{5}$ = ६०००००	बिल सख्यात	यो०	विस्तार वाले।
दूसरी पृ० मे—२५००००० का $\frac{1}{5}$ = ५०००००	,,	,,	,,
तीसरी ,, —१५००००० का $\frac{1}{5}$ = ३०००००	,,	,,	,,
चौथी ,, —१०००००० का $\frac{1}{5}$ = २०००००	,,	,,	,,
पाँचवी ,, —३००००० का $\frac{1}{5}$ = ६००००	,,	,,	,,
छठी ,, —९९९९५ का $\frac{1}{5}$ = १९९९९	,,	,,	,,
सातवी ,, —५ का $\frac{1}{5}$ = १	,,	,,	,,

१. द ब क. ठ. ट्ठयणेदिसु ।

चउवीस-वीस-बारस-अट्ठ-पमाणाणि होंति लक्खाणि ।
सय-कदि-हद[1]-चउवीसं सीदि-सहस्सा य चउ-हीणा ॥९८॥

२४००००० । २०००००० । १२००००० । ८००००० । २४०००० । ७९९९६ ।

चत्तारि [2]च्चिय एदे होंति असंखेज्ज-जोयणा रुंदा ।
रयणप्पह-पहुदीए कमेण सव्वाण पुढवीणं ॥९९॥

४ ।

अर्थ :—रत्नप्रभादिक—पृथिवियोमे क्रमश चौवीस लाख, वीस लाख, बारह लाख, आठ लाख, चौवीससे गुणित सौ के वर्ग प्रमाण अर्थात् दो लाख चालीस हजार, चार कम अस्सी हजार और चार, इतने बिल असख्यात योजन प्रमाण विस्तार वाले हैं ॥९८-९९॥

विशेषार्थ :—रत्नप्रभादिक प्रत्येक पृथिवीके कुल बिलोके ४/५ वे भाग प्रमाण बिल असख्यात योजन विस्तार वाले है । यथा—

पहली—	पृ० मे—	३०००००० का ४/५=	२४०००००	बिल असख्यात	यो० विस्तार	वाले ।
दूसरी—	,,	—२५००००० का ४/५=	२००००००	,,	,,	,,
तीसरी—	,,	—१५००००० का ४/५=	१२०००००	,,	,,	,,
चौथी—	,,	—१०००००० का ४/५=	८०००००	,,	,,	,,
पाँचवी—	,,	—३००००० का ४/५=	२४००००	,,	,,	,,
छठी—	,,	—९९९९५ का ४/५=	७९९९६	,,	,,	,,
सातवी—	,,	—५ का ४/५=	४	,,	,,	,,

सर्व बिलोका तिरछे रूपमे जघन्य एव उत्कृष्ट अन्तराल

संखेज्ज-रुंद-संजुद-णिरय-बिलाणं जहण्ण-विच्चालं[3] ।
छक्कोसा तेरिच्छे उक्कस्से [4]संदुगुणिदं तु ॥१००॥

को ६ । १२ ।[5]

१. द सयकदिहिद° । २ द रचिय, ब रविय । ३. द. जहण्ण-वित्थार । ४ द. ब दुगुणिदो । ५ द ६ ।

अर्थ :—नारकियोके सख्यात योजन विस्तार वाले विलोमे तिरछे रूपमे जघन्य अन्तराल छह कोस प्रमाण और उत्कृष्ट अन्तराल इससे दुगुना अर्थात् बारह कोस प्रमाण है ॥१००॥

विशेषार्थ :—सख्यात योजन विस्तार वाले नरकविलोका जघन्य तिर्यग् अन्तर छह कोस (१½ योजन) और उत्कृष्ट तिर्यग् अन्तर १२ कोस (३ योजन) प्रमाण है।

णिरय-बिलाणं होदि हु असंख-रुंदाण अवर-विच्चालं ।
जोयण-सत्त-सहस्सं उक्कस्से तं असंखेज्ज ॥१०१॥

जो० ७००० । रि ।

अर्थ :—नारकियोके असख्यात योजन विस्तारवाले बिलोका जघन्य अन्तराल सात हजार योजन और उत्कृष्ट अन्तराल असख्यात योजन ही है ॥१०१॥

विशेषार्थ :—असख्यात योजन विस्तारवाले नरक बिलोका जघन्य तिर्यग् अन्तर ७००० योजन और उत्कृष्ट तिर्यग् अन्तर असख्यात योजन प्रमाण है। सदृष्टिमे असख्यातका चिह्न 'रि' ग्रहण किया गया है।

प्रकीर्णक विलोमे सख्यात एव असख्यात योजन विस्तृत विलोका विभाग

उत्त-पइण्णय-मज्झे होंति हु [1]बहवो असंख-वित्थारा[2] ।
संखेज्ज-वास-जुत्ता थोवा [3]होर-तिमिर-संजुत्ता[4] ॥१०२॥

अर्थ :—पूर्वोक्त प्रकीर्णक विलोमे—असख्यात योजन विस्तारवाले विल बहुत है और सख्यात योजन विस्तारवाले विल थोडे है। ये सब विल घोर अधकारसे व्याप्त रहते हैं ॥१०२॥

सग-सग-पुढवि-गयाणं संखासंखेज्ज-रुंद-रासिम्मि ।
इंदय-सेढि-विहीणे कमसो सेसा पइण्णए उभयं ॥१०३॥

५९९९८७ । अ २३९५५८०[5] ।
एव पुढवि पडि आणेदव्व ।

अर्थ —अपनी-अपनी पृथिवीके सख्यात योजन विस्तारवाले विलोकी राशिमेसे इन्द्रक विलोका प्रमाण—घटा देनेपर—सख्यात योजन विस्तारवाले प्रकीर्णक विलोका प्रमाण शेष रहता है।

---

१. क ठ वहुवो। २. द व क वित्थारो। ठ. वित्थारे। ३. क होराति। ४ व. होएति तिमिर। ५. क ठ २३९५६८०।

इसीप्रकार अपनी-अपनी पृथिवीके असख्यात योजन विस्तारवाले विलोकी सख्यामेसे क्रमश· श्रेणीवद्ध विलोका प्रमाण-घटा देनेपर असख्यात योजन विस्तारवाले प्रकीर्णक विलोका प्रमाण अवशिष्ट रहता है ॥१०३॥

इसप्रकार प्रत्येक पृथिवीके प्रकीर्णक विलोका प्रमाण ज्ञात कर लेना चाहिए ।

विशेषार्थ —पहली—पृथिवी—

सख्यात यो० विस्तार वाले सर्व विल ६०००००—१३ इन्द्रक=५९९९८७ प्रकीर्णक स० यो० वाले । असख्यात यो० विस्तार वाले सर्व विल २४०००००—४४२० श्रेणी०=२३९५५८० प्रकीर्णक असख्यात यो० वाले ।

दूसरी-पृथिवी

सख्यात यो० वि० वाले सर्व विल ५०००००—११ इन्द्रक=४९९९८९ प्रकीर्णक स० यो० वाले । असख्यात यो० वि० वाले सर्व विल २००००००—२६८४ श्रेणी०=१९९७३१६ अस० यो० वाले ।

तीसरी-पृथिवी

सख्यात यो० वि० वाले सर्व विल ३०००००—९ इन्द्रक=२९९९९१ प्रकीर्णक सख्यात वाले । अस० यो० वाले सर्व विल १२०००००—१४७६ श्रेणी०=११९८५२४ प्रकीर्णक असस्यात यो० वि० वाले ।

चौथी-पृथिवी

सख्यात यो० के सर्व बिल २०००००—७ इन्द्रक=१९९९९३ प्रकी० सख्यात यो० वाले । अस० यो० वाले सर्व बिल ८०००००—७०० श्रेणी०=७९९३०० प्रकी० अस० यो० वाले ।

पाँचवी-पृथिवी

सख्यात यो० के सर्व बिल ६००००—५ इन्द्रक=५९९९५ प्रकी० सख्यात यो० वाले । असख्यात यो० के सर्व बिल २४००००—२६० श्रेणी०=२३९७४० प्रकी० अस० यो० वाले ।

छठी-पृथिवी

सख्यात यो० के सर्व बिल १९९९९—३ इन्द्रक=१९९९६ प्रकी० स० यो० वाले । असख्यात यो० के सर्व बिल ७९९९६ — ६० श्रेणी०=७९९३६ प्रकी० अस० यो० वाले ।

सातवी पृथिवीमे प्रकीर्णक बिल नही है ।

सख्यात एव असख्यात योजन विस्तार वाले नारक बिलोमे नारकियोकी सख्या

संखेज्ज-वास-जुत्ते णिरय-बिले होंति णारया जीवा ।
संखेज्जा णियमेणं इदरम्मि तहा असंखेज्जा ।।१०४।।

अर्थ :—सख्यात योजन विस्तारवाले नरकबिलमे नियमसे सख्यात नारकी जीव तथा असंख्यात योजन विस्तारवाले बिलमे असख्यात ही नारकी जीव होते है ।।१०४।।

इन्द्रक बिलोकी हानि-वृद्धिका प्रमाण

पणदालं लक्खाणि पढमो चरिमिंदश्रो वि इगि-लक्खं ।
उभयं सोहिय एक्कोणिंदय-भजिदम्मि हाणि-चयं ।।१०५।।

४५०००००। १०००००

छावट्ठि-छस्सयाणिं इगिणउदि-सहस्स-जोयणाणि पि ।
दु-कलाश्रो ति-विहत्ता परिमाणं हाणि-वड्ढीए ।।१०६।।

९१६६६ $\frac{२}{३}$

अर्थ :—प्रथम इन्द्रकका विस्तार पैतालीस लाख योजन और अन्तिम इन्द्रकका विस्तार एक लाख योजन है । प्रथम इन्द्रकके विस्तारमेसे अन्तिम इन्द्रकका विस्तार घटाकर शेषमे एक कम इन्द्रक प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना (द्वितीयादि इन्द्रकोका विस्तार निकालनेके लिए) हानि और वृद्धिका प्रमाण है ।।१०५।।

इस हानि-वृद्धिका प्रमाण इक्यानवै हजार छह सौ छचासठ योजन और तीनसे विभक्त दो कला है ।।१०६।।

विशेषार्थ —पहली पृथिवीके प्रथम सीमन्त इन्द्रक बिलका विस्तार मनुष्य क्षेत्र सदृश अर्थात् ४५ लाख योजन प्रमाण है और सातवी पृ० के अवधिस्थान नामक अन्तिम बिलका विस्तार जम्बूद्वीप सदृश एक लाख योजन प्रमाण है । इन दोनोका शोधन करनेपर (४५०००००—१०००००) =४४००००० योजन अवशेष रहे। इनमे एक कम इन्द्रको (४९—१=४८) का भाग देनेपर (४४०००००—४८)=९१६६६ $\frac{२}{३}$ योजन हानि और वृद्धिका प्रमाण प्राप्त होता है ।

इच्छित इन्द्रकके विस्तारको प्राप्त करनेका विधान

बिदियादिसु इच्छंतो रूऊणिच्छाए गुणिद-खय-वड्ढी ।
सीमंतादो [1]सोहिय मेलिज्ज सुग्रवहि-ठाणम्मि[2] ॥१०७॥

अर्थ :—द्वितीयादिक इन्द्रकोका विस्तार निकालनेके लिए एक कम इच्छित इन्द्रक प्रमाणसे उक्त क्षय और वृद्धिके प्रमाणको गुणा करनेपर जो गुणनफल प्राप्त हो उसे सीमन्त इन्द्रकके विस्तारमे से घटा देनेपर या अवधिस्थान इन्द्रकके विस्तारमे मिलानेपर अभीष्ट इन्द्रकका विस्तार निकलता है ॥१०७॥

विशेषार्थ :—प्रथम सीमन्त बिल और अन्तिम अवधिस्थानकी अपेक्षा २५ वे तप्तनामक इन्द्रकका विस्तार निकालनेके लिए क्षय-वृद्धिका प्रमाण ९१६६६$\frac{२}{३}$×(२५—१)=२२०००००; ४५०००००—२२०००००=२३००००० योजन सीमन्त विलकी अपेक्षा । ९१६६६$\frac{२}{३}$×(२५—१) =२२०००००, २२०००००+१०००००=२३००००० योजन अवधिस्थानकी अपेक्षा तप्त नामक इन्द्रकका विस्तार प्राप्त होता है ।

पहली पृथिवीके तेरह इन्द्रकोका पृथक्-पृथक् विस्तार

रयणप्पह-अवणीए सीमंतय-इंदयस्य वित्थारो ।
पंचत्तालं जोयण-लक्खाणि होदि णियमेणं ॥१०८॥

४५००००० ।

अर्थ :—रत्नप्रभा पृथिवीमे सीमन्त इन्द्रकका विस्तार नियमसे पैतालीस लाख (४५०००००) योजन प्रमाण है ॥१०८॥

चोदालं[3] लक्खाणि तेसीदि-सयाणि होंति तेत्तीसं ।
एक्क-कला ति-विहत्ता णिर-इंदय-रुंद-परिमाणं ॥१०९॥

४४०८३३३$\frac{१}{३}$ ।

अर्थ :—निरय (नरक) नामक द्वितीय इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण चवालीस लाख, तेरासी सौ तैंतीस योजन और एक योजनके तीनभागोमेसे एक-भाग है ॥१०९॥

---

१. द व. क ज ठ सेढीअ । २. व ठाणं । ३ द वादाललक्खाणि ।

विशेषार्थ :—सीमन्त बिलका विस्तार ४५००००० — ९१६६६$\frac{२}{३}$ = ४४०८३३३$\frac{१}{३}$ योजन विस्तार निरय इन्द्रकका है।

तेदालं लक्खाणि छस्सय-सोलस-सहस्स-छासट्ठी ।
दु-ति-भागो [1]वित्थारो [2]रोरुग-णामस्स [3]णादव्वो ॥११०॥

४३१६६६६$\frac{२}{३}$ ।

अर्थ :—रौरुक (रौरव) नामक तृतीय इन्द्रकका विस्तार तैंतालीस लाख, सोलह हजार छहसौ छयासठ योजन और एक योजनके तीन-भागोमेसे दो-भाग प्रमाण जानना चाहिए। ११०॥

विशेषार्थ :—४४०८३३३$\frac{१}{३}$ — ९१६६६$\frac{२}{३}$ = ४३१६६६६$\frac{२}{३}$ योजन विस्तार तृतीय रौरुक इन्द्रकका है।

पणुवीस-सहस्साहिय-जोयण-बादाल-लक्ख-परिमाणो ।
भंतिंदयस्स भणिदो वित्थारो पढम-पुढवीए ॥१११॥

४२२५००० ।

अर्थ —पहली पृथिवीमे भ्रान्त नामक चतुर्थ इन्द्रकका विस्तार बयालीस लाख, पच्चीस हजार योजन प्रमाण कहा गया है ॥१११॥

विशेषार्थ :—४३१६६६६$\frac{२}{३}$ — ९१६६६$\frac{२}{३}$ = ४२२५००० योजन विस्तार भ्रान्त नामक चतुर्थ इन्द्रक बिलका है।

एक्कत्तालं लक्खा तेत्तीस-सहस्स[4]-ति-सय-तेत्तीसा ।
एक्क-कला ति-विहत्ता उब्भंतय-रुंद-परिमाणं ॥११२॥

४१३३३३३$\frac{१}{३}$ ।

अर्थ —उद्भ्रान्त नामक पाँचवे इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण इकतालीस लाख, तैंतीस हजार तीनसौ तैंतीस योजन और योजनके तीन-भागोमेसे एक-भाग है ॥११२॥

विशेषार्थ :—४२२५००० — ९१६६६$\frac{२}{३}$ = ४१३३३३३$\frac{१}{३}$ योजन विस्तार उद्भ्रान्त नामक पाँचवे इन्द्रक बिलका है।

---

१. द ब क वित्थारा। २. द. लोरुगणामस्स। ३ द. णादव्वा। ४. द. तीससहस्सं।

चालीसं लक्खाणि इगिदाल-सहस्स-छस्सय छासट्ठी ।
दोण्हि कला ति-विहत्ता वासो [1]सभंत-णामम्मि ।।११३।।

४०४१६६६ $\frac{२}{३}$ ।

अर्थ —सम्भ्रान्त नामक छठे इन्द्रकका विस्तार चालीस लाख, इकतालीस हजार, छहसौ छयासठ योजन और एक योजनके तीन-भागोमेसे दो–भाग प्रमाण है ।।११३।।

विशेषार्थ —४१३३३३३ $\frac{१}{३}$ — ९१६६६ $\frac{२}{३}$ = ४०४१६६६ $\frac{२}{३}$ योजन विस्तार सम्भ्रान्त नामक छठे इन्द्रक बिलका है ।

उणदालं लक्खाणि पण्णास-सहस्स-जोयणाणि पि ।
होदि असंभंतिदय-वित्थारो पढम-पुढवीए ।।११४।।

३९५०००० ।

अर्थ —पहली पृथिवीमे असम्भ्रान्त नामक सातवे इन्द्रकका विस्तार उनतालीस लाख पचास हजार योजन प्रमाण है ।।११४।।

विशेषार्थ :—४०४१६६६ $\frac{२}{३}$ — ९१६६६ $\frac{२}{३}$=३९५०००० योजन विस्तार असम्भ्रान्त नामक सातवे इन्द्रक बिलका है ।

अट्ठत्तीसं लक्खा अडवण्ण-सहस्स-ति-सय-तेत्तीसं ।
एक्क-कला ति-विहत्ता वासो विब्भंत-णामम्मि ।।११५।।

३८५८३३३ $\frac{१}{३}$ ।

अर्थ :—विभ्रान्त नामक आठवे इन्द्रकका विस्तार अडतीस लाख, अट्ठावन हजार, तीनसौ तैतीस योजन और एक योजनके तीन-भागोमेसे एक भाग प्रमाण है ।।११५।।

विशेषार्थ :—३९५०००० — ९१६६६ $\frac{२}{३}$= ३८५८३३३ $\frac{१}{३}$ योजन विस्तार विभ्रान्त नामक आठवे इन्द्रक बिलका है ।

सगतीसं लक्खाणि [2]छासट्ठि-सहस्स-छ-सय-छासट्ठी ।
दोण्णि कला तिय-भजिदा रुंदो तत्तिदये होदि ।।११६।।

३७६६६६६ $\frac{२}{३}$ ।

---

१ द क ज ठ समत । २ द क वासट्ठि ।

अर्थ :—तप्त नामक नवे इन्द्रकका विस्तार सैंतीस लाख, छ्यासठ हजार छहसौ छ्यासठ योजन और योजनके तीन-भागोमेंसे दो भाग प्रमाण है ।।११६।।

विशेषार्थ :—३८५८३३३$\frac{१}{३}$ — ९१६६६$\frac{२}{३}$=३७६६६६६$\frac{२}{३}$ योजन विस्तार तप्त नामक नवे इन्द्रक बिलका है ।

छत्तीसं लक्खाणिं जोयणया पंचहत्तरि-सहस्सा ।
तसिदिंदयस्य रुंदं णादव्वं पढम-पुढवीए ।।११७।।

३६७५००० ।

अर्थ :—पहली पृथिवीमे त्रसित नामक दसवे इन्द्रकका विस्तार छत्तीस लाख, पचहत्तर हजार योजन प्रमाण जानना चाहिए ।।११७।।

विशेषार्थ :—३७६६६६६$\frac{२}{३}$ — ९१६६६$\frac{२}{३}$=३६७५००० योजन विस्तार त्रसित नामक दसवे इन्द्रक बिलका है ।

पणतीसं लक्खाणिं तेसीदि-सहस्स-ति-सय-तेत्तीसा ।
एक्क-कला ति-विहत्ता रुंदं वक्कंत-णामम्मि ।।११८।।

३५८३३३३$\frac{१}{३}$ ।

अर्थ :—वक्रान्त नामक ग्यारहवे इन्द्रकका विस्तार पैंतीस लाख, तेरासी हजार, तीनसौ तेंतीस योजन और एक योजनके तीन-भागोमेसे एक-भाग है ।।११८।।

विशेषार्थ :—३६७५००० — ९१६६६$\frac{२}{३}$=३५८३३३३$\frac{१}{३}$ योजन विस्तार वक्रान्त नामक ग्यारहवे इन्द्रक बिलका है ।

चउतीसं लक्खाणिं [१]इगिणउदि-सहस्स-छ-सय-छासट्ठी ।
दोण्णि कला तिय-भजिदा एस अवक्कंत-वित्थारो ।।११९।।

३४९१६६६$\frac{२}{३}$ ।

अर्थ :—अवक्रान्त नामक वारहवे इन्द्रकका विस्तार चौतीस लाख, इक्यानबै हजार, छहसौ छ्यासठ योजन और एक योजनके तीन-भागोमेसे दो-भाग प्रमाण है ।।११९।।

---

१ द. इगणउदि ।

विशेषार्थ :—३५८३३३३$\frac{1}{3}$ — ९१६६६$\frac{2}{3}$ = ३४९१६६६$\frac{2}{3}$ योजन विस्तार अवक्रान्त नामक बारहवे इन्द्रक बिलका है।

चोत्तीसं लक्खाणिं जोयण-संखा य पढम-पुढवीए।
[1]विक्कंत-णाम-इंदय-वित्थारो एत्थ णादव्वो ॥१२०॥

३४००००० ।

अर्थ —पहली पृथिवीमे विक्रान्त नामक तेरहवे इन्द्रकका विस्तार चौतीस लाख योजन प्रमाण जानना चाहिए ॥१२०॥

विशेषार्थ —३४९१६६६$\frac{2}{3}$ — ९१६६६$\frac{2}{3}$ = ३४००००० योजन विस्तार विक्रान्त नामक तेरहवे इन्द्रक बिलका है।

दूसरी-पृथिवीके ग्यारह इन्द्रककोका पृथक्-पृथक् विस्तार

तेत्तीसं लक्खाणिं अट्ठ-सहस्साणि ति-सय-तेत्तीसा।
एक्क-कला बिदियाए [2]थण-इंदय-रुंद-परिमाणं ॥१२१॥

३३०८३३३$\frac{1}{3}$ ।

अर्थ —दूसरी पृथिवीमे स्तन नामक प्रथम इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण तैंतीस लाख, आठ हजार, तीनसौ तैंतीस योजन और योजनके तीन-भागोमेसे एक-भाग है ॥१२१॥

विशेषार्थ —३४००००० — ९१६६६$\frac{2}{3}$ = ३३०८३३३$\frac{1}{3}$ यो० विस्तार दूसरी पृथिवीके स्तन नामक प्रथम इन्द्रक बिलका है।

बत्तीसं लक्खाणिं छस्सय-सोलस-सहस्स-छासट्ठी।
दोण्णि कला ति-विहत्ता वासो तण-इंदए होदि ॥१२२॥

३२१६६६६$\frac{2}{3}$ ।

अर्थ —तनक नामक द्वितीय इन्द्रकका विस्तार बत्तीस लाख, सोलह हजार, छहसौ छयासठ योजन और एक योजनके तीन-भागोमेसे दो-भाग प्रमाण है ॥१२२॥

विशेषार्थ —३३०८३३३$\frac{1}{3}$ — ९१६६६$\frac{2}{3}$ = ३२१६६६६$\frac{2}{3}$ योजन विस्तार तनक नामक द्वितीय इन्द्रक बिलका है।

---

१ द व विक्कत-णामाइय-वित्थारो। २ द थलइदय। ठ ज घण उदय।

इगितीसं लक्खाणिं [1]पणुवीस-सहस्स-जोयणाणि पि ।
मण-इंदयस्स रुंदं णादव्वं बिदिय-पुढवीए ॥१२३॥

३१२५००० ।

अर्थ :—दूसरी पृथिवीमे मन नामक तृतीय इन्द्रकका विस्तार इकतीस लाख, पच्चीस हजार योजन प्रमाण जानना चाहिए ॥१२३॥

विशेषार्थ :—३२१६६६६$\frac{२}{३}$ — ९१६६६$\frac{२}{३}$=३१२५००० योजन विस्तार मन नामक तृतीय इन्द्रक बिलका है ।

तीसं चिय लक्खाणि तेत्तीस-सहस्स-ति-सय-तेत्तीसा ।
एक्क-कला बिदियाए वण-इंदय-रुंद-परिमाणं ॥१२४॥

३०३३३३३$\frac{१}{३}$ ।

अर्थ :—दूसरी पृथिवीमे वन नामक चतुर्थ इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण तीस लाख, तैतीस हजार तीन-सौ तैतीस योजन और योजनका एक-तिहाई भाग है ॥१२४॥

विशेषार्थ :—३१२५००० — ९१६६६$\frac{२}{३}$=३०३३३३३$\frac{१}{३}$ योजन विस्तार वन नामक चतुर्थ इन्द्रक बिलका है ।

एक्कोण-तीस-लक्खा इगिदाल-सहस्स-छ-सय-छासट्ठी ।
दोण्णि कला ति-विहत्ता घादिंदय-णाम-वित्थारो ॥१२५॥

२९४१६६६$\frac{२}{३}$ ।

अर्थ :—घात नामक पचम इन्द्रकका विस्तार योजनके तीन-भागोमेसे दो भाग सहित उनतीस लाख, इकतालीस हजार, छहसौ छयासठ योजन प्रमाण है ॥१२५॥

विशेषार्थ :—३०३३३३३$\frac{१}{३}$ — ९१६६६$\frac{२}{३}$=२९४१६६६$\frac{२}{३}$ योजन विस्तार घात नामक पचम इद्रक बिलका है ।

अट्ठावीसं लक्खा [2]पण्णास-सहस्स-जोयणाणि पि ।
संघात-णाम-इंदय-वित्थारो बिदिय-पुढवीए ॥१२६॥

२८५०००० ।

---

१ द लक्खाण पुणुवीस । २. द. ब. क. पण्णारस ।

अर्थ .—दूसरी पृथिवीमे सघात नामक छठे इन्द्रकका विस्तार अट्ठाईस लाख, पचास हजार योजन प्रमाण है ॥१२६॥

विशेषार्थ —२९४१६६६$\frac{2}{3}$ — ९१६६६$\frac{2}{3}$=२८५०००० योजन विस्तार सघात नामक छठे इन्द्रक बिलका है ।

सत्तावीसं लक्खा अडवण्ण-सहस्स-ति-सय-तेत्तीसा ।
एक्क-कला ति-विहत्ता [1]जिब्भिदय-रुंद-परिमाणं ॥१२७॥

२७५८३३३$\frac{1}{3}$ ।

अर्थ :—जिह्व नामक सातवे इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण सत्ताईस लाख, अट्ठावन हजार, तीनसौ तैंतीस योजन और एक योजनके तीसरे-भाग प्रमाण है ॥१२७।

विशेषार्थ :—२८५०००० — ९१६६६$\frac{2}{3}$=२७५८३३३$\frac{1}{3}$ योजन विस्तार जिह्व नामक सातवे इन्द्रक बिलका है ।

छब्बीसं लक्खाणि छासट्ठि-सहस्स-छ-सय-छासट्ठिं[2] ।
दोण्णि कला ति-विहत्ता जिब्भग-णामस्स वित्थारो ॥१२८॥

२६६६६६६$\frac{2}{3}$ ।

अर्थ :—जिह्वक नामक आठवे इन्द्रकका विस्तार छब्बीस लाख, छयासठ हजार, छहसौ छयासठ योजन और एक योजनके तीन-भागोमेसे दो-भाग प्रमाण है ॥१२८॥

विशेषार्थ :—२७५८३३३$\frac{1}{3}$ — ९१६६६$\frac{2}{3}$=२६६६६६६$\frac{2}{3}$ योजन विस्तार जिह्वक नामक आठवे इन्द्रक बिलका है ।

पणुवीसं लक्खाणि जोयणया पंचहत्तरि-सहस्सा ।
लोलिदयस्स रुंदो बिदियाए होदि पुढवीए ॥१२९॥

२५७५००० ।

अर्थ :—दूसरी पृथिवीमे नवे लोल इन्द्रकका विस्तार पच्चीस लाख, पचहत्तर हजार योजन प्रमाण है ॥१२९॥

---

१. द. व दिब्भिदय° । २ द. छावट्ठि ।

विशेषार्थ —२६६६६६६$\frac{२}{३}$ — ९१६६६$\frac{२}{३}$=२५७५००० योजन प्रमाण विस्तार लोल नामक नवे इन्द्रक बिलका है ।

चउवीसं लक्खाणिं तेसीदि-सहस्स-ति-सय-तेत्तीसा ।
एक्क-कला ति-विहत्ता लोलग-णामस्स[1] वित्थारो ॥१३०॥

२४८३३३३$\frac{१}{३}$ ।

अर्थ :—लोलक नामक दसवे इन्द्रकका विस्तार चौबीस लाख, तेरासी हजार तीनसौ तैंतीस योजन और एक योजनके तीसरे भाग प्रमाण है ॥१३०॥

विशेषार्थ :—२५७५००० — ९१६६६$\frac{२}{३}$=२४८३३३३$\frac{१}{३}$ योजन विस्तार लोलक नामक दसवे इन्द्रकका है ।

तेवीसं लक्खाणिं इगिणउदि-सहस्स-छ-सय-छासट्ठि ।
दोण्णि कला तिय-भजिदा रुंदा थणलोलगे होंति ॥१३१॥[2]

२३९१६६६$\frac{२}{३}$ ।

अर्थ :—स्तनलोलक नामक ग्यारहवे इन्द्रकका विस्तार तेईस लाख, इक्यानबै हजार छहसौ छ्यासठ योजन और योजनके तीन-भागोमेसे दो-भाग प्रमाण है ॥१३१॥

विशेषार्थ :—२४८३३३३$\frac{१}{३}$ — ९१६६६$\frac{२}{३}$ =२३९१६६६$\frac{२}{३}$ योजन विस्तार स्तनलोलक नामक ग्यारहवे इन्द्रक बिलका है ।

तीसरी पृथिवीके नव इन्द्रकोका पृथक्-पृथक् विस्तार

तेवीसं लक्खाणिं जोयण-संखा य तदिय-पुढवीए ।
पढमिंदयम्मि वासो णादव्वो तत्त-णामस्स ॥१३२॥

२३००००० ।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीमे तप्त नामक प्रथम इन्द्रकका विस्तार तेईस लाख योजन प्रमाण जानना चाहिए ॥१३२॥

विशेषार्थ :—२३९१६६६$\frac{२}{३}$ — ९१६६६$\frac{२}{३}$ = २३००००० योजन विस्तार तप्त नामक प्रथम इन्द्रक बिलका है ।

---

१. द लोलग-णामास । २. द पुस्तक एव ।

बावीसं लक्खाणि अट्ठ-सहस्साणि ति-सय-तेत्तीसं ।
एक्क-कला ति-विहत्ता पुढवीए तसिद-वित्थारो ॥१३३॥

२२०८३३३$\frac{१}{३}$ ।

अर्थ—तीसरी पृथिवीमे त्रसित नामक द्वितीय इन्द्रकका विस्तार बाईस लाख, आठ हजार, तीनसौ तैंतीस योजन और योजनका तीसरा भाग है ॥१३३॥

विशेषार्थ :—२३००००० — ९१६६६$\frac{२}{३}$=२२०८३३३$\frac{१}{३}$ योजन विस्तार त्रसित नामक द्वितीय इन्द्रक बिलका है ।

सोल-सहस्सं छस्सय-छासट्ठि एक्कवीस-लक्खाणि ।
दोण्णि कला तदियाए पुढवीए तवण-वित्थारो ॥१३४॥

२११६६६६$\frac{२}{३}$ ।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीमे तपन नामक तृतीय इन्द्रकका विस्तार इक्कीस लाख, सोलह हजार, छहसौ छयासठ योजन और योजनके तीन-भागोमेसे दो भाग प्रमाण है ॥१३४॥

विशेषार्थ :—२२०८३३३$\frac{१}{३}$ — ९१६६६$\frac{२}{३}$=२११६६६६$\frac{२}{३}$ योजन विस्तार तपन नामक तृतीय इन्द्रक बिलका है ।

पणवीस-सहस्साधिय-विसदि-लक्खाणि जोयणाणि पि ।
तदियाए खोणीए तावण-णामस्स वित्थारो ॥१३५॥

२०२५००० ।

अर्थ—तीसरी पृथिवीमे तापन नामक चतुर्थ इन्द्रकका विस्तार बीस लाख, पच्चीस हजार योजन प्रमाण है ॥१३५॥

विशेषार्थ—२११६६६६$\frac{२}{३}$ — ९१६६६$\frac{२}{३}$=२०२५००० योजन विस्तार तापन नामक चतुर्थ इन्द्रक बिलका है।

एक्कोणवीस-लक्खा तेत्तीस-सहस्स-ति-सय-तेत्तीसा ।
एक्क-कला तदियाए वसुहाए णिदाघ[1] वित्थारो ॥१३६॥

१९३३३३३$\frac{१}{३}$ ।

१ द ब. क ज ठ. वण्णिए होइ ।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीमें निदाघ नामक पंचम इन्द्रकका विस्तार उन्नीस लाख, तैंतीस हजार, तीनसौ तैंतीस योजन और योजनके तृतीय-भाग प्रमाण है ॥१३६॥

विशेषार्थ —२०२५००० — ९१६६६$\frac{2}{3}$=१९३३३३३$\frac{1}{3}$ योजन विस्तार निदाघ नामक पचम इन्द्रक बिलका है ।

अट्ठारस-लक्खाणिं इगिदाल-सहस्स-छ-सय-छासट्ठी ।
दोण्णि कला तदियाए भूए पज्जलिद-वित्थारो ॥१३७॥

१८४१६६६$\frac{2}{3}$ ।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीमे प्रज्वलित नामक छठे इन्द्रकका विस्तार अठारह लाख, इकतालीस हजार, छह सौ छयासठ योजन और एक योजनके तीन-भागोमेसे दो भाग प्रमाण है ॥१३७॥

विशेषार्थ :—१९३३३३३$\frac{1}{3}$ — ९१६६६$\frac{2}{3}$=१८४१६६६$\frac{2}{3}$ योजन विस्तार प्रज्वलित नामक छठे इन्द्रक बिलका है ।

सत्तरसं लक्खाणिं पण्णास-सहस्स-जोयणाणिं च ।
उज्जलिद-इंदयस्स य वासो वसुहाए तदियाए ॥१३८॥

१७५०००० ।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीमे उज्ज्वलित नामक सातवे इन्द्रकका विस्तार सत्तरह लाख, पचास हजार योजन प्रमाण है ॥१३८॥

विशेषार्थ :—१८४१६६६$\frac{2}{3}$ — ९१६६६$\frac{2}{3}$=१७५०००० योजन विस्तार उज्ज्वलित नामक सातवे इन्द्रक बिलका है ।

सोलस-जोयण-लक्खा अडवण्ण-सहस्स-ति-सय-तेत्तीसा ।
एक्क-कला तदियाए संजलिदिंदस्स[1] वित्थारो ॥१३९॥

१६५८३३३$\frac{1}{3}$ ।

अर्थ —तीसरी-भूमिमे सज्वलित नामक आठवे इन्द्रकका विस्तार सोलह लाख अट्ठावन हजार तीन सौ तैंतीस योजन और एक योजनका तीसरा-भाग है ॥१३९॥

---

१ द ब संपज्जलिदस्स ।

विशेषार्थ :—१७५०००० — ९१६६६$\frac{२}{३}$ = १६५८३३३$\frac{१}{३}$ योजन विस्तार सज्वलित नामक आठवे इन्द्रक बिलका है।

पण्णारस-लक्खाणि छस्सट्ठि-सहस्स-छ-सय-छासट्ठी ।
दोण्णि कला [1]तदियाए संपज्जलिदस्स वित्थारो ॥१४०॥

१५६६६६६$\frac{२}{३}$ ।

अर्थ —तीसरी-पृथिवीमे सप्रज्वलित नामक नवे इन्द्रकका विस्तार पन्द्रह लाख, छचासठ हजार, छहसौ छचासठ योजन और एक योजनके तीन-भागोमेसे दो भाग प्रमाण है ॥१४०॥

विशेषार्थ :—१६५८३३३$\frac{१}{३}$ — ९१६६६$\frac{२}{३}$ = १५६६६६६$\frac{२}{३}$ योजन विस्तार सप्रज्वलित नामक नवे इन्द्रक बिलका है।

चौथी पृथिवीके सात इन्द्रकोका पृथक्-पृथक् विस्तार

चोद्दस-जोयण-लक्खा पण-जुद-सत्तरि सहस्स-परिमाणा ।
तुरिमाए पुढवीए आरिंदय-रुंद-परिमाणं ॥१४१॥

१४७५००० ।

अर्थ —चौथी पृथिवीमे आर नामक प्रथम इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण चौदह लाख, पचहत्तर हजार योजन है ॥१४१॥

विशेषार्थ —१५६६६६६$\frac{२}{३}$ — ९१६६६$\frac{२}{३}$ = १४७५००० योजन विस्तार आर नामक प्रथम इन्द्रक-बिलका है।

तेरस-जोयण-लक्खा तेसीदि-सहस्स-ति-सय-तेत्तीसा ।
एक्क-कला तुरिमाए महिए मारिंदए रुंदो ॥१४२॥

१३८३३३३$\frac{१}{३}$ ।

अर्थ :—चौथी पृथिवीमे मार नामक द्वितीय इन्द्रकका विस्तार तेरह लाख, तेरासी हजार, तीनसौ तैंतीस योजन और एक योजनके तीसरे भाग प्रमाण है ॥१४२॥

विशेषार्थ :—१४७५००० — ९१६६६$\frac{२}{३}$ = १३८३३३३$\frac{१}{३}$ योजन विस्तार मार नामक द्वितीय इन्द्रक बिलका है।

---

१ द ब तदिएस । क. ज. ठ तदिएसु ।

बारस-जोयण-लक्खा इगिणउदि-सहस्स-छ-सय-छासट्ठी ।
दोण्णि कला ति-विहत्ता [1]तुरिमा-तारिदयस्स रुंदाउ ॥१४३॥

१२९१६६६ $\frac{2}{3}$ ।

अर्थ :—चौथी पृथिवीमे तार नामक तृतीय इन्द्रकका विस्तार बारह लाख, इक्यानबै हजार, छहसौ छयासठ योजन और एक योजनके तीन-भागोमेसे दो-भाग प्रमाण है ॥१४३॥

विशेषार्थ —१३८३३३३ $\frac{1}{3}$ — ९१६६६ $\frac{2}{3}$ = १२९१६६६ $\frac{2}{3}$ योजन विस्तार तार नामक तृतीय इन्द्रक बिलका है ।

बारस-जोयण-लक्खा तुरिमाए वसुंधराए वित्थारो ।
तच्चिदयस्स[2] रुंदो णिद्दिट्ठं सव्वदरिसीहि ॥१४४॥

१२००००० ।

अर्थ :—सर्वज्ञदेवने चौथी पृथिवीमे तत्व (चर्चा) नामक चतुर्थ इन्द्रकका विस्तार बारह लाख योजन प्रमाण बतलाया है ॥१४४॥

विशेषार्थ :—१२९१६६६ $\frac{2}{3}$ — ९१६६६ $\frac{2}{3}$ = १२००००० योजन विस्तार तत्व नामक चतुर्थ इन्द्रक बिलका है ।

एक्कारस-लक्खाणि अट्ठ-सहस्साणि ति-सय-तेत्तीसा ।
एक्क-कला तुरिमाए महिए तमगस्स वित्थारो ॥१४५॥

११०८३३३ $\frac{1}{3}$ ।[3]

अर्थ :—चौथी पृथिवीमे तमक नामक पचम इन्द्रकका विस्तार ग्यारह लाख आठ हजार, तीनसौ तैंतीस योजन और एक योजनके तीसरे-भाग प्रमाण है ॥१४५॥

विशेषार्थ :—१२००००० — ९१६६६ $\frac{2}{3}$ = ११०८३३३ $\frac{1}{3}$ योजन विस्तार तमक नामक पचम इन्द्रक बिलका है ।

दस-जोयण-लक्खाणि छस्सय-सोलस-सहस्स-छासट्ठी ।
दोण्णि कला तुरिमाए खांडिदय-वास-परिमाणा ॥१४६॥

१०१६६६६ $\frac{2}{3}$ ।

---

१ द ब क. ज ठ तुरिमाइदस्स । २. द ब. क ज ठ तव्भतयस्य । ३. द $\frac{1}{2}$ ।

अर्थ .—चौथी भूमिमे खाड नामक छठे इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण, दस लाख, सोलह हजार छहसौ छयासठ योजन और एक योजनके तीन-भागोमेसे दो-भाग प्रमाण है ।।१४६।।

विशेषार्थ :—११०८३३३$\frac{1}{3}$ — ९१६६६$\frac{2}{3}$=१०१६६६६$\frac{2}{3}$ योजन विस्तार वाद नामक छठे इन्द्रक बिलका है ।

पणवीस-सहस्साधिय-णव-जोयण-सय-सहस्स-परिमाणा ।
तुरिमाए खोणीए खडखड-णामस्स वित्थारो ।।१४७।।

९२५००० ।

अर्थ ·—चौथी पृथिवीमे खलखल (खडखड) नामक सातवे इन्द्रकका विस्तार नौ लाख, पच्चीस हजार योजन प्रमाण है ।।१४७।।

विशेषार्थ—१०१६६६६$\frac{2}{3}$ — ९१६६६$\frac{2}{3}$=९२५००० योजन प्रमाण विस्तार खलखल नामक सातवे इन्द्रक बिलका है ।

पाँचवी पृथिवीके पाँच इन्द्रकोका पृथक्-पृथक् विस्तार

लक्खाणि अट्ठ-जोयण-तेत्तीस-सहस्स-ति-सय-तेत्तीसा ।
एक्क-कला [1]तम-इंदय-वित्थारो पंचम-धराए ।।१४८।।

८३३३३३$\frac{1}{3}$ ।

अर्थ :—पाँचवी पृथिवीमे तम नामक प्रथम इन्द्रकका विस्तार आठ लाख, तैंतीस हजार, तीनसौ तैंतीस योजन और एक योजनके तीसरे-भाग प्रमाण है ।।१४८।।

विशेषार्थ :—९२५००० — ९१६६६$\frac{2}{3}$=८३३३३३$\frac{1}{3}$ योजन विस्तार पाँचवी पृ० के तम नामक प्रथम इन्द्रक बिलका है ।

सग-जोयण-लक्खाणि इगिदाल-सहस्स-छ-सय-छासट्ठी ।
दोण्णि कला भम-इंदय-रुंदो पंचम-धरित्तीए ।।१४९।।

७४१६६६$\frac{2}{3}$ ।

अर्थ—पाँचवी पृथिवीमे भ्रम नामक द्वितीय इन्द्रकका विस्तार सात लाख, इकतालीस हजार छह सौ छयासठ योजन और एक योजनके तीन भागोमेसे दो भाग प्रमाण है ।।१४९।।

१ द तमय इदय ।

विशेषार्थ :—८३३३३३$\frac{1}{3}$ — ९१६६६$\frac{2}{3}$=७४१६६६$\frac{2}{3}$ योजन विस्तार भ्रम नामक द्वितीय इन्द्रकका है ।

छज्जोयण-लक्खाणिं पण्णास-सहस्स-समहियाणिं च ।
धूमप्पहावणीए झस-इंदय-रुंद-परिमाणा ॥१५०॥

६५००००

अर्थ :—धूमप्रभा (पाँचवी) पृथिवीमे झस नामक तृतीय इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण छह लाख, पचास हजार योजन है ॥१५०॥

विशेषार्थ :—७४१६६६$\frac{2}{3}$ — ९१६६६$\frac{2}{3}$=६५०००० योजन विस्तार झस नामक तृतीय इन्द्रक बिलका है ।

लक्खाणि पंच जोयण-अडवण्ण-सहस्स-ति-सय-तेत्तीसा ।
[1]एक्क-कला अंधिदय-वित्थारो पंचम-खिदीए ॥१५१॥

५५८३३३$\frac{1}{3}$ ।

अर्थ :—पाँचवी पृथिवीमे अन्ध नामक चतुर्थ इन्द्रकका विस्तार पाँच लाख, अट्ठावन हजार, तीनसौ तैंतीस योजन और एक योजनके तीसरे-भाग प्रमाण है ॥१५१॥

विशेषार्थ :—६५०००० — ९१६६६$\frac{2}{3}$=५५८३३३$\frac{1}{3}$ योजन विस्तार अन्ध नामक चतुर्थ इन्द्रक बिलका है ।

चउ-जोयण-लक्खाणिं छासट्ठि-सहस्स-छ-सय-छासट्ठी ।
दोण्णि कला तिमिसिंदय-रुंदं पंचम-धरित्तीए ॥१५२॥

४६६६६६$\frac{2}{3}$ ।

अर्थ :—पाँचवी पृथिवीमे तिमिस्र नामक पाँचवे इन्द्रकका विस्तार चार लाख छ्यासठ हजार छहसौ छ्यासठ योजन और एक योजनके तीन-भागोमेसे दो-भाग प्रमाण है ॥१५२॥

विशेषार्थ :—५५८३३३$\frac{1}{3}$ — ९१६६६$\frac{2}{3}$=४६६६६६$\frac{2}{3}$ योजन विस्तार तिमिस्र नामक पाँचवे इन्द्रक बिलका है ।

---

१. द ब ठ ज एक्ककलायंदिदय । क यंदिदिय ।

छठी पृथिवीके तीन इन्द्रकोका पृथक्-पृथक् विस्तार

तिय-जोयण-लक्खाणि सहस्सया पंचहत्तरि-पमाणा ।
छट्ठीए [1]वसुमइए हिम-इंदय-रुंद-परिसंखा ।।१५३।।

३७५००० ।

अर्थ —छठी पृथिवीमे हिम नामक प्रथम इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण तीन लाख पचहत्तर हजार योजन है ।।१५३।।

विशेषार्थ :—४६६६६६$\frac{२}{३}$ — ९१६६६$\frac{२}{३}$=३७५००० योजन विस्तार छठी पृ० के प्रथम हिम इन्द्रक बिलका है ।

दो जोयण-लक्खाणि तेसीदि-सहस्स-ति-सय-तेत्तीसा ।
एक्क-कला छट्ठीए पुढवीए होइ [2]वद्दले रुंदो ।।१५४।।

२८३३३३$\frac{१}{३}$ ।

अर्थ —छठी पृथिवीमे वर्दल नामक द्वितीय इन्द्रकका विस्तार दो लाख, तेरासी हजार, तीनसौ तैतीस योजन और एक योजनके तीसरे भाग प्रमाण है ।।१५४।।

विशेषार्थ :—३७५००० — ९१६६६$\frac{२}{३}$=२८३३३३$\frac{१}{३}$ योजन विस्तार छठी पृ० के दूसरे वर्दल इन्द्रक बिलका है ।

एक्कं जोयण-लक्खं इगिणउदि-सहस्स-छ-सय-छासट्ठी ।
दोण्णि कला वित्थारो लल्लंके छट्ठ-वसुहाए ।।१५५।।

१९१६६६$\frac{२}{३}$ ।

अर्थ :—छठी पृथिवीमे लल्लक नामक तृतीय इन्द्रकका विस्तार एक लाख, इक्यानबै हजार छहसौ छयासठ योजन और एक योजनके तीन-भागोमेसे दो-भाग प्रमाण है ।।१५५।।

विशेषार्थ :—२८३३३३$\frac{१}{३}$ — ९१६६६$\frac{२}{३}$=१९१६६६$\frac{२}{३}$ योजन विस्तार लल्लक नामक तीसरे इन्द्रक बिलका है ।

---

१ द ब. क ज ठ वसुमाइ । २ द वद्दलेसु ।

सातवी पृथिवीके अवधिस्थान इन्द्रकका विस्तार

वासो जोयण-लक्खो [1]अवहि-ट्ठाणस्स सत्तम-खिदीए ।
जिणवर-वयण-विणिग्गद-तिलोयपण्णत्ति-णामाए ॥१५६॥

१००००० ।

अर्थ :—सातवी पृथिवीमे अवधिस्थान नामक इन्द्रकका विस्तार एक लाख योजन प्रमाण है, इसप्रकार जिनेन्द्रदेवके वचनोसे उपदिष्ट त्रिलोक-प्रज्ञप्तिमे इन्द्रक बिलोका विस्तार कहा गया है ॥१५६॥

विशेषार्थ :—१९१६६६$\frac{२}{३}$ — ९१६६६$\frac{२}{३}$=१००००० योजन विस्तार सप्तम नरकमे अवधिस्थान नामक इन्द्रक बिलका है ।

[चार्ट पृष्ठ १९४ पर देखिये]

१ द अवदिठाणस्स ।

पहली पृथिवी		दूसरी पृथिवी		तीसरी पृथिवी	
इन्द्रक	विस्तार	इन्द्रक	विस्तार	इन्द्रक	विस्तार
सीमत	४५००००० योo	स्तन	३३०८३३३$\frac{1}{3}$ योo	तप्त	२३००००० योo
निरय	४४०८३३३$\frac{1}{3}$,,	तनक	३२१६६६६$\frac{2}{3}$ योo	त्रसित	२२०८३३३$\frac{1}{3}$,,
रौरुक	४३१६६६६$\frac{2}{3}$,,	मन	३१२५००० ,,	तपन	२११६६६६$\frac{2}{3}$,,
भ्रान्त	४२२५००० ,,	वन	३०३३३३३$\frac{1}{3}$,,	तापन	२०२५००० ,,
उद्भ्रान्त	४१३३३३३$\frac{1}{3}$,,	घात	२९४१६६६$\frac{2}{3}$,,	निदाघ	१९३३३३३$\frac{1}{3}$,,
सभ्रात	४०४१६६६$\frac{2}{3}$,,	सघात	२८५०००० ,,	प्रज्वलित	१८४१६६६$\frac{2}{3}$,,
असभ्रात	३९५०००० ,,	जिह्व	२७५८३३३$\frac{1}{3}$,,	उज्ज्वलित	१७५०००० योo
विभ्रात	३८५८३३३$\frac{1}{3}$,,	जिह्वक	२६६६६६६$\frac{2}{3}$,,	सज्वलित	१६५८३३३$\frac{1}{3}$,,
तप्त	३७६६६६६$\frac{2}{3}$,,	लोल	२५७५००० योo	सप्रज्वलित	१५६६६६६$\frac{2}{3}$,,
त्रसित	३६७५००० योo	लोलक	२४८३३३३$\frac{1}{3}$,,		
वक्रात	३५८३३३३$\frac{1}{3}$,,	स्तन-लोलक	२३९१६६६$\frac{2}{3}$,,		
अवक्रात	३४९१६६६$\frac{2}{3}$,,				
विक्रात	३४००००० योo				

चौथी पृथिवी		पाँचवी पृथिवी		छठी पृथिवी		सातवी पृथिवी	
इन्द्रक	विस्तार	इन्द्रक	विस्तार	इन्द्रक	विस्तार	इन्द्रक	विस्तार
आर	१४७५००० यो०	तम	८३३३३३ $\frac{1}{3}$ यो.	हिम	३७५००० यो	अवधि-स्थान	१००००० यो
मार	१३८३३३३ $\frac{1}{3}$,,	भ्रम	७४१६६६ $\frac{2}{3}$,,	वर्दल	२८३३३३ $\frac{1}{3}$,,		
तार	१२९१६६६ $\frac{2}{3}$,,	झस	६५०००० ,,	लल्लक	१९१६६६ $\frac{2}{3}$,,		
तत्व	१२००००० ,,	अन्ध	५५८३३३ $\frac{1}{3}$,,				
तमक	११०८३३३ $\frac{1}{3}$,,	तिमिस्र	४६६६६६ $\frac{2}{3}$,,				
खाड	१०१६६६६ $\frac{2}{3}$,,						
खलखल	९२५००० यो०						

इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक-बिलोके बाहल्यका प्रमाण

एक्काहिय-खिदि-संखं तिय-चउ-सत्तेहि[1] गुणिय छब्भजिदे ।
कोसा इंदय-सेढी-पइण्णयाणं पि बहलत्तं ॥१५७॥

अर्थ :—एक अधिक पृथिवी सख्याको तीन, चार और सातसे गुणा करके छहका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतने कोस प्रमाण क्रमश इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलोका बाहल्य होता है ॥१५७॥

विशेषार्थ :—नारक पृथिवियोकी सख्यामे एक-एक धन करके तीन जगह स्थापन कर क्रमश तीन, चार और सातका गुणा करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसमे छहका भाग देनेसे इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलोका बाहल्य (ऊँचाई) प्राप्त होता है । यथा—

[चार्ट पृष्ठ १९६ पर देखिये]

१ ब क सत्तेवि ।

इन्द्रक बिलोका बाहल्य	श्रेणीबद्धोका बाहल्य	प्रकीर्णको का बाहल्य
पहली पृ०−१ + १ = २, २ × ३ = ६, ६ − ६ = १ कोस	२ × ४ = ८, ८ ÷ ६ = १$\frac{१}{३}$ कोस	२ × ७ = १४, १४ − ६ = २$\frac{१}{३}$ कोस
दूसरी पृ०−२ + १ = ३, ३ × ३ − ९, ९ − ६ = १$\frac{१}{२}$,,	३ × ४ = १२, १२ − ६ = २ ,,	३ × ७ = २१, २१ − ६ = ३$\frac{१}{३}$ कोस
तीसरी पृ०−३ + १ = ४, ४ × ३ = १२, १२ − ६ = २ ,,	४ × ४ = १६, १६ − ६ = २$\frac{२}{३}$,,	४ × ७ = २८, २८ − ६ = ४$\frac{२}{३}$ कोस
चौथी पृ०−४ + १ = ५, ५ × ३ = १५, १५ − ६ = २$\frac{१}{२}$,,	५ × ४ = २०, २० − ६ = ३$\frac{१}{३}$,,	५ × ७ = ३५, ३५ − ६ = ५$\frac{५}{६}$ कोस
पाँचवी ,,−५ + १ = ६, ६ × ३ = १८, १८ − ६ = ३ ,,	६ × ४ = २४, २४ − ६ = ४ ,,	६ × ७ = ४२, ४२ − ६ = ७ कोस
छठी पृ०−६ + १ = ७, ७ × ३ = २१, २१ − ६ = ३$\frac{१}{२}$,,	७ × ४ = २८, २८ − ६ = ४$\frac{२}{३}$,,	७ × ७ = ४९, ४९ − ६ = ८$\frac{१}{६}$ कोस
सातवी पृ०−७ + १ = ८, ८ × ३ = २४, २४ − ६ = ४ ,,	८ × ४ = ३२, ३२ − ६ = ५$\frac{१}{३}$,,	प्रकीर्णको का अभाव है।

अहवा—

आदी छ अट्ठ चोद्दस तद्दल-वड्ढिय जाव सत्त-खिदी ।
कोसच्छ-हिदे इंदय-सेढी-पइण्णयाण बहलत्तं ॥१५८॥

इ० १ । $\frac{३}{२}$ । २ । $\frac{५}{२}$ । ३ । $\frac{७}{२}$ । ४ । सेढी $\frac{४}{३}$ । २ । $\frac{८}{३}$ । $\frac{१०}{३}$ । ४ । $\frac{१४}{३}$ । $\frac{१६}{३}$ ।

प्र० $\frac{७}{३}$ । $\frac{७}{२}$ । $\frac{१४}{३}$ । $\frac{३५}{६}$ । ७ । $\frac{४९}{६}$ ।

अर्थ —अथवा—यहाँ आदिका प्रमाण क्रमश छह, आठ और चौदह है। इसमे दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवी पृथिवी पर्यन्त उत्तरोत्तर इसी आदिके अर्ध भागको जोडकर प्राप्त सख्यामे छह कोस का भाग देनेपर क्रमश विवक्षित पृथिवीके इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलोका बाहल्य निकल आता है ॥१५८॥

विशेषार्थ —पहली पृथिवीके आदि (मुख) इन्द्रक बिलोका बाहल्य प्राप्त करनेके लिए ६, श्रेणीबद्ध बिलोके लिए ८ और प्रकीर्णक बिलोका बाहल्य प्राप्त करने हेतु १४ है। इसमे दूसरी पृथिवीसे सातवी पृथिवी पर्यन्त उत्तरोत्तर इसी आदि (मुख) के अर्ध-भागको जोडकर जो लब्ध प्राप्त हो उसमे ६ का भाग देनेपर क्रमश इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलोका बाहल्य प्राप्त हो जाता है। यथा—

पृथिवियाँ	इन्द्रक, श्रेणी-बद्ध एवं प्रकी-र्णक बिलों के मुख या आदि के प्रमाण +	अर्धमुख के प्रमाण =	योगफल —	भाग-हार =	इन्द्रक बिलों का बाहल्य	श्रेणीबद्ध बिलों का बाहल्य	प्रकीर्णक बिलों का बाहल्य
१	६, ८, १४+	०, ०, ०=	६, ८, १४—	६=	१ कोस	१ १/३ कोस	२ १/३ कोस
२	६, ८, १४+	३, ४, ७=	९, १२, २१÷	६=	१ १/२ ,,	२ ,	३ १/२ ,,
३	९, १२, २१+	३, ४, ७=	१२, १६, २८÷	६=	२ ,,	२ २/३ ,,	४ २/३ ,,
४	१२, १६, २८+	३, ४, ७=	१५, २०, ३५—	६=	२ १/२ ,,	३ १/३ ,,	५ ५/६ ,,
५	१५, २०, ३५+	३, ४, ७=	१८, २४, ४२—	६=	३ ,,	४ ,,	७ ,,
६	१८, २४, ४२ +	३, ४, ७=	२१, २८, ४९—	६=	३ १/२ ,,	४ २/३ ,,	८ १/६ ,,
७	२१, २८, ० +	३, ४, ०=	२४, ३२, ०—	६=	४ ,	५ १/३ ,,	० ,,

रत्नप्रभादि छह पृथिवियोंमे इन्द्रकादि बिलोंका स्वस्थान ऊर्ध्वग अन्तराल

रयणादि-छट्ठमंतं णिय-णिय-पुढवीण बहल-मज्झादो ।
जोयण-सहस्स-जुगलं अवणिय सेसं करेज्ज कोसाणि ।।१५९।।

अर्थ :—रत्नप्रभा पृथिवीको आदि लेकर छठी पृथिवी-पर्यन्त अपनी-अपनी पृथिवीके बाहल्यमेसे दो हजार योजन कम करके शेष योजनोंके कोस बनाना चाहिए ।।१५९।।

णिय-णिय-इंदय-सेढीबद्धाण पइण्णयाण बहलाइं ।
णिय-णिय-पदर-पवण्णिद-संखा-गुणिदाण लद्धरासी य ।।१६०।।

पुव्विल्लय-रासीणं मज्झे तं सोहिदूण पत्तेक्कं ।
एक्कोण-णिय-[1]णियिंदय-चउ-गुणिदेणं च भजिदव्वं ।।१६१।।

लद्धो जोयण-संखा णिय-णिय [2]णेयंतरालमुड्ढेण ।
जाणेज्ज परट्ठाणे किंचूणय-रज्जु-परिमाणं ।।१६२।।

१ द ज ठ णियणिइदय, ब. क णिय-णिय-इदय । २ द ज ठ. तराणमुड्ढेण, ब क. तराणमुट्ठेण ।

अर्थ :—अपने-अपने पटलोकी पूर्व-वर्णित सख्यासे गुणित अपनी-अपनी पृथिवीके इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलोके वाहल्यको पूर्वोक्त राशिमेसे (दो हजार योजन कम विवक्षित पृथिवीके वाहल्यके किए गये कोसोमेसे) कम करके प्रत्येकमे एक कम अपने-अपने इन्द्रक प्रमाणसे गुणित चारका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतने योजन प्रमाण अपनी-अपनी पृथिवीके इन्द्रकादि बिलोमे ऊर्ध्वग अन्तराल तथा परस्थान (एक पृथिवीके अन्तिम और अगली पृथिवीके आदिभूत इन्द्रकादि बिलो) मे कुछ कम एक राजू प्रमाण अन्तराल समझना चाहिए ।।१६०-१६२।।

विशेषार्थ :—रत्नप्रभादि छहो पृथिवियोकी मोटाई पूर्वमे कही गई है, इन पृथिवियोमे ऊपर नीचे एक-एक योजनमे बिल नही है, अत पृथिवियोकी मोटाईमेसे २००० योजन घटानेपर जो शेष रहे, उसके कोस बनाने हेतु चारसे गुणितकर लब्धमेसे अपनी-अपनी पृथिवीके इन्द्रक बिलोका वाहल्य घटाकर एक कम इन्द्रक बिलोसे गुणित चारका भाग देनेपर अपनी-अपनी पृथिवीके इन्द्रक बिलोका ऊर्ध्व अन्तराल प्राप्त होता है । यथा—

पहली पृथिवीके इन्द्रक बिलोका ऊर्ध्व अन्तराल—

$$=\frac{(\text{८००००}-\text{२०००})\times\text{४}-(\text{१}\times\text{१३})}{(\text{१३}-\text{१})\times\text{४}}=\text{६४९९}\tfrac{\text{३५}}{\text{४८}}\ \text{योजन ।}$$

दूसरी पृथिवीके इन्द्रक बिलो का ऊर्ध्व अन्तराल—

$$=\frac{(\text{३२०००}-\text{२०००})\times\text{४}-(\tfrac{\text{३}}{\text{२}}\times\text{११})}{(\text{११}-\text{१})\times\text{४}}=\text{२९९९}\tfrac{\text{४७}}{\text{८०}}\ \text{योजन ।}$$

तीसरी पृथिवीके इन्द्रक बिलो का ऊर्ध्व अन्तराल—

$$=\frac{(\text{२८०००}-\text{२०००})\times\text{४}-(\text{२}\times\text{९})}{(\text{९}-\text{१})\times\text{४}}=\text{३२४९}\tfrac{\text{७}}{\text{१६}}\ \text{योजन ।}$$

चौथी पृथिवीके इन्द्रक बिलोका ऊर्ध्व अन्तराल—

$$=\frac{(\text{२४०००}-\text{२०००})\times\text{४}-(\tfrac{\text{५}}{\text{२}}\times\text{७})}{(\text{७}-\text{१})\times\text{४}}=\text{३६६५}\tfrac{\text{१५}}{\text{१६}}\ \text{योजन ।}$$

पाँचवी पृथिवीके इन्द्रक बिलोका ऊर्ध्व अन्तराल—

$$=\frac{(\text{२००००}-\text{२०००})\times\text{४}-(\text{३}\times\text{५})}{(\text{५}-\text{१})\times\text{४}}=\text{४४९९}\tfrac{\text{१}}{\text{१६}}\ \text{योजन ।}$$

छठी पृथिवीके इन्द्रक बिलोका ऊर्ध्व अन्तराल—

$$= \frac{(१६००० - २०००) \times ४ - (\frac{७}{३} \times ३)}{(३ - १) \times ४} = ६९९८\frac{११}{१६} \text{ योजन ।}$$

सातवी पृथिवीमे इन्द्रक एव श्रेणीबद्ध बिलोके अधस्तन और
उपरिम पृथिवियोका बाहल्य

सत्तम-खिदीअ बहले इंदय-सेढीण बहल-परिमाणं ।
सोधिय-दलिदे हेट्ठिम-उवरिम-भागा हवंति एदाणं ।।१६३।।

अर्थ :—सातवी पृथिवीके बाहल्यमेसे इन्द्रक और श्रेणीबद्ध बिलोके बाहल्य प्रमाणको घटाकर अवशिष्ट राशिको आधा करनेपर क्रमश. इन इन्द्रक और श्रेणीबद्ध बिलोके ऊपर-नीचेकी पृथिवियोकी मोटाईके प्रमाण निकलते है ।।१६३।

विशेषार्थ :—$\frac{८००० - १}{२} = ३९९९\frac{१}{२}$ योजन सातवी पृथिवीके इन्द्रक बिलके नीचे और ऊपरकी पृथिवीका बाहल्य ।

$\frac{८००० - \frac{४}{३}}{२} = ३९९९\frac{१}{३}$ योजन सातवो पृथिवीके श्रेणीबद्ध बिलोके ऊपर-नीचेकी पृथिवी का बाहल्य ।

पहली पृथिवीके अन्तिम और दूसरी पृथिवीके प्रथम इन्द्रकका परस्थान अन्तराल

पढम-बिदीयवणीणं[1] रुंदं सोहेज्ज एक्क-रज्जूए ।
जोयण-ति-सहस्स-जुदे होदि परट्ठाण-विच्चालं ।।१६४।।

अर्थ —पहली और दूसरी पृथिवीके बाहल्य प्रमाणको एक राजूमेसे कम करके अवशिष्ट राशिमे तीन हजार योजन घटानेपर पहली पृथिवीके अन्तिम और दूसरी पृथिवीके प्रथम बिलके मध्यमे परस्थान अन्तरालका प्रमाण निकलता है ।।१६४।।

विशेषार्थ —पहली पृथिवीकी मोटाई १८०००० योजन और दूसरी पृथिवीकी मोटाई ३२००० योजन प्रमाण है । इस मोटाईसे रहित दोनो पृथिवियोके मध्यमे एक राजू प्रमाण अन्तराल है । यद्यपि एक हजार योजन प्रमाण चित्रा पृथिवीकी मोटाई पहली पृथिवीकी मोटाईमे सम्मिलित है, परन्तु उसकी गणना ऊर्ध्व लोककी मोटाईमे की गई है, अतएव इसमेसे इन एक हजार योजनोको कम

---

१ द ब पढम-खिदीयवणीण ।

कर देना चाहिए। इसके अतिरिक्त पहली पृथिवीके नीचे और दूसरी पृथिवीके ऊपर एक-एक हजार योजन प्रमाण क्षेत्रमे नारकियोके विल न होनेसे इन दो हजार योजनोको भी कम कर देनेपर (१८०००० + ३२००० — ३०००) = शेष २०९००० योजनोसे रहित एक राजू प्रमाण पहली पृथिवीके अन्तिम (विक्रान्त) और दूसरी पृथिवीके प्रथम (स्तन) इन्द्रकके वीच परस्थान अन्तराल रहता है।

तीसरी पृथिवीसे छठी पृथिवी तक परस्थान अन्तराल

दु-सहस्स-जोयणाधिय-रज्जू तदियादि-पुढवि-रु'दूणं ।
छट्ठो त्ति [1]परट्ठाणे विच्चाल-पमाणमुद्दिट्ठं ।।१६५।।

अर्थ —दो हजार योजन अधिक एक राजूमेसे तीसरी आदि पृथिवियोके वाहल्यको घटा देनेपर जो शेष रहे उतना छठी पृथिवी पर्यन्त (इन्द्रक विलोके) परस्थानमे अन्तरालका प्रमाण कहा गया है ।।१६५।।

विशेषार्थ —गाथामे—एक राजूमे दो हजार योजन जोडकर पश्चात् पृथिवियोका वाहल्य घटानेका निर्देश है किन्तु १७० आदि गाथाओमे वाहल्यमेसे २००० योजन घटाकर पश्चात् राजूमेसे कम किया गया है। यथा—

१ राजू — २६००० योजन।

छठी एव सातवी पृथिवीके इन्द्रकोका परस्थान अन्तराल

सय-कदि-रूऊणद्धं रज्जु-जुदं चरिम-भूमि-रु'दूणं ।
[2]मघविस्स चरिम-इंदय-अवहिट्ठाणस्स विच्चालं ।।१६६।।

अर्थ —सौ के वर्गमेसे एक कम करके शेषको आधा कर और उसे एक राजूमे जोडकर लब्धमेसे अन्तिम भूमिके वाहल्यको घटा देनेपर मघवी पृथिवीके अन्तिम इन्द्रक और (माघवी पृथिवीके) अवधिस्थान इन्द्रकके वीच परस्थान अन्तरालका प्रमाण निकलता है ।।१६६।।

विशेषार्थ :—सौ के वर्गमेसे एक घटाकर आधा करनेपर—(१००^2—१=९९९९)—२= ४९९९½ योजन प्राप्त होते है। इन्हे एक राजूमे जोडकर लब्ध (१ राजू + ४९९९½ यो०) मे से अन्तिम भूमिके वाहल्य (८००० यो०) को घटा देनेपर (१ राजू + ४९९९½ यो०)— ८००० यो० = १ राजू—(८००० यो० — ४९९९½ यो०) = १ राजू—३०००½ योजन छठी पृथिवीके अन्तिम लल्लक इन्द्रक और सातवी पृ० के अवधिस्थान इन्द्रकके परस्थान अन्तरालका प्रमाण प्राप्त होता है।

---

१ ब परिट्ठाणे। २ द ज ठ मघवस्स।

पहली पृथिवीके इन्द्रक-बिलोका स्वस्थान अन्तराल

णवणवदि-जुद-चउस्सय-छ-सहस्सा जोयणादि बे कोसा ।
एक्करस-कला-बारस-हिदा य घम्मिदयाण विच्चालं ॥१६७॥

जो ६४६६ । को २ । $\frac{११}{१२}$ ।

अर्थ —घर्मा पृथिवीके इन्द्रक बिलोका अन्तराल छह हजार चार सौ निन्यानबै योजन, दो कोस और एक कोसके बारह भागोमेसे ग्यारह-भाग प्रमाण है ॥१६७॥

विशेषार्थ :—*गाथा १५६-१६२ के नियमानुसार* पहली पृथिवीके इन्द्रक बिलोका अन्तराल $\frac{(८०००० - २०००) \times ४ - (१ \times १३)}{(१३ - १) \times ४} = ६४९९\frac{३५}{४८}$ योजन अथवा ६४९९ योजन $२\frac{११}{१२}$ कोस है ।

पहली और दूसरी पृथिवियोके इन्द्रक-बिलोका परस्थान अन्तराल

रयणप्पह-चरमिंदय-सक्कर-पुढविंदयाण विच्चालं ।
दो-लक्ख-णव-सहस्सा जोयण-हीणेक्क-रज्जू य ॥१६८॥

७ । रिण । जो २०६००० ।

अर्थ .—रत्नप्रभा पृथिवीके अन्तिम इन्द्रक और शर्करा प्रभाके आदि (प्रथम) इन्द्रक-बिलोका अन्तराल दो लाख नौ हजार (२०६०००) योजन कम एक राजू अर्थात् १ राजू — २०९००० योजन प्रमाण है ॥१६८॥

दूसरी पृथिवीके इन्द्रकोका स्वस्थान अन्तराल

एक्क-विहीणा जोयण-ति-सहस्सा धणु-सहस्स-चत्तारि ।
सत्त सया वंसाए एक्कारस-इंदयाण विच्चालं ॥१६६॥

जो २६६६ । दड ४७०० ।

अर्थ :—वशा पृथिवीके ग्यारह इन्द्रक बिलोका अन्तराल एक कम तीन हजार योजन और चार हजार सातसौ धनुष प्रमाण है ॥१६६॥

विशेषार्थ :—दूसरी पृ० के इन्द्रक बिलोका अन्तराल —

$$\frac{(३२००० - २०००)\times४ - (\frac{३}{२}\times ११)}{(११ - १)\times४} = २९९९\frac{४७}{६०}$$ योजन अथवा २९९९ यो० और ४७०० धनुष है।

दूसरी और तीसरी पृथिवीके इन्द्रक-बिलोका परस्थान अन्तराल

[1]एक्को हवेदि रज्जू छब्बीस-सहस्स-जोयण-विहीणा।
[2]थललोलुगस्स तत्तिदयस्स दोण्हं पि विच्चालं ॥१७०॥

७ । रिण । यो २६००० ।

अर्थ —वंशा पृथिवीके अन्तिम स्तनलोलुक इन्द्रकसे मेघा पृथिवीके प्रथम तप्तका अर्थात् दोनो इन्द्रक बिलोका अन्तराल छब्बीस हजार योजन कम एक राजू अर्थात् १ राजू — २६००० योजन प्रमाण है ॥१७०॥

तीसरी पृथिवीके इन्द्रकोका स्वस्थान अन्तराल

तिण्णि सहस्सा दु-सया जोयण-उणवण्ण तदिय-पुढवीए।
पणतीस-सय-धणूणि पत्तेक्कं इंदयाण विच्चालं ॥१७१॥

यो ३२४९ । दंड ३५०० ।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीके प्रत्येक इन्द्रक बिलका अन्तराल तीन हजार दो सौ उनचास योजन और तीन हजार पाँचसौ धनुष प्रमाण है ॥१७१॥

विशेषार्थ :— $$\frac{(२८००० - २०००)\times४ - (२\times९)}{(९ - १)\times४} = ३२४९\frac{७}{१६}$$ योजन । अथवा ३२४९ योजन ३५०० धनुष प्रमाण अन्तराल है।

तीसरी और चौथी पृथिवीके इन्द्रकोका परस्थान अन्तराल

एक्को हवेदि रज्जू बावीस-सहस्स-जोयण-विहीणा।
दोण्हं विच्चालमिणं संपज्जलिदार-णामाणं ॥१७२॥

७ । रिण । जो २२००० ।

---

१ ब क. ज ठ एक्का। २ द ब क ज ठ थणलोलूगस्स।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीका अन्तिम इन्द्रक सप्रज्वलित और चौथी पृथिवीका प्रथम इन्द्रक आर, इन दोनो इन्द्रक विलोका अन्तराल बाईस हजार योजन कम एक राजू अर्थात् १ राजू — २२००० योजन प्रमाण है ।।१७२।।

चौथी पृथिवीके इन्द्रकोका स्वस्थान अन्तराल

तिण्णि सहस्सा [1]छस्सय-पणसट्ठी-जोयणाणि[2] पंकाए ।
पण्णत्तरि-सय-दंडा पत्तेक्कं इंदयाण विच्चालं ।।१७३।।

जो ३६६५ । दड ७५०० ।

अर्थ —पकप्रभा पृथिवीके इन्द्रक विलोका अन्तराल तीन हजार छहसौ पेसठ योजन और सात हजार पाँचसौ दण्ड प्रमाण है ।।१७३।।

विशेषार्थ :— $\frac{(\text{२४०००} - \text{२०००}) \times \text{४} - (\frac{\text{५}}{\text{२}} \times \text{७})}{(\text{७} - \text{१}) \times \text{४}} = \text{३६६५}\frac{\text{१५}}{\text{१६}}$ योजन अथवा ३६६५ योजन ७५०० धनुष प्रमाण अन्तराल है ।

चौथी और पाँचवी पृथिवीके इन्द्रकोका परस्थान अन्तराल

एक्को हवेदि रज्जू अट्ठरस-सहस्स-जोयण-विहीणा ।
खडखड-तमिंदयाणं दोण्हं विच्चाल-परिमाणं ।।१७४।।

७ । रिण । जो १८००० ।

अर्थ :—चौथी पृथिवीके अन्तिम इन्द्रक खडखड और पाँचवी पृथिवीके प्रथम इन्द्रक तम, इन दोनोके अन्तरालका प्रमाण अठारह हजार योजन कम एक राजू अर्थात् १ राजू — १८००० योजन है ।।१७४।।

पाँचवी पृथिवीके इन्द्रकोका स्वस्थान अन्तराल

चत्तारि सहस्साणि चउ-सय णवणउदि जोयणाणि च ।
पंच-सयाणि दंडा धूमपहा-इंदयाण विच्चालं ।।१७५।।

जो ४४९९ । दड ५०० ।

---

१ द. व क. ज ठ छस्सट्ठी । २ द. व जोयण विहीणा ।

अर्थ :—धूमप्रभाके इन्द्रक बिलोका अन्तराल चार हजार चार सौ निन्यानवै योजन और पाँचसौ दण्ड प्रमाण है ।।१७५।।

विशेषार्थ —$\frac{(२०००० — २०००) \times ४ — (३ \times ५)}{(५ — १) \times ४}$ = ४४९९$\frac{१}{१६}$ योजन अथवा ४४९९ योजन ५०० धनुष अन्तराल है ।

पाँचवी और छठी पृथिवीके इन्द्रकोका परस्थान अन्तराल

चोद्दस-सहस्स-जोयण-परिहीणो होदि केवलो रज्जू ।
तिमिसिंदयस्स हिम-इदयस्स दोण्हं पि विच्चालं ।।१७६।।

७ । रिण । जो १४००० ।

अर्थ :—पाँचवी पृथिवीके अन्तिम इन्द्रक तिमिस्र और छठी पृथिवीके प्रथम इन्द्रक हिम, इन दोनो बिलोका अन्तराल चौदह हजार योजन कम एक राजू अर्थात् १ राजू — १४००० योजन प्रमाण है ।।१७६।।

छठी पृथिवीके इन्द्रकोका स्वस्थान अन्तराल

अट्ठाणउदी णव-सय-छ-सहस्सा [1]जोयणाणि मघवीए ।
पणवण्ण-सयाणि धणू पत्तेक्कं इंदयाण विच्चालं ।।१७७।।

जो ६९९८ । दड ५५०० ।

अर्थ :—मघवी पृथिवीमे प्रत्येक इन्द्रकका अन्तराल छह हजार नौ सौ अट्ठानवै योजन और पाँच हजार पाँच सौ धनुष है ।।१७७।।

विशेषार्थ :— $\frac{(१६००० — २०००) \times ४ — (\frac{७}{२} \times ३)}{(३ — १) \times ४}$ = ६९९८$\frac{११}{१६}$ योजन अथवा ६९९८ योजन ५५०० धनुष अन्तराल है ।

छठी और सातवी पृथिवीके इन्द्रकोका परस्थान अन्तराल

[2]छट्ठम-खिदि-चरिमिदय-अवहिट्ठाणाण होइ विच्चालं ।
एक्को रज्जू ऊणो जोयण-ति-सहस्स-कोस-जुगलेहि ।।१७८।।

७ । रिण । जो ३००० । को २ ।

---

१ द ब क ज ठ जोयणादि । २ द छट्ठुम ।

अर्थ :—छठी पृथिवीके अंतिम इन्द्रक लल्लक और सातवी पृथिवीके अवधिस्थान इन्द्रकका अन्तराल तीन हजार योजन और दो कोस कम एक राजू अर्थात् १ राजू — ३००० योजन २ कोस प्रमाण है ।।१७८।।

अवधिस्थान इन्द्रककी ऊर्ध्व एव अधस्तन भूमिके वाहल्यका प्रमाण

तिण्णि सहस्सा णव-सय-णवणउदी[1] जोयणाणि बे कोसा ।
उड्ढाधर-भूमीणं अवहिट्ठाणस्स परिमाणं ।।१७९।।

३९९९ । को २ ।

।। इंदय-विच्चालं समत्तं ।।

अर्थ :—अवधिस्थान इन्द्रककी ऊर्ध्व और अधस्तन भूमिके वाहल्यका प्रमाण तीन हजार नौ सौ निन्यानवैं योजन और दो कोस है ।।१७९।।

विशेषार्थ :—गाथा १६३ के अनुसार—

$\frac{८०००}{२} - \frac{१}{२} = ३९९९\frac{१}{२}$ योजन वाहल्य सातवी पृथिवीके अवधिस्थान इन्द्रक विलके नीचेकी और ऊपरकी पृथिवीका है ।

।। इन्द्रक विलोके अन्तरालका वर्णन समाप्त हुआ ।।

घर्मादिक पृथिवियोमे श्रेणीबद्ध बिलोंके स्वस्थान अन्तरालका प्रमाण

प्रथम नरकमे श्रेणीवद्धोका अन्तराल

णवणउदि-जुद-चउस्सय-छ-सहस्सा जोयणाणि बे कोसा ।
पंच-कला णव-भजिदा घम्माए सेढ़िवद्ध-विच्चालं ।।१८०।।

६४९९ । को २ । $\frac{५}{९}$ ।

अर्थ :—घर्मा पृथिवीमे श्रेणीवद्ध विलोका अन्तराल छह हजार चार सौ निन्यानवैं योजन दो कोस और एक कोसके नौ-भागोमेसे पाँच भाग प्रमाण है ।।१८०।।

नोट—१८० से १८६ तकको गाथाओ द्वारा सातो पृथिवियोके श्रेणीवद्ध विलोका पृथक्-पृथक् अन्तराल गाथा १५९-१६२ के नियमानुसार प्राप्त होगा । यथा—

---

१. द णउणउदी ।

विशेषार्थ :—(८०००० — २००० — ५२/१२) — (१३—१/१) = (७८००० — ५२/१२) × १/१२ = २३३९८७/३६ = ६४९९ २३/३६ योजन अथवा ६४९९ योजन २ ५/९ कोस पहली पृथिवीमे श्रेणीवद्ध विलोका अन्तराल है।

दूसरे नरकमे श्रेणीवद्धोका अन्तराल

णवणउदि णव-सयाणि दु-सहस्सा जोयणाणि वंसाए।
ति-सहस्स-छ-सय-दंडा [1]उड्ढेण सेढिबद्ध-विच्चालं ॥१८१॥

जो २९९९। दड ३६००।

अर्थ :—वशा पृथिवीमे श्रेणीवद्ध विलोका अन्तराल दो हजार नौ सौ निन्यानवै योजन और तीन हजार छह सौ धनुष प्रमाण है ॥१८१॥

विशेषार्थ :—(३२००० — २०००) — (२/१ × ११/५ × १/४) — (११—१)/१ = (३००००/१ — ११/२) × १/१० = २९९९ ९/२० योजन अथवा २९९९ योजन ३६०० दण्ड अन्तराल है।

तीसरे नरकमे श्रेणीवद्धोका अन्तराल

उणवण्णा दु-सयाणि ति-सहस्सा जोयणाणि मेघाए।
दोण्णि सहस्साणि धणू सेढीबद्धाण विच्चालं ॥१८२॥

जो ३२४९। दड २०००।

अर्थ :—मेघा पृथिवीमे श्रेणीवद्ध बिलोका अन्तराल तीन हजार दो सौ उनचास योजन और दो हजार धनुप है ॥१८२॥

विशेषार्थ :—(२८००० — २०००) — (६/३ × १/१ × १/४) — ६/१ = (२६०००/१ — ६/१) × १/८ = ३२४९ १/४ योजन अथवा ३२४९ योजन २००० दण्ड मेघा पृथिवीमे श्रेणीबद्ध बिलोका अन्तराल है।

चतुर्थ नरकमे श्रेणीवद्धोका अन्तराल

णव-हिद-बावीस-सहस्स-दंड-हीणा [2]हवेदि छासट्ठी।
जोयण-छत्तीस[3]-सयं तुरिमाए सेढीबद्ध-विच्चालं ॥१८३॥

जो ३६६५। दड ५५५५। ५/९।

---

१ द ओउड्ढीण, व क उड्ढीण। २ द हुवेदि। ३ व वत्तीससय।

अर्थ :—चौथी पृथिवीमे श्रेणीबद्ध बिलोका अन्तराल, बाईस हजारमे नौ का भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उतने (२२००० − ९ = २४४४$\frac{४}{९}$, ८००० − २४४४$\frac{४}{९}$ = ५५५५$\frac{५}{९}$) धनुष कम तीन हजार छह सौ छयासठ योजन प्रमाण है ।।१८३।।

विशेषार्थ :—(२४००० − २०००)—($\frac{१०}{३}$ × $\frac{७}{१}$ × $\frac{१}{४}$) ÷ $\frac{६}{१}$ = ($\frac{२२०००}{१}$ − $\frac{३५}{६}$) × $\frac{१}{६}$ = ३६६५$\frac{२५}{३६}$ योजन अथवा ३६६५ योजन ५५५५$\frac{५}{९}$ धनुष अन्तराल है ।

पाँचवे नरकमे श्रेणीबद्धोका अन्तराल

[1]अट्ठाणउदी जोयण-चउदाल-सयाणि छस्सहस्स-धणू ।
धूमप्पह-पुढवीए सेढीबद्धाण विच्चालं ।।१८४।।

जो ४४९८ । दंड ६००० ।

अर्थ :—धूमप्रभा पृथिवीमे श्रेणीबद्ध बिलोका अन्तराल चार हजार चार सौ अट्ठानबै योजन और छह हजार धनुष है ।।१८४।।

विशेषार्थ :—(२०००० − २०००)—($\frac{४}{१}$ × $\frac{५}{१}$ × $\frac{१}{४}$) ÷ $\frac{४}{१}$ = ($\frac{१८०००}{१}$ − $\frac{५}{१}$) × $\frac{१}{४}$ = ४४९८$\frac{३}{४}$ योजन अथवा ४४९८ योजन ६००० धनुष अन्तराल है ।

छठवे नरकमे श्रेणीबद्धोका अन्तराल

अट्ठाणउदी णव-सय-छ-सहस्सा जोयणाणि मघवीए ।
दोण्णि सहस्साणि धणू सेढीबद्धाण विच्चालं ।।१८५।।

जो ६९९८ । दंड २००० ।

अर्थ :— मघवी पृथिवीमे श्रेणीबद्ध बिलोका अन्तराल छह हजार नौ सौ अट्ठानबै योजन और दो हजार धनुष है ।।१८५।।

विशेषार्थ :—(१६००० − २०००)—($\frac{१४}{३}$ × $\frac{३}{१}$ × $\frac{१}{४}$) ÷ (३ − १) = ($\frac{१४०००}{१}$ − $\frac{७}{२}$) × $\frac{१}{२}$ = ६९९८$\frac{१}{४}$ योजन या ६९९८ यो० २००० दण्ड प्रमाण अन्तराल है ।

---

१ ब अट्ठाणणउदी ।

सातवे नरकमे श्रेणीबद्धोका अन्तराल

णवणउदि-सहिय-णव-सय-ति-सहस्सा जोयणाणि एक्क-कला ।
ति-हिदा य माघवीए सेढीबद्धाण विच्चालं ॥१८६॥

जो ३९९९ । $\frac{१}{३}$ ।

अर्थ .—माघवी पृथिवीमे श्रेणीबद्ध बिलोका अन्तराल तीन हजार नौ सौ निन्यानवै योजन और एक योजनके तीसरे-भाग प्रमाण है ॥१८६॥

विशेषार्थ :—सातवी पृथिवीकी मोटाई ८००० योजन है और श्रेणीबद्धोका बाहल्य $\frac{४}{३}$ यो० है । इसे ८००० यो० बाहल्यमेसे घटाकर आधा करनेपर अन्तरालका प्रमाण प्राप्त होता है । यथा—$\frac{८०००}{१}-\frac{४}{३}=\frac{२४०००-४}{३}\times\frac{१}{२}=\frac{११९९८}{३}$ योजन अर्थात् ३९९९$\frac{१}{३}$ यो० सातवी पृथिवीमे श्रेणीबद्ध बिलोका अन्तराल है ।

घर्मादिक-पृथिवियोमे श्रेणीबद्ध बिलोके परस्थान अन्तरालोका प्रमाण

सट्ठाणे विच्चालं एदं जाणिज्ज तह परट्ठाणे ।
जं इंदय-परठाणे[1] भणिदं तं एत्थ वत्तव्वं ॥१८७॥

णवरि विसेसो एसो लल्लंकय-अवहिठाण-विच्चाले ।
[2]जोयण-छब्भागूणं सेढीबद्धाण विच्चालं ॥१८८॥

। सेढीबद्धाण विच्चाल [3]समत्त ।

अर्थ .—यह श्रेणीबद्ध बिलोका अन्तराल स्वस्थानमे समझना चाहिए । तथा परस्थानमे जो इन्द्रक बिलोका अन्तराल कहा जा चुका है, उसीको यहाँभी कहना चाहिए, किन्तु विशेषता यह है कि लल्लक और अवधिस्थान इन्द्रकके मध्यमे जो अन्तराल कहा गया है, उसमेसे एक योजनके छह भागोमेसे एक-भाग कम यहाँ श्रेणीबद्ध बिलोका अन्तराल जानना चाहिए ॥१८७-१८८॥

विशेषार्थ :—गाथा १८० से १८६ पर्यन्त श्रेणीबद्ध बिलोका अन्तराल स्वस्थानमे कहा गया है । तथा गाथा १६४ एव १६५ मे इन्द्रक बिलोका जो परस्थान (एक पृथिवीके अन्तिम और अगली पृथिवीके प्रथम बिलका) अन्तराल कहा गया है, वही अन्तराल श्रेणीबद्ध बिलोका है । यथा—

---

१ द. क. ज ठ. इदयपरणाणे, व. इदयवरठाणे । २ द व. जोयणयाघ । ३ व सम्मत्त ।

पहली घर्मापृथिवीकी—१८०००० योजन और वंशाकी ३२००० योजन प्रमाण मोटाई है। इन दोनोका योग २१२००० योजन हुआ, इसमेसे चित्रा पृथिवीकी मोटाई १००० यो०, पहली पृथिवीके नीचे १००० योजन और दूसरी पृथिवीके ऊपरका एक हजार योजन इसप्रकार ३००० योजन घटा देनेपर (२१२००० — ३०००)=२०९००० योजन अवशेष रहे, इनको एक राजूमेसे घटा (१ राजू — २०९०००) कर जो अवशेष रहे वही पहली पृथिवीके अन्तिम और दूसरी पृथिवीके प्रथम श्रेणीबद्ध बिलोका परस्थान अन्तराल है।

वशा पृथिवीके नीचेका १००० योजन+मेघा पृथिवीके ऊपरका १००० योजन=दो हजार योजनोको मेघा पृथिवीकी मोटाई (२८००० योजनो) मेसे कम करदेने पर (२८००० — २०००) २६००० योजन अवशेष रहे। इन्हे एक राजूमेसे घटा देनेपर (१ राजू — २६०००) जो अवशेष रहे, वही वशा पृथिवीके अन्तिम श्रेणीबद्ध और मेघा पृथिवीके प्रथम श्रेणीवद्ध बिलोका परस्थान अन्तराल है।

अञ्जना पृथिवीकी मोटाई २४००० योजन है। २४००० — २००० = २२००० योजन कम एक राजू (१ राजू — २२००० यो०) प्रमाण मेघा पृथिवीके अन्तिम श्रेणीबद्ध और अञ्जना पृथिवीके आदि श्रेणीबद्ध बिलोका परस्थान अन्तराल है।

अरिष्टा पृथिवीकी मोटाई २०००० योजन — २००० यो०=१८०००। १ राजू — १८००० योजन अञ्जनाके अन्तिम और अरिष्टाके प्रथम श्रेणीबद्ध बिलोका परस्थान अन्तराल है।

मघवी पृथिवीकी मोटाई १६००० — २०००=१४००० योजन। १ राजू — १४००० योजन अरिष्टाके अन्तिम और मघवी पृथिवीके प्रथम श्रेणीवद्ध-बिलोका परस्थान अन्तराल है।

गा० १६६ मे छठी पृ० के अन्तिम इन्द्रक लल्लक और सातवी पृ० के अवधिस्थान इन्द्रकका परस्थान अन्तराल १ राजू — ८००० योजन+४९९९$\frac{1}{3}$ योजन कहा गया है। इसमेसे एक योजनका छठा भाग ($\frac{1}{6}$ यो०) कम करदेने पर (१ राजू — ८०००+४९९९$\frac{1}{3}$ — $\frac{1}{6}$)=१ राजू — ८००० + ४९९९$\frac{1}{6}$ योजन अर्थात् १ राजू — ३०००$\frac{5}{6}$ योजन छठी पृथिवीके अन्तिम और सातवी पृथिवीके प्रथम श्रेणीबद्ध बिलका परस्थान अन्तराल है

।। श्रेणीबद्ध बिलोके अन्तरालका वर्णन समाप्त हुआ ।।

घर्मादिक छह पृथिवियोमे प्रकीर्णक-बिलोंके स्वस्थान एव परस्थान अन्तरालोका प्रमाण

छक्कदि-हिदेक्कणउदी-कोसोणा छस्सहस्स-पंच-सया ।
जोयणया घम्माए पइण्णयाणं हवेदि विच्चालं ॥१८९॥

६४९९ । को १ । $\frac{१७}{३६}$ ।

अर्थ .—घर्मा पृथिवीमे प्रकीर्णक बिलोका अन्तराल, इक्यानवैमे छहके वर्गका भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उतने कोस कम छह हजार पाँचसौ योजन प्रमाण है ॥१८९॥

विशेषार्थ —योजन ६५०० — ($\frac{९१}{६ \times ६} \times \frac{१}{४}$)=६४९९ यो० १$\frac{१७}{३६}$ कोस, अथवा—घर्मा पृथिवीकी मोटाई ८०००० — २०००=७८००० यो० । $(\frac{७८०००}{१} - \frac{९१}{१२}) \div \frac{१३-१}{१} = (\frac{७८०००}{१} - \frac{९१}{१२}) \times \frac{१}{१२}$=६४९९$\frac{५३}{१४४}$ योजन या ६४९९ योजन १$\frac{१७}{३६}$ कोस पहली पृथिवीमे प्रकीर्णक बिलोका अन्तराल है ।

णवणउदी-जुद-णव-सय-दु-सहस्सा जोयणाणि वंसाए ।
तिण्णि-सयाणि-दंडा उड्ढेण पइण्णयाण विच्चालं ॥१९०॥

२९९९ । दंड ३०० ।

अर्थ —वशा पृथिवीमे प्रकीर्णक बिलोका ऊर्ध्वग अन्तराल दो हजार नौ सौ निन्यानवै योजन और तीनसौ धनुष प्रमाण है ॥१९०॥

विशेषार्थ .—३२००० — २०००=$\frac{३००००}{१}$ — $(\frac{७}{२} \times \frac{११}{२} \times \frac{१}{४}) \div \frac{११-१}{१} = (\frac{३००००}{१} - \frac{७७}{८}) \times \frac{१}{१०}$=२९९९$\frac{३}{८०}$ योजन या २९९९ यो० ३०० दण्ड वशा पृथिवीमे प्रकीर्णक बिलोका अन्तराल है ।

अट्ठत्तालं दु-सयं ति-सहस्स-जोयणाणि[1] मेघाए ।
पणवण्ण-सयाणि धणू उड्ढेण पइण्णयाण विच्चालं ॥१९१॥

३२४८ । दंड ५५०० ।

अर्थ :—मेघा पृथिवीमे प्रकीर्णक बिलोका ऊर्ध्वग अन्तराल तीन हजार, दो सौ अडतालीस योजन और पाँच हजार पाँचसौ धनुष है ॥१९१॥

१ द जोयणाणि ।

विशेषार्थ :—(२८००० — २००० = २६०००) — ($\frac{१४}{३} \times \frac{९}{१} \times \frac{१}{४}$) − $\frac{(९-१)}{१}$ = ($\frac{२६०००}{१}$ — $\frac{२१}{२}$) × $\frac{१}{८}$ = ३२४८$\frac{११}{१६}$ योजन या ३२४८ योजन ५५०० दण्ड मेघा पृथिवीमे प्रकीर्णक बिलोका अन्तराल है।

चउसट्ठि छस्सयाणि ति-सहस्सा जोयणाणि तुरिमाए।
उणहत्तरी-सहस्सा पण-सय-दंडा य णव-भजिदा ॥१९२॥

३६६४ । दड $\frac{६९५००}{९}$ ।

अर्थ :—चौथी पृथिवीमे प्रकीर्णक बिलोका अन्तराल तीन हजार, छहसौ चौसठ योजन और नौ से भाजित उनहत्तर हजार, पाँच सौ धनुष प्रमाण है ॥१९२॥

विशेषार्थ :—(२४००० — २०००=२२०००) — ($\frac{३५}{६} \times \frac{७}{१} \times \frac{१}{४}$) − $\frac{(७-१)}{१}$ = ($\frac{२२०००}{१}$ — $\frac{२४५}{२४}$) × $\frac{१}{६}$ = ३६६४$\frac{१३९}{१४४}$ योजन या ३६६४ योजन $\frac{६९५००}{९}$ दण्ड अञ्जना पृथिवीमे प्रकीर्णक बिलोका अन्तराल है।

सत्ताणउदी-जोयण-चउदाल-सयाणि पंचम-खिदीए।
पण-सय-जुद-छ-सहस्सा दंडेण पइण्णयाण विच्चालं ॥१९३॥

४४९७ । दड ६५००

अर्थ :—पाँचवी पृथिवीमे प्रकीर्णक बिलोका अन्तराल चार हजार चारसौ सत्तानवै योजन और छह हजार पाँचसौ धनुष प्रमाण है ॥१९३॥

विशेषार्थ :—(२०००० — २०००=१८०००) — ($\frac{७}{१} \times \frac{५}{१} \times \frac{१}{४}$) − $\frac{(५-१)}{१}$ = ($\frac{१८०००}{१}$ — $\frac{३५}{४}$) × $\frac{१}{४}$ = ४४९७$\frac{१३}{१६}$ योजन या ४४९७ योजन ६५०० दण्ड अरिष्टा पृथिवीमे प्रकीर्णक बिलोका ऊर्ध्व अन्तराल है।

छण्णउदि णव-सयाणि छ-सहस्सा जोयणाणि मघवीए।
पणहत्तरि सय-दंडा उड्ढेण पइण्णयाण विच्चालं ॥१९४॥

॥ ६९९६ । दड ७५०० ॥

अर्थ :—मघवी नामक छठी पृथिवीमे प्रकीर्णक बिलोका ऊर्ध्व अन्तराल छह हजार नौ सौ छयानवै योजन और पचहत्तर सौ धनुष प्रमाण है ॥१९४॥

विशेषार्थ :—(१६००० — २०००=१४०००) — ($\frac{४९}{८}$ × $\frac{३}{५}$ × $\frac{१}{४}$) ÷ $\frac{(३-१)}{१}$ = ($\frac{१४०००}{१}$ — $\frac{४९}{८}$) × $\frac{१}{२}$ = ६९९६$\frac{१५}{१६}$ योजन अथवा ६९९६ योजन ७५०० दण्ड (धनुष) मघवी पृथिवीमे प्रकीर्णक बिलोका ऊर्ध्व अन्तराल है ।

[1]सट्ठाणे विच्चालं एदं जाणिज्ज तह परट्ठाणे ।
जं इंदय-परठाणे भणिदं तं एत्थ [2]वत्तव्वं ॥१९५॥

। एवं पइण्णयाणं विच्चालं समत्तं ।

॥ एवं णिवास-खेत्तं समत्तं ॥१॥

अर्थ :—इस प्रकार यह प्रकीर्णक बिलोका अन्तराल स्वस्थानमे समझना चाहिए। परस्थानमे जो इन्द्रक बिलोका अन्तराल कहा जा चुका है उसीको यहाँपर भी कहना चाहिए ॥१९५॥

। इसप्रकार प्रकीर्णक बिलोका अन्तराल समाप्त हुआ ।

॥ इसप्रकार निवास-क्षेत्रका वर्णन समाप्त हुआ ॥१॥



१. ठ. अट्ठाणे । २. द वत्थव्वं ।

इन्द्रक, श्रेणीबद्ध एव प्रकीर्णक बिलोका स्वस्थान, परस्थान अन्तराल—
गा० १६४–१९५

क्रमाक	नरको के नाम	इन्द्रक-बिलोका अन्तराल		श्रेणीबद्ध बिलोका अन्तराल		प्रकीर्णक बिलोका अन्तराल	
		स्वस्थान	परस्थान	स्वस्थान	परस्थान	स्वस्थान	परस्थान
१	घम्मा	६४९९ ३५/४८ यो०	१ राजू—२०९००० यो.	६४९८ २३/३६ यो.	१ रा—२०९००० यो	६४९९ ५३/१४४ यो	इन्द्रक-बिलोके परस्थान प्रमाण सदृश
२	वशा	२९९९ ४७/८० यो०	१ राजू—२६००० यो	२९९९ ९/२० यो	१राजू—२६००० यो	२९९९ ३/८० यो	
३	मेघा	३२४९ ७/१६ यो०	१ राजू—२२००० यो	३२४९ १/४ यो	१राजू—२२००० यो	३२४८ ११/१६ यो.	
४	अजना	३६६५ १५/१६ यो०	१ राजू—१८००० यो.	३६६५ २५/३६ यो	१राजू—१८००० यो	३६६४ १३३/१४४ यो	
५	अरिष्टा	४४९९ १/१६ यो०	१ राजू—१४००० यो.	४४९८ ३/४ यो	१राजू—१४००० यो	४४९७ १३/१६ यो.	
६	मघवी	६९९८ ११/१६ यो०	१ राजू—३००० १/२ यो.	६९९८ १/४ यो.	१राजू—३००० २/३ यो	६९९६ १५/१६ यो.	
७	माघवी	०		३९९९ १/३ यो		०	

घम्माए णारइया संखातीताओ होंति सेढीओ ।
एदाणं गुणगारा बिदंगुल-बिदिय-मूल-किंचूणं ।।१९६।।

|— २ + |
| १२|

अर्थ—घर्मा पृथिवीमे नारकी जीव असख्यात आयुके धारक होते है । इनकी सख्या निकालनेके लिए गुणकार घनागुलके द्वितीय वर्गमूलसे कुछ कम है । अर्थात् इस गुणकारसे जगच्छ्रेणी-को गुणा करनेपर जो राशि उत्पन्न हो उतने नारकी जीव घर्मा पृथिवीमे विद्यमान है ।।१९६।।

श्रेणी × घनागुलके दूसरे वर्गमूलसे कुछ कम = घर्मा पृ० के नारकी ।

वंसाए णारइया सेढीए असंखभाग-मेत्ता वि ।
सो रासी सेढीए बारस-मूलावहिद सेढी ।।१९७।।

— १२ ।

अर्थ:—वशा पृथिवीमे नारकी जीव जगच्छ्रेणीके असख्यातभाग मात्र है, वह राशि भी जगच्छ्रेणीके बारहवे वर्गमूलसे भाजित जगच्छ्रेणी मात्र है ।।१९७।।

श्रेणी — श्रेणीका बारहवाँ वर्गमूल = वशा पृथिवीके नारकियोका प्रमाण ।

मेघाए णारइया सेढीए असंखभाग-मेत्ता वि ।
सेढीए [1]दसम-मूलेण भाजिदो होदि सो सेढी ।।१९८।।

— १० ।

अर्थ—मेघा पृथिवीमे नारकी जीव जगच्छ्रेणीके असख्यातभाग प्रमाण होते हुए भी जगच्छ्रेणीके दसवे वर्गमूलसे भाजित जगच्छ्रेणी प्रमाण है ।।१९८।।

श्रेणी — श्रेणीका दसवाँ वर्गमूल = मेघा पृ० के नारकियोका प्रमाण ।

तुरिमाए णारइया सेढीए असंखभाग-मेत्ते वि ।
सो सेढीए अट्ठम-मूलेणं अवहिदा सेढी ।।१९९।।

— ८ ।

१. द क ठ दसमूलेण ।

अर्थ :—चौथी पृथिवीमे नारकी जीव जगच्छ्रेणीके असख्यातभाग प्रमाण है, वह प्रमाण भी जगच्छ्रेणीमे जगच्छ्रेणीके आठवे वर्गमूलका भाग देने पर जो लब्ध आवे, उतना है ॥१९९॥

श्रेणी—श्रेणीका आठवाँ वर्गमूल=चौथी पृ० के नारकियोका प्रमाण

पंचम-खिदि-णारइया सेढीए असंखभाग-मेत्ते वि ।
सो सेढीए छट्ठम-मूलेणं भाजिदा सेढी ॥२००॥

$\overline{\text{६}}$ ।

अर्थ :—पाँचवी पृथिवीमे नारकी जीव जगच्छ्रेणीके असख्यातवे-भाग प्रमाण होकर भी जगच्छ्रेणीके छठे वर्गमूलसे भाजित जगच्छ्रेणी प्रमाण है ॥२००॥

श्रेणी÷श्रेणीका छठा वर्गमूल=पाँचवी पृ० के नारकियोका प्रमाण ।

मघवीए णारइया सेढीए असंखभाग-मेत्ते वि ।
सेढीए तदिय-मूलेण [1]हरिद-सेढीअ सो रासी ॥२०१॥

$\overline{3}$ ।

अर्थ :—मघवी पृथिवीमे भी नारकी जीव जगच्छ्रेणीके असख्यातवे भाग प्रमाण है, वह प्रमाण भी जगच्छ्रेणीमे उसके तीसरे वर्गमूलका भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उतना है ॥२०१॥

श्रेणी÷श्रेणीका तीसरा वर्गमूल=छठी पृ० के नारकियोका प्रमाण ।

सत्तम-खिदि-णारइया सेढीए असंखभाग-मेत्ते वि ।
सेढीए बिदिय-मूलेण हरिद-सेढीअ सो रासी ॥२०२॥

$\overline{3}$ ।

। एव सखा समत्ता ॥२॥

अर्थ :—सातवी पृथिवीमे नारकी जीव जगच्छ्रेणीके असख्यातवे भाग प्रमाण है, वह राशि जगच्छ्रेणीके द्वितीय वर्गमूलसे भाजित जगच्छ्रेणी प्रमाण है ॥२०२॥

श्रेणी—श्रेणीका दूसरा वर्गमूल=सातवो पृ० के नारकियोका प्रमाण ।

इसप्रकार सख्याका वर्णन समाप्त हुआ ॥२॥

---

१ द ब क हरिदा सेढीय ।

पहली पृथिवीमे पटल क्रमसे नारकियोकी आयुका प्रमाण

णिरय-पदरेसु[1] आऊ सीमंतादीसु दोसु संखेज्जा ।
तदिए संखासखो दससु असंखो तहेव सेसेसु ।।२०३।।

७ । ७ । ७ रि । १० । रि । से । रि[2]

अर्थ—नरक-पटलोमेसे सीमन्त आदिक दो पटलोमे सख्यात वर्षकी आयु है। तीसरे पटलमे सख्यात एव असख्यात वर्षकी आयु हे और आगेके दस पटलोमे तथा शेष पटलोमे भी असख्यात वर्ष प्रमाण ही नारकियोकी आयु होती है ।।२०३।।

एक्कत्तिण्णि य सत्त दह सत्तारह दुवीस तेत्तीसा ।
रयणादी-चरिमिदय[3]-जेट्ठाऊ उवहि-उवमाणा ।।२०४।।

१ । ३ । ७ । १० । १७ । २२ । ३३ । सागरोवमाणि ।

अर्थ :—रत्नप्रभादिक सातो पृथिवियोके अन्तिम इन्द्रक विलोमे क्रमश एक, तीन, सात, दस, सत्तरह, बाईस और तैतीस सागरोपम-प्रमाण उत्कृष्ट आयु हे ।।२०४।।

दस-णउदि-सहस्साणि आऊ अवरो वरो य सीमंते ।
वरिसाणि णउदि-लक्खा णिर-इंदय-आउ-उक्कस्सो[4] ।।२०५।।

१०००० । ९०००० । ९०००००० ।

अर्थ—सीमन्त इन्द्रकमे जघन्य आयु दस हजार (१००००) वर्ष और उत्कृष्ट आयु नब्बै (९००००) हजार वर्ष-प्रमाण है। निरय इन्द्रकमे उत्कृष्ट आयुका प्रमाण नब्बै लाख (९००००००) वर्ष है ।।२०५।।

रोरुगए जेट्ठाऊ संखातीदा हु पुव्व-कोडीओ ।
भंतस्सुक्कस्साऊ सायर-उवमस्स दसमंसो ।।२०६।।

पुव्व । रि । सा । $\frac{1}{10}$ ।

अर्थ :—रौरुक इन्द्रकमे उत्कृष्ट आयु असख्यात पूर्वकोटी और भ्रान्त इन्द्रकमे सागरोपमके दसवे-भाग ($\frac{1}{10}$ सागर) प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ।।२०६।।

---

१. द ज क ठ पदरस्स । २ द २ । ७ । ७० । १० । ० ।। ३ व चरिमिदिय । ४ द व आउक्कस्सो ।

दसमंस चउत्थस्स य जेट्ठाऊ सोहिऊण णव-भजिदे ।
आउस्स पढम-भूए[1] णायव्वा हाणि-वड्ढीओ ॥२०७॥

$\frac{१}{१०}$ ।

अर्थ :—पहली पृथिवीके चतुर्थ पटलमे जो एक सागरके दसवे भाग-प्रमाण उत्कृष्ट आयु है, उसे पहली पृथिवीस्थ नारकियोकी उत्कृष्ट आयुमेसे कम करके शेषमे नौ का भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना, पहली पृथिवीके अवशिष्ट नौ पटलोमे आयुके प्रमाणको लानेके लिए हानि-वृद्धिका प्रमाण जानना चाहिए । (इस हानि-वृद्धिके प्रमाणको चतुर्थादि पटलोकी आयुमे उत्तरोत्तर जोडने पर पचमादि पटलोमे आयुका प्रमाण निकलता है) ॥२०७॥

रत्नप्रभा—पृ० मे उत्कृष्ट आयु एक सागरोपम है, अतः $१ - \frac{१}{१०} = \frac{९}{१०} \div \frac{९}{१} = \frac{१}{१०}$ सागर हानि-वृद्धिका प्रमाण हुआ ।

सायर-उवमा इगि-दु-ति-चउ-पण-छस्सत्त-अट्ठ-णव-दसया ।
दस-भजिदा रयणप्पह-तुरिमिंदय-पहुदि-जेट्ठाऊ ॥२०८॥

$\frac{१}{१०}$ । $\frac{२}{१०}$ । $\frac{३}{१०}$ । $\frac{४}{१०}$ । $\frac{५}{१०}$ । $\frac{६}{१०}$ । $\frac{७}{१०}$ । $\frac{८}{१०}$ । $\frac{९}{१०}$ । $\frac{१०}{१०}$ ।

अर्थ :- रत्नप्रभा पृथिवीके चतुर्थ पचमादि इन्द्रकोमे क्रमशः दससे भाजित एक, दो, तीन, चार, पॉच, छह, सात, आठ, नौ और दस सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ॥२०८॥

भ्रान्तमे $\frac{१}{१०}$ सागर, उद्भ्रान्तमे $\frac{२}{१०}$, सभ्रान्तमे $\frac{३}{१०}$; असभ्रान्तमे $\frac{४}{१०}$, विभ्रान्तमे $\frac{५}{१०}$, तप्तमे $\frac{६}{१०}$, त्रसितमे $\frac{७}{१०}$, वक्रान्तमे $\frac{८}{१०}$, अवक्रान्तमे $\frac{९}{१०}$ और विक्रान्त इन्द्रक बिलमे उत्कृष्टायु $\frac{१०}{१०}$ या १ सागर प्रमाण है ।

आयुकी हानि-वृद्धिका प्रमाण प्राप्त करनेका विधान

उवरिम-खिदि-जेट्ठाऊ सोहिय[2] हेट्ठिम-खिदीए जेट्ठम्मि ।
सेसं णिय-णिय-इंदय-संखा-भजिदम्मि हाणि-वड्ढीओ ॥२०९॥

अर्थ :—उपरिम पृथिवीकी उत्कृष्ट आयुको नीचेकी पृथिवीकी उत्कृष्ट आयुमेसे कम करके शेषमे अपने-अपने इन्द्रकोकी सख्याका भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उतना विवक्षित पृथिवीमे आयुकी हानि-वृद्धिका प्रमाण जानना चाहिए ॥२०९॥

---

१ द. ब ज क ठ पढमभाए । २ द. ब ज क ठ सोहस ।

उदाहरण —दूसरी पृ० की उ० आयु सागर (३ — १=२) — ११ = $\frac{2}{11}$ सागर दूसरी पृथिवीमे आयुकी हानि-वृद्धिका प्रमाण है ।

दूसरी पृथिवीमे पटल क्रमसे नारकियोकी आयुका प्रमाण

तेरह-उवही पढमे दो-दो-जुत्ता[1] य जाव तेत्तीसं ।
एक्कारसेहि भजिदा बिदिय-खिदी-इंदयाण[2] जेट्ठाऊ ॥२१०॥

$\frac{13}{11}$ । $\frac{15}{11}$ । $\frac{17}{11}$ । $\frac{19}{11}$ । $\frac{21}{11}$ । $\frac{23}{11}$ । $\frac{25}{11}$ । $\frac{27}{11}$ । $\frac{29}{11}$ । $\frac{31}{11}$ । $\frac{33}{11}$ ।

अर्थ —दूसरी पृथिवीके ग्यारह इन्द्रक बिलोमेसे प्रथम इन्द्रक बिलमे ग्यारहसे भाजित तेरह ($\frac{13}{11}$) सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट आयु है । इसमे तैतीस ($\frac{33}{11}$) प्राप्त होने तक ग्यारहसे भाजित दो दो ($\frac{2}{11}$) को मिलानेपर क्रमश दूसरी पृथिवीके शेष द्वितीयादिक इन्द्रकोकी उत्कृष्ट आयुका प्रमाण होता है ॥२१०॥

स्तनक इन्द्रकमे $\frac{13}{11}$ सागर, तनकमे $\frac{15}{11}$; मनमे $\frac{17}{11}$, वनमे $\frac{19}{11}$, घातमे $\frac{21}{11}$, सघातमे $\frac{23}{11}$, जिह्वामे $\frac{25}{11}$, जिह्वकमे $\frac{27}{11}$, लोलमे $\frac{29}{11}$, लोलकमे $\frac{31}{11}$ और स्तनलोलकमे $\frac{33}{11}$ या ३ सागर प्रमाण उत्कृष्टायु है ।

तीसरी पृथिवीमे पटल क्रमसे नारकियोकी आयुका प्रमाण ।

इगतीस-उवहि-उवमा पभओ चउ-वड्ढिदो य पत्तेक्कं ।
जा तेसठि णव-भजिदं एदं तदियावणिम्मि जेट्ठाऊ ॥२११॥

$\frac{31}{9}$ । $\frac{35}{9}$ । $\frac{39}{9}$ । $\frac{43}{9}$ । $\frac{47}{9}$ । $\frac{51}{9}$ । $\frac{55}{9}$ । $\frac{59}{9}$ । $\frac{63}{9}$ ।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीमे नौसे भाजित इकतीस ($\frac{31}{9}$) सागरोपम प्रभव या आदि है । इसके आगे प्रत्येक पटलमे नौसे भाजित चार ($\frac{4}{9}$) की तिरेसठ ($\frac{63}{9}$) तक वृद्धि करनेपर उत्कृष्ट आयुका प्रमाण निकलता है ॥२११॥

तप्तमे $\frac{31}{9}$, त्रसितमे $\frac{35}{9}$, तपनमे $\frac{39}{9}$, तापनमे $\frac{43}{9}$, निदाघमे $\frac{47}{9}$, प्रज्वलितमे $\frac{51}{9}$, उज्ज्वलितमे $\frac{55}{9}$, सज्वलितमे $\frac{59}{9}$ और सप्रज्वलित नामक इन्द्रकमे $\frac{63}{9}$ अथवा ७ सागर प्रमाण उत्कृष्टायु है ।

---

१ द दोद्दो जेट्ठा य । ज क ठ दोद्दो जेत्ता य । २ खिदीयदयाण ।

चौथी पृथिवीमे नारकियोकी आयुका प्रमाण

बावण्णुवही-उवमा पभओ तिय-वड्ढिदा य पत्तेक्कं ।
सत्तरि-परियंतं ते सत्त-हिदा तुरिम-पुढवि-जेट्ठाऊ ॥२१२॥

५२	५५	५८	६१	६४	६७	७०
७	७	७	७	७	७	७

अर्थ :—चौथी पृथिवीमे सातसे भाजित बावन सागरोपम प्रभव है । इसके आगे प्रत्येक पटलमे सत्तर पर्यन्त सातसे—भाजित तीन ($\frac{३}{७}$) की वृद्धि करने पर उत्कृष्टायुका प्रमाण निकलता है ॥२११॥

आरमे $\frac{५२}{७}$, मारमे $\frac{५५}{७}$, तारमे $\frac{५८}{७}$, चर्चामे $\frac{६१}{७}$, तमकमे $\frac{६४}{७}$, वादमे $\frac{६७}{७}$, खडखडमे $\frac{७०}{७}$ या १० सागरोपम उत्कृष्ट आयु है ॥२१२॥

पाँचवी पृथिवीमे नारकियोकी आयुका प्रमाण

सगवण्णोवहि-उवमा आदी सत्ताहिया य पत्तेक्कं ।
पणसीदी-परिअंतं पंच-हिदा पंचमीअ जेट्ठाऊ ॥२१३॥

५७	६४	७१	७८	८५
५	५	५	५	५

अर्थ :—पाँचवी पृथिवीमे पाँचसे भाजित सत्तावन सागरोपम आदि है । अनन्तर प्रत्येक पटलमे पचासी तक पाँचसे भाजित सात-सात ($\frac{७}{५}$) के जोडनेपर उत्कृष्ट आयुका प्रमाण जाना जाता है ॥२१३॥

तममे $\frac{५७}{५}$ सागरोपम, भ्रममे $\frac{६४}{५}$, झसमे $\frac{७१}{५}$, अन्धमे $\frac{७८}{५}$ और तिमिस्र इन्द्रककी उत्कृष्टायु $\frac{८५}{५}$ अर्थात् १७ सागर प्रमाण है ।

छठी पृथिवीमे नारकियोकी आयुका प्रमाण

छप्पण्णा इगिसट्ठी [1]छासट्ठी होंति उवहि-उवमाणा ।
तिय-भजिदा मघवीए णारय-जीवाण जेट्ठाऊ ॥२१४॥

५६	६१	६६
३	३	३

१. क. ब बासट्ठी ।

अर्थ :—मघवी पृथिवीके तीन पटलोमे नारकियोकी उत्कृष्टायु क्रमश तीनसे भाजित छप्पन, इकसठ और छचासठ सागरोपम है ।।२१४।।

हिममे $\frac{५६}{३}$, वर्दलमे $\frac{६१}{३}$ और लल्लकमे $\frac{६६}{३}$ या २२ सागर प्रमाण उत्कृष्टायु है ।

सत्तम-खिदि-जीवाणं आऊ तेत्तीस-उवहि-परिमाणा ।
उवरिम-उक्कस्साऊ [1]समय-जुदो हेट्ठिमे जहण्णं खु ।।२१५।।

३३ ।[2]

अर्थ :—सातवी पृथिवीके जीवोकी आयु तैतीस सागरोपम प्रमाण है । ऊपर-ऊपरके पटलोमे जो उत्कृष्ट आयु है, उसमे एक-एक समय मिलानेपर वही नीचेके पटलोमे जघन्यायु हो जाती है ।।२१५।।

अवधिस्थान नामक इन्द्रककी आयु ३३ सागरोपम प्रमाण है ।

श्रेणीबद्ध एव प्रकीर्णक बिलोमे स्थित नारकियोकी आयु

एवं सत्त-खिदीणं पत्तेक्कं इंदयाण जो आऊ ।
सेढि-विसेढि-गदाणं सो चेय पइण्णयाणं पि ।।२१६।।

एव आऊ समत्ता ।।३।।

अर्थ :—इसप्रकार सातो पृथिवियोके प्रत्येक इन्द्रकमे जो उत्कृष्ट आयु कही गई है, वही वहाँके श्रेणीबद्ध और विश्रेणीगत (प्रकीर्णक) बिलोकी भी आयु समझना चाहिए ।।२१६।।

इसप्रकार आयुका वर्णन समाप्त हुआ ।।३।।

१ द. ठ समग्रो जुदो, व क. ज. समउ-जुदो । २ द. २० । ३३ ।, व २२ । ३३ ।

सातो नरकोके प्रत्येक पटलकी जघन्य–उत्कृष्ट आयुका विवरण

घर्मा पृथिवी			वशा पृथिवी			मेघा पृथिवी		
पटल सं०	जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु	पटल सं०	जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु	पटल सं०	जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु
१	१०००० वर्ष	९००००वर्ष	१	१ सागर	१$\frac{२}{११}$ सागर	१	३ सागर	३$\frac{४}{९}$ सागर
२	९०००० वर्ष	९०लाख वर्ष	२	१$\frac{२}{११}$,,	१$\frac{४}{११}$ सागर	२	३$\frac{४}{९}$,,	३$\frac{८}{९}$,,
३	९० लाख वर्ष	असं० पूर्व कोटियाँ	३	१$\frac{४}{११}$,,	१$\frac{६}{११}$ सागर	३	३$\frac{८}{९}$,,	४$\frac{३}{९}$,,
४	असं० पूर्व कोटियाँ	$\frac{१}{१०}$ सागर	४	१$\frac{६}{११}$,,	१$\frac{८}{११}$,,	४	४$\frac{३}{९}$,,	४$\frac{७}{९}$,,
५	$\frac{१}{१०}$ सागर	$\frac{२}{१०}$ सागर	५	१$\frac{८}{११}$,,	१$\frac{१०}{११}$,	५	४$\frac{७}{९}$,,	५$\frac{२}{९}$,,
६	$\frac{२}{१०}$ सागर	$\frac{३}{१०}$ सागर	६	१$\frac{१०}{११}$,,	२$\frac{१}{११}$,,	६	५$\frac{२}{९}$,,	५$\frac{२}{३}$,,
७	$\frac{३}{१०}$ सागर	$\frac{४}{१०}$,,	७	२$\frac{१}{११}$,,	२$\frac{३}{११}$,,	७	५$\frac{२}{३}$,,	६$\frac{१}{९}$,,
८	$\frac{४}{१०}$ सागर	$\frac{१}{२}$,,	८	२$\frac{३}{११}$,,	२$\frac{५}{११}$,,	८	६$\frac{१}{९}$,	६$\frac{५}{९}$,,
९	$\frac{१}{२}$,,	$\frac{३}{५}$,,	९	२$\frac{५}{११}$,,	२$\frac{७}{११}$,,	९	६$\frac{५}{९}$,,	७ सागर
१०	$\frac{३}{५}$,,	$\frac{७}{१०}$,,	१०	२$\frac{७}{११}$,,	२$\frac{९}{११}$,,			
११	$\frac{७}{१०}$,,	$\frac{४}{५}$,,	११	२$\frac{९}{११}$,,	३ सागर			
१२	$\frac{४}{५}$,,	$\frac{९}{१०}$,,						
१३	$\frac{९}{१०}$,,	१सागरोपम						

सातो नरकोके प्रत्येक पटलकी जघन्य–उत्कृष्ट आयुका विवरण											
अञ्जना पृथिवी			अरिष्टा पृथिवी			मघवी पृथिवी			माघवी पृथिवी		
पटल सं०	जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु	पटल सं०	जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु	पटल सं०	जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु	पटल सं०	जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु
१	७ सागर	७$\frac{३}{७}$ सागर	१	१० सागर	११$\frac{२}{५}$ सा०	१	१७ सा०	१८$\frac{२}{३}$ सागर	१	२२ सा०	३३ सागर
२	७$\frac{३}{७}$,,	७$\frac{६}{७}$,,	२	११$\frac{२}{५}$,,	१२$\frac{४}{५}$,,	२	१८$\frac{२}{३}$,,	२०$\frac{१}{३}$,,			
३	७$\frac{६}{७}$,,	८$\frac{२}{७}$,,	३	१२$\frac{४}{५}$,,	१४$\frac{१}{५}$,,	३	२०$\frac{१}{३}$,,	२२ र			
४	८$\frac{२}{७}$,,	८$\frac{५}{७}$,,	४	१४$\frac{१}{५}$,,	१५$\frac{३}{५}$,,						
५	८$\frac{५}{७}$,,	९$\frac{१}{७}$,,	५	१५$\frac{३}{५}$,,	१७ सागर						
६	९$\frac{१}{७}$,,	९$\frac{४}{७}$,,									
७	९$\frac{४}{७}$,,	१० सागर									

नोट .—१ प्रत्येक पटल की जघन्य आयुमे एक समय अधिक करना चाहिए । गा० २१४ ।

२. यह जघन्य उत्कृष्ट आयुका प्रमाण सातो पृथिवियोके इन्द्रक बिलोका कहा गया है, यही प्रमाण प्रत्येक पृथिवीके श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलोमे रहने वाले नारकियो का भी जानना चाहिए । गा० २१५ ।



पहली पृथिवीमे पटलक्रमसे नारकियोके शरीरका उत्सेध

सत्त-ति-छ-दंड-हत्थंगुलाणि कमसो हवंति घम्माए ।
चरिमिंदयम्मि उदओ दुगुणो दुगुणो य सेस-परिमाणं[1] ।।२१७।।

द ७, ह ३, अ ६ । द १५, ह २, अ १२ । द ३१, ह १ । द ६२, ह २ ।
द १२५ । द २५० । द ५००

अर्थ —घर्मा पृथिवीके अन्तिम इन्द्रकमे नारकियोके शरीरकी ऊँचाई सात धनुष, तीन हाथ और छह अगुल है । इसके आगे शेष पृथिवियोके अन्तिम इन्द्रकोमे रहने वाले नारकियोके शरीरकी ऊँचाईका प्रमाण उत्तरोत्तर इससे दुगुना-दुगुना होता गया है ।।२१७।।

विशेषार्थ :—घर्मा पृथिवीमे शरीरकी ऊँचाई ७ दड, ३ हाथ, ६ अगुल, वशा पृ० मे १५ दण्ड, २ हाथ, १२ अगुल, मेघा पृ० मे ३१ दण्ड, १ हाथ, अजना पृ० मे ६२ दण्ड, २ हाथ, अरिष्टा पृ० मे १२५ दण्ड, मघवी पृ० मे २५० दण्ड और माघवी पृथिवीमे ५०० दण्ड ऊँचाई है ।

रयणप्पहखिदीए[2] उदओ[3] सीमंत-णाम-पडलम्मि ।
जीवाणं हत्थ-तियं सेसेसुं हाणि-वड्ढीओ ।।२१८।।

ह ३ ।

अर्थ :—रत्नप्रभा पृथिवीके सीमन्त नामक पटलमे जीवोके शरीरकी ऊँचाई तीन हाथ है, इसके आगे शेष पटलोमे शरीरकी ऊँचाई हानि-वृद्धिको लिए हुए है ।।२१८।।

आदी अंते सोहिय रूऊणिदाहिदम्मि हाणि-चया ।
मुह-सहिदे खिदि-सुद्धे णिय-णिय-पदरेसु उच्छेहो ।।२१९।।

ह २ । अ ८ । भा $\frac{2}{3}$ ।

अर्थ —अन्तमेसे आदिको घटाकर शेषमे एक कम अपने इन्द्रकके प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना प्रथम पृथिवीमे हानि-वृद्धिका प्रमाण है । इसे उत्तरोत्तर मुखमे मिलाने अथवा भूमिमेसे कम करनेपर अपने-अपने पटलोमे ऊँचाईका प्रमाण ज्ञात होता है ।।२१९।।

---

१ द ठ ज सेसचरिमाण । २ द. ब ज क ठ पुत्थीए । ३ द ओदओ ।

उदाहरण :—अन्त ७ धनुष, ३ हाथ, ६ अगुल, आदि ३ हाथ, ७ ध०, ३ हा०, ६ अ, अर्थात् (३१$\frac{१}{४}$ हाथ — ३ हाथ=२८$\frac{१}{४}$)—$\frac{११३/४}{१३-१}=\frac{११३}{४}\times\frac{१}{१२}$=२ हाथ ८$\frac{१}{२}$ अगुल हानि-वृद्धिका प्रमाण है ।

हाणि-चयाण पमाणं घम्माए होंति दोण्णि हत्था य ।
अट्ठंगुलाणि अंगुल-भागो [1]दोहिं विहत्तो य ॥२२०॥

ह २ । अ ८ । भा $\frac{१}{२}$ ।

अर्थ —घर्मा पृथिवीमे इस हानि-वृद्धिका प्रमाण दो हाथ, आठ अगुल और एक अगुलका दूसरा ($\frac{१}{२}$) भाग है ॥२२०॥

हानि-चयका प्रमाण २ हाथ, ८$\frac{१}{२}$ अगुल प्रमाण है ।

एक्क धणुमेक्क-हत्थो सत्तरसंगुल-दलं च णिरयम्मि ।
इगि-दंडो तिय-हत्था[2] सत्तरसं अगुलाणि रोरुगए ॥२२१॥

द १, ह १, अ $\frac{१७}{२}$ । द १, ह ३, अ १७ ।

अर्थ —पहली पृथिवीके निरय नामक द्वितीय पटलमे एक धनुष, एक हाथ और सत्तरह अगुलके आधे अर्थात् साढे आठ अगुल प्रमाण तथा रौरुक पटलमे एक धनुष, तीन हाथ और सत्तरह अगुल प्रमाण शरीरकी ऊँचाई है ॥२२१॥

दो दंडा दो हत्था भंतम्मि दिवड्ढमंगुलं होदि ।
उब्भंते दंड-तियं दहंगुलाणि च उच्छेहो ॥२२२॥

द २, ह २, अ $\frac{३}{२}$ । द ३, अगु १० ।

अर्थ :—भ्रान्त पटलमे दो धनुष, दो हाथ और डेढ अगुल, तथा उद्भ्रान्त पटलमे तीन धनुष एव दस अगुल प्रमाण शरीरका उत्सेध है ॥२२२॥

तिय दंडा दो हत्था अट्ठारह अंगुलाणि पव्वद्धं ।
सभंत[3]-णाम-इंदय-उच्छेहो पढम-पुढवीए ॥२२३॥

द ३, ह २, अ १८ भा $\frac{१}{२}$ ।

---

१ द दोहि विहत्थो य । २ द ज क. ठ हत्थो । ३ द सव्वत्थ, व क ज ठ. सव्वत्थ ।

अर्थ :—पहली पृथिवीके सम्भ्रान्त नामक इन्द्रकमे शरीरकी ऊँचाई तीन धनुष, दो हाथ और साढे अठारह अगुल प्रमाण है ।।२२३।।

चत्तारो चावाणि सत्तावीसं च अंगुलाणि पि ।
होदि असंभंतिंदय-उदओ पढमाए पुढवीए ।।२२४।।

द ४ । अ २७ ।

अर्थ :—पहली पृथिवीके असम्भ्रान्त इन्द्रकमे नारकियोके शरीरकी ऊँचाईका प्रमाण चार धनुष और सत्ताईस अगुल है ।।२२४।।

चत्तारो कोदंडा तिय हत्था अंगुलाणि तेवीसं ।
दलिदाणि होदि उदओ विब्भंतय-णाम पडलम्मि ।।२२५।।

द ४, ह ३, अ $\frac{२३}{२}$ ।

अर्थ :—विभ्रान्त नामक पटलमे चार धनुष, तीन हाथ और तेईस अगुलके आधे अर्थात् साढे ग्यारह अगुल प्रमाण उत्सेध है ।।२२५।।

पंच च्चिय कोदंडा एक्को हत्थो य वीस पव्वाणि ।
तत्तिदयम्मि उदओ पण्णत्तो पढम-खोणीए ।।२२६।।

द ५, ह १, अ २० ।

अर्थ :—पहली पृथिवीके तप्त इन्द्रकमे शरीरका उत्सेध पाँच धनुष, एक हाथ और बीस अगुल प्रमाण कहा गया है ।।२२६।।

छ च्चिय कोदंडाणि चत्तारो अंगुलाणि पव्वद्धं ।
उच्छेहो णादव्वो पडलम्मि य तसिद-णामम्मि ।।२२७।।

द ६, अ ४ भा $\frac{१}{२}$ ।

अर्थ :—त्रसित नामक पटलमे नारकियोके शरीरकी ऊँचाई छह धनुष और अर्ध अगुल सहित चार अगुल प्रमाण जाननी चाहिए ।।२२७।।

वाणासणाणि छ च्चिय दो हत्था तेरसंगुलाणिं पि ।
ववकंत-णाम-पडले उच्छेहो पढम-पुढवीए ॥२२८॥

द ६, ह २ । अ १३ ।

अर्थ :—पहली पृथिवीके वक्रान्त पटलमे शरीरका उत्सेध छह धनुष, दो हाथ और तेरह अगुल है ॥२२८॥

सत्त य सरासणाणिं अंगुलया एक्कवीस-पव्वद्धं ।
पडलम्मि य उच्छेहो होदि अवक्कंत-णामम्मि ॥२२९॥

द ७, अ २१½ ।

अर्थ—अवक्रान्त नामक पटलमे सात धनुष और साढे इक्कीस अगुल प्रमाण शरीरका उत्सेध है ॥२२९॥

सत्त विसिखासणाणिं हत्थाइं तिण्णि छच्च अंगुलयं ।
चरमिंदयम्मि उदओ विक्कंते पढम-पुढमीए ॥२३०॥

द ७, ह ३, अं ६ ।

अर्थ—पहली पृथिवीके विक्रान्त नामक अन्तिम इन्द्रकमे शरीरका उत्सेध सात धनुष, तीन हाथ और छह अगुल है ॥२३०॥

दूसरी पृथिवीमे उत्सेधकी वृद्धिका प्रमाण

दो हत्था वीसंगुल एक्कारस-भजिद-दो वि पव्वाइं ।
वंसाए वड्ढीओ मुह-सहिदा होंति उच्छेहो ॥२३१॥

ह २, अ २० भा $\frac{2}{11}$ ।

अर्थ :—वशा पृथिवीमे दो हाथ, बीस अगुल और ग्यारहसे भाजित दो-भाग प्रमाण प्रत्येक पटलमे वृद्धि होती है । इस वृद्धिको मुख अर्थात् पहली पृथिवीके उत्कृष्ट उत्सेध-प्रमाणमे उत्तरोत्तर मिलाते जानेसे क्रमश दूसरी पृथिवीके प्रथमादि पटलोंमे उत्सेधका प्रमाण निकलता है ॥२३१॥

दूसरी पृथिवीमे पटलक्रमसे नारकियोके शरीरका उत्सेध

अट्ठ विसिहासणाणिं दो हत्था अंगुलाणि चउवीसं ।
एक्कारस-भजिदाइं उदओ थणगम्मि बिदिय-वसुहाए ।।२३२।।

द ८, ह २, अ $\frac{२४}{११}$ ।

अर्थ :—दूसरी पृथिवीके (स्तनक नामक प्रथम इन्द्रकमे) नारकियोके शरीरका उत्सेध आठ धनुप, दो हाथ और ग्यारहसे भाजित चौवीस अंगुल-प्रमाण है ।।२३२।।

णव दंडा बावीसंगुलाणि एक्करस-भजिद चउ-भागा ।
बिदिय-पुढवीए तणगिदयम्हि णारइय उच्छेहो ।।२३३।।

द ९, अ २२ भा $\frac{४}{११}$ ।

अर्थ :—दूसरी पृथिवीके तनक पटलमे नारकियोके शरीरकी ऊँचाई नौ धनुष, बाईस अंगुल और ग्यारहसे भाजित चार भाग प्रमाण है ।।२३३।।

णव दंडा तिय-हत्थं चउरुत्तर-दो-सयाणि पव्वाणिं ।
एक्कारस-भजिदाणिं उदओ मण-इंदयम्मि जीवाणं ।।२३४।।

द ९, ह ३, अं १८ भा $\frac{६}{११}$ ।

अर्थ :—मन इन्द्रकमे जीवोके शरीरका उत्सेध नौ धनुष, तीन हाथ और ग्यारहसे भाजित दोसौ चार अंगुल प्रमाण है ।।२३४।।

दस दंडा दो हत्था चोद्दस पव्वाणि अट्ठ भागा य ।
एक्कारसेहिं भजिदा उदओ [1]वणगिदयम्मि बिदियाए ।।२३५।।

द १०, ह २, अ १४ भा $\frac{८}{११}$ ।

अर्थ :—दूसरी पृथिवीके वनक इन्द्रकमे शरीरका उत्सेध दस-धनुष, दो हाथ, चौदह अंगुल और आठ अंगुलोका ग्यारहवाँ भाग है ।।२३५।।

---

१ द ब क ज ठ तणगिदयम्मि ।

एक्कारस चावाणि एक्को हत्थो दसंगुलाणि पि ।
एक्करस-हिद-दसंसा उदओ [1]घादिदयम्मि बिदियाए ।।२३६।।

द ११, ह १, अ १० भा $\frac{१०}{११}$ ।

अर्थ :—दूसरी पृथिवीके घात इन्द्रकमे ग्यारह धनुष, १ हाथ, दस अगुल और ग्यारहसे भाजित दस-भाग प्रमाण शरीरका उत्सेध है ।।२३६।।

बारस सरासणाणि पव्वाणि अट्ठहत्तरी होंति ।
एक्कारस भजिदाणि संघादे णारयाण उच्छेहो ।।२३७।।

द १२ अ० $\frac{७८}{११}$ ।

अर्थ :—सघात इन्द्रकमे नारकियोके शरीरका उत्सेध बारह धनुष और ग्यारहसे भाजित अठहत्तर अंगुल प्रमाण है ।।२३७।।

बारस सरासणाणि तिय हत्था तिण्णि अंगुलाणि च ।
एक्करस-हिद-ति-भाया उदओ जिब्भिदअम्मि बिदियाए ।।२३८।।

द १२, ह ३, अ ३ भा $\frac{३}{११}$ ।

अर्थ :—दूसरी पृथिवीके जिह्व इन्द्रकमे शरीरका उत्सेध बारह धनुष, तीन हाथ, तीन अगुल और ग्यारहसे भाजित तीन भाग प्रमाण है ।।२३८।।

तेवण्णा हत्थाइं तेवीसा अंगुलाणि पण भागा ।
एक्कारसेहिं [2]भजिदा जिब्भग-पडलम्मि उच्छेहो ।।२३९।।

ह ५३ अ २३ भा $\frac{५}{११}$ ।

अर्थ :—जिह्वक पटलमे शरीरका उत्सेध तिरेपन हाथ (१३ दण्ड १ हाथ) तेईस अगुल और एक अगुलके ग्यारह-भागो मेसे पाँच-भाग प्रमाण है ।।२३९।।

---

१ ब घादिदियम्मि । २ द भजिदाए ।

चोद्दस दंडा सोलस-जुत्ताणि सयाणि दोण्हि पव्वाणि ।
एक्कारस-भजिदाइं उदओ [1]लोलिदयम्हि बिदियाए ।।२४०।।

द १४, अ $\frac{२१६}{११}$ ।

अर्थ :—दूसरी पृथिवीके लोल नामक पटलमे शरीरका उत्सेध चौदह धनुष और ग्यारहसे भाजित दोसौ सोलह (१९ $\frac{७}{११}$) अगुल प्रमाण है ।।२४०।।

एक्कोण-सट्ठि हत्था [2]पण्णरसं अंगुलाणि णव भागा ।
एक्कारसेहि भजिदा लोलयणामम्मि उच्छेहो ।।२४१।।

ह ५९, अ १५ भा $\frac{९}{११}$ ।

अर्थ :—लोलक नामक पटलमे नारकियोके शरीरकी ऊँचाई उनसठ हाथ (१४ दण्ड, ३ हाथ), १५ अगुल और ग्यारहसे भाजित अगुलके नौ-भाग प्रमाण है ।।२४१।।

पण्णरसं[3] कोदंडा दो हत्था बारसंगुलाणि च ।
अंतिम-पडले [4]थणलोलगम्मि बिदियाअ उच्छेहो ।।२४२।।

द १५, ह २, अ १२ ।

अर्थ :—दूसरी पृथिवीके स्तनलोलक नामक अन्तिम पटलमे पन्द्रह धनुष, दो हाथ और बारह अगुल-प्रमाण शरीरका उत्सेध है ।।२४२।।

तीसरी पृथिवीमे उत्सेधकी हानि-वृद्धिका प्रमाण

एक्क धणू बे [5]हत्था बावीसं अंगुलाणि बे भागा ।
तिय-भजिदा[6] णादव्वा[7] मेघाए हाणि-वड्ढीओ ।।२४३।।

ध १, ह २, अ २२ भा $\frac{२}{३}$ ।

---

१. द क. ज. ठ लोलय । २. ब. पणरस । ३ ब पण्णरस । ४. ब द. ठ. घणलोलगम्मि । ५. द हत्थ । ६ द क ठ भजिद । ७ द. क. ठ. णादव्वो, ब णायव्वो ।

अर्थ :—मेघा पृथिवीमे एक धनुष, दो हाथ, २२ अंगुल और तीनसे भाजित एक अगुलके दो-भाग-प्रमाण हानि-वृद्धि जाननी चाहिए ।।२४३।।

तीसरी पृथिवीमे पटल क्रमसे नारकियोके शरीरका उत्सेध

सत्तरसं चावाणि चोत्तीसं अंगुलाणि दो भागा ।
तिय-भजिदा मेघाए उदओ तत्तिदयम्मि जीवाणं ।।२४४।।

ध १७, अ ३४ भा $\frac{2}{3}$ ।

अर्थ :—मेघा पृथिवीके तप्त इन्द्रकमे जीवोके शरीरका उत्सेध सत्तरह धनुष, चौतीस अगुल (१ हाथ, १० अगुल) और तीनसे भाजित अगुलके दो-भाग-प्रमाण है ।।२४४।।

एक्कोणवीस दंडा अट्ठावीसंगुलाणि [1]तिहिदाणि ।
तसिदिंदयम्मि तदियक्खोणीए णारयाण उच्छेहो ।।२४५।।

ध १९, अ $\frac{28}{3}$ ।

अर्थ —तीसरी पृथिवीके त्रसित इन्द्रकमे नारकियोका उत्सेध उन्नीस धनुष और तीनसे भाजित अट्ठाईस (९$\frac{1}{3}$) अंगुल प्रमाण है ।।२४५।।

वीसए सिखासयाणिं असीदिमेत्ताणि अंगुलाणि च ।
[2]तदिय-पुढवीए तवणिंदयम्मि णारइय उच्छेहो ।।२४६।।

द २० । अ ८० ।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीके तपन इन्द्रक बिलमे नारकियोके शरीरका उत्सेध वीस धनुष अस्सी (३ हाथ ८) अगुल प्रमाण है ।।२४६।।

णउदि-पमाणा हत्था [3]तिदय-विहत्ताणि वीस पव्वाणि ।
मेघाए [4]तावणिंदय-ठिदाण जीवाण उच्छेहो ।।२४७।।

ह ९०, अ $\frac{20}{3}$ ।

---

१ द क ठ तिहिदाण । २. द ब क ठ. तदिय चय पुढवीए । ३ द तीयविहत्थाणि, क. तीद विहत्थाणि, ठ तीदी विहत्थाणि, ब तदिविहत्ताणि । ४ द ब क ठ तवणिदय ।

अर्थ :—मेघा पृथिवीके तापन इन्द्रकमे स्थित जीवोके शरीरका उत्सेध नब्बै हाथ (२२ धनुष २ हाथ) और तीनसे भाजित बीस अगुल प्रमाण है । २४७।।

सत्ताणउदी हत्था सोलस पव्वाणि तिय-विहत्ताणि ।
उदओ णिदाहणामा-पडले णेरइय जीवाणं ।।२४८।।

ह ९७ अ $\frac{१६}{३}$ ।

अर्थ—निदाघ नामक पटलमे नारकी जीवोके शरीरकी ऊँचाई सत्तानबै (२४ दण्ड १) हाथ और तीनसे भाजित सोलह-अगुल प्रमाण है ।।२४८।।

छव्वीसं चावाणि चत्तारी अंगुलाणि मेघाए ।
पज्जलिद-णाम-पडले ठिदाण जीवाण उच्छेहो ।।२४९।।

ध २६, अ ४ ।

अर्थ :—मेघा पृथिवीके प्रज्वलित नामक पटलमे स्थित जीवोके शरीरका उत्सेध छब्बीस धनुष और चार अगुल प्रमाण है ।।२४९।।

सत्तावीसं दंडा तिय-हत्था अट्ठ अंगुलाणि च ।
तिय-भजिदाइं उदओ [1]उज्जलिदे णारयाण णादव्वो ।।२५०।।

ध २७, ह ३ अ $\frac{८}{३}$ ।

अर्थ :—उज्वल्गित इन्द्रकमे नारकियोके शरीरका उत्सेध सत्ताईस धनुष, तीन हाथ और तीनसे भाजित आठ अगुल प्रमाण है ।।२५०।।

एक्कोणतीस[2] दंडा दो हत्था अंगुलाणि चत्तारि ।
तिय-भजिदाइं उदओ [3]संजलिदे तदिय-पुढवीए ।।२५१।।

ध २८, ह २, अ $\frac{४}{३}$ ।

---

१. द. उज्जलिदो । २ ब. क एकोणतीस । ३. सजलि-तदिय ।

अर्थ .—तीसरी पृथिवीके सज्वलित इन्द्रकमे शरीरका उत्सेध उनतीस धनुष, दो हाथ और तीनसे भाजित चार ($१\frac{१}{३}$) अगुल प्रमाण है ।।२५१।।

एक्कत्तीसं दडा एक्को हत्थो अ [1]तदिय-पुढवीए ।
संपज्जलिदे[2] चरिमिंदयम्हि [3]णारइय उस्सेहो ।।२५२।।

ध ३१, ह १ ।

अर्थ —तीसरी पृथिवीके सप्रज्वलित नामक अन्तिम इन्द्रकमे नारकियोके शरीरका उत्सेध इकतीस-धनुष और एक हाथ प्रमाण है ।।२५२।।

चौथी पृथिवीमे उत्सेधकी हानि-वृद्धिका प्रमाण

चउ दंडा इगि हत्थो पव्वाणि वीस-सत्त-पविहत्ता ।
चउ भागा तुरिमाए पुढवीए हाणि-वड्ढीओ ।।२५३।।

ध ४ ह १, अ २० भा $\frac{४}{७}$ ।

अर्थ :—चौथी पृथिवीमे चार धनुष, एक हाथ, बीस अगुल और सातसे भाजित चार-भाग प्रमाण हानि-वृद्धि है ।।२५३।।

चौथी पृथिवीमे पटल क्रमसे नारकियोके शरीरका उत्सेध

पणतीसं दंडाइं हत्थाइं दोण्णि वीस-पव्वाणि ।
सत्त-हिदा चउ-भागा उदओ आर-ट्ठिदाण जीवाणं ।।२५४।।

ध ३५, ह २, अ २० भा $\frac{४}{७}$ ।

अर्थ :—आर पटलमे स्थित जीवोके शरीरका उत्सेध पैतीस धनुष, दो हाथ, बीस अगुल और सातसे भाजित चार-भाग-प्रमाण है ।।२५४।।

---

१. ब. तदिह । २. द ब क ठ सजलिदे । ३ द ब क. ठ णारइया ।

चालीसं कोदंडा वीसब्भहिश्रं सयं च पव्वाणि ।
सत्त-हिदा उच्छेहो [1]तुरिमाए मार-पडल-जीवाणं ।।२५५।।

ध ४०, अ १२०/७ ।

अर्थ —चौथी पृथिवीके मार नामक पटलमे रहने वाले जीवोके शरीरकी ऊँचाई चालीस धनुष श्रौर सातसे भाजित एकसौ बीस (१७ १/७) श्रगुल प्रमाण है ।।२५५।।

चउदालं चावाणि दो हत्था श्रंगुलाणि छण्णउदी ।
सत्त-हिदा उच्छेहो तारिंदय-संठिदाण जीवाणं ।।२५६।।

ध ४४, ह २, अ ९६/७ ।

अर्थ :—चौथी पृथिवीके तार इन्द्रकमे स्थित जीवोके शरीरका उत्सेध चवालीस धनुष, दो हाथ श्रौर सातसे भाजित छ्यानबै (१३ ५/७) अंगुल प्रमाण है ।।२५६।।

एक्कोणपण्ण दंडा बाहत्तरि श्रंगुला य सत्त-हिदा ।
तच्चिदयम्मि[2] तुरिमक्खोणीए णारयाण उच्छेहो ।।२५७।।

ध ४९, श्र ७२/७ ।

अर्थ —चौथी पृथिवीमे तत्व (चर्चा) इन्द्रकमे नारकियोके शरीरका उत्सेध उनचास धनुष श्रौर सातसे भाजित बहत्तर (१० २/७) श्रगुल प्रमाण है ।।२५७।।

[3]तेवण्णा चावाणिं बिय हत्था श्रट्ठताल पव्वाणि ।
सत्त-हिदाणिं उदश्रो तमगिंदय-संठियाण जीवाणं ।।२५८।।

ध ५३, ह २, अं ४८/७ ।

अर्थ —तमक इन्द्रकमे स्थित जीवोके शरीरका उत्सेध तिरेपन धनुष, दो हाथ श्रौर सातसे भाजित श्रडतालीस (६ ६/७) अगुल प्रमाण है ।।२५८।।

---

१ द. ब. क ठ पचाए। २. द ब क. ठ. तत्तिदयम्मि। ३. ब तेण्णाव।

अट्ठावण्णा दंडा सत्त-हिदा अंगुला य चउवीसं ।
खाडिदयम्मि तुरिमक्खोणीए णारयाण उच्छेहो ।।२५९।।

ध ५८, अ $\frac{२४}{७}$ ।

अर्थ —चौथी पृथिवीके खाड इन्द्रकमे नारकियोके शरीरका उत्सेध अट्ठावन धनुष और सातसे भाजित चौबीस (३$\frac{३}{७}$) अगुल प्रमाण है ।।२५९।।

वासट्ठी कोदंडा हत्थाइं दोण्णि तुरिम-पुढवीए ।
चरिमिंदयम्मि खडखड-णामाए णारयाण उच्छेहो ।।२६०।।

द ६२, ह २ ।

अर्थ —चौथी पृथिवीके खडखड नामक अन्तिम इन्द्रकमे नारकियोके शरीरका उत्सेध बासठ धनुष और दो हाथ प्रमाण है ।।२६०।।

पाँचवी पृथिवीके उत्सेधकी हानि-वृद्धिका प्रमाण

बारस सरासणाणिं दो हत्था पंचमीए पुढवीए ।
खय-वड्ढीय पमाणं णिद्दिट्ठं वीयराएहिं ।।२६१।।

द १२, ह २ ।

अर्थ :—वीतरागदेवने पाँचवी पृथिवीमे क्षय एव वृद्धिका प्रमाण बारह धनुष और दो हाथ कहा है ।।२६१।।

पाँचवी पृथिवीमे पटलक्रमसे नारकियोके शरीरका उत्सेध

पण्णहत्तरि-परिमाणा कोदंडा पंचमीए पुढवीए ।
पढमिंदयम्मि उदओ तम-णामे संठिदाण जीवाणं ।।२६२।।

द ७५ ।

अर्थ .—पाँचवी पृथिवीके तम नामक प्रथम इन्द्रक विलमे स्थित जीवोके शरीरकी ऊँचाई पचहत्तर धनुष प्रमाण है ।।२६२।।

सत्तासीदी दंडा दो हत्था पंचमीए खोणीए ।
पडलम्मि य भम-णामे णारय-जीवाण उच्छेहो ।।२६३।।

दं ८७, ह २ ।

अर्थ :—पाँचवी पृथिवीके भ्रम नामक पटलमे नारकी जीवोके शरीरका उत्सेध सत्तासी धनुष और दो हाथ-प्रमाण है ।।२६३।।

एक्कं कोदंड-सयं झस-णामे णारयाण उच्छेहो ।
चावाणि बारसुत्तर-सयमेक्कं अंधयम्मि दो हत्था ।।२६४।।

द १०० । दं ११२, ह २ ।

अर्थ :—झस नामक पटलमे मात्र सौ धनुप तथा अन्धक पटलमे एकसौ वारह धनुष और दो हाथ प्रमाण नारकियोके शरीरकी ऊँचाई है ।।२६४।।

एक्कं कोदंड-सयं अब्भहियं पंचवीस-रूवेहिं ।
धूमप्पहाए[1] चरिमिदयम्मि तिमिसम्मि उच्छेहो ।।२६५।।

दं १२५ ।

अर्थ :—धूमप्रभा पृथिवीके तिमिस्र नामक अन्तिम इन्द्रकमे नारकियोके शरीरका उत्सेध पच्चीस अधिक एकसौ अर्थात् एकसौ पच्चीस धनुप प्रमाण है ।।२६५।।

छठी पृथिवीके उत्सेधकी हानि-वृद्धिका प्रमाण

एक्कचालं दंडा हत्थाइं दोण्णि सोलसंगुलया ।
छट्ठीए वसुहाए परिमाणं हाणि-वड्ढीए ।।२६६।।

दंड ४१, ह २, अ १६ ।

अर्थ :—छठी पृथिवीमे हानि-वृद्धिका प्रमाण इकतालीस धनुप, दो हाथ और सोलह अगुन है ।।२६६।।

---

१. द क. ठ धूमप्पहाय ।

रत्नप्रभादि पृथिवियोमे अवधिज्ञानका निरूपण

रयणप्पहावणीए कोसा चत्तारि ओहिणाण-खिदी ।
तप्परदो पत्तेक्कं परिहाणी गाउदद्धेण ॥२७२॥

को ४ । ७/२ । ३ । ५/२ । २ । ३/२ । १ ।

॥ ओहि समत्ता ॥५॥

अर्थ :—रत्नप्रभा पृथिवीमें अवधिज्ञानका क्षेत्र चार कोस प्रमाण है, इसके आगे प्रत्येक पृथिवीमे उक्त अवधि-क्षेत्रमेसे अर्धगव्यूति (कोस) की कमी होती गई है ॥२७२॥

विशेषार्थ :—रत्नप्रभा पृथिवीके नारकी जीव अपने अवधिज्ञानसे ४ कोस तक, शर्कराके ३½ कोस तक, वालुका पृ० के ३ कोस तक, पक पृ० के २½ कोस तक, धूम पृ० के २ कोस तक, तमः पृ० के १½ कोस तक और महातम· प्रभाके नारकी जीव एक कोस तक जानते है ।

॥ इसप्रकार अवधिज्ञानका वर्णन समाप्त हुआ ॥५॥

नारकी जीवोमे बीस-प्ररूपणाओका निर्देश

गुणजीवा पज्जत्ती पाणा सण्णाय मग्गणा कमसो ।
उवजोगा [1]कहिदव्वा णारइयाणं जहा-जोग्गं[2] ॥२७३॥

अर्थ :—नारकी जीवोमे यथायोग्य क्रमश गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, सज्ञा, मार्गणा और उपयोग (ज्ञान-दर्शन), इनका कथन करने योग्य है ॥२७३॥

नारकी जीवोमे गुणस्थान

चत्तारो गुणठाणा णारय-जीवाण होंति सव्वाणं ।
मिच्छादिट्ठी सासण-मिस्साणि तह अविरदो सम्मो ॥२७४॥

अर्थ —सव नारकी जीवोके मिथ्यादृष्टि, सासादन, मिश्र और अविरतसम्यग्दृष्टि, ये चार गुणस्थान हो सकते है ॥२७४॥

कयदव्वा । २. द. जहाजोग ।

उपरितन गुणस्थानोका निषेध

ताण अपच्चक्खाणावरणोदय-सहिद-सव्व-जीवाणं ।
हिंसाणंद-जुदाणं णाणाविह-संकिलेस-पउराणं ॥२७५॥

देसविरदादि-उवरिम-दस-गुणठाणाण[1] हेदुभूदाओ ।
जाओ विसोहियाओ[2] कइया वि ण ताओ जायंति ॥२७६॥

अर्थ :—अप्रत्याख्यानावरण कषायके उदयसे सहित, हिसानन्दी रौद्र-ध्यान और नाना-प्रकारके प्रचुर सक्लेशोसे सयुक्त उन सब नारकी जीवोके देशविरत आदि उपरितन दस गुणस्थानोके हेतुभूत जो विशुद्ध परिणाम है, वे कदापि नही होते है ॥२७५–२७६॥

नारकी जीवोमे जीव-समास और पर्याप्तियाँ

पज्जत्तापज्जत्ता जीव-समासा य होंति एदाणं ।
पज्जत्ती छब्भेया तेत्तियमेत्ता अपज्जत्ती ॥२७७॥

अर्थ .—इन नारकी जीवोके पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो जीवसमास तथा छह प्रकारकी र्याप्तियाँ एव इतनी (छह) ही अपर्याप्तियाँ भी होती है ॥२७७॥

नारकी जीवोमे प्राण और सज्ञाएँ

पंच वि इंदिय-पाणा [3]मण-वय-कायाणि आउपाणा य ।
आणप्पाणप्पाणा दस पाणा होंति चउ सण्णा ॥२७८॥

अर्थ —(नारकी जीवोके) पाँचो इन्द्रियाँ, मन-वचन-काय ये तीन बल, आयु और आन प्राण (श्वासोच्छ्वास) ये दसो प्राण तथा आहार, भय, मैथुन और परिग्रह, ये चारो सज्ञाएँ होती है ॥२७८॥

नारकी जीवोमे चौदह मार्गणाएँ

णिरय-गदीए सहिदा पंचक्खा तह य होति तस-काया ।
चउ-मण-वय-दुग-वेगुव्विय-कम्मइय-सरीरजोग-जुदा ॥२७९॥

---

१ द. ब ज क. ठ. गुणठाणाणि । २ ब उवसोधियाउ । ३. ठ ज. मणि, वचि ।

सातो नरकोके प्रत्येक पटल-स्थित नारकियोके शरीरके उत्सेधका विवरण

पहली पृथिवी				दूसरी पृथिवी				तीसरी पृथिवी			
पटल सं०	धनुष	हाथ	अगुल	पटल सं०	धनुष	हाथ	अगुल	पटल सं०	धनुष	हाथ	अगुल
१	०	३	०	१	८	२	२$\frac{२}{११}$	१	१७	१	१०$\frac{२}{३}$
२	१	१	८$\frac{१}{२}$	२	९	०	२२$\frac{४}{११}$	२	१९	०	९$\frac{१}{३}$
३	१	३	१७	३	९	३	१८$\frac{६}{११}$	३	२०	३	८
४	२	२	१$\frac{१}{२}$	४	१०	२	१४$\frac{८}{११}$	४	२२	२	६$\frac{२}{३}$
५	३	०	१०	५	११	१	१०$\frac{१०}{११}$	५	२४	१	५$\frac{१}{३}$
६	३	२	१८$\frac{१}{२}$	६	१२	०	७$\frac{१}{११}$	६	२६	०	४
७	४	१	३	७	१२	३	३$\frac{३}{११}$	७	२७	३	२$\frac{२}{३}$
८	४	३	११$\frac{१}{२}$	८	१३	१	२३$\frac{५}{११}$	८	२९	२	१$\frac{१}{३}$
९	५	१	२०	९	१४	०	१९$\frac{७}{११}$	९	३१	१	०
१०	६	०	४$\frac{१}{२}$	१०	१४	३	१५$\frac{९}{११}$				
११	६	२	१३	११	१५	२	१२				
१२	७	०	२१$\frac{१}{२}$								
१३	७	३	६								

सातो नरकोके प्रत्येक पटल-स्थित नारकियोके शरीरके उत्सेधका विवरण														
चौथी पृथिवी				पाँचवी पृथिवी				छठी पृथिवी				सातवी पृथिवी		
पटल सं०	धनुष	हाथ	अगुल	पटल सं०	धनुष	हाथ	अगुल	पटल सं०	धनुष	हाथ	अगुल	पटल सं०	धनुष	
१	३५	२	२०$\frac{४}{७}$	१	७५	०	०	१	१६६	२	१६	१	५००	
२	४०	०	१७$\frac{१}{७}$	२	८७	२	०	२	२०८	१	८			
३	४४	२	१३$\frac{५}{७}$	३	१००	०	०	३	२५०	०	०			
४	४९	०	१०$\frac{२}{७}$	४	११२	२	०							
५	५३	२	६$\frac{६}{७}$	५	१२५	०	०							
६	५८	०	३$\frac{३}{७}$											
७	६२	२	०											



छठी पृथिवीमे पटलक्रमसे नारकियोके शरीरका उत्सेध

छासट्ठी-अहिय-सयं कोदंडा दोण्णि होंति हत्था य ।
सोलस पव्वा य पुढं हिम-पडल-गदाण उच्छेहो ॥२६७॥

द १६६, ह २, अ १६ ।

अर्थ —(छठी पृथिवीके) हिम पटलगत जीवोके शरीरकी ऊँचाई एकसौ छयासठ धनुष, दो हाथ और सोलह अगुल प्रमाण है ॥२६७॥

दोण्णि सयाणि अट्ठाउत्तर-दंडाणि अंगुलाणि च ।
बत्तीसं [1]छट्ठीए [2]वद्दल-ठिद-जीव-उच्छेहो ॥२६८॥

दं २०८, अ ३२ ।

अर्थ —छठी पृथिवीके वर्दल पटलमे स्थित जीवोके शरीरका उत्सेध दोसौ आठ धनुष और बत्तीस (१ हाथ ८) अगुल प्रमाण है ॥२६८॥

पण्णासब्भहियाणि दोण्णि सयाणि सरासणाणि च ।
लल्लंक-णाम-इंदय-ठिदाण जीवाण उच्छेहो ॥२६९॥

द २५० ।

अर्थ —लल्लक नामक इन्द्रकमे स्थित जीवोके शरीरका उत्सेध दोसौ पचास धनुष-प्रमाण है ॥२६९॥

सातवी पृथिवीके नारकियोके शरीरका उत्सेध

पुढमीए सत्तमिए अवधिट्ठाणम्हि एक्क पडलम्हि ।
पंच-सयाणि दंडा णारय-जीवाण उस्सेहो ॥२७०॥

द ५०० ।

---

१ द छट्ठाए । २ द क ठ वदलट्ठिदल-जीव ।

अर्थ :—सातवी पृथिवीके अवधिस्थान इन्द्रकमे नारकियोका उत्सेध पाँच सौ (५००) धनुष प्रमाण है ।।२७०।।

श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक-बिलोके नारकियोका उत्सेध

एवं रयणादीणं पत्तेक्कं इंदयाण जो उदओ ।
सेढि-विसेढि-गदाणं पइण्णयाणं च सो च्चेअ ।।२७१।।

।। इदि णारयाण उच्छेहो समत्तो[1] ।।४।।

अर्थ :—इसप्रकार रत्नप्रभादिक पृथिवियोके प्रत्येक इन्द्रकमे शरीरका जो उत्सेध है, वही उत्सेध उन-उन पृथिवियोके श्रेणीबद्ध और विश्रेणीगत प्रकीर्णक बिलोमे स्थित नारकियोके शरीरका भी जानना चाहिए ।।२७१।।

।। इसप्रकार नारकियोके शरीरका उत्सेध-प्रमाण समाप्त हुआ ।।४।।

नोट .—गाथा २१७, २२० से २२६, २३१ से २४१, २४३ से २५१, २५३ से २५६, २६१ से २६४ और २६६ से २६६ से सम्बन्धित मूल सदृष्टियोंका अर्थ निम्नाकित तालिका द्वारा दर्शाया गया है :—

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिए]



१ द समत्ता ।

अट्ठावण्णा दंडा सत्त-हिदा अंगुला य चउवीसं ।
खाडिदयम्मि तुरिमक्खोणीए णारयाण उच्छेहो ॥२५९॥

ध ५८, अ $\frac{२४}{७}$ ।

अर्थ —चौथी पृथिवीके खाड इन्द्रकमे नारकियोके शरीरका उत्सेध अट्ठावन धनुष और सातसे भाजित चौबीस (३$\frac{३}{७}$) अगुल प्रमाण है ॥२५९॥

वासट्ठी कोदंडा हत्थाइं दोण्णि तुरिम-पुढवीए ।
चरिमिंदयम्मि खडखड-णामाए णारयाण उच्छेहो ॥२६०॥

द ६२, ह २ ।

अर्थ —चौथी पृथिवीके खडखड नामक अन्तिम इन्द्रकमे नारकियोके शरीरका उत्सेध बासठ धनुष और दो हाथ प्रमाण है ॥२६०॥

पाँचवी पृथिवीके उत्सेधकी हानि-वृद्धिका प्रमाण

बारस सरासणाणि दो हत्था पंचमीए पुढवीए ।
खय-वड्ढीय पमाणं णिद्दिट्ठं वीयराएहिं ॥२६१॥

द १२, ह २ ।

अर्थ :—वीतरागदेवने पाँचवी पृथिवीमे क्षय एव वृद्धिका प्रमाण बारह धनुष और दो हाथ कहा है ॥२६१॥

पाँचवी पृथिवीमे पटलक्रमसे नारकियोके शरीरका उत्सेध

पणहत्तरि-परिमाणा कोदंडा पंचमीए पुढवीए ।
पढमिंदयम्मि उदओ तम-णामे संठिदाण जीवाणं ॥२६२॥

द ७५ ।

अर्थ :—पाँचवी पृथिवीके तम नामक प्रथम इन्द्रक बिलमे स्थित जीवोके शरीरकी ऊँचाई पचहत्तर धनुप प्रमाण है ॥२६२॥

सत्तासीदी दंडा दो हत्था पंचमीए खोणीए ।
पडलम्मि य भम-णामे णारय-जीवाण उच्छेहो ।।२६३।।

द ८७, ह २ ।

अर्थ :—पाँचवी पृथिवीके भ्रम नामक पटलमे नारकी जीवोके शरीरका उत्सेध सत्तासी धनुष और दो हाथ-प्रमाण है ।।२६३।।

एक्कं कोदंड-सयं झस-णामे णारयाण उच्छेहो ।
चावाणि बारसुत्तर-सयमेक्कं अंधयम्मि दो हत्था ।।२६४।।

द १०० । दं ११२, ह २ ।

अर्थ :—झस नामक पटलमे मात्र सौ धनुप तथा अन्धक पटलमे एकसौ बारह धनुप और दो हाथ प्रमाण नारकियोके शरीरकी ऊँचाई है ।।२६४।।

एक्कं कोदंड-सयं अब्भहियं पंचवीस-रूवेहि ।
धूमप्पहाए[1] चरिमिंदयम्मि तिमिसम्मि उच्छेहो ।।२६५।।

दं १२५ ।

अर्थ :—धूमप्रभा पृथिवीके तिमिस्र नामक अन्तिम इन्द्रकमे नारकियोके शरीरका उत्सेध पच्चीस अधिक एकसौ अर्थात् एकसौ पच्चीस धनुष प्रमाण है ।।२६५।।

छठी पृथिवीके उत्सेधकी हानि-वृद्धिका प्रमाण

एक्कत्तालं दंडा हत्थाइं दोण्णि सोलसंगुलया ।
छट्ठीए वसुहाए परिमाणं हाणि-वड्ढीए ।।२६६।।

दड ४१, ह २, अ १६ ।

अर्थ —छठी पृथिवीमे हानि-वृद्धिका प्रमाण इकतालीस धनुप, दो हाथ और सोलह अगुल है ।।२६६।।

---

१. द क ठ धूमप्पहाय ।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीके सज्वलित इन्द्रकमे शरीरका उत्सेध उनतीस धनुष, दो हाथ और तीनसे भाजित चार (१$\frac{1}{3}$) अगुल प्रमाण है ॥२५१॥

एक्कत्तीसं दडा एक्को हत्थो अ [1]तदिय-पुढवीए ।
संपज्जलिदे[2] चरिमिंदयम्हि [3]णारइय उस्सेहो ॥२५२॥

ध ३१, ह १ ।

अर्थ —तीसरी पृथिवीके सप्रज्वलित नामक अन्तिम इन्द्रकमे नारकियोके शरीरका उत्सेध इकतीस-धनुप और एक हाथ प्रमाण है ॥२५२॥

चौथी पृथिवीमे उत्सेधकी हानि-वृद्धिका प्रमाण

चउ दंडा इगि हत्थो पव्वाणि वीस-सत्त-पविहत्ता ।
चउ भागा तुरिमाए पुढवीए हाणि-वड्ढीओ ॥२५३॥

ध ४ ह १, अ २० भा $\frac{4}{7}$ ।

अर्थ :—चौथी पृथिवीमे चार धनुष, एक हाथ, वीस अगुल और सातसे भाजित चार-भाग प्रमाण हानि-वृद्धि है ॥२५३॥

चौथी पृथिवीमे पटल क्रमसे नारकियोके शरीरका उत्सेध

पणतीसं दंडाइं हत्थाइं दोण्णि वीस-पव्वाणि ।
सत्त-हिदा चउ-भागा उदओ आर-ट्ठिदाण जीवाणं ॥२५४॥

ध ३५, ह २, अ २० भा $\frac{4}{7}$ ।

अर्थ :—आर पटलमे स्थित जीवोके शरीरका उत्सेध पैंतीस धनुष, दो हाथ, वीस अगुल और सातसे भाजित चार-भाग-प्रमाण है ॥२५४॥

---

१. ब. तदिह । २. द व क ठ सजलिदे । ३ द व क. ठ णारइया ।

चालीसं कोदंडा वीसब्भहिग्रं सयं च पव्वाणि ।
सत्त-हिदा उच्छेहो [1]तुरिमाए मार-पडल-जीवाणं ॥२५५॥

ध ४०, अ $\frac{१२०}{७}$ ।

अर्थ :—चौथी पृथिवीके मार नामक पटलमे रहने वाले जीवोके शरीरकी ऊँचाई चालीस धनुष और सातसे भाजित एकसौ बीस (१७ $\frac{१}{७}$) अगुल प्रमाण है ॥२५५॥

चउदालं चावाणि दो हत्था अंगुलाणि छण्णउदी ।
सत्त-हिदा उच्छेहो तारिंदय-संठिदाण जीवाणं ॥२५६॥

ध ४४, ह २, अ $\frac{९६}{७}$ ।

अर्थ :—चौथी पृथिवीके तार इन्द्रकमे स्थित जीवोके शरीरका उत्सेध चवालीस धनुष, दो हाथ और सातसे भाजित छ्यानबै (१३ $\frac{५}{७}$) अंगुल प्रमाण है ॥२५६॥

एक्कोणपण्ण दंडा बाहत्तरि अंगुला य सत्त-हिदा ।
तच्चिदयम्मि[2] तुरिमक्खोणीए णारयाण उच्छेहो ॥२५७॥

ध ४९, अ $\frac{७२}{७}$ ।

अर्थ :—चौथी पृथिवीमे तत्व (चर्चा) इन्द्रकमे नारकियोके शरीरका उत्सेध उनचास धनुष और सातसे भाजित बहत्तर (१० $\frac{२}{७}$) अंगुल प्रमाण है ॥२५७॥

[3]तेवण्णा चावाणिं बिय हत्था अट्ठताल पव्वाणि ।
सत्त-हिदाणि उदओ तमगिंदय-संठियाण जीवाणं ॥२५८॥

ध ५३, ह २, अं $\frac{४८}{७}$ ।

अर्थ :—तमक इन्द्रकमे स्थित जीवोके शरीरका उत्सेध तिरेपन धनुष, दो हाथ और सातसे भाजित अडतालीस (६ $\frac{६}{७}$) अगुल प्रमाण है ॥२५८॥

---

१ द. ब. क. ठ. पचाए । २ द ब क ठ. तत्तिदयम्मि । ३. ब तेण्णाव ।

अर्थ :—मेघा पृथिवीमे एक धनुष, दो हाथ, २२ अंगुल और तीनसे भाजित एक अगुलके दो-भाग-प्रमाण हानि-वृद्धि जाननी चाहिए ।।२४३।।

तीसरी पृथिवीमे पटल क्रमसे नारकियोके शरीरका उत्सेध

सत्तरसं चावाणि चोत्तीसं अंगुलाणि दो भागा ।
तिय-भजिदा मेघाए उदओ तत्तिदयम्मि जीवाणं ।।२४४।।

ध १७, अ ३४ भा $\frac{2}{3}$ ।

अर्थ :—मेघा पृथिवीके तप्त इन्द्रकमे जीवोके शरीरका उत्सेध सत्तरह धनुष, चौतीस अगुल (१ हाथ, १० अगुल) और तीनसे भाजित अगुलके दो-भाग-प्रमाण है ।।२४४।।

एक्कोणवीस दंडा अट्ठावीसंगुलाणि [1]तिहिदाणि ।
तसिदिंदयम्मि तदियक्खोणीए णारयाण उच्छेहो ।।२४५।।

ध १९, अ $\frac{२८}{3}$ ।

अर्थ—तीसरी पृथिवीके त्रसित इन्द्रकमे नारकियोका उत्सेध उन्नीस धनुष और तीनसे भाजित अट्ठाईस (९$\frac{1}{3}$) अंगुल प्रमाण है ।।२४५।।

वीसए सिखासयाणि असीदिमेत्ताणि अंगुलाणि च ।
[2]तदिय-पुढवीए तवणिंदयम्मि णारइय उच्छेहो ।।२४६।।

द २० । अ ८० ।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीके तपन इन्द्रक बिलमे नारकियोके शरीरका उत्सेध वीस धनुष अस्सी (३ हाथ ८) अगुल प्रमाण है ।।२४६।।

णउदि-पमाणा हत्था [3]तिदय-विहत्ताणि वीस पव्वाणि ।
मेघाए [4]तावणिंदय-ठिदाण जीवाण उच्छेहो ।।२४७।।

ह ९०, अ $\frac{२०}{3}$ ।

१ द क ठ तिहिदाए । २. द व क ठ तदिय चय पुढवीए । ३ द तीयविहत्थाणि, क. तीद विहत्थाणि, ठ तीदी विहत्थाणि, व तदिविहत्ताणि । ४ द व. क ठ तवणिदय ।

अर्थ :—मेघा पृथिवीके तापन इन्द्रकमे स्थित जीवोके शरीरका उत्सेध नव्बै हाथ (२२ धनुष २ हाथ) और तीनसे भाजित बीस अगुल प्रमाण है । २४७।।

सत्ताणउदी हत्था सोलस पव्वाणि तिय-विहत्ताणि ।
उदओ णिदाहणामा-पडले णेरइय जीवाणं ।।२४८।।

ह ९७ अ $\frac{१६}{३}$ ।

अर्थ —निदाघ नामक पटलमे नारकी जीवोके शरीरकी ऊँचाई सत्तानबै (२४ दण्ड १) हाथ और तीनसे भाजित सोलह-अगुल प्रमाण है ।।२४८।।

छव्वीसं चावाणि चत्तारी अंगुलाणि मेघाए ।
पज्जलिद-णाम-पडले ठिदाण जीवाण उच्छेहो ।।२४९।।

ध २६, अ ४ ।

अर्थ :—मेघा पृथिवीके प्रज्वलित नामक पटलमे स्थित जीवोके शरीरका उत्सेध छव्बीस धनुष और चार अगुल प्रमाण है ।।२४९।।

सत्तावीसं दंडा तिय-हत्था अट्ठ अंगुलाणि च ।
तिय-भजिदाइं उदओ [1]उज्जलिदे णारयाण णादव्वो ।।२५०।।

ध २७, ह ३ अ $\frac{८}{३}$ ।

अर्थ .—उज्वल्ति इन्द्रकमे नारकियोके शरीरका उत्सेध सत्ताईस धनुप, तीन हाथ और तीनसे भाजित आठ अगुल प्रमाण है ।।२५०।।

एक्कोणतीस[2] दंडा दो हत्था अंगुलाणि चत्तारि ।
तिय-भजिदाइं उदओ [3]संजलिदे तदिय-पुढवीए ।।२५१।।

ध २९, ह २, अ $\frac{४}{३}$ ।

---

१. द उज्जलिदो । २ ब क एकोणतीस । ३. सजलि-तदिय ।

अर्थ :—मेघा पृथिवीमे एक धनुष, दो हाथ, २२ अंगुल और तीनसे भाजित एक अगुलके दो-भाग-प्रमाण हानि-वृद्धि जाननी चाहिए ॥२४३॥

तीसरी पृथिवीमे पटल क्रमसे नारकियोके शरीरका उत्सेध

सत्तरसं चावाणि चोत्तीसं अंगुलाणि दो भागा।
तिय-भजिदा मेघाए उदओ तत्तिदयम्मि जीवाणं ॥२४४॥

ध १७, अ ३४ भा $\frac{2}{3}$ ।

अर्थ :—मेघा पृथिवीके तप्त इन्द्रकमे जीवोके शरीरका उत्सेध सत्तरह धनुष, चौतीस अगुल (१ हाथ, १० अगुल) और तीनसे भाजित अगुलके दो-भाग-प्रमाण है ॥२४४॥

एक्कोणवीस दंडा अट्ठावीसंगुलाणि [1]तिहिदाणि।
तसिदिंदयम्मि तदियक्खोणीए णारयाण उच्छेहो ॥२४५॥

ध १९, अ $\frac{28}{3}$ ।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीके त्रसित इन्द्रकमे नारकियोका उत्सेध उन्नीस धनुष और तीनसे भाजित अट्ठाईस (९$\frac{1}{3}$) अंगुल प्रमाण है ॥२४५॥

वीसए सिखासयाणि असीदिमेत्ताणि अंगुलाणि च।
[2]तदिय-पुढवीए तवणिंदयम्मि णारइय उच्छेहो ॥२४६॥

द २० । अ ८० ।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीके तपन इन्द्रक बिलमे नारकियोके शरीरका उत्सेध वीस धनुष अस्सी (३ हाथ ८) अगुल प्रमाण है ॥२४६॥

णउदि-पमाणा हत्था [3]तिदय-विहत्ताणि वीस पव्वाणि।
मेघाए [4]तावणिदय-ठिदाण जीवाण उच्छेहो ॥२४७॥

ह ९०, अ $\frac{20}{3}$ ।

---

१ द क ठ तिहिदाए । २. द व क ठ तदिय चय पुढवीए । ३ द. तीयविहत्याणि, क. तीद विहत्याणि, ठ तीदी विहत्याणि, व तदिविहत्ताणि । ४. द व क. ठ तवणिदय ।

उपरितन गुणस्थानोका निषेध

ताण अपच्चक्खाणावरणोदय-सहिद-सव्व-जीवाणं ।
हिंसाणंद-जुदाणं णाणाविह-संकिलेस-पउराणं ।।२७५।।

देसविरदादि-उवरिम-दस-गुणठाणाण[1] हेदुभूदाओ ।
जाओ विसोहियाओ[2] कइया वि ण ताओ जायंति ।।२७६।।

अर्थ :—अप्रत्याख्यानावरण कषायके उदयसे सहित, हिसानन्दी रौद्र-ध्यान और नाना-प्रकारके प्रचुर सक्लेशोसे सयुक्त उन सब नारकी जीवोके देशविरत आदि उपरितन दस गुणस्थानोके हेतुभूत जो विशुद्ध परिणाम है, वे कदापि नही होते है ।।२७५–२७६।।

नारकी जीवोमे जीव-समास और पर्याप्तियाँ

पज्जत्तापज्जत्ता जीव-समासा य होंति एदाणं ।
पज्जत्ती छब्भेया तेत्तियमेत्ता अपज्जत्ती ।।२७७।।

अर्थ —इन नारकी जीवोके पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो जीवसमास तथा छह प्रकारकी पर्याप्तियाँ एव इतनी (छह) ही अपर्याप्तियाँ भी होती है ।।२७७।।

नारकी जीवोमे प्राण और सज्ञाएँ

पंच वि इंदिय-पाणा [3]मण-वय-कायाणि आउपाणा य ।
आणप्पाणप्पाणा दस पाणा होंति चउ सण्णा ।।२७८।।

अर्थ —(नारकी जीवोके) पाँचो इन्द्रियाँ, मन-वचन-काय ये तीन वल, आयु और आन प्राण (श्वासोच्छ्वास) ये दसो प्राण तथा आहार, भय, मैथुन और परिग्रह, ये चारो सज्ञाएँ होती है ।।२७८।।

नारकी जीवोमे चौदह मार्गणाएँ

णिरय-गदीए सहिदा पंचक्खा तह य होंति तस-काया ।
चउ-मण-वय-दुग-वेगुव्विय-कम्मइय-सरीरजोग-जुदा ।।२७९।।

---

१ द व ज क. ठ गुणठाणाणि । २. व. उवसोधियाउ । ३. ठ ज. मणि, वचि ।

रत्नप्रभादि पृथिवियोमे अवधिज्ञानका निरूपण

रयणप्पहावणीए कोसा चत्तारि ओहिणाण-खिदी ।
तप्परदो पत्तेक्कं परिहाणी गाउदद्धेण ॥२७२॥

को ४ । ७/२ । ३ । ५/२ । २ । ३/२ । १ ।

॥ ओहि समत्ता ॥५॥

अर्थ :—रत्नप्रभा पृथिवीमें अवधिज्ञानका क्षेत्र चार कोस प्रमाण है, इसके आगे प्रत्येक पृथिवीमे उक्त अवधि-क्षेत्रमेसे अर्धगव्यूति (कोस) की कमी होती गई है ॥२७२॥

विशेषार्थ :—रत्नप्रभा पृथिवीके नारकी जीव अपने अवधिज्ञानसे ४ कोस तक, शर्कराके ३ १/२ कोस तक, बालुका पृ० के ३ कोस तक, पक पृ० के २ १/२ कोस तक, धूम पृ० के २ कोस तक, तमः पृ० के १ १/२ कोस तक और महातम: प्रभाके नारकी जीव एक कोस तक जानते है ।

॥ इसप्रकार अवधिज्ञानका वर्णन समाप्त हुआ ॥५॥

नारकी जीवोमे बीस-प्ररूपणाओका निर्देश

गुणजीवा पज्जत्ती पाणा सण्णाय मग्गणा कमसो ।
उवजोगा [1]कहिदव्वा णारइयाणं जहा-जोग्गं[2] ॥२७३॥

अर्थ :—नारकी जीवोमे यथायोग्य क्रमश गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, सज्ञा, मार्गणा और उपयोग (ज्ञान-दर्शन), इनका कथन करने योग्य है ॥२७३॥

नारकी जीवोमे गुणस्थान

चत्तारो गुणठाणा णारय-जीवाण होंति सव्वाणं ।
मिच्छादिट्ठी सासण-मिस्साणि तह अविरदो सम्मो ॥२७४॥

अर्थ—सब नारकी जीवोके मिथ्यादृष्टि, सासादन, मिश्र और अविरतसम्यग्दृष्टि, ये चार गुणस्थान हो सकते है ॥२७४॥

---

१ क कयदव्वा । २ द जहाजोग ।

उपरितन गुणस्थानोका निषेध

ताण अपच्चक्खाणावरणोदय-सहिद-सव्व-जीवाणं ।
हिंसाणंद-जुदाणं णाणाविह-संकिलेस-पउराणं ॥२७५॥

देसविरदादि-उवरिम-दस-गुणठाणाण[1] हेदुभूदाओ ।
जाओ विसोहियाओ[2] कइया वि ण ताओ जायंति ॥२७६॥

अर्थ :—अप्रत्याख्यानावरण कषायके उदयसे सहित, हिंसानन्दी रौद्र-ध्यान और नाना-प्रकारके प्रचुर संक्लेशोसे संयुक्त उन सब नारकी जीवोके देशविरत आदि उपरितन दस गुणस्थानोके हेतुभूत जो विशुद्ध परिणाम है, वे कदापि नही होते है ॥२७५-२७६॥

नारकी जीवोमे जीव-समास और पर्याप्तियाँ

पज्जत्तापज्जत्ता जीव-समासा य होंति एदाणं ।
पज्जत्ती छब्भेया तेत्तियमेत्ता अपज्जत्ती ॥२७७॥

अर्थ :—इन नारकी जीवोके पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो जीवसमास तथा छह प्रकारकी पर्याप्तियाँ एव इतनी (छह) ही अपर्याप्तियाँ भी होती है ॥२७७॥

नारकी जीवोमे प्राण और संज्ञाएँ

पंच वि इंदिय-पाणा [3]मण-वय-कायाणि आउपाणा य ।
आणप्पाणप्पाणा दस पाणा होंति चउ सण्णा ॥२७८॥

अर्थ :—(नारकी जीवोके) पाँचो इन्द्रियाँ, मन-वचन-काय ये तीन बल, आयु और आन प्राण (श्वासोच्छ्वास) ये दसो प्राण तथा आहार, भय, मैथुन और परिग्रह, ये चारो संज्ञाएँ होती है ॥२७८॥

नारकी जीवोमे चौदह मार्गणाएँ

णिरय-गदीए सहिदा पंचक्खा तह य होंति तस-काया ।
चउ-मण-वय-दुग-वेगुव्विय-कम्मइय-सरीरजोग-जुदा ॥२७९॥

---

१. द. ब ज क. ठ गुणठाणाणि । २. ब उवसोधियाउ । ३. ठ ज. मणि, वचि ।

होंति णपुंसय-वेदा णारय-जीवा य दव्व-भावेहिं ।
सयल-कसाया-सत्ता संजुत्ता णाण-छक्केण ॥२८०॥

ते सव्वे णारइया विविहेहिं असंजमेहिं परिपुण्णा ।
चक्खु-अचक्खू-ओही-दंसण-तिदएण जुत्ता य ॥२८१॥

भावेसुं तिय-लेस्सा ताओ किण्हा य णील-काओया ।
दव्वेणुक्कड-किण्हा' भव्वाभव्वा य ते सव्वे ॥२८२॥

छस्सम्मत्ता ताइं उवसम-खइयाइ-वेदग-मिच्छो ।
'सासण-मिस्सा य तहा संणी आहारिणो अणाहारा ॥२८३॥

अर्थ :—सब नारकी नरकगतिमे सहित, पचेन्द्रिय, त्रसकायवाले, चार मनोयोगो, चार वचनयोगो तथा दो वैक्रियिक और कार्मण, इन तीन काय-योगोसे सयुक्त है । वे नारकी जीव द्रव्य और भावसे नपु सकवेदवाले; सम्पूर्ण कषायोसे युक्त, छह ज्ञान वाले, विविध प्रकारके असयमोसे परिपूर्ण; चक्षु, अचक्षु, अवधि, इन तीन दर्शनोसे युक्त, भावकी अपेक्षा कृष्ण, नील, कापोत, इन तीन लेश्याओ और द्रव्यकी अपेक्षा उत्कृष्ट कृष्ण लेश्यासे सहित, भव्यत्व और अभव्यत्व परिणामसे युक्त, औपशमिक, क्षायिक, वेदक, मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र इन छह सम्यक्त्वोसे सहित, सज्ञी, आहारक एव अनाहारक होते है ॥२७९-२८३॥

विशेषार्थ :—नरक भूमियोमे स्थित सभी नारकी जीव १ गति (नरक), २ जाति (पचेन्द्रिय), ३ काय (त्रस), ४ योग (सत्य, असत्य, उभय, अनुभयरूप चार मनोयोग, चार वचन योग तथा वैक्रियिक, वैक्रियिक मिश्र और कार्मण तीन काययोग), ५ वेद (नपु सकवेद), ६ कषाय (स्त्रीवेद और पुरुष वेदसे रहित तेईस), ७ ज्ञान (मति, श्रुत, अवधि, कुमति, कुश्रुत और विभग), ८ असयम, ९ दर्शन (चक्षु, अचक्षु, अवधि), १० लेश्या (भावापेक्षा तीन अशुभ और द्रव्यापेक्षा उत्कृष्ट कृष्ण), ११ भव्यत्व (एवं अभव्यत्व), १२ सम्यक्त्व (औपशमिक, क्षायिक, वेदक, मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र), १३ सज्ञी और १४ आहारक (एव अनाहारक) इन चौदह मार्गणाओमेसे यथायोग्य भिन्न भिन्न मार्गणाओसे सयुक्त होते है ।

नारकी जीवोमे उपयोग

सायार-अणायारा उवयोगा दोण्णि होंति तेंसि च ।
तिव्व-कसाएण जुदा तिव्वोदय-अप्पसत्त-पयडि-जुदा ।।२८४।।

।। गुणठाणादी समत्ता ।।६।।

अर्थ :—तीव्र कषाय एव तीव्र उदयवाली पाप-प्रकृतियोसे युक्त उन-उन नारकी जीवोके साकार (ज्ञान) और निराकार (दर्शन) दोनो ही उपयोग होते है ।।२८४।।

।। इसप्रकार गुणस्थानादिका वर्णन समाप्त हुआ ।।६।।

नरकोमे उत्पन्न होने वाले जीवोका निरूपण

पढम-धरंतमसण्णी पढमं बिदियासु सरिसओ जादि ।
पढमादी-तदियंतं पक्खी भुजगा[1] वि आतुरिमं ।।२८५।।

पंचम-खिदि-परियंतं सिंहो इत्थी वि छट्ठ-खिदि-अंतं ।
आसत्तम-भूवलयं मच्छा मणुवा य वच्चंति ।।२८६।।

अर्थ :—पहली पृथिवीके अन्त-पर्यन्त असञ्ज्ञी तथा पहली और दूसरी पृथिवीमे सरीसृप जाता है। पहली से तीसरी पृथिवी पर्यन्त पक्षी एव चौथी पृथिवी पर्यन्त भुजगादिक उत्पन्न होते है ।।२८५।।

अर्थ :– पाँचवी पृथिवी पर्यन्त सिह, छठी पृथिवी तक स्त्री और सातवी भूमि तक मत्स्य एव मनुष्य ही जाते है ।।२८६।।

नरकोमे निरन्तर उत्पत्तिका प्रमाण

अट्ठ-सग-छक्क-पण-चउ-तिय-दुग-वाराओ सत्त-पुढवीसु ।
कमसो उप्पज्जंते असण्णि-पमुहाइ उक्कस्से ।।२८७।।

।। उप्पण्णमाण-जीवाण वण्णणा समत्त[2] ।।७।।

---

१ द. ज ठ भुयगावियायए। २. द ज. सम्मत्ता।

अर्थ :—सातो पृथिवियोमे क्रमश· वे असज्ञी आदिक जीव उत्कृष्ट-रूपसे आठ, सात, छह, पाँच, चार, तीन और दो बार उत्पन्न होते है ।।२८७।।

विशेषार्थ :—नरकसे निकला हुआ कोई भी जीव असज्ञी और सम्मूर्च्छन जन्म वाला नही होता तथा सातवे नरकसे निकला हुआ कोई भी जीव मनुष्य नही होता, अत नरकसे निकले हुए जीवको असज्ञी, मत्स्य और मनुष्य पर्याय धारण करनेके पूर्व एक बार नियमसे क्रमश सज्ञी तथा गर्भज तिर्यञ्च पर्याय धारण करनी ही पडती है । इसी कारण इन जीवोके बीचमे एक-एक पर्यायका अन्तर होता है, किन्तु सरीसृप, पक्षी, सर्प, सिह और स्त्रीके लिए ऐसा नियम नही है, वे बीचमे अन्य किसी पर्यायका अन्तर डाले बिना ही उत्पन्न हो सकते है ।

। इसप्रकार उत्पद्यमान जीवोका वर्णन समाप्त हुआ ।।७।।

रत्नप्रभादिक पृथिवियोमे जन्म-मरणके अन्तरालका प्रमाण

चउवीस मुहुत्ताणि सत्त दिणा एक्क पक्ख-मासं च ।
दो-चउ-छम्मासाइं पढमादो जम्म-मरण-अंतरियं ।।२८८।।

मु २४ । दि ७ । दि १५ । मा १ । मा २ । मा ४ । मा ६ ।

।। जम्मण-मरण अतर-काल-पमाण समत्त[1] ।।८।।

अर्थ :—चौवीस मुहूर्त, सात दिन, एक पक्ष, एक मास, दो मास, चार मास और छह मास यह क्रमश. प्रथमादिक पृथिवियोमे जन्म-मरणके अन्तरका प्रमाण है ।।२८८।।

विशेषार्थ :—यदि कोई भी जीव पहली पृथिवीमे जन्म या मरण न करे तो अधिकसे अधिक २४ मुहूर्त तक, दूसरीमे ७ दिन तक, तीसरीमे एक पक्ष (पन्द्रह दिन) तक चौथीमे एक माह तक, पाँचवी मे दो माह तक, छठीमे ४ माह तक और सातवी पृथिवीमे उत्कृष्टत· ६ माह तक न करे, इसके बाद नियमसे वहाँ जन्म-मरण होगा ही होगा ।

इसप्रकार जन्म-मरणके अन्तरकालका प्रमाण समाप्त हुआ ।।८।।

नरकोमे एक समयमे जन्म-मरण करने वालोका प्रमाण

रयणादि-णारयाणं णिय-संखादो असंखभागमिदा ।
पडि-समयं जायंते [1]तत्तिय-मेत्ता य मरंति पुढं ।।२८९।।

—२+ / रि^(१/१२)	—— / १२ रि	—— / १० रि	—— / ८ रि	—— / ६ रि	—— / ३ रि	—— / २ रि

[2]उप्पज्जण-मरणाण परिमाण-वण्णणा समत्ता ।।९।।

अर्थ :—रत्नप्रभादिक पृथिवियोमे स्थित नारकियोके अपनी सख्याके असख्यातवे भाग-प्रमाण नारकी प्रत्येक समयमे उत्पन्न होते है और उतने ही मरते है ।।२८९।।

विशेषार्थ :—प्रत्येक नरकोके नारकियोकी सख्याका प्रमाण गा० १९६-२०२ पर्यन्त दर्शाया गया है । जिनकी सदृष्टियाँ ¹²।, ¹⁰।, ⁻⁸।... इसप्रकार दी गई है । इनमे आडी लाइन (—) जगच्छ्रेणीकी, खडी पाई (।) वर्गमूलकी और १२, १०, ८ आदि सख्या वर्गमूलके प्रमाणकी द्योतक है । गा० २८९ की सदृष्टि (¹²रि । ¹⁰रि इत्यादि) उन्ही उपर्युक्त सख्याओमे असख्यात (जिसका चिह्न रि है) का भाग देने हेतु ¹²रि इसप्रकार रखी गई है ।

इसप्रकार एक समयमे जन्म-मरण करने वाले जीवोका कथन समाप्त हुआ ।।९।।

नरकसे निकले हुए जीवोकी उत्पत्तिका कथन

णिक्कंता णिरयादो गब्भ-भवे कम्म-सण्णि-पज्जत्ते ।
णर-तिरिएसुं जम्मदि [3]तिरियं चिय चरम-पुढवीदो ।।२९०।।

अर्थ—नरकसे निकले हुए जीव गर्भज, कर्मभूमिज, सज्ञी एव पर्याप्तक मनुष्यो और तिर्यञ्चोमे ही जन्म लेते है परन्तु सातवी पृथिवीसे निकला हुआ जीव तिर्यञ्च ही होता है (मनुष्य नही होता) ।।२९०।।

---

१. द. क ज. ठ. तेत्तियमेत्ताए । २ द. ब ज क ठ उपज्ज । ३ द. तिरियेचिय, क. ज ठ तिरियच्चिय ।

वालेसु[1] दाढीसु[2] पक्खीसु जलचरेसु जाऊणं ।
संखेज्जाऊ-जुत्ता　केई　णिरएसु　वच्चंति　॥२९१॥

अर्थ :—नरकोसे निकले हुए उन जीवोमेसे कितने ही जीव व्यालो (सर्पादिकों) मे, डाढो वाले (तीक्ष्ण दाँतो वाले व्याघ्रादिक पशुओ) मे (गृद्धादिक) पक्षियोमे तथा जलचर जीवोमे जन्म लेकर और सख्यात वर्षकी आयु प्राप्तकर पुन नरकोमे जाते है ॥२९१॥

केसव-बल-चक्कहरा ण होंति कइयावि णिरय-संचारी ।
जायंते　तित्थयरा　तदीय-खोणीअ　परियंतं　॥२९२॥

अर्थ :—नरकोमे रहने वाले जीव वहाँसे निकलकर नारायण, (प्रतिनारायण), बलभद्र और चक्रवर्ती कदापि नही होते है । तीसरी पृथिवी पर्यन्तके नारकी जीव वहाँसे निकलकर तीर्थंकर हो सकते है ।२९२॥

आतुरिम-खिदी चरिमंगधारिणो संजदा य धूमंतं ।
छट्ठंतं　देसवदा　सम्मत्तधरा　केइ　चरिमंतं　॥२९३॥

॥ आगमण-वण्णणा समत्ता ॥१०॥

अर्थ :—चौथी पृथिवी पर्यन्तके नारकी वहाँसे निकलकर चरम-शरीरी, धूमप्रभा पृथिवी तकके जीव सकलसयमी एव छठी पृथिवी-पर्यन्तके नारकी जीव देशव्रती हो सकते है । सातवी पृथिवीसे निकले हुए जीवोमेसे विरले ही सम्यक्त्वके धारक होते है ॥२९३॥

॥ इसप्रकार आगमका वर्णन समाप्त हुआ ॥१०॥

नरकायुके बन्धक परिणाम

आउस्स बंध-समये सिलो व्व सेलो[3] व्व वेणु-मूले य ।
किमिरायव्व[4] कसाओदयम्हि　बंधेदि　णिरयाउं ॥२९४॥

---

१. द ब. ज क. ठ वालीसु ।　२. द क. ज. ठ दालीसु ।　३ द ब क ज ठ सिलोव्व सिलोव्व ।　४ ज ठ. किमिराउकसाउदयमि, द. कसाओदयमि, क. कसाया उदयमि ।

अर्थ :—आयुबन्धके समय शिलाकी रेखा सदृश क्रोध, शैल सदृश मान, बासकी जड सदृश माया और किमिराग [किरमिच (लालरग)] सदृश लोभ कषायका उदय होनेपर नरकायुका वन्ध होता है ।।२९४।।

किण्हाश्र णील-काऊणुदयादो बंधिऊण णिरयाऊ ।
मरिऊण ताहि जुत्तो पावइ णिरयं महाघोरं[1] ।।२९५।।

अर्थ :—कृष्ण, नील अथवा कापोत इन तीन लेश्याओका उदय होनेसे (जीव) नरकायु बाँधकर और मरकर उन्ही लेश्याओसे युक्त हुआ महा-भयानक नरकको प्राप्त करता है ।।२९५।।

अशुभ-लेश्या युक्त जीवोके लक्षरण

किण्हादि-ति-लेस्स-जुदा जे पुरिसा ताण लक्खणं एदं ।
गोत्तं तह स-कलत्तं एक्कं वंछेदि मारिदुं दुट्ठो ।।२९६।।

धम्मदया-परिचत्तो[2] श्रमुक्क-वइरो पयंड-कलह-यरो ।
बहु-कोहो किण्हाए जम्मदि धूमादि-चरिमंते[3] ।।२९७।।

अर्थ :—जो पुरुष कृष्णादि तीन लेश्याओ सहित होते है, उनके लक्षण इसप्रकार है—ऐसे दुष्ट पुरुष (अपने ही) गोत्रीय तथा एक मात्र स्वकलत्रको भी मारनेकी इच्छा करते है, दयाधर्मसे रहित होते है, कभी शत्रुताका त्याग नही करते, प्रचण्ड कलह करने वाले और बहुत क्रोधी होते है । कृष्ण लेश्याधारी ऐसे जीव धूमप्रभा पृथिवीसे लेकर अन्तिम पृथिवी पर्यन्त जन्म लेते है । २९६-२९७।।

विसयासत्तो विमदी माणी विण्णाण-वज्जिदो मंदो ।
अलसो भीरू माया-पवंच-बहुलो य णिद्दालू ।।२९८।।

परवंचणप्पसत्तो लोहंधो धण्ण धण-सुहाकंखी[4] ।
बहु-सण्णा णीलाए जम्मदि तदियादि धूमंतं ।।२९९।।

---

१ द व क ज. ठ प्रत्यो. गायेय अग्रिम-गाथाया पश्चादुपलभ्यते । २ व परिचित्तो । ३. ज. ठ चरिमतो । ४. द ज. ठ धण्णधण्णसुहाकखी । क धण-धण सुहाकखी ।

अर्थ :—विषयोमे आसक्त, मति-हीन, मानी, विवेक-बुद्धिसे रहित, मूर्ख, आलसी, कायर, प्रचुर माया-प्रपंचमें सलग्न, निद्राशील, दूसरोको ठगनेमे तत्पर, लोभसे अन्धा, धन-धान्यजनित सुखका इच्छुक एव बहुसज्ञा (आहार-भय-मैथुन और परिग्रह सज्ञाओमे) आसक्त जीव नील लेश्याको धारण कर धूमप्रभा पृथिवी पर्यन्त जन्म लेता है ॥२९८-२९९॥

अप्पाणं मण्णंता अण्णं णिंदेदि अलिय-दोसेहिं ।
भीरू, सोक-विसण्णो परावमाणी असूया अ[1] ॥३००॥

अमुणिय-कज्जाकज्जो धूवंतो [2]परम-पहरिसं वहइ ।
अप्पं पि वि मण्णंतो परं पि कस्स वि ण-पत्तिअई ॥३०१॥

थुव्वंतो देइ धणं मरिदुं वंछेदि[3] समर-संघट्टे ।
काऊए संजुत्तो जम्मदि घम्मादि-मेघंतं ॥३०२॥

॥ आऊ-बंधण-परिणामा समत्ता ॥११॥

अर्थ —जो स्वयकी प्रशसा और मिथ्या दोपोके द्वारा दूसरोकी निन्दा करता है, भीरु है, शोकसे खेद खिन्न होता हे, परका अपमान करता है, ईर्ष्या ग्रस्त है, कार्य-अकार्यको नही समझता, चचलचित्त होते हुए भी अत्यन्त हर्षका अनुभव करता हे, अपने समान ही दूसरोको भी समझकर किसीका भी विश्वास नही करता है, स्तुति करने वालोको धन देता है और समर-सघर्षमे मरनेकी इच्छा करता है, ऐसा प्राणी कापोत लेश्यासे सयुक्त होकर घर्मासे मेघा पृथिवी पर्यन्त जन्म लेता है ॥३००-३०२॥

॥ इसप्रकार आयु-बन्धक परिणामोका कथन समाप्त हुआ ॥११॥

रत्नप्रभादि नरकोमे जन्म-भूमियोके आकारादि

इंदय-[4]सेढीबद्ध-प्पइण्णयाणं हवंति उवरिम्मि ।
बाहिं बहु अस्सि-जुदो अंतो वड्ढा अहोमुहा-कंठा ॥३०३॥

चेट्ठेदि जम्मभूमी सा घम्मप्पहुदि-खेत्त-तिदयम्मि ।
उट्टिय[5]-कोत्थलि-कुंभी-मोद्दलि-मोग्गर-मुइंग-णालि-णिहा ॥३०४॥

---

१. द व. क ज. ठ यसूयाग्र । २. द. व ज. क ठ परमपहइ सव्वहइ । ३ द वुछेदि ।
४ द ब ज क ठ इन्दियसेढी । ५ द उध्विय व. क ज ठ उत्तिय ।

अर्थ .—इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलोके ऊपर अनेक प्रकारकी तलवारोसे युक्त, भीतर गोल और अधोमुखकण्ठवाली जन्म-भूमियाँ है। वे जन्म भूमियाँ घर्मा पृथिवीसे तीसरी पृथिवी पर्यन्त उष्ट्रिका, कोथली, कुम्भी, मुगलिका, मुद्‌द्‌गर, मृदग और नालीके सदृश है ।।३०३-३०४।।

गो-हत्थि-तुरय-भत्था [1]अज्जप्पुड-अंबरीस-दोणीओ ।
चउ-पंचम-पुढवीसुं आयारो जम्म-भूमीणं ।।३०५।।

अर्थ :—चौथी और पाँचवी पृथिवीमे जन्म-भूमियोके आकार गाय, हाथी, घोडा, भस्त्रा, अब्जपुट, अम्बरीष (भडभू जाके भाड) और द्रोणी (नाव) जैसे है ।।३०५।।

झल्लरि-[2]मल्लय-पत्थी-केयूर-मसूर-साणय-किलिंजा ।
धय-दीवि-[3]चक्कवायस्सिगाल-सरिसा महाभीमा ।।३०६।।

अज्ज-खर-करह-सरिसा[4] संदोल अ-रिक्ख-संणिहायारा ।
छस्सत्तम-पुढवीणं [5]दुरिक्ख-णिज्जा महाघोरा ।।३०७।।

अर्थ ·—छठी और सातवी पृथिवीकी जन्म-भूमियाँ झालर (वाद्य-विशेष), मल्लक (पात्र-विशेष), बासका बना हुआ पात्र, केयूर, मसूर, शाणक, किलिज (तृणकी बनी बडी टोकरी), ध्वज, द्वीपी, चक्रवाल, शृगाल, अज, खर, करभ, सदोलक (झूला) और रीछके सदृश है। ये जन्म-भूमियाँ दुष्प्रेक्ष्य एव महाभयानक है ।।३०६-३०७।।

करवत्त-सरिच्छाओ अंते वट्टा समंतदो[6] ठाओ ।
वज्जमईओ णारय-जम्मण-भूमीओ [7]भीमाओ ।।३०८।।

अर्थ ·—नारकियोकी (उपर्युक्त) जन्म-भूमियाँ अन्तमे करोतके सदृश, चारो ओरसे गोल, वज्रमय, कठोर और भयकर है ।।३०८।।

---

१ द ब क. ज ठ. अतपुढ। २ ज. ठ. मल्लरि, मल्लय, क. मल्लय पक्खी। ३. द. चक्कवायसीगाल। ज. क. ठ चक्कचायासीगाल। ब. चक्कचावासीगाल। ४. क. ज. ठ. सरिछा सदोलग्र। ५. द. धुरिक्खणिज्जा। ६. द समतदाऊ। ७ द ब. क. ज. ठ. भीमाए।

नरकोमे दुर्गन्ध

अज-गज-महिस-तुरंगम-खरोट्ठ-मज्जार-मेस-पहुदीणं ।
[1]कुथिताणं गंधादो णिरए गंधा अणंतगुणा ॥३०९॥

अर्थ :—बकरी, हाथी, भैस, घोडा, गधा, ऊँट, बिलाव और मैढे आदिके सडे-गले शरीरोकी दुर्गन्धकी अपेक्षा नरकोमे अनन्तगुणी दुर्गन्ध है ॥३०९॥

जन्म-भूमियोका विस्तार

पण-कोस-वास-जुत्ता होंति जहण्णम्हि जम्म-भूमीओ ।
जेट्ठे [2]चउस्सयाणि दह-पण्णरसं च मज्झिमए ॥३१०॥

। ५ । ४०० । १०-१५ ।

अर्थ :—नारकी जीवोकी जन्म-भूमियोका विस्तार जघन्यत. पाँच कोस, उत्कृष्टत: चारसौ कोस और मध्यम रूपसे दस-पन्द्रह कोस प्रमाण वाला है ॥३१०॥

विशेषार्थ :—इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलोके ऊपर जो जन्म-भूमियाँ है, उनका जघन्य विस्तार ५ कोस, मध्यम विस्तार १०-१५ कोस और उत्कृष्ट विस्तार ४०० कोस प्रमाण है ।

जन्म-भूमियोकी ऊँचाई एव आकार

जम्मण-खिदीण उदया णिय-णिय-रुंदाणि पंच-गुणिदाणि ।
सत्त-ति-दुगेक्क-कोणा[3] पण-कोणा होंति एदाओ ॥३११॥

। २५ । २०००० । ५०-७५ ॥ ७ । ३ । २ । १ । ५ ।

अर्थ :—जन्म-भूमियोकी ऊँचाई अपने-अपने विस्तारकी अपेक्षा पाँच गुनी है । ये जन्म-भूमियाँ सात, तीन, दो, एक और पाँच कोन वाली है ॥३११॥

विशेषार्थ :—जन्म-भूमियोकी जघन्य ऊँचाई (५ × ५) = २५ कोस या ६$\frac{1}{4}$ योजन, मध्यम ऊँचाई (१० × ५ = ५०), (१५ × ५) = ७५ कोस अथवा १२$\frac{1}{2}$ । १८$\frac{3}{4}$ योजन और उत्कृष्ट ऊँचाई

---

१ द. कुधिताण । २. द. ज. क. चउस्सयाणि । ठ चउसयाणि । ३. द ब कोणे ।

(४०००×५)=२०००० कोस अथवा ५००० योजन प्रमाण है। वे जन्म-भूमियाँ ७। ३। २। १ और ५ कोन वाली है।

जन्म-भूमियोंके द्वार-कोण एवं दरवाजे

एक्क दु ति पंच सत्त य जम्मण-खेत्तेसु दार-कोणाणि।
तेत्तियमेत्ता दारा सेढीबद्धे पइण्णए एवं ॥३१२॥

॥ १। २। ३। ५। ७ ॥

अर्थ :—जन्म-भूमियोमे एक, दो, तीन, पाँच और सात द्वारकोण तथा इतने ही दरवाजे होते है, इसप्रकारकी व्यवस्था केवल श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलोमे ही है ॥३१२॥

ति-द्वार-ति-कोणाओ इंदय-णिरयाण[1] जम्म-भूमीओ।
णिच्चंधयार-बहुला [2]कत्थुरीहिंतो अणंत-गुणो ॥३१३॥

जम्मण-भूमी गदा ॥१२॥

अर्थ :—इन्द्रक बिलोकी जन्म-भूमियाँ तीन द्वार और तीन कोनोसे युक्त है। उक्त सम्पूर्ण जन्म-भूमियाँ नित्य ही कस्तूरीसे भी अनन्तगुणित काले अन्धकारसे व्याप्त है ॥३१३॥

॥ इसप्रकार जन्म-भूमियोंका वर्णन समाप्त हुआ ॥१२॥

नरकोके दु खोंका वर्णन

पावेणं णिरय-बिले जादूणं तो[3] मुहुत्तमेत्तेण।
छप्पज्जत्ति पाविय आकस्सिय-भय-जुदो-होदि[4] ॥३१४॥

भीदीए कंपमाणा चलिदुं दुक्खेण [5]पेल्लिओ संतो।
छत्तीसाउह-मज्झे पडिदूणं तत्थ उप्पलइ ॥३१५॥

---

१. द. ब. क. णिरयाणि, ज. ठ. णिरायाणि। २. क ज. ठ. कछुरी। ३ द. तामुत्तणं मेत्ते, ब क. ज ठ. ता मुहुत्तण-मेत्ते। ४. ब. होदि। ५ द. पविओ, ब. पच्चिओ, क पच्चिउ, ज. पव्विओ, ठ. पव्विउ।

अर्थ :—नारकी जीव पापसे नरकबिलमे उत्पन्न होकर और एक मुहूर्त मात्र कालमे छह पर्याप्तियोको प्राप्त कर आकस्मिक भयसे युक्त होता है। भयसे काँपता हुआ बडे कष्टसे चलनेके लिए प्रस्तुत होकर छत्तीस आयुधोके मध्यमें गिरकर वहाँसे उछलता है ॥३१४-३१५॥

उच्छेह-जोयणाणिं सत्त धणू छस्सहस्स-पंच-सया ।
उप्पलइ पढम-खेत्ते दुगुणं दुगुणं कमेण सेसेसु ॥३१६॥

॥ जो ७ । ध ६५०० ॥

अर्थ :—पहली पृथ्वीमे जीव सात उत्सेध योजन और छह हजार, पाँच सौ धनुष प्रमाण ऊँचा उछलता है, शेष पृथिवियोमे उछलनेका प्रमाण क्रमशः उत्तरोत्तर दूना-दूना है ॥३१६॥

विशेषार्थ—घर्मा पृथ्वीके नारकी ७ उत्सेध योजन ३¼ कोस, वशाके १५ योजन २½ कोस, मेघाके ३१ योजन १ कोस, अञ्जनाके ६२½ योजन, अरिष्टाके १२५ योजन, मघवीके २५० योजन और माघवी पृथ्वीके नारकी जीव ५०० योजन ऊँचे उछलते हे।

दट्ठूण मय-सिलिंबं जह वग्घो तह पुराण-णेरइया ।
णव-णारयं णिसंसा णिब्भच्छंता पधावंति ॥३१७॥

अर्थ :—जैसे व्याघ्र, मृगशावकको देखकर उस पर झपटता है, वैसे ही क्रूर पुराने नारकी नये नारकीको देखकर धमकाते हुए उसकी ओर दौडते है ॥३१७॥

साण-गणा एक्केक्के दुक्खं [1]दावंति दारुण-पयारं ।
तह अण्णोण्णं णिच्चं दुस्सह-पीडाओ कुव्वंति ॥३१८॥

अर्थ :—जिसप्रकार कुत्तोके झुण्ड एक दूसरेको दारुण दुःख देते है उसीप्रकार वे नारकी भी नित्य ही परस्पर मे एक दूसरे को असह्य रूपसे पीडित किया करते है ॥३१८॥

चक्क-सर-सूल-तोमर-मोग्गर-करवत्त-[2]कोंत-सूईणं ।
मुसलासि-प्पहुदीणं वण-णग-[3]दावाणलादीणं ॥३१९॥

---

१ द. ब क. ज ठ धावंति। २. द कुत। ३ द ब क. ज. ठ. दावाणणादीण।

वय-वग्घ-तरच्छ-सिगाल-साण-मज्जार-सीह-[1]पक्खीणं ।
[2]अण्णोण्णं च सया ते णिय-णिय-देहं विगुव्वंति ॥३२०॥

अर्थ —वे नारकी जीव, चक्र, बाण, शूली, तोमर, मुद्गर, करोत, भाला, सुई, मूसल और तलवार आदिक शस्त्रास्त्र रूप वन एव पर्वतकी आग रूप तथा भेडिया, व्याघ्र, तरक्ष (श्वापद), शृगाल, कुत्ता, बिलाव और सिह आदि पशुओ एव पक्षियोके समान परस्पर सदैव अपने-अपने शरीरकी विक्रिया किया करते है ॥३१९-३२०॥

गहिर-बिल-धूम-मारुद-अइतत्त-कहल्लि-जंत-चुल्लीणं[3] ।
कंडणि-पीसणि-दव्वीण रूवमण्णे विकुव्वंति ॥३२१॥

अर्थ :—अन्य नारकी जीव, गहरे बिल, धुँआ, वायु, अत्यन्त तपे हुए खप्पर, यत्र, चूल्हे, कण्डनी (एक प्रकारका कूटनेका उपकरण), चक्की और दर्वी (वर्छी) आकाररूप अपने-अपने शरीरकी विक्रिया करते है ॥३२१॥

सूवर-वणग्गि-सोणिद-किमि-सरि-दह-कूव-[4]वाइ-पहुदीणं ।
पुह-पुह-रूव-विहीणा णिय-णिय-देहं पकुव्वंति ॥३२२॥

अर्थ :—नारकी जीव शूकर, दावानल तथा शोणित और कीडोसे युक्त नदी, तालाब, कूप एवं वापी आदि रूप पृथक्-पृथक् रूपसे रहित अपने-अपने शरीरकी विक्रिया करते हैं । तात्पर्य यह है कि नारकियोके अपृथक् विक्रिया होती है, देवोके सदृश उनके पृथक् विक्रिया नही होती ॥३२२॥

पेच्छिय पलायमाणं णारइयं वग्घ-केसरि-प्पहुदी ।
वज्जमय-वियल-तोंडा [5]कत्थ वि भक्खंति रोसेण ॥३२३॥

अर्थ :—वज्रमय विकट मुखवाले व्याघ्र और सिहादिक, पीछेको भागने वाले दूसरे नारकी को कहीपर भी क्रोधसे खा डालते है ॥३२३॥

पीलिज्जंते[6] केई जंत-सहस्सेहि विरस-तिलवंता ।
अण्णे हम्मंति तहि अवरे छेज्जंति विविह-भंगेहि ॥३२४॥

---

१. द. ब क ज ठ. पसूण ।　२ द अण्णाण ।　३ ब. जतच्चूलीण ।　४ द कूववाव ।
५. द तुंडो खत्थवि । क तोडो कत्थवि, ज. ठ तोडे कत्थवि ।　६ द ठ पालिज्जते ।

अर्थ :—चिल्लाते हुए कितने ही नारकी जीव हजारो यन्त्रो (कोल्हुओ) मे तिलकी तरह पेल दिए जाते है । दूसरे नारकी जीव वहीपर मारे जाते है और इतर नारकी विविध प्रकारोसे छेदे जाते है ॥३२४॥

अण्णोण्णं बज्झंते वज्जोवम-संखलाहिं थंभेसु ।
पज्जलिदम्मि हुदासे केई छुब्भंति दुप्पिच्छे ॥३२५॥

अर्थ :—कई नारकी परस्पर वज्रतुल्य साकलो द्वारा खम्भोसे बाधे जाते है और कई अत्यन्त जाज्वल्यमान दुष्प्रेक्ष्य अग्निमे फेंके जाते है ॥३२५॥

फालिज्जंते केई दारुण-करवत्त-कंटग्र-मुहेहिं ।
अण्णे भयंकरेहिं विज्झंति विचित्त-भल्लेहिं ॥३२६॥

अर्थ :—कई नारकी करोत (आरी) के काँटोके मुखोसे फाडे जाते है और इतर नारकी भयकर और विचित्र भालोसे वीधे जाते है ॥३२६॥

लोह-कडाहावट्ठिद-तेल्ले तत्तम्मि के वि छुब्भंति ।
[1]घेत्तूणं पच्चंते जलंत-जालुक्कडे जलणे ॥३२७॥

अर्थ :—कितने ही नारकी जीव लोहेके कडाहोमे स्थित गरम—तेलमे फेंके जाते है और कितनेही जलती हुई ज्वालाओसे उत्कट अग्निमे पकाये जाते हैं ॥३२७॥

इंगालजाल-मुम्मुर-अग्गी-दज्झंत-मह-सरीरा ते ।
सीदल-जल-मण्णंता धाविय पविसंति वइतरिणिं ॥३२८॥

अर्थ :—कोयले और उपलोकी आगमे जलते हुए स्थूल शरीर वाले वे नारकी जीव शीतल जल समझते हुए वैतरिणी नदीमें दौडकर प्रवेश करते है ॥३२८॥

कत्तरि-सलिलायारा णारइया तत्थ ताण अंगाणि ।
छिंदंति [2]दुस्सहावो पावंता विविह-पीडाओ ॥३२९॥

---

१ द पुरूण । २. द दुस्सहावे ।

अर्थ :—उस वैतरिणी नदीमे कर्तरी (कैंची) के समान तीक्ष्ण जलके आकार परिणत हुए दूसरे नारकी उन नारकियोके शरीरोको अनेक प्रकारकी दुस्सह पीडाओको पहुँचाते हुए छेदते है ।।३२९।।

जलयर-कच्छव-मंडूक-मयर-पहुदीण विविह[1]-रूवधरा ।
अण्णोण्णं [2]भक्खंते वइतरिणि-जलम्मि[3] णारइया ।।३३०।।

अर्थ :—वैतरिणी नदीके जलमे नारकी कछुआ, मेढक और मगर आदि जलचर जीवोके विविध रूप-धारण-कर एक दूसरेका भक्षण करते है ।।३३०।।

वइतरणी-सलिलादो णिस्सरिदा पव्वदं पलावंति ।
तस्सिहरमारुहंते तत्तो लोट्ट ंति अण्णोण्णं ।।३३१।।

गिरि-कंदरं विसंतो खज्जंते वग्घ-सिंह,पहुदीहिं ।
वज्जुक्कड-दाढेहिं दारुण-दुक्खाणि सहमाणा ।।३३२।।

अर्थ :—(पश्चात्) वैतरणीके जलसे निकलते हुए (वे नारकी) पर्वतकी ओर भागते है । वे उन पर्वतोके शिखरोपर चढते है तथा वहाँसे एक दूसरेको गिराते है । (इसप्रकार) दारुण दु खो को सहते हुए (वे नारकी) पर्वतकी गुफाओंमे प्रवेश करते है । वहाँ वज्र सदृश प्रचण्ड दाढो वाले व्याघ्रो एव सिहो आदिके द्वारा खाये जाते है ।।३३१-३३२।।

विउल-सिला-विच्चाले दट्ठूण बिलाणि [4]झत्ति पविसंति ।
तत्थ वि विसाल-जालो उट्ठदि सहसा-महाअग्गी ।।३३३।।

अर्थ :—पश्चात् वे नारकी विस्तीर्ण शिलाओके बीचमे विलोको देखकर शीघ्र ही उनमे प्रवेश करते है परन्तु वहाँ पर भी सहसा विशाल ज्वालाओ वाली महान् अग्नि उठती है ।।३३३।।

दारुण-हुदास-जाला-मालाहिं दज्झमाण-सव्वंगा ।
सीदल-छायं मण्णिय असिपत्त-वणम्मि पविसंति ।।३३४।।

---

१. द. विविहस्सयरूवधरा । २. द. भक्खता । ३. द. व क ज ठ जलच्चरंमि । ४. द झति, व. क. ज. ठ. जति ।

अर्थ :—पुनः जिनके सम्पूर्ण अंग भीषण अग्निकी ज्वाला समूहोंसे जल रहे हैं, ऐसे वे नारकी (वृक्षोंकी) शीतल छाया जानकर असिपत्र वनमे प्रवेश करते है ॥३३४॥

तत्थ वि विविह-तरूणं पवण-हदा तवग्र-पत्त-फल-पुंजा ।
णिवडंति ताण उवरिं दुप्पिच्छा वज्जदंडे व ॥३३५॥

अर्थ :—वहाँपर भी विविध-प्रकारके वृक्ष, गुच्छे, पत्र और फलोके समूह पवनसे ताडित होकर उन नारकियोके ऊपर दुष्प्रेक्ष्य वज्रदण्डके समान गिरते है ॥३३५॥

चक्क-सर-कणय-तोमर-मोग्गर-करवाल-कोत-मुसलाणिं ।
अण्णाणि वि ताण सिरं असिपत्त-वणादु णिवडंति ॥३३६॥

अर्थ :—उस असिपत्र-वनसे चक्र, वाण, कनक (शलाकाकार ज्योतिः पिंड), तोमर (वाण-विशेष), मुद्गर, तलवार, भाला, मूसल तथा अन्य और भी अस्त्र-शस्त्र उन नारकियोके सिरोपर गिरते है ॥३३६॥

छिण्ण[1]-सिरा भिण्ण-करा [2]तुडिदच्छा लंबमाण-अंतचया ।
रुहिरारुण-घोरतणू णिस्सरणा तं वणं[3] पि मुंचंति ॥३३७॥

अर्थ :—अनन्तर छिन्न सिरवाले, खण्डित हाथवाले, व्यथित नेत्र-वाले, लटकती हुई आँतोके समूहवाले और खूनसे लाल तथा भयानक वे नारकी अशरण होते हुए उस वनको भी छोड देत है ॥३३७॥

गिद्धा गरुडा काया विहगा अवरे वि वज्जमय-तुंडा ।
कादूण [4]खंड-खंडं ताणंगं ताणि कवलंति ॥३३८॥

अर्थ :—गृद्ध, गरुड, काक तथा और भी वज्रमय मुख (चोंच) वाले पक्षी नारकियोके शरीरके टुकडे-टुकडे करके खा जाते हैं ॥३३८॥

---

१. ब क. ज ठ. णिच्छिण्णसिरा । २ द ब क. ज ठ बुदियच्छा । ३ द. ब क ज. ठ तव्वणम्मि । ४ द खडु-दताणग, ब. क. ज ठ खडु-दता ताणग ।

अंगोवंगट्ठीणं चुण्णं काढूण चंड-घादेहिं ।
विउण-वणाणं मज्झे छुहंति बहुखार-दव्वाणि ॥३३९॥

जइ विलवयंति करुणं [1]लग्गंते जइ वि चलण-जुगलम्मि ।
तह विह सण्णं खंडिय छुहंति चुल्लीसु णारइया ॥३४०॥

अर्थ :—अन्य नारकी उन नारकियोंके अग और उपागोकी हड्डियोका प्रचड घातोसे चूर्ण करके विस्तृत घावोके मध्यमे क्षार-पदार्थोको डालते है, जिससे वे नारकी करुणापूर्ण विलाप करते है और चरणोमे आ लगते है, तथापि अन्य नारकी उसी खिन्न अवस्थामे उन्हे खण्ड-खण्ड करके चूल्हेमे डाल देते है ॥३३९-३४०॥

लोहमय-जुवइ-पडिमं परदार-रदाण[2] गाढमंगेसु ।
लायंते अइ-तत्तं खिवंति जलणे जलंतम्मि ॥३४१॥

अर्थ :—परस्त्रीमे आसक्त रहने वाले जीवोके शरीरोमे अतिशय तपी हुई लोहमय युवतीकी मूर्तिको दृढतासे लगाते है और उन्हें जलती हुई आगमे फेक देते है ॥३४१॥

मंसाहार-रदाणं णारइया ताण अंग-मंसाइं ।
छेत्तूण तम्मुहेसु छुहंति रुहिरोल्लरूवाणि ॥३४२॥

अर्थ —जो जीव पूर्व भवमे मास-भक्षणके प्रेमी थे, उनके शरीरके मासको काटकर अन्य नारकी रक्तसे भीगे हुए उन्ही मास-खडोको उन्हीके मुखोमे डालते है ॥३३९॥

[3]महु-मज्जाहाराणं णारइया तम्मुहेसु अइ-तत्तं ।
लोह-दवं[4] घल्लंते विलीयमाणंग-पब्भारं ॥३४३॥

अर्थ :—मधु और मद्यका सेवन करने वाले प्राणियोके मुखोमे नारकी अत्यन्त तपे हुए द्रवित लोहेको डालते है, जिससे उनके संतप्त अवयव-समूह भी पिघल जाते है ॥३४३॥

करवाल-पहर-भिण्णं कूव-जलं जह पुणो वि संघडदि ।
तह णारयाण अंगं छिज्जंतं विविह-सत्थेहिं[5] ॥३४४॥

---

१ द. असगते, ब. क ज ठ. अगते । २. द. परदार-रदाणि । ३. ज. ठ. मुहु । ४ ब लोहदव्व । ५ द विविह-सत्तेहिं ।

अर्थ :—जिसप्रकार तलवारके प्रहारसे भिन्न हुआ कुएका जल फिरसे मिल जाता है, उसी प्रकार अनेकानेक शस्त्रोसे छेदा गया नारकियोका शरीर भी फिरसे मिल जाता है। अर्थात् अनेकानेक शस्त्रोसे छेदनेपर भी नारकियोका अकाल-मरण कभी नही होता ॥३४४॥

कच्छुरि-करकच-[1]सूई-खदिरंगारादि-विविह-भंगीहि ।
अण्णोण्ण[2]-जादणाओ कुणंति णिरएसु णारइया ॥३४५॥

अर्थ :—नरकोमे कच्छुरि (कपिकच्छु केवाँच अर्थात् खाज पैदा करने वाली औषधि), करोत, सुई और खैरकी आग इत्यादि विविध प्रकारोसे नारकी परस्पर यातनाएँ दिया करते है ॥३४५॥

अइ-तित्त-कडुव-कत्थरि-सत्तीदो[3] मट्टियं अणंतगुणं ।
घम्माए णारइया थोवं ति चिरेण भुंजंति ॥३४६॥

अर्थ :—घर्मा पृथ्वीके नारकी अत्यन्त तिक्त और कडवी कत्थरि (कचरी या अचार ?) की शक्तिसे भी अनन्तगुनी तिक्त और कडवी थोडी-थोडी मिट्टी चिरकाल खाते रहते हैं ॥३४६॥

अज-गज-महिस-तुरंगम-खरोट्ट-मज्जार-[4]मेस-पहुदीणं[5] ।
कुहिताणं गंधादो अणंत-गुणिदो हवेदि आहारो ॥३४७॥

अर्थ :—नरकोमे बकरी, हाथी, भैंस, घोडा, गधा, ऊँट, बिल्ली और मेढे आदिके सडे हुए शरीरोकी गधसे अनन्तगुनी गन्धवाला आहार होता है ॥३४७॥

अदि-कुणिम-मसुह-मण्णं रयणप्पह-पहुदि जाव चरिमखिदि ।
संखातीद-गुणेहि दुगुच्छणिज्जो हु आहारो ॥३४८॥

अर्थ :—रत्नप्रभासे लेकर अन्तिम पृथिवी पर्यन्त अत्यन्त सडा, अशुभ और उत्तरोत्तर असख्यात गुणा ग्लानिकर अन्य प्रकारका ही आहार होता है ॥३४८॥

---

१ द. ब. क ज ठ सूजीए। २ द. ब. अण्णोण। ३ द सत्तीदोमधिय, ब क ज ठ. सती-दोवमधिय। ४ द ब क तुरग। ५. ज. ठ. उपहुदीण।

प्रत्येक पृथिवीके आहारकी गध-शक्तिका प्रमाण

घम्माए आहारो कोसस्सब्भंतरम्मि ठिद-जीवे ।
इह [1]मारइ गंधेण सेसे कोसद्ध-वड्ढिया सत्ती ।।३४६।।

।। १ । $\frac{३}{२}$ । २ । $\frac{५}{२}$ । ३ । $\frac{७}{२}$ । ४ ।।

अर्थ —घर्मा पृथिवीमे जो आहार है, उसकी गधसे यहाँ (मध्यलोकमे) पर एक कोसके भीतर स्थित जीव मर सकते है, इसके आगे शेष दूसरी आदि पृथिवियोमे इसकी घातक शक्ति आधा-आधा कोस और भी बढती गई है ।।३४९।।

विशेषार्थ :—प्रथम नरकके नारकी जिस मिट्टीका आहार करते है वह मिट्टी अपनी दुर्गन्धसे मनुष्य क्षेत्रके एक कोसमे स्थित जीवोको, द्वितीय नरककी मिट्टी १½ कोसमे, तृतीयकी २ कोसमे, चतुर्थकी २½ कोसमे, पचमकी ३ कोसमे, षष्ठकी ३½ कोसमे और सप्तम नरककी मिट्टी ४ कोसमे स्थित जीवोको मार सकती है ।

असुरकुमार-देवोमे उत्पन्न होनेके कारण

पुव्वं बद्ध-सुराऊ अणंतअणुबंधि-अण्णदर-उदया ।
णासिय-ति-रयण-भावा णर-तिरिया केइ असुर-सुरा ।।३५०।।

अर्थ .—पूर्वमे देवायुका बध करने वाले कोई-कोई मनुष्य और तिर्यंच अनन्तानुबन्धीमेसे किसी एकका उदय आजानेसे रत्नत्रयके भावको नष्ट करके असुर-कुमार जातिके देव होते है ।।३५०।।

असुरकुमार-देवोकी जातियाँ एव उनके कार्य

सिकदाणणासिपत्ता[2] महबल-काला य साम-सबला[3] हि ।
रुद्दंबरिसा विलसिद-णामो महरुद्द-खर-णामा ।।३५१।।

---

१. द. ब. मातहि ।

२ अंबे अंबरिसी चेव, सामे य सबलेवि य ।
रोद्दोवरुद्द काले य महाकालेत्ति आवरे ।।६८।।
असिपत्ते धणु कुंभे वालुवेयरणीवि य ।
खरस्सरे महाघोसे एव पण्णरसाहिया ।।६६।। सूत्रकृताग-निर्युक्ति, प्रवचनसारोद्धार —पृ० ३२१

३ द ब क ज ठ सवल ।

कालग्गिरुद्द-णामा कुंभो[1] वेतरणि-पहुदि-असुर-सुरा ।
गंतूण वालुकंतं णारइयाणं[2] पकोपंति ॥३५२॥

अर्थ :—सिकतानन, असिपत्र, महावल, महाकाल, श्याम, सवल, रुद्र, अम्बरीष, विलसित, महारुद्र, महाखर, काल, अग्निरुद्र, कुम्भ और वैतरणी आदिक असुरकुमार जातिके देव तीसरी वालुका प्रभा पृथिवी तक जाकर नारकी जीवोको कुपित करते है ॥३५१-३५२॥

इह खेत्ते जह मणुवा पेच्छंते मेस-महिस-जुद्धादिं ।
तह णिरये असुर-सुरा णारय-कलहं पतुट्ठ-मणा ॥३५३॥

अर्थ :—इस क्षेत्र (मध्यलोक) मे जैसे मनुष्य, मैढे और भैसे आदिके युद्धको देखते है, उसीप्रकार नरकमे असुरकुमार जातिके देव नारकियोके युद्धको देखते है और मनमे सन्तुष्ट होते है ॥३५३॥

नरकोमे दु ख भोगनेकी अवधि

एक्क ति सग दस सत्तरस [3]तह बावीसं होंति तेत्तीसं ।
जा [4]सायर-उवमाणा पावंते ताव मह-दुक्खं ॥३५४॥

अर्थ :—रत्नप्रभादि पृथिवियोमे नारकी जीव जव तक क्रमश. एक, तीन, सात, दस, सत्तरह, वाईस और तैंतीस सागरोपम पूर्ण होते है, तव तक वहुत भारी दु ख उठाते है ॥३५४॥

णिरएसु णत्थि सोक्खं [5]णिमेस-मेत्तं पि णारयाण सदा ।
दुक्खाइ दारुणाइं वड्ढंते पच्चमाणाणं ॥३५५॥

अर्थ :—नरकोके दु:खोमे पचने वाले नारकियोको क्षणमात्रके लिए भी सुख नही है। अपितु उनके दारुण-दु ख वढते ही रहते है ॥३५५॥

कदलीघादेण विणा णारय-गत्ताणि आउ-अवसाणे ।
मारुद-पहदब्भाइ व णिस्सेसाणि विलीयंते ॥३५६॥

---

१ द व क ज ठ कुभी। २ द णारयप्पकोपति। ३. द तसय। ४. द जह अरउवमा, व. क ज ठ जह अरडवूमा। ५ द व क. ज ठ अणुमिसमेत्त पि।

अर्थ .—नारकियोके शरीर कदलीघात (अकालमरण) के विना पूर्ण आयुके अन्तमे वायुसे ताडित मेघोके सदृश सम्पूर्ण विलीन हो जाते है ।।३५६।।

एव बहुविह-दुक्खं जीवा पावंति पुव्व-कद-दोसा ।
तद्दुक्खस्स सरूवं को सक्कइ वण्णिदुं सयलं ।।३५७।।

अर्थ .—इसप्रकार पूर्वमे किये गये दोषोसे जीव (नरकोमे) नाना प्रकारके दुःख प्राप्त करते है, उस दु खके सम्पूर्ण स्वरूपका वर्णन करनेमे कौन समर्थ है ? ।।३५७।।

नरकोमे उत्पन्न होनेके अन्य भी कारण

सम्मत्त-रयण-पव्वद-सिहरादो मिच्छभाव-खिदि-पडिदो ।
णिरयादिसु अइ-दुक्खं पाविय[1] पविसइ णिगोदम्मि ।।३५८।।

अर्थ :—सम्यक्त्वरूपी रत्नपर्वतके शिखरसे मिथ्यात्व-भावरूपी पृथिवीपर पतित हुआ प्राणी नारकादि पर्यायोमे अत्यन्त दु ख-प्राप्त कर (परम्परासे) निगोदमे प्रवेश करता है ।।३५८।।

सम्मत्तं देसजमं लहिदूणं[2] विसय-हेदुणा चलिदो ।
णिरयादिसु अइ-दुक्खं पाविय पविसइ णिगोदम्मि ।।३५९।।

अर्थ —सम्यक्त्व और देशचारित्रको प्राप्तकर जीव विषयसुखके निमित्त (सम्यक्त्व और चारित्रसे) चलायमान हुआ नरकोमे अत्यन्त दु ख भोगकर (परम्परासे) निगोदमे प्रविष्ट होता है ।।३५९।।

सम्मत्तं सयलजमं लहिदूणं विसय-कारणा चलिदो ।
णिरयादिसु[3] अइ-दुक्खं पाविय पविसइ णिगोदम्मि ।।३६०।।

अर्थ :—सम्यक्त्व और सकल सयमको भी प्राप्तकर विषयोके कारण उनसे चलायमान होता हुआ यह जीव नरकोमे अत्यन्त दु ख पाकर (परम्परासे) निगोदमे प्रवेश करता है ।।३६०।।

---

१. द. पावी पइस णिगोदम्मि । २. द. क ज ठ लद्धूणं । ३. द ज ठ. णिरयादी ।

सम्मत्त-रहिय-चित्तो जोइस-मंतादिएहिं वट्टंतो ।
णिरयादिसु बहुदुक्खं पाविय पविसइ णिगोदम्मि ।।३६१।।

।। दुक्ख-सरूव समत्तं ।।१३।।

अर्थ —सम्यग्दर्शनसे विमुख चित्तवाला, ज्योतिष और मन्त्रादिकोसे आजीविका करता हुआ जीव, नरकादिकमे बहुत दु ख पाकर (परम्परासे) निगोदमे प्रवेश करता है ।।३६१।।

।। दु.खके स्वरूपका वर्णन समाप्त हुआ ।।१३।।

नरकोमे सम्यक्त्व ग्रहणके कारण

घम्मादी-खिदि-तिदये णारइया मिच्छ-भाव-संजुत्ता ।
जाइ-भरणेण केई केई दुव्वार-वेदणाभिहदा ।।३६२।।

केई देवाहिंतो धम्म-णिबद्धा कहा व सोदूणं ।
गेण्हंते सम्मत्तं अणंत-भव-चूरण-णिमित्तं ।।३६३।।

अर्थ :—घर्मा आदि तीन पृथिवियोमे मिथ्यात्वभावसे सयुक्त नारकियोमेसे कोई जाति-स्मरणसे, कोई दुर्वार वेदनासे और कोई धर्मसे सम्बन्ध रखनेवाली कथाओको देवोसे सुनकर अनन्त भवोको चूर्ण करनेमे निमित्तभूत सम्यग्दर्शनको ग्रहण करते है ।।३६२-३६३।।

पंकपहा[1]-पहुदीणं णारइया तिदस-बोहणेण बिणा ।
सुमरिदजाई दुक्खप्पहदा गेण्हंति[2] सम्मत्तं ।।३६४।।

।। दसरण-गहण[3] समत्त ।।१४।।

अर्थ :—पकप्रभादिक शेष चार पृथिवियोके नारकी जीव देवकृत प्रबोधके विना जाति-स्मरण और वेदनाके अनुभवसे सम्यग्दर्शन ग्रहण करते है ।।३६४।।

।। सम्यग्दर्शनके ग्रहणका कथन समाप्त हुआ ।।१४।।

---

१. क. मही । २ द गेण्हति । ३ क. ब. मरगद । द. ज ठ. मरगए ।

नारकी-जीवोकी योनियोका कथन

जोणीओ णारइयाणं उवदे सीद-उण्ह अच्चित्ता ।
संघडया सामण्णे चउ-लक्खे होंति हु विसेसे ।।३६५।।

।। जोणी समत्ता ।।१५।।

अर्थ :– सामान्यरूपसे नारकियोकी योनियोकी सरचना शीत, उष्ण और अचित्त कही गई है । विशेष रूपसे उनकी सख्या चार लाख प्रमाण है ।।३६५।।

।। इसप्रकार योनिका वर्णन समाप्त हुआ ।।१५।।

नरकगतिकी उत्पत्तिके कारण

मज्जं पिबंता पिसिदं लसंता,
जीवे हणंता मिगयाणुरत्ता ।
णिमेस-मेत्तेण[1] सुहेण[2] पावं,
पावंति दुक्खं णिरए अणंतं ।।३६६।।

अर्थ :—मद्य पीते हुए, मासकी अभिलाषा करते हुए, जीवोका घात करते हुए और मृगयामे अनुरक्त होते हुए जो मनुष्य क्षणमात्रके सुखके लिए पाप उत्पन्न करते है वे नरकमे अनन्त दु.ख उठाते है ।।३६६।।

लोह-कोह-भय-मोह-बलेणं जे वदंति वयणं पि असच्चं ।
ते णिरंतर-भये[3] उरु-दुक्खे दारुणम्मि णिरयम्मि पडंते ।।३६७।।

अर्थ —जो जीव लोभ, क्रोध, भय अथवा मोहके बलसे असत्य वचन बोलते है, वे निरन्तर भय उत्पन्न करने वाले, महान् कष्टकारक और अत्यन्त भयानक नरकमे पडते है ।।३६७।।

छेत्तूण भित्ति वधिदूण [4]पीयं,
पट्टादि घेत्तूण धणं हरंता ।
अण्णेहि अण्णाअसएहि[5] मूढा,
भुंजंति दुक्खं णिरयम्मि घोरे ।।३६८।।

---

१ ब क ज. ठ मोहेण । २. द. सुह ण पावति । ३. भय । ४. द क. ज ठ पिप, ब. पिय । ५ द. ब क ज ठ असहेइ ।

अर्थ :—भीतको छेदकर अर्थात् सेध लगाकर प्रियजनको मारकर और पट्टादिकको ग्रहण करके, धनका हरण करने वाले तथा अन्य भी ऐसे ही सैकडो अन्यायोसे, मूर्ख लोग भयानक नरकमे दु ख भोगते है ।।३६८।।

लज्जाए चत्ता मयणेण मत्ता तारुण्ण-रत्ता परदार सत्ता ।
रत्ती-दिणं मेहुण-माचरंता पावंति दुक्खं णिरएसु घोरं ।।३६९।।

अर्थ —लज्जासे रहित, कामसे उन्मत्त, जवानीमे मस्त, परस्त्रीमे आसक्त और रात-दिन मैथुनका सेवन करने वाले प्राणी नरकोमे जाकर घोर दु ख प्राप्त करते है ।।३६९।।

पुत्तो कलत्तो सुजणम्मि मित्तो जे जीवणत्थं पर-वंचणेणं ।
वड्ढंति तिण्णा दविणं हरंते ते तिव्व-दुक्खे णिरयम्मि जंति ।।३७०।।

अर्थ :—पुत्र, स्त्री, स्वजन और मित्रके जीवनार्थ जो लोग दूसरोको ठगते हुए अपनी तृष्णा बढाते है तथा परके धनका हरण करते है, वे तीव्र दु खको उत्पन्न करने वाले नरकमे जाते है ।।३७०।।

अधिकारान्त मङ्गलाचरण

संसारण्णवमहणं तिहुवण-भव्वाण [1]पेम्म-सुह-जणणं ।
संदरिसिय-सयलट्ठं संभवदेवं णमामि तिविहेण ।।३७१।।

एवमाइरिय-परंपरा-गय-तिलोयपण्णत्तीए णारय-लोय-सरूव-णिरूवण-पण्णत्ती-णाम—

।। विदुओ महाहियारो समत्तो ।।२।।

अर्थ —ससार समुद्रका मथन करने वाले (वीतराग), तीनो लोकोके भव्य-जनोको धर्म-प्रेम और सुखके दायक (हितोपदेशक) तथा सम्पूर्ण पदार्थोके यथार्थ स्वरूपको दिखलाने वाले (सर्वज्ञ), सम्भवनाथ भगवानको मै (यतिवृषभ) मन, वचन और कायसे नमस्कार करता हू ।।३७१।।

इसप्रकार आचार्य-परम्परागत त्रिलोक-प्रज्ञप्तिमे "नारक-लोक स्वरूप निरूपण-प्रज्ञप्ति" नामक **द्वितीय महाधिकार** समाप्त हुआ ।।२।।



१ ज. पेम्मसह ।

तदिओ महाहियारो

मङ्गलाचरण

भव्य-जण-मोक्ख-जणणं मुणिंद-देविंद-पणद-पय-कमलं ।
णमिय अहिणंदणेसं भावण-लोयं परूवेमो ॥१॥

अर्थ :—भव्य जीवोको मोक्ष प्रदान करने वाले तथा मुनीन्द्र (गणधर) एवं देवेन्द्रोके द्वारा वन्दनीय चरण-कमलवाले अभिनन्दन स्वामीको नमस्कार करके भावन-लोकका निरूपण करता हूं ॥१॥

भावनलोक-निरूपणमे चौवीस अधिकारोका निर्देश

भावण-णिवास-खेत्तं भवण-सुराणं[1] वियप्प-चिण्हाणि ।
भवणाणं परिसंखा इंदाण पमाण-णामाइं ॥२॥

दक्खिण-उत्तर-इंदा पत्तेक्कं ताण भवण-परिमाणं ।
अप्प-महद्धिय-मज्झिम-भावण-देवाण [2]भवणवासं च ॥३॥

भवणं वेदी कूडा जिणघर-पासाद-इंद-भूदीओ ।
भवणामराण संखा आउ-प्रमाण जहा-जोग्गं ॥४॥

उस्सेहोहि-पमाणं गुणठाणादीणि एक्क-समयम्मि ।
उपज्जण-मरणाण य परिमाणं तह य आगमणं ॥५॥

भावणलोयस्साऊ-बंधण-पाओग्ग भाव-भेदा य ।
सम्मत्त-गहण-हेऊ अहियारा एत्थ चउवीसं ॥६॥

---

१. द. ब. क पुराण । २. द । भवण वास ।

अर्थ :—भवनवासियोके १ निवासक्षेत्र, २ भवनवासी देवोके भेद, ३ चिह्न, ४ भवनोकी सख्या, ५ इन्द्रोका प्रमाण, ६ इन्द्रोके नाम, ७ दक्षिणेन्द्र और उत्तरेन्द्र, ८ उनमेसे प्रत्येकके भवनोका परिमाण, ९ अल्पर्द्धिक, महर्द्धिक और मध्यर्द्धिक भवनवासी देवोके भवनोका व्यास (विस्तार), १० भवन, ११ वेदी, १२ कूट, १३ जिनमन्दिर, १४ प्रासाद, १५ इन्द्रोकी विभूति, १६ भवनवासी देवोकी सख्या, १७ यथायोग्य आयुका प्रमाण, १८ शरीरकी ऊँचाईका प्रमाण, १९ अवधिज्ञानके क्षेत्रका प्रमाण, २० गुणस्थानादिक, २१ एक समयमे उत्पन्न होने वालो और मरने वालोका प्रमाण तथा २२ आगमन, २३ भवनवासी देवोकी आयुके बन्धयोग्य भावोके भेद और २४ सम्यक्त्व ग्रहणके कारण, (इस तीसरे महाधिकारमे) ये चौवीस अधिकार है ।।२-६।।

भवनवासी-देवोका निवास-क्षेत्र

रयणप्पह-पुढवीए खरभाए पंकबहुल-भागम्मि ।
भवणसुराणं भवणाइं होंति वर-रयण-सोहाणि ।।७।।

सोलस-सहस्स-मेत्तो[1] खरभागो पंकबहुल-भागो वि ।
चउसीदि-सहस्साणि जोयण-लक्खं दुवे मिलिदा ।।८।।

१६००० । ८४००० । मिलिता १ ला

।। भावण-देवाण णिवास-खेत्त गद ।।१।।

अर्थ :—रत्नप्रभा पृथिवीके खरभाग एव पकवहुल भागमे उत्कृष्ट रत्नोसे शोभायमान भवनवासी देवोके भवन है । खर-भाग सोलह हजार (१६०००) योजन और पकवहुल-भाग चौरासी हजार (८४०००) योजन प्रमाण मोटा है तथा इन दोनो भागोकी मोटाई मिलाकर एक लाख योजन प्रमाण है ।।७-८।।

भवनवासी देवोके निवास क्षेत्रका कथन समाप्त हुआ ।।१।।

भवनवासी-देवोके भेद

असुरा णाग-सुवण्णा दीओवहि-थणिद-विज्जु-दिस-अग्गी ।
वाउकुमारा परया दस-भेदा होंति भवणसुरा ।।९।।

।। वियप्पा समत्ता ।।२।।

---

१. द ज ठ. मेत्ता ।

अर्थ —असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, स्तनितकुमार, विद्युत्कुमार, दिक्कुमार, अग्निकुमार, और वायुकुमार इसप्रकार भवनवासी देव दस प्रकारके है ॥९॥

॥ विकल्पोका वर्णन समाप्त हुआ ॥२॥

भवनवासियोके चिह्न

चूडामणि-अहि-गरुडा करि-मयरा वड्ढमाण-वज्ज-हरी ।
कलसो तुरवो मउडे कमसो चिण्हाणि एदाणि ॥१०॥

॥ चिण्हा समत्ता ॥३॥

अर्थ :—इन देवोके मुकुटोमे क्रमश: चूडामणि, सर्प, गरुड, हाथी, मगर, वर्धमान (स्वस्तिक), वज्र, सिह, कलश और तुरग ये चिह्न होते है ॥१०॥

॥ चिह्नोका वर्णन समाप्त हुआ ॥३॥

भवनवासी देवोकी भवन सख्या

चउसट्ठी चउसीदी बाहत्तरि होंति छस्सु ठाणेसु ।
छाहत्तरि छण्णउदी [1]लक्खाणि भवणवासि-भवणाणि ॥११॥

६४ ल । ८४ ल । ७२ ल । ७६ ल । ७६ ल । ७६ ल । ७६ ल । ७६ ल ।
७६ ल । ९६ ल ।

एदाणं[2] भवणाणं एक्कस्सि मेलिदाण परिमाणं ।
बाहत्तरि लक्खाणि कोडीओ सत्त-मेत्ताओ ॥१२॥

७७२०००००

॥ भवण-सखा गदा ॥४॥

---

१. द. ब क. ज. ठ. एक्काणि । २. द. ज. एदाण भवणाणेक्कस्सि । ठ एदाणि भवणाणेक्कस्सि ।

अर्थ :—भवनवासी देवोके भवनोकी सख्या क्रमश' ६४ लाख, ८४ लाख, ७२ लाख, छह स्थानोमे ७६ लाख और ९६ लाख है, इन सबके प्रमाणको एकत्र मिला देनेपर सात करोड, बहत्तर लाख होते है ।।११-१२।।

विशेषार्थ :—असुरकुमारदेवोके ६४०००००, नागकुमारके ८४०००००, सुपर्णकुमारके ७२०००००, द्वीपकुमारके ७६०००००, उदधिकुमारके ७६०००००, स्तनितकुमारके ७६०००००, विद्युत्कुमारके ७६०००००, दिक्कुमारके ७६०००००, अग्निकुमारके ७६००००० और वायुकुमार देवोके ९६००००० भवन है। इन दस कुलोके सर्व भवनोका सम्मिलित योग [६४ ला० + ८४ ला० + ७२ ला० + (७६ ला० × ६) + ९६ लाख =] ७७२००००० अर्थात् सात करोड, बहत्तर लाख है।

।। भवनोकी सख्याका कथन समाप्त हुआ ।।४।।

भवनवासी-देवोमे इन्द्र सख्या

दससु कुलेसु पुह पुह दो दो[1] इंदा हवंति णियमेण ।
ते एक्कस्सि [2]मिलिदा वीस विराजंति भूदीहिं[3] ।।१३।।

। इंद-पमाण समत्त ।।५।।

अर्थ '—भवनवासियोके दसो कुलोमे नियमसे पृथक्-पृथक् दो-दो इन्द्र होते है, वे सब मिलकर वीस है, जो अनेक विभूतियोसे शोभायमान है ।।१३।।

।। इन्द्रोका प्रमाण समाप्त हुआ ।।५।।

भवनवासी-इन्द्रोके नाम

पढमो हु चमर-णामो इंदो वइरोयणो त्ति विदिओ य ।
भूदाणंदो धरणाणंदो [4]वेणू य वेणुधारी य ।।१४।।

पुण्ण-वसिट्ठ-जलप्पह-जलकंता तह य घोस-महघोसा ।
हरिसेणो हरिकंतो अमिदगदी अमिदवाहणग्गिसिही ।।१५।।

---

१. ब. क. दो दो। २. द ब क ज. ठ मेलिदा। ३ द भूदीहो। ४ द. वेणु व।

अग्गीवाहण-णामो वेलंब-पभंजणाभिहाणा य ।
एदे असुरप्पहुदिसु कुलेसु दो-द्दो कमेण देविंदा ।।१६।।

।। इदाण-णामाणि समत्ताणि ।।६।।

अर्थ :—प्रथम चमर और द्वितीय वैरोचन नामक इन्द्र, भूतानन्द और धरणानन्द, वेणु-वेणुधारी, पूर्ण-वशिष्ठ, जलप्रभ-जलकान्त, घोष-महाघोष, हरिषेण-हरिकान्त, अमितगति-अमितवाहन, अग्निशिखी-अग्निवाहन तथा वेलम्ब और प्रभजन नामक ये दो-दो इन्द्र क्रमश असुरकुमारादि निकायोमे होते है ।।१४-१६।।

।। इन्द्रोके नामोका कथन समाप्त हुआ ।।६।।

दक्षिणेन्द्रो और उत्तरेन्द्रोका विभाग

दक्खिण-इंदा चमरो भूदाणंदो य वेणु-पुण्णा य ।
जलपह-घोसा हरिसेणामिदगदी अग्गिसिहि-वेलंबा ।।१७।।

[1]वइरोअणो य धरणाणंदो तह [2]वेणुधारी-वसिट्ठा ।
जलकंत-महाघोसा हरिकंतो अमिद-अग्गिवाहणया ।।१८।।

तह य पहंजण-णामो उत्तर-इंदा हवंति दह एदे ।
अणिमादि-गुणेहिं[3] जुदा मणि-कुंडल-मंडिय-कबोला ।।१९।।

।। दक्खि-उत्तर-इदा गदा ।।७।।

अर्थ :—चमर, भूतानन्द, वेणु, पूर्ण, जलप्रभ, घोष, हरिषेण, अमितगति, अग्निशिखी और वेलम्ब ये दस दक्षिण इन्द्र तथा वैरोचन, धरणानन्द वेणुधारी, वशिष्ठ, जलकान्त, महाघोष, हरिकान्त, अमितवाहन, अग्निवाहन और प्रभजन नामक ये दस उत्तर इन्द्र है । ये सभी इन्द्र अणि-मादिक ऋद्धियोसे युक्त और मणिमय कुण्डलोसे अलकृत कपोलोको धारण करने वाले है ।।१७-१९।।

।। दक्षिण-उत्तर इन्द्रोका वर्णन समाप्त हुआ ।।७।।

---

१ ब वइरो अण्णो । २ द ब. क ज. ठ वेणुदारअ । ३. द अणिमादिगुणे जुदा, ब क ज ठ अणिमादिगुणे जुत्ता ।

भवन-संख्या

चउतीसं[1] चउदालं अट्ठत्तीसं हवंति लक्खाणि ।
चालीसं छट्ठाणे तत्तो पण्णास-लक्खाणि ।।२०।।

तीसं चालं चउतीस छस्सु[2] ठाणेसु होंति छत्तीसं ।
छत्तालं चरिमम्मि य इंदाणं भवण-लक्खाणि ।।२१।।

३४ ल । ४४ ल । ३८ ल । ४० ल । ४० ल । ४० ल । ४० ल । ४० ल
४० ल । ५० ल । ३० ल । ४० ल । ३४ ल । ३६ ल । ३६ ल । ३६ ल
३६ ल । ३६ ल । ३६ ल । ४६ ल ।

अर्थ :—चौतीस ला०, चवालीस ला०, अडतीस ला०, छह स्थानोमे चालीस लाख, इसके आगे पचास लाख, तीस ला०, चालीस ला०, चौतीस लाख. छह स्थानोमे छत्तीस लाख और अन्तमें छयालीस लाख क्रमश. दक्षिणेन्द्र और उत्तरेन्द्रोके भवनोकी सख्याका प्रमाण है ।।२०-२१।।

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिये]

१ द. क. ज ठ चोत्तीस । २. द व. क. ज. ठ छसु वि ठाणए ।

भवनवासी देवोंके कुल, चिह्न, भवन सं०, इन्द्र एवं उनकी भवन सं० का विवरण

क्र.	कुल नाम	मुकुट चिह्न	भवन-संख्या	इन्द्र	दक्षिणेन्द्र उत्तरेन्द्र	भवन-सं०
१	असुरकुमार	चूडामणि	६४ लाख	१ चमर	दक्षिणेन्द्र	३४ लाख
				२ वैरोचन	उत्तरेन्द्र	३० लाख
२	नागकुमार	सर्प	८४ ,,	१ भूतानन्द	द०	४४ लाख
				२ धरणानन्द	उ०	४० लाख
३	सुपर्णकुमार	गरुड	७२ ,,	१ वेणु	द०	३८ लाख
				२. वेणुधारी	उ०	३४ लाख
४	द्वीपकुमार	हाथी	७६ ,,	१ पूर्ण	द०	४० लाख
				२. वशिष्ठ	उ०	३६ लाख
५	उदधिकुमार	मगर	७६ ,,	१ जलप्रभ	द०	४० लाख
				२ जलकान्त	उ०	३६ लाख
६	स्तनितकुमार	वर्धमान	७६ ,,	१ घोष	द०	४० लाख
				२. महाघोष	उ०	३६ लाख
७	विद्युत्कुमार	वज्र	७६ ,,	१ हरिषेण	द०	४० लाख
				२. हरिकान्त	उ०	३६ लाख
८	दिक्कुमार	सिंह	७६ ,,	१ अमितगति	द०	४० लाख
				२. अमितवाहन	उ०	३६ लाख
९	अग्निकुमार	कलश	७६ ,,	१ अग्निशिखी	द०	४० लाख
				२. अग्निवाहन	उ०	३६ लाख
१०	वायुकुमार	तुरग	९६ लाख	१ वेलम्ब	द०	५० लाख
				२ प्रभंजन	उ०	४६ लाख

निवास स्थानोके भेद एव स्वरूप

भवणा भवण-पुराणि आवासा अ सुराण होंदि तिविहा णं ।
रयणप्पहाए भवणा दीव-समुद्दाण उवरि भवणपुरा ॥२२॥

दह-सेल-दुमादीणं रम्माणं उवरि होंति आवासा ।
णागादीणं केंसि तिय-णिलया भवणमेक्कमसुराणं ॥२३॥

॥ [1]भवण-वण्णणा समत्ता ॥८॥

अर्थ :—भवनवासी देवोके निवास-स्थान भवन, भवनपुर और आवासके भेदसे तीन प्रकारके होते है । इनमेसे रत्नप्रभा पृथिवीमे भवन, द्वीप-समुद्रोके ऊपर भवनपुर एव रमणीय तालाब, पर्वत तथा वृक्षादिकके ऊपर आवास है । नागकुमारादिकोमेसे किन्हीके भवन, भवनपुर एव आवास-रूप तीनो निवास है परन्तु असुरकुमारोके केवल एक भवनरूप ही निवास-स्थान होते है ॥२२-२३॥

॥ भवनोका वर्णन समाप्त हुआ ॥८॥

अल्पर्द्धिक, महर्द्धिक और मध्यम ऋद्धिधारक देवोके भवनोके स्थान

अप्प-महद्धिय-मज्झिम-भावण-देवाण होंति भवणाणि ।
दुग-बादाल-सहस्सा लक्खमधोधो खिदीए गंतूणं ॥२४॥

२००० । ४२००० । १००००० ।

॥ अप्पमहद्धिय-मज्झिम भावण-देवाण णिवास-खेत्त समत्त ॥९॥

अर्थ :—अल्पर्द्धिक, महर्द्धिक एव मध्यम ऋद्धिके धारक भवनवासी देवोके भवन क्रमश चित्रा पृथिवीके नीचे-नीचे दो हजार, बयालीस हजार और एक लाख योजन-पर्यन्त जाकर है ॥२४॥

विशेषार्थ —चित्रा पृथिवीसे २००० योजन नीचे जाकर अल्पऋद्धि धारक देवोके ४२००० योजन नीचे जाकर महाऋद्धि धारक देवोके और १००००० योजन नीचे जाकर मध्यम ऋद्धि धारक भवनवासी देवोके भवन है ।

इसप्रकार अल्पर्द्धिक, महर्द्धिक एव मध्यम ऋद्धिके धारक भवनवासी देवोका
निवास क्षेत्र समाप्त हुआ ॥ ९ ॥

---

१ द भुवण ।

भवनोका विस्तार आदि एव उनमे निवास करने वाले देवोंका प्रमाण—

समचउरस्सा भवणा वज्जमया-दार-वज्जिया सव्वे ।
बहलत्ते ति-सयाणि संखासंखेज्ज-जोयणा वासे ॥२५॥

संखेज्ज-रुंद-भवणेसु भवण-देवा वसंति संखेज्जा ।
संखातीदा वासे अच्छंती सुरा असंखेज्जा ॥२६॥

भवण-सरूव समत्ता[1] ॥१०॥

अर्थ :—भवनवासी देवोके ये सब भवन समचतुष्कोण और वज्रमय द्वारोसे शोभायमान है। इनकी ऊँचाई तीनसौ योजन एव विस्तार सख्यात और असख्यात योजन प्रमाण है। इनमेसे संख्यात योजन विस्तार वाले भवनोमे सख्यात देव रहते है तथा असख्यात योजन विस्तार वाले भवनोमे असख्यात भवनवासी देव रहते है ॥२५-२६॥

भवनोके विस्तारका कथन समाप्त हुआ ॥१०॥

भवन-वेदियोका स्थान, स्वरूप तथा उत्सेध आदि

तेसुं चउसु दिसासुं जिण-दिट्ठ-पमाण-जोयणे गंता ।
मज्झम्मि दिव्व-वेदी पुह पुह वेढेदि एक्केक्का ॥२७॥

अर्थ —जिनेन्द्र भगवान्से उपदिष्ट उन भवनोकी चारो दिशाओमे योजन प्रमाण जाते हुए एक-एक दिव्य वेदी (कोट) पृथक्-पृथक् उन भवनोको मध्यमे वेष्टित करती है ॥२७॥

बे कोसा उच्छेहा वेदीणमकट्टिमाण सव्वाणं ।
पंच-सयाणि दंडा वासो वर-रयण-छण्णाणं ॥२८॥

अर्थ :—उत्तमोत्तम रत्नोसे व्याप्त (उन) सब अकृत्रिम वेदियोकी ऊँचाई दो कोस और विस्तार पॉचसौ धनुष-प्रमाण होता है ॥२८॥

गोउर-दार-जुदाओ उवरिम्मि जिणिंद-गेह-सहिदाओ ।
[2]भवण-सुर-रक्खिदाओ वेदीओ तासु सोहंति ॥२९॥

---

१. द. व. क. ज ठ मम्मत्ता। २ द. व. क. ज. ठ. भवणासुर-तक्खिदाओ वेदीण तेसु।

अर्थ :—गोपुरद्वारोसे युक्त और उपरिम भागमे जिनमन्दिरोसे सहित वे वेदियाँ भवनवासी देवोसे रक्षित होती हुई सुशोभित होती है ।।२९।।

वेदियोके वाह्य-स्थित-वनोका निर्देश

तब्बाहिरे असोयं सत्तच्छद-चंपयाय चूदवणा ।
पुव्वादिसु णाणातरु-चेत्ता चिट्ठंति चेत्त-तरू सहिया ।।३०।।

अर्थ :—वेदियोके वाह्यभागमे चैत्यवृक्षोसे सहित और अपने नाना वृक्षोसे युक्त, (क्रमशः) पूर्वादि दिशाओमे पवित्र अशोक, सप्तच्छद, चम्पक और आम्रवन स्थित है ।।३०।।

चैत्यवृक्षोका वर्णन

चेत्त-द्दुम-थल-रुंदं दोण्णि सया जोयणाणि पण्णासा ।
चत्तारो मज्झम्मि य अंते कोसद्धमुच्छेहो ।।३१।।

अर्थ :—चैत्यवृक्षोके स्थलका विस्तार दोसौ पचास योजन तथा ऊँचाई मध्यमे चार योजन और अन्तमे अर्धकोस प्रमाण है ।।३१।।

छ-द्दो-भू-मुह-रुंदा[2] चउ-जोयण-उच्छिदाणि पीढाणि ।
पीढोवरि वहुमज्झे रम्मा चेट्ठंति चेत्त-दुमा ।।३२।।

जो ६ । २ । ४ ।

१ उपरोक्त चित्र प्रक्षेप रूप है एव उसमे दिया हुआ प्रमाण स्केल रूप नही है ।
२ द. व क. ज ठ. रुदो ।

अर्थ :—पीठोकी भूमिका विस्तार छह योजन, मुखका विस्तार दो योजन और ऊँचाई चार योजन है, इन पीठोके ऊपर बहुमध्यभागमे रमणीय चैत्यवृक्ष स्थित है ।।३२।।

पत्तेक्कं रुक्खाणं [1]अवगाढं कोसमेक्कमुद्दिट्ठं ।
जोयण खंदुच्छेहो साहा-दीहत्तणं च चत्तारि ।।३३।।

को १ । जो १ । ४ ।[2]

अर्थ :—प्रत्येक वृक्षका अवगाढ एक कोस, स्कन्धका उत्सेध एक योजन और शाखाओंकी लम्बाई चार योजन प्रमाण कही गयी है ।।३३।।

विविह-वर-रयण-साहा विचित्त-कुसुमोवसोहिदा सव्वे ।
मरगयमय-वर-पत्ता दिव्व-तरू ते विरायंति ।।३४।।

अर्थ :—वे सब दिव्य वृक्ष विविध प्रकारके उत्तम रत्नोकी शाखाओसे युक्त, विचित्र पुष्पोसे अलकृत और मरकत मणिमय उत्तम पत्रोसे व्याप्त होते हुए अतिशय शोभाको प्राप्त है ।।३४।।

विविहंकुर चेंचइया विविह-फला विविह-रयण-परिणामा[3] ।
छत्तादी छत्त-जुदा[4] घंटा-जालादि-रमणिज्जा ।।३५।।

आदि-णिहणेण हीणा पुढविमया सव्व-भवण-चेत्त-दुमा ।
जीवुप्पत्ति[5]-लयाणं होंति णिमित्ताणि ते णियमा[6] ।।३६।।

अर्थ :—विविध प्रकारके अकुरोसे मण्डित अनेक प्रकारके फलोसे युक्त, नाना प्रकारके रत्नोसे निर्मित, छत्रके ऊपर छत्रसे सयुक्त, घण्टा-जालादिसे रमणीय और आदि-अन्तसे रहित, वे पृथिवीके परिणाम स्वरूप सब भवनोके चैत्यवृक्ष नियमसे जीवोकी उत्पत्ति और विनाशके निमित्त होते है ।।३५-३६।।

विशेषार्थ :—यहाँ चैत्यवृक्षोको 'नियमसे जीवोकी उत्पत्ति और विनाशका कारण कहा गया है ।' उसका अर्थ यह प्रतीत होता है कि—चैत्यवृक्ष अनादि-निधन है, अत. कभी उनका उत्पत्ति

१. ब क अवगाढ । २ ब. को १ । जो ४ । ३. द ज ठ. परिमाणा । ४. द. ब. क. ज ठ. जुदा । ५ द ब ठ जीहप्पति आयाण, क. ज जीऊपति आयाण । ६. द ब. णिआयामा ।

या विनाश नही होता है, किन्तु चैत्यवृक्षोके पृथिवीकायिक जीवोका पृथिवीकायिकपना अनादि-निधन नही है। अर्थात् उन वृक्षोमे पृथिवीकायिक जीव स्वय जन्म लेते तथा आयुके अनुसार मरते रहते हैं, इसीलिए चैत्यवृक्षोको जीवोकी उत्पत्ति और विनाशका कारण कहा गया है। यही विवरण चतुर्थ-अधिकारकी गाथा १६०८ और २१५६ मे तथा पाँचवे अधिकार की गाथा २६ मे आयगा।

चैत्यवृक्षोके मूलमे-स्थित जिन प्रतिमाएँ

चेत्त-द्दुम मूलेसुं पत्तेक्कं चउ-दिसासु पंचेव।
चेट्ठंति जिणप्पडिमा पलियंक-ठिया सुरेहि महणिज्जा ॥३७॥

चउ-तोरणाहिरामा अट्ठ-महा-मंगलेहि सोहिल्ला।
वर-रयण-णिम्मिदेहिं माणत्थभेहि अइरम्मा ॥३८॥

॥ वेदी-वण्णणा गदा ॥११॥

अर्थ : चैत्यवृक्षोके मूलमे चारो दिशाओमेसे प्रत्येक दिशामे पद्मासनसे स्थित और देवोसे पूजनीय पाँच-पाँच जिनप्रतिमाये विराजमान है, जो चार तोरणोसे रमणीय, अष्ट महामंगल द्रव्योसे सुशोभित और उत्तमोत्तम रत्नोसे निर्मित मानस्तम्भोसे अतिशय शोभायमान है ॥३७-३८॥

॥ इसप्रकार वेदियोका वर्णन समाप्त हुआ ॥११॥

वेदियोके मध्यमे कूटोका निरूपण

वेदीणं बहुमज्झे जोयण-सयमुच्छिदा महाकूडा।
वेत्तासण-संठाणा रयणमया होंति सव्वट्ठा ॥३९॥

अर्थ —वेदियोके वहुमध्य भागमे सर्वत्र एकसौ योजन ऊँचे, वेत्रासनके आकार और रत्नमय महाकूट स्थित है ॥३९॥

ताणं मूले उवरिं समंतदो दिव्व-वेदीओ।
पुव्विल्ल-वेदियाणं सारिच्छं वण्णणं सव्वं ॥४०॥

अर्थ :—उन कूटोके मूलभागमे और ऊपर चारो ओर दिव्य वेदियाँ है। इन वेदियोका सम्पूर्ण वर्णन पूर्वोल्लिखित वेदियो जैसा ही समझना चाहिए ॥४०॥

वेदीणब्भंतरए वण-संढा वर-विचित्त-तरु-णियरा ।
पुक्खरिणीहि समग्गा तप्परदो दिव्व-वेदीओ[1] ॥४१॥

॥ कूडा गदा ॥१२॥

अर्थ :—वेदियोके भीतर उत्तम एव विविध प्रकारके वृक्ष-समूह और वापिकाओसे परिपूर्ण वन-समूह है तथा इनके आगे दिव्य वेदियाँ है ॥४१॥

॥ इसप्रकार कूटोका वर्णन समाप्त हुआ ॥१२॥

कूटोके ऊपर स्थित-जिन-भवनोका निरूपण

कूडोवरि पत्तेक्कं जिणवर-भवणं [2]हवेदि एक्केक्कं ।
वर-रयण-कंचणमयं विचित्त-विण्णास[3]-रमणिज्जं ॥४२॥

अर्थ :—प्रत्येक कूटके ऊपर उत्तम रत्नो एव स्वर्णसे निर्मित तथा विचित्र विन्याससे रमणीय एक-एक जिनभवन है ॥४२॥

चउ-गोउरा ति-साला वीहिं [4]पडि माणथंभ-णव-थूहा ।
वण[5]-धय-चेत्त-खिदीओ सव्वेसुं जिण-णिकेदेसुं ॥४३॥

अर्थ :—सब जिनालयोमे चार-चार गोपुरोसे सयुक्त तीन कोट, प्रत्येक वीथीमे एक-एक मानस्तम्भ एव नौ स्तूप तथा (कोटोके अन्तरालमे क्रमश) वन, ध्वज और चैत्य-भूमियाँ है ॥४३॥

णंदादिओ ति-मेहल ति-पीढ-पुव्वाणि धम्म-विभवाणि ।
चउ-वण-मज्झेसु ठिदा चेत्त-तरू तेसु सोहंति ॥४४॥

अर्थ :—उन जिनालयोमे चारो वनोके मध्यमे स्थित तीन मेखलाओसे युक्त नन्दादिक वापिकाये एव तीन पीठोसे सयुक्त धर्म-विभव तथा चैत्यवृक्ष शोभायमान होते है ॥४४॥

---

१. द दिव्वदेवीओ । २. द. हुवेदि । ३. द. ब क विण्णाणरमणिज्ज । ४ द ब, क, ज, ठ. परि । ५. ब. क ज ठ. णवधय ।

महाध्वजाओ एव लघु ध्वजाओकी सख्या

हरि-करि-वसह-खगाहिव[1]-सिहि-ससि-रवि-हंस-पउम-चक्क-धया ।
एक्केक्कमट्ठ-जुद-सयमेक्केक्कं अट्ठ-सय खुल्ला ।।४५।।

अर्थ —(ध्वज भूमिमे) सिह, गज, वृषभ, गरुड, मयूर, चन्द्र, सूर्य, हस, पद्म और चक्र, इन चिह्नोसे अकित प्रत्येक चिह्नवाली एकसौ आठ महाध्वजाएँ और एक-एक महाध्वजाके आश्रित एकसौ आठ क्षुद्र (छोटी) ध्वजाएँ होती है ।।४५।।

विशेषार्थ :—सिह आदि १० चिह्न है अत. १०×१०८=१०८० महाध्वजाएँ। १०८०×१०८=११६६४० छोटी ध्वजाएँ है ।

जिनालयमे वन्दनगृहो आदिका वर्णन

[2]वंदणभिसेय-णच्चण-संगीदालोय-मंडवेहि जुदा ।
कीडण-गुणण-गिहेहि विसाल-वर-पट्टसालेहिं ।।४६।।

अर्थ :—(उपर्युक्त जिनालय) वन्दन, अभिषेक, नर्तन, सगीत और आलोक (प्रेक्षण) मण्डप तथा क्रीडागृह, गुणनगृह (स्वाध्यायशाला) एव विशाल तथा उत्तम पट्ट (चित्र) शालाओसे सहित है ।।४६।।

जिनमन्दिरोमे श्रुत आदि देवियोकी एवं यक्षोकी मूर्तियोका निरूपण

सिरिदेवी-सुददेवी-सव्वाण-सणक्कुमार-जक्खाणं ।
रूवाणि अट्ठ-मंगल [3]देवच्छंदम्मि जिण-णिकेदेसु ।।४७।।

अर्थ :—जिनमन्दिरोमे देवच्छन्दके भीतर श्रीदेवी, श्रुतदेवी तथा सर्वाण्ह और सनत्कुमार यक्षोकी मूर्तियाँ एव अष्ट मगलद्रव्य होते है ।।४७।।

---

१ द. ब. क. ज. ठ खगावइ । २ द. चदणाभिसेय । ३ द. देवणच्चाणि, ब देवच्चाणि । ज ठ देव देवच्चाणि, क मेव णिच्चाणि ।

अष्टमंगल द्रव्य

भिंगार-कलस-दप्पण-धय-चामर-छत्त-वियण-सुपइट्ठा ।
इय अट्ठ-मंगलाणि पत्तेक्कं [1]अट्ठ-अहिय-सयं ॥४८॥

अर्थ :—झारी, कलश, दर्पण, ध्वजा, चामर, छत्र, व्यजन और सुप्रतिष्ठ, ये आठ मगल द्रव्य है, जो प्रत्येक एकसौ आठ कहे गये है ॥४८॥

जिनालयोकी शोभाका वर्णन

दिप्पंत-रयण-दीवा जिण-भवणा पंच-वण्ण-रयण-मया ।
[2]गोसीस-मलयचंदण-कालागरु-धूव-गंधड्ढा ॥४९॥

भंभा-मुइंग-मद्दल-जयघंटा-कंसताल-तिवलीणं ।
दुंदुहि-पडहादीणं सद्देहि णिच्च-हलबोला ॥५०॥

अर्थ :—देदीप्यमान रत्नदीपकोसे युक्त वे जिनभवन पाँच वर्णके रत्नोसे निर्मित, गोशीर्ष, मलयचन्दन, कालागरु और धूपकी गधसे व्याप्त तथा भम्भा, मृदग, मर्दल, जयघटा, कास्यताल, तिवली, दुन्दुभि एव पटहादिकके शब्दोसे नित्य ही शब्दायमान रहते है ॥४९-५०॥

नागयक्ष-युगलोसे युक्त जिनप्रतिमाएँ

सिंहासणादि-सहिदा चामर-कर-णागजक्ख-मिहुण-जुदा ।
णाणाविह-रयणमया जिण-पडिमा तेसु भवणेसुं ॥५१॥

अर्थ :—उन भवनोमे सिहासनादिकसे सहित, हाथमे चँवर लिए हुए नागयक्ष युगलसे युक्त तथा नाना प्रकारके रत्नोसे निर्मित जिनप्रतिमाये है ॥५१॥

जिनभवनोकी सख्या

बाहत्तरि लक्खाणि कोडीओ सत्त जिण-णिगेदाणि ।
आदि-णिहणुज्झिदाणि भवण-समाइं विराजंति ॥५२॥

७७२००००० ।

---

१ व. अडअहियसय । २. द व क ज ठ गोसीर ।

अर्थ :—आदि-अन्तसे रहित (अनादिनिधन) वे जिनभवन, भवनवासी देवोके भवनोकी सख्या प्रमाण सात करोड, बहत्तर लाख, सुशोभित होते है ।।५२।।

७७२००००० जिनभवन है ।

भवनवासी-देव, जिनेन्द्रको ही पूजते है

सम्मत्त-रयण-जुत्ता णिब्भर-भत्तीए णिच्चमच्चंति ।
कम्मक्खवण-णिमित्तं देवा जिणणाह-पडिमाओ ।।५३।।

कुलदेवा इदि मण्णिय अण्णेहिं बोहिया बहुपयारं ।
मिच्छाइट्ठी णिच्चं पूजंति जिणिंद-पडिमाओ ।।५४।।

।। जिणभवणा गदा ।।१३।।

अर्थ —सम्यग्दर्शनरूपी रत्नसे युक्त देव तो कर्मक्षयके निमित्त नित्य ही अत्यधिक भक्तिसे जिनेन्द्र-प्रतिमाओकी पूजा करते है, किन्तु सम्यग्दृष्टि देवोसे सम्बोधित किये गये मिथ्यादृष्टि देव भी कुलदेवता मानकर जिनेन्द्र-प्रतिमाओकी नित्य ही नाना प्रकारसे पूजा करते है । ५३-५४।।

।। जिनभवनोका वर्णन समाप्त हुआ ।।१३।।

कूटोके चारो ओर स्थित भवनवासी-देवोके प्रासादोका निरूपण

कुडाण [1]समंतादो पासादा[2] होंति भवण-देवाणं ।
[3]णाणाविह-विण्णासा वर-कंचण[4]-रयण-णियरमया ।।५५।।

अर्थ :—कूटोके चारो ओर नानाप्रकारकी रचनाओसे युक्त और उत्तम स्वर्ण एव रत्न-समूहसे निर्मित भवनवासी देवोके प्रासाद हैं ।।५५।।

सत्तट्ठ-णव-दसादिय-विचित्त-भूमीहि भूसिदा सव्वे ।
लंबंत-रयण-माला दिप्पंत-मणिप्पदीव-कंठिल्ला ।।५६।।

---

१ द ब क ज समत्तादो । २. द. ब. पासादो । ३. द ब क ज ठ णाणाविविहविणास । ४. ब कचणणियर ।

जम्माभिसेय-भूसण-मेहुण-श्रोलग्ग[1]-मंत-सालाहिं[2] ।
विविधाहिं[3] रमणिज्जा मणि-तोरण-सुंदर-दुवारा ।।५७।।

[4]सामण्ण-गब्भ-कदली-चित्तासण-णालयादि-गिह-जुत्ता ।
कंचण-पायार-जुदा विसाल-वलही विराजमाणा य ।।५८।।

धुव्वंत-धय-वडाया पोक्खरणी-वावि-[5]कूव-वण-सहिदा[6] ।
धूव-घडेहि सुजुट्ठा णाणावर-मत्त-वारणोपेदा ।।५६।।

मणहर-जाल-कवाडा णाणाविह-सालभंजिका-बहुला ।
आदि-णिहणेण हीणा किं बहुणा ते णिरुवमा णेया ।।६०।।

अर्थ :—सब भवन सात, आठ, नौ, दस इत्यादिक विचित्र भूमियोसे विभूषित, लम्बायमान रत्नमालाओसे सहित, चमकते हुए मणिमय दीपकोसे सुशोभित, जन्मशाला, अभिषेकशाला, भूषण-शाला, मैथुनशाला, ओलगशाला (परिचर्यागृह) और मत्रशाला, इन विविध प्रकारकी शालाओसे रमणीक, मणिमय तोरणोसे सुन्दर द्वारो वाले, सामान्यगृह, गर्भगृह, कदलीगृह, चित्रगृह, आसनगृह, नादगृह और लतागृह इत्यादि गृह-विशेषोसे सहित, स्वर्णमय प्राकारसे सयुक्त विशाल छज्जोसे विराजमान, फहराती हुई ध्वजा-पताकाओसे सहित, पुष्करिणी, वापी, कूप और वनोसे सयुक्त, धूपघटोसे युक्त अनेक उत्तम मत्तवारणो (छज्जो) से सयुक्त, मनोहर गवाक्ष और कपाटोसे सुशोभित, नानाप्रकारकी पुत्तलिकाओ सहित और आदि-अन्तसे हीन (अनादिनिधन) है । वहुत कहनेसे क्या ? ये सब प्रासाद उपमासे रहित (अनुपम) है, ऐसा जानना चाहिए ।।५६-६०।।

चउ-पासाणि तेसुं विचित्त-रूवाणि आसणाणि च ।
वर-रयण-विरइदाणि सयणाणि हवंति दिव्वाणि ।।६१।।

।। पासादा गदा ।।१४।।

अर्थ :—उन भवनोके चारो पार्श्वभागोमे विचित्र रूपवाले आसन और उत्तम रत्नोसे रचित दिव्य शय्याये स्थित है ।।६१।।

।। प्रासादोका कथन समाप्त हुआ ।।१४।।

---

१ द. ओलग, व क उलग । २. द ब. क. ज. ठ सालाइ । ३ द व क ज ठ विदिलाहिं । ४. ब. क. सामेण । ५ ब कूड । ६ द. व. क ज ठ सडाइ ।

प्रत्येक इन्द्रके परिवार-देव-देवियोका निरूपण

एक्केक्कस्सिं इंदे परिवार-सुरा हवंति [1]दस भेदा ।
पडिइंदा तेत्तीसत्तिदसा सामाणिया-दिसाइंदा ।।६२।।

तणुरक्खा तिप्परिसा सत्ताणीया पइण्णगभियोगा ।
किब्बिसिया इदि कमसो पवण्णिदा इंद-परिवारा ।।६३।।

अर्थ —प्रतीन्द्र, त्रायस्त्रिंश, सामानिक, दिशाइन्द्र (लोकपाल), तनुरक्षक, तीन पारिषद सात-अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषिक, ये दस, प्रत्येक इन्द्रके परिवार देव होते है इसप्रकार क्रमश. इन्द्रके परिवार देव कहे गये है ।।६२-६३।।

इंदा राय-सरिच्छा जुवराय-समा हवंति पडिइंदा ।
पुत्त-णिहा तेत्तीसत्तिदसा सामाणिया कलत्तं वा ।।६५।।

अर्थ :—इन्द्र राजा सदृश, प्रतीन्द्र युवराज सदृश, त्रायस्त्रिंश देव पुत्र सदृश और सामानिक देव कलत्र तुल्य होते है ।।६५।।

चत्तारि लोयपाला [2]सारिच्छा होंति तंतवालाणं ।
तणुरक्खाण समाणा [3]सरीर-रक्खा सुरा सव्वे ।।६६।।

अर्थ —चारो लोकपाल तन्त्रपालोके समान और सब तनुरक्षक देव राजाके अग-रक्षकके समान होते है ।।६६।।

बाहिर-मज्झब्भंतर तंडय-सरिसा [4]हवंति तिप्परिसा ।
सेणोवमा अणीया पइण्णया पुरजण-सरिच्छा ।।६७।।

अर्थ —राजाकी बाह्य, मध्य और अभ्यन्तर समितिके सदृश देवोमे भी तीन प्रकारकी परिषद् होती है । अनीक देव सेना तुल्य और प्रकीर्णक देव पुरजन सदृश होते है ।।६७।।

परिवार-समाणा ते अभियोग-सुरा हवंति [5]किब्बिसिया ।
पाणोवमाणधारी[6] देवाणिंदस्स णादव्वं ।।६८।।

---

१ क. दह । २ द ब क. ज. ठ. सावता । ३ द ससरीर, ब सरीर वा । ४ द. हुवति । ५ द. हुवति । ६. ब. माणाधीरी । क ज. ठ..माणुधारी ।

अर्थ :—वे आभियोग्य जातिके देव दास सदृश तथा किल्विषिक देव चण्डालकी उपमाको धारण करने वाले है। इसप्रकार देवोके इन्द्रका परिवार जानना चाहिए ॥६८॥

इंद-समा पडिइंदा तेत्तीस-सुरा हवंति तेत्तीसं ।
चमरादी-इंदाणं पुह पुह सामाणिया इमे देवा ॥६९॥

अर्थ :—प्रतीन्द्र, इन्द्र प्रमाण और त्रायस्त्रिश देव तैंतीस होते है। चमर-वैरोचनादि इन्द्रोके सामानिक देवोका प्रमाण पृथक्-पृथक् इसप्रकार है ॥६९॥

चउसट्ठि सहस्साणि सट्ठी छप्पण्ण चमर-तिदयम्मि ।
पण्णास सहस्साणि पत्तेक्कं होंति सेसेसु ॥७०॥

६४००० । ६०००० । ५६००० । सेसे १७ । ५००००

अर्थ :—चमरादिक तीन इन्द्रोके सामानिक देव क्रमश चौसठ हजार, साठ हजार और छप्पन हजार होते है, इसके आगे शेष सत्तरह इन्द्रोमेसे प्रत्येकके पचास हजार प्रमाण सामानिक देव होते है ॥७०॥

पत्तेक्कं-इंदयाणं सोमो यम-वरुण-धणद-णामा य ।
पुव्वादि-लोयपाला [1]हवंति चत्तारि चत्तारि ॥७१॥

। ४ ।

अर्थ :—प्रत्येक इन्द्रके पूर्वादिक दिशाओके (रक्षक) क्रमश· सोम, यम, वरुण एवं धनद (कुबेर) नामक चार-चार लोकपाल होते है ॥७१॥

छप्पण्ण-सहस्साहिय-बे-लक्खा होंति चमर-तणुरक्खा ।
चालीस-सहस्साहिय-लक्ख-दुगं बिदिय-इंदम्मि ॥७२॥

२५६००० । २४०००० ।

चउवीस-सहस्साहिय-लक्ख-दुगं [2]तदिय-इंद-तणुरक्खा ।
सेसेसुं पत्तेक्कं णादव्वा दोण्णि लक्खाणि ॥७३॥

२२४००० । सेसे १७ । २००००० ।

---

१ द. हुवति। २ ब तदियतणु।

अर्थ :—चमरेन्द्रके तनुरक्षक देव दो लाख, छप्पन हजार और द्वितीय (वैरोचन) इन्द्रके दो लाख, चालीस हजार होते हैं। तृतीय (भूतानन्द) इन्द्रके तनुरक्षक दो लाख, चौबीस हजार तथा शेषमेसे प्रत्येकके दो-दो लाख प्रमाण तनुरक्षक देव जानने चाहिए ।।७२-७३।।

अडवीसं छव्वीसं छच्च सहस्साणि चमर-तिदयम्मि ।
आदिम-परिसाए[1] सुरा सेसे पत्तेक्क-चउ-सहस्साणि ।।७४।।

२८००० । २६००० । ६००० । सेसे १७ । ४००० ।

अर्थ :—चमरादिक तीन इन्द्रोके आदिम पारिषद देव क्रमशः अट्ठाईस हजार, छव्वीस हजार और छह हजार प्रमाण तथा शेष इन्द्रोमेसे प्रत्येकके चार-चार हजार प्रमाण होते है ।।७४।।

तीसं अट्ठावीसं अट्ठ सहस्साणि चमर-तिदयम्मि ।
मज्झिम-परिसाए सुरा सेसेसुं छस्सहस्साणि ।।७५।।

३०००० । २८००० । ८००० । सेसे १७ । ६००० ।

अर्थ —चमरादिक तीन इन्द्रोके मध्यम पारिषद देव क्रमशः तीस हजार, अट्ठाईस हजार और आठ हजार तथा शेष इन्द्रोमेसे प्रत्येकके छह-छह हजार प्रमाण होते हैं ।।७५।।

बत्तीसं तीसं दस होंति सहस्साणि चमर-तिदयम्मि ।
बाहिर-परिसाए सुरा अट्ठ सहस्साणि सेसेसुं ।।७६।।

३२००० । ३०००० । १०००० । सेसे १७ । ८००० ।

अर्थ :—चमरादिक तीन इन्द्रोके क्रमशः बत्तीस हजार, तीस हजार और दस हजार तथा शेष इन्द्रोमेसे प्रत्येकके आठ-आठ हजार प्रमाण बाह्य पारिषद देव होते है ।।७६।।

[भवनवासी-इन्द्रोके परिवार-देवोकी सख्याकी तालिका अगले पृष्ठ पर देखिये]

---

१ क. ज. परिसाए ।

भवनवासी-इन्द्रोके परिवार-देवोकी सख्या

क्र० सं०	इन्द्रोके नाम	प्रतीन्द्र	त्रायस्त्रिंश	सामानिक देव	लोकपाल	तनुरक्षक	पारिषद		
							आदि	मध्य	बाह्य
१	चमर	१	३३	६४०००	४	२५६०००	२८०००	३००००	३२०००
२	वैरोचन	१	३३	६००००	४	२४००००	१६०००	२८०००	३००००
३	भूतानन्द	१	३३	५६०००	४	२२४०००	६०००	८०००	१००००
४	धरणानन्द	१	३३	५००००	४	२०००००	४०००	६०००	८०००
५	वेणु	१	३३	५००००	४	२०००००	४०००	६०००	८०००
६	वेणुधारी	१	३३	५००००	४	२०००००	४०००	६०००	८०००
७	पूर्ण	१	३३	,,	४	,,	,,	,,	,,
८	वशिष्ट	१	३३	,,	४	,,	,,	,,	,,
९	जलप्रभ	१	३३	,,	४	,,	,,	,,	,,
१०	जलकान्त	१	३३	,,	४	,	,,	,,	,,
११	घोप	१	३३	,,	४	,,	,,	,,	,,
१२	महाघोष	१	३३	,,	४	,,	,,	,,	,,
१३	हरिषेण	१	३३	,,	४	,,	,,	,,	,,
१४	हरिकान्त	१	३३	,,	४	,,	,,	,,	,,
१५	अमितगति	१	३३	,,	४	,,	,,	,	,,
१६	अमितवाहन	१	३३	,,	४	,,	,,	,,	,,
१७	अग्निशिखी	१	३३	,,	४	,,	,,	,,	,,
१८	अग्निवाहन	१	३३	,,	४	,,	,,	,,	,,
१९	वेलम्ब	१	३३	,,	४	,,	,,	,,	,,
२०	प्रभजन	१	३३	,	४	,,	,,	,,	,,

अनीकदेवोका वर्णन

सत्ताणीया होंति हु पत्तेक्कं सत्त सत्त कक्ख-जुदा ।
पढमा ससमाण-समा तद्दुगुणा चरम-कक्खंतं ।।७७।।

अर्थ :—सात अनीकोमेंसे प्रत्येक अनीक सात-सात कक्षाओसे युक्त होती है । उनमेसे प्रथम कक्षाका प्रमाण अपने-अपने सामानिक देवोंके बराबर तथा इसके आगे अन्तिम कक्षातक उत्तरोत्तर प्रथम कक्षासे दूना-दूना प्रमाण होता गया है ।।७७।।

विशेषार्थ :—एक एक इन्द्रके पास सात-सात अनीक (सेना या फौज) होती हैं । प्रत्येक अनीककी सात-सात कक्षाएँ होती है । प्रथम कक्षामे अनीक देवोका प्रमाण अपने अपने सामानिक देवोकी सख्या सदृश, पश्चात् दूना-दूना होता जाता है ।

असुरम्मि महिस-तुरगा रह-करिणो[1] तह पदाति-गंधव्वो ।
णच्चणया एदाणं महत्तरा छम्महत्तरी एक्का ।।७८।।

। ७ ।

अर्थ —असुरकुमारोमे महिष, घोडा, रथ, हाथी, पादचारी, गन्धर्व और नर्तकी, ये सात अनीके होती है । इनके छह महत्तर (प्रधान देव) और एक महत्तरी (प्रधान देवी) होती हैं ।।७८।।

णावा गरुड-गइंदा मयरुट्टा [2]खग्गि-सीह-सिविकस्सा ।
णागादीणं पढमाणीया बिदियाअ असुरं वा ।।७९।।

अर्थ —नागकुमारादिकोके क्रमश नाव, गरुड, गजेन्द्र, मगर, ऊँट, गेंडा (खड्गी), सिंह, शिविका और अश्व, ये प्रथम अनीक होती है, शेष द्वितीयादि अनीके असुरकुमारोके ही सदृश होती है ।।७९।।

विशेषार्थ —दसो भवनवासी देवोमे इसप्रकार अनीके होती है—

१ असुरकुमार—महिष, घोड़ा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी ।

२ नागकुमार—नाव, घोडा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी ।

३. सुपर्णकुमार—गरुड, घोडा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी ।

---

१ ब रहकरणो । २ द. ज. ठ खग्ग ।

४. द्वीपकुमार—हाथी, घोडा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी ।

५. उदधिकुमार—मगर, घोडा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी ।

६ विद्युत्कुमार—ऊँट, घोडा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी ।

७. स्तनितकुमार—गैंडा, घोडा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी ।

८. दिक्कुमार—सिह, घोडा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी ।

९. अग्निकुमार—शिविका, घोडा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी ।

१०. वायुकुमार—अश्व, घोडा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी ।

गच्छ समे गुणयारे परोप्परं गुणिय रूव-परिहीणे[1] ।
एक्कोण-गुण-विहत्ते गुणिदे वयणेण गुण-गणिदं ।।८०।।

अर्थ :– गच्छके बराबर गुणाकारको परस्पर गुणा करके प्राप्त गुणनफलमेसे एक कम करके शेषमे एक कम गुणाकारका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसको मुखसे गुणा करनेपर गुणसकलित धनका प्रमाण आता है ।।८०।।

विशेषार्थ :—स्थानोके प्रमाणको पद और प्रत्येक स्थानपर जितनेका गुणा किया जाता है उसे गुणकार कहते है । यहाँ पदका प्रमाण ७, गुणकार (प्रत्येक कक्षाका प्रमाण दुगुना-दुगुना है अत: गुणकारका प्रमाण) दो और मुख ६४००० है ।

उदाहरण—पद बराबर गुणकारोका परस्पर गुणा करनेपर (२×२×२×२×२×२×२) अर्थात् १२८ फल प्राप्त हुआ, इसमेसे १ घटाकर एक कम गुणकार (२—१=१) का भाग देनेपर (१२८ — १=१२७—१) = $\frac{१२७}{१}$ लब्ध प्राप्त हुआ । इसका मुखसे गुणा करनेपर (६४०००×१२७) अर्थात् ८१२८००० गुणसकलित धन प्राप्त होता है ।

एक्कासीदी लक्खा अडवीस-सहस्स-संजुदा चमरे ।
होंति हु महिसाणीया पुह पुह तुरयादिया वि तम्मेत्ता ।।८१।।

८१२८००० ।

---

१. व द. क. ज ठ परिहीणो ।

अर्थ :—चमरेन्द्रके इक्यासी लाख, अट्ठाईस हजार महिष सेना तथा पृथक्-पृथक् तुरगादिक भी इतने ही होते है ।।८१।।

तिट्ठाणे सुण्णाणि छण्णव-अड-छक्क-पंच-अंक-कमे ।
सत्ताणीया मिलिदा णादव्वा चमर-इंदम्हि ।।८२।।

५६८९६००० ।

अर्थ :—तीन स्थानोमे शून्य, छह, नौ, आठ, छह और पॉच अक स्वरूप क्रमश चमरेन्द्रकी सातो अनीकोका सम्मिलित प्रमाण जानना चाहिए ।।८२।।

विशेषार्थ :—गाथा ८० के विशेषार्थमे प्राप्त हुए गुणसकलित धनको ७ से गुणित करने पर (८१२८०००×७=) पॉच करोड, अडसठ लाख, छ्यानवै हजार (५६८९६०००) सातो अनीकोका सम्मिलित धन प्राप्त हो जाता है । यह चमरेन्द्रकी अनीकोका सम्मिलित धन है ।

छाहत्तरि लक्खाणि वीस-सहस्साणि होंति महिसाणं ।
वइरोयणम्मि इंदे पुह पुह तुरयादिणो वि तम्मेत्ता ।।८३।।

७६२०००० ।

अर्थ —वैरोचन इन्द्रके छिहत्तर लाख, बीस हजार महिष और पृथक्-पृथक् तुरगादिक भी इतने ही है ।।८३।।

चउ-ठाणेसुं सुण्णा चउ तिय तिय पंच-अंक-माणाए ।
वइरोयणस्स मिलिदा सत्ताणीया इमे होंति ।।८४।।

। ५३३४०००० ।

अर्थ :—चार स्थानोमे शून्य, चार, तीन, तीन और पॉच, इन अकोके क्रमश मिलानेपर जो सख्या हो, इतने मात्र वैरोचन इन्द्रके मिलकर ये सात अनीके होती है ।।८४।।

एक्कत्तरि लक्खाणि णावाओ होंति बारस-सहस्सा ।
भूदाणंदे पुह पुह [1]तुरग-प्पहुदीणि तम्मेत्ता ।।८५।।

७११२०००

१ ब उरग ।

अर्थ :—भूतानन्दके इकहत्तर लाख, बारह हजार नाव और पृथक्-पृथक् तुरगादिक भी इतने ही होते है ।।८५।।

ति-ट्ठाणे सुण्णाणि चउक्क-अड[1]-सत्त-णव-चउक्क-कमे ।
सत्ताणीया[2] मिलिदे भूदाणंदस्स णादव्वा ।।८६।।

४९७८४०००

अर्थ :—तीन स्थानोमे शून्य चार, आठ, सात, नौ और चार इन अकोको क्रमशः मिलाकर भूतानन्द इन्द्रकी सात अनीके जाननी चाहिए । अर्थात् भूतानन्दकी सातो अनीके चार करोड सत्तानबै लाख चौरासी हजार प्रमाण है ।।८६।।

तेसट्ठी लक्खाइं पण्णास सहस्सयाणि पत्तेक्कं ।
सेसेसुं इंदेसुं पढमाणीयाण परिमाणा ।।८७।।

६३५०००० ।

अर्थ —शेष सत्तरह इन्द्रोमेसे प्रत्येकके प्रथम अनीकका प्रमाण तिरेसठ लाख पचास हजार प्रमाण है ।।८७।।

[3]चउ-ठाणेसुं सुण्णा पंच य तिट्ठाणए चउक्काणिं ।
अंक-कमे सेसाणं सत्ताणीयाण[4] परिमाणं ।।८८।।

४४४५०००० ।

अर्थ :—चार स्थानोमे शून्य, पाँच और तीन स्थानोमे चार इस अंक क्रमसे यह शेष इन्द्रोमेसे प्रत्येककी सात अनीकोका प्रमाण होता है ।।८८।।

होंति पयण्णय-पहुदी जेत्तियमेत्ता य सयल-इंदेसु ।
तप्परिमाण-परूवण[5]-उवएसो णत्थि काल-वसा ।।८९।।

अर्थ :—सम्पूर्ण इन्द्रोमे जितने प्रकीर्णक आदिक देव है, कालके वशसे उनके प्रमाणके प्ररूपणाका उपदेश नही है ।।८९।।

---

१ ब अट्ठसत्त । २ द. सत्ताणीआ । ३ ब चवट्ठाणेसुं । ४. द. ब. क ज. ठ. सत्ताणीयाणि । ५ द ब. परूणा ।

भवनवासी-इन्द्रोके अनीक देवोका प्रमाण गाथा ८१-८९

क्रमांक	इन्द्रोके नाम	प्रथम कक्षाका नाम	प्रथम कक्षाका प्रमाण ×	कक्षाएँ ७ =	सातो अनीकोका सम्मिलित प्रमाण	प्रकीर्णक सेनाका प्रमाण
१	चमरेन्द्र	महिप	८१२८००० ×	७ =	५६८९६०००	काल-वश उपदेशका अभाव ।
२	वैरोचन	"	७६२०००० ×	७ =	५३३४००००	
३	भूतानन्द	नाव	७११२००० ×	७ =	४९७८४०००	
४-२०	शेप १७ मेसे प्रत्येक इन्द्रके	गरुड, गज मगर आदि	प्रत्येकके ६३५०००० ×	७ =	प्रत्येक इन्द्रके ४४४५००००	

भवनवासिनीदेवियोका निरूपण

किण्हा रयण-सुमेघा देवी-णामा सुकंठ-अभिहाणा ।
णिरुवम-रूव-धराओ चमरे पंचग्ग-महिसीओ ॥९०॥

अर्थ :—चमरेन्द्रके कृष्णा, रत्ना, सुमेघा, देवी और सुकठा नामकी अनुपम रूपको धारण करनेवाली पाँच अग्रमहिषियाँ है ॥९०॥

अग्ग-महिसीण ससमं अट्ठ-सहस्साणि होंति पत्तेक्कं ।
परिवारा देवीओ चाल-सहस्साणि संमिलिदा ॥९१॥

८००० । ४०००० ।

अर्थ :—अग्रदेवियोमेसे प्रत्येकके अपने साथ आठ हजार परिवार-देवियाँ होती है । इस-प्रकार मिलकर सब परिवार देवियाँ चालीस हजार प्रमाण होती है ॥९१॥

चमरग्गिम-महिसीणं अट्ठ-सहस्सा विकुव्वणा संति ।
पत्तेक्कं अप्प-समं णिरुवम-लावण्ण-रूवेहिं ॥९२॥

अर्थ :—चमरेन्द्रकी अग्र-महिषियोमेसे प्रत्येक अपने (मूल शरीरके) साथ, अनुपम रूप-लावण्यसे युक्त आठ हजार प्रमाण विक्रियानिर्मित रूपोको धारण कर सकती है ॥९२॥

सोलस-सहस्समेत्ता वल्लहियाओ हवंति चमरस्स ।
छप्पण्ण-सहस्साणिं संमिलिदे सव्व-देवीओ ॥९३॥

१६००० । ५६००० ।

अर्थ :—चमरेन्द्रके सोलह हजार प्रमाण वल्लभा देवियाँ होती है । इसप्रकार चमरेन्द्रकी पाँचो अग्र-देवियोकी परिवार-देवियो और वल्लभा देवियोको मिलाकर, सर्व देवियाँ छप्पन हजार होती है ॥९३॥

पउमा-पउमसिरीओ कणयसिरी कणयमाल-महपउमा ।
अग्ग-महिसीउ बिदिए विक्किरिया पहुदि पुव्वं व[1] ।।६४।।

अर्थ —द्वितीय (वैरोचन) इन्द्रके पद्मा, पद्मश्री, कनकश्री, कनकमाला और महापद्मा, ये पाँच अग्र-देवियाँ होती है, इनके विक्रिया आदिका प्रमाण पूर्व (प्रथम इन्द्र) के सदृश ही जानना चाहिए ।।६४।।

पण अग्ग-महिसियाओ पत्तेक्कं वल्लहा दस-सहस्सा ।
णागिंदाणं होंति हु विक्किरियप्पहुदि पुव्वं व[2] ।।६५।।

५ । १०००० । ४०००० । ५०००० ।

अर्थ —नागेन्द्रो (भूतानन्द और धरणानन्द) मेसे प्रत्येककी पाँच अग्र-देवियाँ और दस हजार वल्लभाएँ होती है । शेष विक्रिया आदिका प्रमाण पूर्ववत् ही है ।।६५।।

चत्तारि सहस्साणि वल्लहियाओ हवंति पत्तेक्कं ।
गरुडिंदाणं[3] सेसं पुव्वं पिव एत्थ वत्तव्वं ।।६६।।

५ । ४००० । ४०००० । ४४००० ।

अर्थ :—गरुडेन्द्रोमेसे प्रत्येककी चार हजार वल्लभाये होती है । यहाँ पर शेष कथन पूर्वके सदृश ही समझना चाहिए ।।६६।।

सेसाणं इंदाणं पत्तेक्कं पंच-अग्ग-महिसीओ ।
एदेसु छस्सहस्सा स-समं परिवार-देवीओ ।।६७।।

५ । ६००० । ३०००० ।

अर्थ :—शेष इन्द्रोमेसे प्रत्येकके पाँच अग्र-देवियाँ और उनमेसे प्रत्येकके अपने (मूल शरीर) को सम्मिलित कर छह हजार परिवार-देवियाँ होती है ।।६७।।

१. द वा । क ज ठ च ।　२ द वा । क. च ।　३ द. व. गरुणिंदाण । ज. ठ. गरुडदाण ।

[1]दीविंद-प्पहुदीणं देवीणं वरविउव्वणा[2] संति ।
छ-सहस्साणि च समं पत्तेक्कं विविह-रूवेहिं ॥९८॥

अर्थ :—द्वीपेन्द्रादिकोकी देवियोमेसे प्रत्येकके मूलशरीरके साथ विविध-प्रकारके रूपोसे छह-हजार प्रमाण उत्तम विक्रिया होती है ॥९८॥

पुह पुह सेसिंदाणं वल्लहिया होंति दो सहस्साणि ।
बत्तीस-सहस्साणि संमिलिदे सव्व-देवीओ ॥९९॥

२००० । ३२००० ।

अर्थ :—शेष इन्द्रोके पृथक्-पृथक् दो हजार वल्लभा देवियाँ होती है इन्हे मिला देनेपर प्रत्येक इन्द्रके सब देवियाँ बत्तीस हजार प्रमाण होती है ॥९९॥

[भवनवासी इन्द्रोकी देवियोके प्रमाण की तालिका पृष्ठ २९४ पर देखिये]

---

१. द. ब. क. ज. ठ. देविंद । २. द. वरविव्वणा ब. वार विव्वणा । ज. ठ. वारतिव्वणा । क. वार विकुव्वणा ।

भवनवासी इन्द्रोकी देवियोका प्रमाण गाथा ९०-९९

क्रमांक	कुल	इन्द्रोके नाम	अग्रदेवियाँ ×	परिवार-देवियाँ =	गुणनफल +	वल्लभा-देवियाँ =	सर्वयोग	मूल शरीर सहित विक्रिया
१	असुर कु०	चमर	५ ×	८००० =	४०००० +	१६००० =	५६०००	८०००
		वैरोचन	५ ×	८००० =	४०००० +	१६००० =	५६०००	८०००
२	नाग कु०	भूतानन्द	५ ×	८००० =	४०००० +	१०००० =	५००००	८०००
		धरणानद	५ ×	८००० =	४०००० +	१०००० =	५००००	८०००
३.	सुपर्ण कु०	वेणु	५ ×	८००० =	४०००० +	४००० =	४४०००	८०००
		वेणुधारी	५ ×	८००० =	४०००० +	४००० =	४४०००	८०००
४	द्वीपकुमार आदि शेप	शेप इन्द्र	५ ×	६००० =	३०००० +	२००० =	३२००० (प्रत्येक की)	६००० (प्रत्येककी)

पडिइंदादि-चउण्हं वल्लहियाणं तहेव देवीणं ।
सव्वं विउव्वणादि णिय-णिय-इंदाण सारिच्छं ॥१००॥

अर्थ :—प्रतीन्द्र, त्रायस्त्रिंश, सामानिक और लोकपाल, इन चारोकी वल्लभाएँ तथा इन देवियोकी सम्पूर्ण विक्रिया आदि अपने-अपने इन्द्रोके सदृश ही होती है ॥१००॥

सव्वेसुं इंदेसुं तणुरक्ख-सुराण होंति देवीओ ।
पत्तेक्कं सय-मेत्ता णिरुवम-लावण्ण-लीलाओ ॥१०१॥

१००

अर्थ :—सब इन्द्रोमे प्रत्येक तनुरक्षक देवकी अनुपम-लावण्य लीलाको धारण करने वाली सौ देवियाँ होती है ॥१०१॥

अड्ढाइज्ज-सयाणि देवीओ दुवे सया दिवड्ढ-सयं ।
आदिम-मज्झिम-बाहिर-परिसासुं होंति चमरस्स ॥१०२॥

२५० । २०० । १५० ।

अर्थ :—चमरेन्द्रके आदिम, मध्यम और बाह्य पारिषद देवोके क्रमशः ढाईसौ, दोसौ एव डेढसौ देवियाँ होती है ॥१०२॥

देवीओ तिण्णि सया अड्ढाइज्जं सयाणि दु-सयाणि ।
आदिम-मज्झिम-बाहिर-परिसासुं होंति बिदिय-इंदस्स ॥१०३॥

३०० । २५० । २०० ।

अर्थ :—द्वितीय इन्द्रके आदिम, मध्यम और वाह्य पारिषद देवोके क्रमश· तीनसौ, ढाईसौ एवं दोसौ देवियाँ होती हैं ॥१०३॥

दोण्णि सया देवीओ सट्ठी-चालादिरित्त[1] एक्क-सयं ।
णागिंदाणं अब्भिंतरादि-ति-प्परिस-देवेसुं[2] ॥१०४॥

२०० । १६० । १४० ।

---

१. द. ब चालादिरत्त । २ द. ब क ज. ठ. तिप्परिसदेवीसु ।

अर्थ :—नागेन्द्रोके अभ्यन्तरादिक तीनो प्रकारके पारिषद देवोमे क्रमश. दोसौ, एकसौ साठ और एकसौ चालीस देवियाँ होती है ।।१०४।।

सट्ठी-जुदमेक्क-सयं चालीस-जुदं च वीस अब्भहियं ।
गरुडिंदाणं अब्भंतरादि-ति-प्परिस-देवीओ ।।१०५।।

१६० । १४० । १२० ।

अर्थ ·—गरुडेन्द्रोके अभ्यन्तरादिक तीनो पारिषद देवोके क्रमश एकसौ साठ, एकसौ चालीस और एकसौ बीस देवियाँ होती है ।।१०५।।

चालुत्तरमेक्कसयं बीसब्भहियं सयं च केवलयं ।
सेसिंदाण[1] आदिम-परिस-प्पहुदीसु देवीओ ।।१०६।।

१४० । १२० । १००

अर्थ ·—शेष इन्द्रोके आदिम पारिषदादिक देवोमे क्रमश एक सौ चालीस, एकसौ बीस और केवल सौ देवियाँ होती है ।।१०६।।

उदहिं पहुदि कुलेसुं इंदाणं दीव-इंद-सरिसाओ ।
आदिम-मज्झिम-बाहिर परिसत्तिदयस्स देवीओ ।।१०७।।

१४० । १२० । १००

अर्थ :—उदधिकुमार पर्यत कुलोमें द्वीपेन्द्रके सदृश १४०, १२० और १०० देवियाँ क्रमश आदि, मध्य और बाह्य पारिषादिक इन्द्रोकी होती है ।।१०७।।

असुरादि-दस-कुलेसुं हवंति सेणा-सुराण पत्तेक्कं ।
पण्णासा देवीओ सयं च परो महत्तर-सुराणं ।।१०८।।

। ५० । १०० ।

अर्थ .—असुरादिक दस कुलोमे सेना-सुरोमेसे प्रत्येकके उत्कृष्टत पचास और महत्तर देवोके सौ देवियाँ होती हैं ।।१०८।।

---

१ द ब क. ज. ठ देविंदाण ।

भवनवासी इन्द्रोके परिवार देवोकी देवियोका प्रमाण गाथा—१००-१०८

कुल नाम	इन्द्र-नाम	प्रतीन्द्र	त्रायस्त्रिंश	सामानिक	लोकपाल	तनु-रक्षक	पारिषद			सेना-सुर	महत्तर	नि.कूट देव
							आदि	मध्य	वाह्य			
असुर कु०	चमरेन्द्र	स्व-इन्द्रवत्	स्व-इन्द्रवत्	स्व-इन्द्रवत्	स्व-इन्द्रवत्	१००	२५०	२००	१५०	५०	१००	३२
	वैरोचन					१००	३००	२५०	२००	५०	१००	३२
नाग कु०	भूतानन्द					१००	२००	१६०	१४०	५०	१००	३२
	धरणानन्द					१००	२००	१६०	१४०	५०	१००	३२
सुपर्ण कु०	वेणु					१००	१६०	१४०	१२०	५०	१००	३२
	वेणुधारी					१००	१६०	१४०	१२०	५०	१००	३२
द्वीपकुमार आदि शेष	शेष सर्व इन्द्र					१०० (प्रत्येक) की	१४० (प्रत्येक) की	१२० (प्रत्येक) की	१०० (प्रत्येक) की	५०	१००	३२

जिण-दिट्ठ-पमाणाओ[1] होंति पइण्णय-तियस्स देवीओ ।
सव्व-णिगिट्ठ-सुराणं, पियाओ बत्तीस पत्तेक्कं ॥१०९॥

। ३२ ।

अर्थ :—प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषिक, इन तीन देवोकी देवियाँ जिनेन्द्रदेव द्वारा कहे गये प्रमाण स्वरूप होती है। सम्पूर्ण निकृष्ट देवोके भी प्रत्येकके बत्तीस-बत्तीस प्रिया (देवियाँ) होती है ॥१०९॥

अप्रधान परिवार देवोका प्रमाण

एदे सव्वे देवा देविंदाणं पहाण-परिवारा ।
अण्णे वि अप्पहाणा संखातीदा विराजंति ॥११०॥

अर्थ —ये सब उपर्युक्त देव इन्द्रोके प्रधान परिवार स्वरूप होते है। इनके अतिरिक्त अन्य और भी असख्यात अप्रधान परिवार सुशोभित होते है ॥११०॥

भवनवासी देवोका आहार और उसका काल प्रमाण

इंद-पडिंद-प्पहुदी तद्देवीओ मणेण आहारं ।
अमयमय-मइसिणिद्धं संगेण्हंते णिरुवमाणं[2] ॥१११॥

अर्थ :—इन्द्र-प्रतीन्द्रादिक तथा इनकी देवियाँ अति-स्निग्ध और अनुपम अमृतमय आहारको मनमे ग्रहण करती है ॥१११॥

[3]चमर-दुगे आहारो [4]वरिस-सहस्सेण होइ णियमेण ।
पणुवीस-दिणाण दलं भूदाणंदादि-छण्हं पि ॥११२॥

व १००० । दि $\frac{२५}{२}$ ।

अर्थ —चमरेन्द्र और वैरोचन इन दो इन्द्रोके एक हजार वर्ष बीतनेपर नियमसे आहार होता है। इसके आगे भूतानन्दादिक छह इन्द्रोके पच्चीस दिनोके आधे (१२½) दिनोमे आहार होता है ॥११२॥

---

१ द प्पमाणाओ, ज ठ पमाणिक । २ द ब णिवरुवमण । क णिवरुवमाण । ३. द. ज ठ. चरमदुगे । ४. द. ज. ठ वरस ।

बारस-दिणेसु जलपह-पहुदी-छण्हं पि भोयणावसरो ।
पण्णरस-वासर-दलं अमिदगदि-प्पमुह-छक्कम्मि ॥११३॥

। १२ । $\frac{15}{2}$ ।

अर्थ :—जलप्रभादिक छह इन्द्रोके बारह दिनके अन्तरालसे और अमितगति आदि छह इन्द्रोके पन्द्रहके आधे (७½) दिनके अन्तरालसे आहारका अवसर आता है ॥११३॥

इंदादी पंचाणं सरिसो आहार-काल-परिमाणं ।
तणुरक्ख-प्पहुदीणं तस्सि उवदेस-उच्छिण्णो[1] ॥११४॥

अर्थ :—इन्द्रादिक पाँच (इन्द्र, प्रतीन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश और पारिषद) के आहार-कालका प्रमाण सदृश है । इसके आगे तनुरक्षकादि देवोके आहार-कालके प्रमाणका उपदेश नष्ट हो गया है ॥११४॥

दस-वरिस-सहस्साऊ जो देवो तस्स भोयणावसरो ।
दोसु दिवसेसु पंचसु पल्ल-[2]पमाणाउ-जुत्तस्स ॥११५॥[3]

अर्थ :—जो देव दस-हजार वर्षकी आयुवाला है उसके दो दिनके अन्तरालसे और पल्योपम-प्रमाणसे सयुक्त देवके पाँच दिनके अन्तरालसे भोजनका अवसर आता है ॥११५॥

भवणवासियोमे उच्छ्वासके समयका निरूपण

चमर-दुगे उस्सासं [4]पण्णरस-दिणाणि पंचवीस-दलं ।
पुह-पुह [5]मुहुत्तयाणिं भूदाणंदादि-छक्कम्मि ॥११६॥

। दि १५ । मु $\frac{25}{2}$ ।

अर्थ :—चमरेन्द्र एव वैरोचन इन्द्रोके पन्द्रह दिनमे तथा भूतानन्दादिक छह इन्द्रोके पृथक्-पृथक् साढे बारह-मुहूर्तोमे उच्छ्वास होता है ॥११६॥

---

१ द ब क ज ठ उच्छिण्णा । २ द. पमाणाअजुत्तस्स । ३ मूल प्रतिमे यह गाथा संख्या ११७ है किन्तु विषय-प्रसगके कारण यहाँ दी गई है । ४ ब पणरस । ५ ब मुहुत्तयाणं ।

बारस-मुहुत्तयाणि जलपह-पहुदीसु छस्सु उस्सासा ।
पण्णरस-मुहुत्त-दलं अमिदगदि-पमुह-छण्हं पि ॥११७॥

। मु १२ । १५/२ ।

अर्थ :—जलप्रभादिक छह इन्द्रोके बारह-मुहूर्तोमे और अमितगति आदि छह इन्द्रोके साढे-सात-मुहूर्तोमे उच्छ्‌वास होता है ॥११७॥

जो अजुदाओ देवो[1] उस्सासा तस्स सत्त-पाणेहिं ।
ते पंच-मुहुत्तेहि [2]पलिदोवम-आउ-जुत्तस्स ॥११८॥

अर्थ :—जो देव अयुत (दस हजार) वर्ष प्रमाण आयुवाले है उनके सात श्वासोच्छ्‌वास-प्रमाण कालमे और पल्योपम-प्रमाण आयुसे युक्त देवके पाँच मुहूर्तोमे उच्छ्‌वास होते हैं ॥११८॥

प्रतीन्द्रादिकोके उच्छ्‌वासका निरूपण

पडिइंदादि-चउण्हं इंदस्सरिसा हवंति उस्सासा ।
तणुरक्ख-प्पहुदीसुं उवएसो संपइ पणट्ठो ॥११९॥

अर्थ :—प्रतीन्द्रादिक चार-देवोके उच्छ्‌वास इन्द्रोके सदृशही होते है । इसके आगे तनुरक्षकादि देवोमे उच्छ्‌वास-कालके प्रमाणका उपदेश इस समय नष्ट हो गया है ॥११९॥

असुरकुमारादिकोके वर्णोका निरूपण

सव्वे असुरा किण्हा हवंति णागा वि कालसामलया ।
गरुडा दीवकुमारा सामल-वण्णा सरीरेहिं ॥१२०॥

[3]उदहि-त्थणिदकुमारा ते सव्वे कालसामलायारा ।
विज्जू विज्जु-सरिच्छा सामल-वण्णा दिसकुमारा ॥१२१॥

अग्गिकुमारा सव्वे जलंत-सिहिजाल-सरिस-दित्ति-धरा ।
णव-कुवलय-सम-भासा वादकुमारा वि णादव्वा ॥१२२॥

---

१ द. ठ देओ, क ज. देउ । २ ब क. पलिदोवमयावजुत्तस्स, द ज. ठ. पलिदोवमयाहजुत्तस्स ।
३ द ब. ज ठ. उदधिधणिद ।

अर्थ —सर्व असुरकुमार (शरीर से) कृष्णवर्ण, नागकुमार कालश्यामल, गरुडकुमार एवं द्वीपकुमार श्यामलवर्ण वाले होते है । सम्पूर्ण उदधिकुमार तथा स्तनितकुमार कालश्यामलवर्णवाले, विद्युत्कुमार बिजलीके सदृश और दिक्कुमार श्यामलवर्णवाले होते है । सब अग्निकुमार जलती हुई अग्निकी ज्वाला सदृश कान्तिको धारण करनेवाले तथा वातकुमार देव नवीन कुवलय (नील कमल) की सदृशता वाले जानने चाहिए ।।१२०-१२२।।

असुरकुमार आदि देवोका गमन

पंचसु कल्लाणेसुं जिणिंद-पडिमाण पूजण-णिमित्तं ।
णंदीसरम्मि दीवे इंदादी जांत्ति भत्तोए ।।१२३।।

अर्थ :—भक्तिसे युक्त सभी इन्द्र पचकल्याणकोके निमित्त (ढाई द्वीप मे) तथा जिनेन्द्र-प्रतिमाओंकी पूजनके निमित्त नन्दीश्वर द्वीपमे जाते है ।।१२३।।

सीलादि-संजुदाणं पूजण-हेदुं परिक्खण-णिमित्तं ।
णिय णिय-कीडण-कज्जे वइरि-समूहस्स मारणिच्छाए[1] ।।१२४।।

असुर-प्पहुदीण गदी उड्ढ-सरूवेण जाव ईसाणं ।
णिय-वसदो पर-वसदो अच्चुद-कप्पावही होदि ।।१२५।।

अर्थ :—शीलादिकसे सयुक्त किन्ही मुनिवरादिककी पूजन एव परीक्षाके निमित्त, अपनी-अपनी क्रीडा करनेके लिए अथवा शत्रु समूहको नष्ट करनेकी इच्छासे असुरकुमारादिक देवोकी गति ऊर्ध्वरूपसे अपने वश (अन्यकी सहायताके विना) ईशान स्वर्ग-पर्यन्त और दूसरे देवोकी सहायतासे अच्युत स्वर्ग पर्यन्त होती है ।।१२४-१२५।।

भवनवासी देव-देवियोके शरीर एव स्वभावादिकका निरूपण

कणयं व णिरुवलेवा णिम्मल-कंती सुगंध-णिस्सासा ।
णिरुवमय-रूवरेखा समचउरस्संग-संठाणा ।।१२६।।

लक्खण-वंजण-जुत्ता, संपुण्णमियंक-सुन्दर-महाभा ।
णिच्चं चेय कुमारा देवा देवी ओ तारिसया ।।१२७।।

---

१. द. मारणिट्ठाए ।

अर्थ :—(वे सब देव) स्वर्णके समान, मलके संसर्गसे रहित निर्मल कान्तिके धारक, सुगन्धित निश्वाससे संयुक्त, अनुपम रूपरेखा वाले, समचतुरस्र नामक शरीर संस्थानवाले लक्षणों और व्यंजनोंसे युक्त, पूर्ण चन्द्र सदृश सुन्दर महाकान्ति वाले और नित्य ही (युवा) कुमार रहते हैं, वैसी ही उनकी देवियाँ होती हैं ॥१२६-१२७॥

रोग-जरा-परिहीणा णिरुवम-बल-वीरिएहिं परिपुण्णा ।
आरत्त-पाणि-चरणा कदलीघादेण परिचत्ता ॥१२८॥

वर-रयण-मोडधारी[1] वर-विविह-विभूसणेहिं सोहिल्ला ।
[2]मंसट्ठि-मेध-लोहिद-मज्ज-वसा[3]-सुक्क-परिहीणा ॥१२९॥

कररुह-केस-विहीणा णिरुवम-लावण्ण-दित्ति-परिपुण्णा ।
बहुविह-विलास-सत्ता देवा देवीओ ते होंति ॥१३०॥

अर्थ :—वे देव, देवियाँ रोग एवं जरासे विहीन, अनुपम बल-वीर्यसे परिपूर्ण, किंचित् लालिमा युक्त हाथ-पैरोंसे सहित कदलीघात (अकालमरण) से रहित, उत्कृष्ट रत्नोंके मुकुटको धारण करनेवाले, उत्तमोत्तम विविध-प्रकारके आभूषणोंसे शोभायमान, मांस-हड्डी-मेद-लोहू-मज्जा-वसा और शुक्र आदि धातुओंसे विहीन, हाथोंके नख एवं बालोंसे रहित अनुपम लावण्य तथा दीप्तिसे परिपूर्ण और अनेक प्रकारके हाव-भावोंमें आसक्त रहते (होते) हैं ॥१२८-१३०॥

असुरकुमार आदिकोंमें प्रवीचार

असुरादी भवणसुरा सव्वे ते होंति काय-पविचारा[4] ।
वेदस्सुदीरणाए[5] अणुभवणं [6]माणुस-समाणं ॥१३१॥

अर्थ :—वे सब असुरादिक भवनवासी देव काय-प्रवीचारसे युक्त होते हैं तथा वेद-नोकषायकी उदीरणा होनेपर वे मनुष्योंके समान कामसुखका अनुभव करते हैं ॥१३१॥

धादु-विहीणत्तादो रेद-विणिग्गमणमत्थि ण हु ताणं ।
संकप्प-सुहं जायदि वेदस्स उदीरणा-विगमे ॥१३२॥

---

१ ब मेडधारी । २ द मसड्ढि । ३ द क ज ठ वसू । ४ द ब क ज ठ पडिचारा । ५. द ब वेदसुदीरणाए । ६ द ब क ज ठ माणस ।

अर्थ :– सप्त-धातुओसे रहित होनेके कारण निश्चयसे उन देवोके वीर्यका क्षरण नही होता। केवल वेद-नोकपायकी उदीरणाके शान्त होनेपर उन्हे सकल्पसुख उत्पन्न होता है ।।१३२।।

इन्द्र-प्रतीन्द्रादिकोकी छत्रादि-विभूतियाँ

बहुविह-परिवार-जुदा देविंदा विविह-छत्त-पहुदीहिं ।
सोहंति विभूदीहिं पडिइंदादी य चत्तारो ।।१३३।।

अर्थ :—बहुत प्रकारके परिवारसे युक्त इन्द्र और प्रतीन्द्रादिक चार (प्रतीन्द्र, त्रायस्त्रिश, सामानिक और लोकपाल) देव भी विविध प्रकारकी छत्रादिरूप विभूतिसे शोभायमान होते है ।।१३३।।

पडिइंदादि-चउण्हं सिहासण-आदवत्त-चमराणि ।
णिय-णिय-इंद-समाणि आयारे होंति किचूणा ।।१३४।।

अर्थ : —प्रतीन्द्रादिक चार देवोके सिहासन, छत्र और चमर ये अपने-अपने इन्द्रोके सदृश होते हुए भी आकारमे कुछ कम होते है ।।१३४।।

इन्द्र-प्रतीन्द्रादिकोके चिह्न

सव्वेसिं इंदाणं चिण्हाणि तिरीटमेव मणि-खचिदं ।
पडिइंदादि-चउण्हं चिण्हं मउडं मुणेदव्वा ।।१३५।।

अर्थ :—सब इन्द्रोका चिह्न मणियोसे खचित किरीट (तीन शिखर वाला मुकुट) है और प्रतीन्द्रादिक चार देवोका चिह्न साधारण मुकुट ही जानना चाहिए ।।१३५।।

ओलगशालाके आगे स्थित असुरादि कुलोके चिह्न-स्वरूप
वृक्षोका निर्देश

ओलगसाला-पुरदो चेत्त-दुमा होंति विविह-रयणमया ।
असुर-प्पहुदि-कुलाणं ते चिण्हाइं[1] इमा होंति ।।१३६।।

---

१ ब. क. ज ठ. चिण्हा इदमाहोति ।

अस्सत्थ-सत्तपण्णा संमलि-जंबू य वेदस-कडंबा ।
[1]तह पीयंगू सिरसा पलास-रायद्दुमा कमसो ।।१३७।।

अर्थ :—असुरकुमार आदि कुलोकी ओलगशालाओके आगे क्रमश. विविध प्रकारके रत्नोसे निर्मित अश्वत्थ, सप्तपर्ण, शाल्मलि, जामुन, वेतस, कदम्ब, प्रियगु, शिरीष, पलास और राजद्रुम ये दस चैत्यवृक्ष उनके चिह्न स्वरूप होते है ।।१३६-१३७।।

[भवनवासीदेवोके आहार एव श्वासोच्छ्वासका अन्तराल तथा चैत्य-वृक्षादिका विवरण चित्र पृष्ठ ३०५ मे देखिये]

१. ब. क ज ठ तय ।

भवनवासी देवोके आहार एव श्वासोच्छ्वासका अन्तराल तथा चैत्य-वृक्षादिका विवरण

कुलो के नाम	आहार का अन्तराल	श्वासोच्छ्वास का अन्तराल	शरीर का वर्ण	ऊर्ध्व रूप से गति: स्ववश	ऊर्ध्व रूप से गति: परवश	संस्थान	प्रवीचार	चैत्य-वृक्ष
असुरकुमार	१००० वर्ष	१५ दिन	कृष्ण	स्व-आलम्बन से ईशान-स्वर्ग-पर्यन्त	परावलम्बन रूप से अच्युत स्वर्ग पर्यन्त	समचतुरस्र-संस्थान	कायप्रवीचार से युक्त	अश्वत्थ (पीपल)
नागकुमार	१२½ दिन	१२½ मु०	कालश्याम					सप्तपर्ण
सुपर्णकुमार	,,	,,	श्याम					शालमलि
द्वीपकुमार	,,	,,	श्याम					जामुन
उदधिकुमार	१२ दिन	१२ मु०	कालश्याम					वेतस
स्तनितकुमार	,,	,,	,,					कदम्ब
विद्युत्कुमार	,,	,,	विजलीवत्					प्रियगु
दिक्कुमार	७½ दिन	७½ मु०	श्यामल					शिरीष
अग्निकुमार	,,	,,	अग्निवत्					पलास
वायुकुमार	,,	,,	नीलकमल					राजद्रुम
इनके सामा०, त्राय०, पारिपद एव प्रतीन्द्र	स्व इन्द्रवत्	स्व इन्द्रवत्						
देव १००० वर्ष आयु वाले	२ दिन	७ श्वासो०						
देव १ पल्य के आयु वाले	५ दिन	५ मुहूर्त						

नोट :—गाथाओमे चमर-वैरोचन आदि इन्द्रोके आहार एव श्वासोच्छ्वासका अन्तराल कहा गया है । तालिकामे कुलोका जो अन्तराल दर्शाया है, वही उनके चमरादि इन्द्रोका समझना चाहिए ।

चैत्यवृक्षोंके मूलमे जिनप्रतिमाएँ एव उनके आगे मानस्तम्भोकी स्थिति

चेत्त-दुमा-मूलेसुं पत्तेक्कं चउ-दिसासु चेट्ठंते[1] ।
पंच जिणिंद-प्पडिमा पलियंक-ठिदा परम-रम्मा ।।१३८।।

अर्थ :—प्रत्येक चैत्यवृक्षके मूलभागमे चारो ओर पल्यंकासनसे स्थित परम रमणीय पाँच-पाँच जिनेन्द्र-प्रतिमाएँ विराजमान है ।।१३८।।

पडिमाणं अग्गेसुं रयणत्थंभा हवंति वीस फुडं[2] ।
पडिमा-पीढ-सरिच्छा पीडा थंभाण णादव्वा ।।१३९।।

एक्केक्क-माणथंभे अट्ठावीसं जिणिंद-पडिमाओ ।
चउसु दिसासुं सिंहासणादि-विण्णास-जुत्ताओ ।।१४०।।

अर्थ :—प्रतिमाओके आगे रत्नमय बीस मानस्तम्भ होते है। स्तम्भोकी पीठिकाएँ प्रतिमाओकी पीठिकाओके सदृश जाननी चाहिए। एक-एक मानस्तम्भके ऊपर चारो दिशाओमे सिंहासन आदिके विन्यासमे युक्त अट्ठाईस जिनेन्द्र-प्रतिमाएँ होती है ।।१३९-१४०।।

सेसाओ वण्णणाओ चउ-वण-मज्झत्थ-चेत्ततरु-सरिसा[3] ।
छत्तादि-छत्त-पहुदी-जुदाण[4] जिणणाह-पडिमाणं ।।१४१।।

अर्थ :—छत्रके ऊपर छत्र आदिसे युक्त जिनेन्द्र-प्रतिमाओका शेष वर्णन चार वनोके मध्यमे स्थित चैत्यवृक्षोके सदृश जानना चाहिए ।।१४१।।

चमरेन्द्रादिकोमे परस्पर ईर्षाभाव

चमरिंदो सोहम्मे ईसदि वइरोयणो य ईसाणे[5] ।
भूदाणंदे[6] वेणू धरणाणंदम्मि [7]वेणुधारि त्ति ।।१४२।।

एदे अट्ठ सुरिंदा अण्णोण्णं बहुविहाओ भूदीओ ।
दट्ठूण मच्छरेणं ईसंति सहावदो केई ।।१४३।।

।। इदविभवो[8] समत्तो[9] ।।

---

१. द चेट्ठतो। २ द क. ज. ठ. पुढ। ३ द ब सहस्सा। ४ द ब क. ज. ठ. जुदाणि। ५. ब. ईसाणो। ६. ब. ईसाणदे। ७ ब. क वेणुदारि। ८. द. इदविभवे। ९ द ब समत्ता।

अर्थ :—चमरेन्द्र सौधर्मसे, वैरोचन ईशानसे, वेणु भूतानन्दसे और वेणुधारी धरणानन्दसे ईर्षा करता है। इसप्रकार ये आठ सुरेन्द्र परस्पर नानाप्रकारकी विभूतियोको देखकर मात्सर्यसे एव कितने ही स्वभावसे ईर्षा करते है ।।१४२-१४३।।

।। इन्द्रोका वैभव समाप्त हुआ ।।

भवनवासियोकी संख्या

संखातीदा सेढी भावण-देवाण दस-विकप्पाणं ।
तीए पमाण सेढी [1]बिदंगुल-पढम-मूल-हदा ।।१४४।।

।। सखा समत्ता ।।

अर्थ :—दस भेदरूप भवनवासी देवोका प्रमाण असख्यात-जगच्छ्रेणीरूप है, उसका प्रमाण घनागुलके प्रथम वर्गमूलसे गुणित जगच्छ्रेणी मात्र है ।।१४४।।

।। संख्या समाप्त हुई ।।

भवनवासियोकी आयु

रयणाकरेक्क-उवमा चमर-दुगे होदि आउ-परिमाणं ।
तिण्णि पलिदोवमाणि भूदाणंदादि-जुगलम्मि ।।१४५।।

सा १ । प ३ ।।

वेणु-दुगे पंच-दलं पुण्ण-वसिट्ठेसु दोण्णि पल्लाइं ।
जलपहुदि-सेसयाणं दिवड्ढ-पल्लं तु पत्तेक्कं ।।१४६।।

। प $\frac{5}{2}$ । प २ । प $\frac{3}{2}$ । सेस १२ ।

अर्थ :—चमरेन्द्र एव वैरोचन इन दो इन्द्रोकी आयुका प्रमाण एक सागरोपम, भूतानन्द एवं धरणानन्द युगलकी तीन पल्योपम, वेणु एव वेणुधारी इन दो इन्द्रों की ढाई पल्योपम, पूर्ण एव वशिष्ठकी दो पल्योपम तथा जलप्रभ आदि शेष बारह इन्द्रोमेसे प्रत्येककी आयुका प्रमाण डेढ पल्योपम है ।।१४५-१४६।।

---

१. द. ब. क. ज ठ. विदंगुणगार ।

अहवा उत्तर-इंदेसु पुव्व-भणिदं हवेदि अदिरित्तं ।
पडिइंदादि-चउण्हं आउ-पमाणाणि इंद-समं ॥१४७॥

अर्थ :—अथवा—उत्तरेन्द्रो (वैरोचन, धरणानन्द आदि) की पूर्वमे जो आयु कही गयी है उससे कुछ अधिक होती है । प्रतीन्द्रादिक चार देवोकी आयुका प्रमाण इन्द्रोके सदृश है ॥१४७॥

एक्क-पलिदोवमाऊ सरीर-रक्खाण होदि चमरस्स ।
वइरोयणस्स[1] अहियं भूदाणंदस्स कोडि-पुव्वाणि ॥१४८॥

प १ । प १ । पु को १ ।

अर्थ :—चमरेन्द्रके शरीर-रक्षकोकी एक पल्योपम, वैरोचन इन्द्रके शरीर-रक्षकोकी एक पल्योपमसे अधिक और भूतानन्दके शरीर-रक्षकोकी आयु एक पूर्वकोटि प्रमाण होती है ॥१४८॥

धरणिंदे अहियाणि वच्छर-कोडी हवेदि वेणुस्स ।
तणुरक्खा-उवमाणं अदिरित्तो वेणुधारिस्स ॥१४९॥

पु को १ । व को १ । व को १ ।

अर्थ :—धरणानन्दमे शरीर-रक्षकोकी एक पूर्वकोटिसे अधिक, वेणुके शरीर-रक्षकोकी एक करोड वर्ष और वेणुधारीके शरीर-रक्षकोकी आयु एक करोड वर्षसे अधिक होती है ॥१४९॥

पत्तेक्कमेक्क-लक्खं वासा आऊ सरीर-रक्खाणं ।
सेसम्मि दक्खिणिंदे उत्तर-इंदम्मि अदिरित्ता ॥१५०॥

व १ ल । व १ ल ।

अर्थ :—शेष दक्षिण इन्द्रोके शरीर-रक्षकोमेसे प्रत्येककी एक लाख वर्ष और उत्तरेन्द्रोके शरीर-रक्षकोकी आयु एक लाख वर्षसे अधिक होती है ॥१५०॥

अड्ढाइज्जा दोण्णि य पल्लाणि दिवड्ढ-आउ-परिमाणं ।
आदिम-मज्झिम-बाहिर-तिप्परिस-सुराण चमरस्स ॥१५१॥

प $\frac{5}{2}$ । प २ । प $\frac{3}{2}$ ।

---

१ द वयरोयणस्स ।

अर्थ .—चमरेन्द्रके आदि, मध्यम और बाह्य, इन तीन पारिषद देवोकी आयुका प्रमाण क्रमशः ढाई पल्योपम, दो पल्योपम और डेढ पल्योपम है ।।१५१।।

तिण्णि पलिदोवमाणि अड्ढाइज्जा दुवे कमा होदि ।
वइरोयणस्स आदिम-परिसप्पहुदीण जेट्ठाऊ ।।१५२।।

प ३ । प $\frac{५}{२}$ । प २ ।

अर्थ :—वैरोचन इन्द्रके आदिम आदिक पारिषद देवोकी उत्कृष्ट आयु क्रमश· तीन पल्योपम, ढाई पल्योपम और दो पल्योपम है ।।१५२।।

[1]अट्ठं सोलस-बत्तीसहोंतिपलिदोवमस्स भागाणि ।
भूदाणंदे अहिओ धरणाणंदस्स परिस-तिद-आऊ ।।१५३।।

प $\frac{१}{८}$ । प $\frac{१}{१६}$ । प $\frac{१}{३२}$ ।

अर्थ :—भूतानन्दके तीनो पारिषद देवोकी आयु क्रमश पल्योपमके आठवे, सोलहवे और बत्तीसवे–भाग प्रमाण, तथा धरणानन्दके तीनो पारिषद देवोकी आयु इससे अधिक होती है ।।१५३।।

परिसत्तय-जेट्ठाऊ तिय-दुग-एक्का य पुव्व-कोडीओ ।
वेणुस्स होदि कमसो अदिरित्ता वेणुधारिस्स ।।१५४।।

पु को ३ । पु को २ । पु को १ ।

अर्थ :—वेणुके तीनो पारिषद देवोकी उत्कृष्ट आयु क्रमश तीन, दो और एक पूर्व· कोटि तथा वेणुधारीके तीनो पारिषदोंकी इससे अधिक है ।।१५४।।

तिप्परिसाणं आऊ तिय-दुग-एक्काओ वास-कोडीओ ।
सेसम्मि दक्खिणिंदे अदिरित्तं उत्तरिंदम्मि ।।१५५।।

व को ३ । व को २ । व को १ ।

अर्थ :—शेष दक्षिण-इन्द्रो के तीनो पारिषद देवोकी आयु क्रमश. तीन, दो और एक करोड वर्ष तथा उत्तर इन्द्रोके तीनो पारिषद देवोंकी आयु इससे अधिक है ।।१५५।।

---

१. ब. क अट्ठसोलस । ज. ठ. अट्ठेसोलस ।

एक्क-पलिदोवमाऊ सेणाधीसाण होदि चमरस्स ।
वइरोयणस्स अहियं भूदाणंदस्य कोडि-पुव्वाणि ।।१५६।।

प १ । प १ । पुव्व को १ ।

अर्थ :—चमरेन्द्रके सेनापति देवोकी आयु एक पल्योपम, वैरोचनके सेनापति देवोकी इससे अधिक और भूतानन्दके सेनापति देवोकी आयु एक पूर्व-कोटि है ।।१५६।।

धरणाणंदे अहियं वच्छर-कोडी हवेदि वेणुस्स ।
[1]सेणा-महत्तराऊ अदिरित्ता[2] वेणुधारिस्स ।।१५७।।

पु० को० १ । व० को० १ । व० को० १ ।

अर्थ :—धरणानन्दके सेनापति देवोंकी आयु एक पूर्वकोटिसे अधिक, वेणुके सेनापति देवोकी एक करोड वर्ष और वेणुधारीके सेनापति देवोकी आयु एक करोड वर्षसे अधिक है ।।१५७।।

पत्तेक्कमेक्क-लक्खं आऊ [3]सेणावईण णादव्वो ।
सेसम्मि दक्खिणिंदे [4]अदिरित्तं उत्तरिदम्मि ।।१५८।।

व० १ ल । व १ ल ।

अर्थ :—शेष दक्षिणेन्द्रोमे प्रत्येक सेनापतिकी आयु एक लाख वर्ष और उत्तरेन्द्रोके सेनापतियोकी आयु इससे अधिक जाननी चाहिए ।।१५८।।

पलिदोवमद्धमाऊ आरोहक-वाहणाण चमरस्स ।
वइरोयणस्स अहियं भूदाणंदस्स कोडि-वरिसाइं ।।१५९।।

प $\frac{1}{2}$ । प $\frac{1}{2}$ । व को १ ।

अर्थ :—चमरेन्द्रके आरोहक वाहनोकी आयु अर्ध-पल्योपम, वैरोचनके आरोहक-वाहनोकी अर्ध-पल्योपमसे अधिक और भूतानन्दके आरोहक वाहनोकी आयु एक करोड वर्ष होती है ।।१५९।।

---

१ द व. ज. ठ सेसा । २ द. व. क ज. ठ अधिरित्ता । ३ द. सेण्णावईण । ४. व क. अधिरित्त, ज ठ अविरित्त ।

धरणाणंदे अहियं वच्छर-लक्खं हवेदि वेणुस्स ।
आरोह-वाहणाऊ[1] तु अतिरित्तं वेणुधारिस्स[2] ॥१६०॥

। व० को १ । व १ ल । व १ ल ।

अर्थ :—धरणानन्दके आरोहक वाहनोकी आयु एक करोड वर्षसे अधिक, वेणुके आरोहक वाहनोकी एक लाख वर्ष और वेणुधारीके आरोहक वाहनोकी आयु एक लाख वर्षसे अधिक होती है ॥१६०॥

पत्तेक्कमद्ध-लक्खं आरोहक-वाहणाण जेट्ठाऊ ।
सेसम्मि दक्खिणिंदे अदिरित्तं उत्तरिंदम्मि ॥१६१॥

५००००

अर्थ :—शेष दक्षिण इन्द्रोमेसे प्रत्येकके आरोहक वाहनोकी उत्कृष्ट आयु अर्धलाखवर्ष और उत्तरेन्द्रोके आरोहक वाहनोकी आयु इससे अधिक है ॥१६१॥

जेत्तियमेत्तं[3] आऊ पइण्ण-अभियोग-किब्बिस-सुराणं ।
तप्परिमाण-परूवण-उवएसस्सप्पहि[4] पणट्ठो ॥१६२॥

अर्थ :—प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषिक देवोकी जितनी-जितनी आयु होती है, उसके प्रमाणके प्ररूपणके उपदेश इस समय नष्ट हो चुके है ॥१६२॥

[भवनवासी-इन्द्रोकी (सपरिवार) आयुके प्रमाणकें विवरण की तालिका पृष्ठ ३१२-३१३ मे देखिये]

---

१. ब. वाहणाइ । २. क. ब. वेणुदारिस्स । ३. द मेत्तयाऊ, ज ठ मेत्तियाऊ । ४. द. ब. ज. ठ. उवएस ।

भवनवासी-इन्द्रोंकी (सपरिवार)

इन्द्रोंके नाम	दक्षिणेन्द्र उत्तरेन्द्र	उत्कृष्ट आयु	प्रतीन्द्रों की	त्रायस्त्रिंशों की	सामानिक देवों की	लोकपालों की	तनुरक्षक देवोंकी
चमर	द०	एक सागर					एक पल्य
वैरोचन	उ०	साधिक एक सा०					साधिक एक पल्य
भूतानन्द	द०	तीन पल्योपम					एक पूर्व कोटि
धरणानन्द	उ०	साधिक तीन पल्य					सा. एक पूर्व कोटि
वेणु	द०	२½ पल्य	स्व-इन्द्रवत्	स्व-इन्द्रवत्	स्व-इन्द्रवत्	स्व-इन्द्रवत्	एक करोड वर्ष
वेणुधारी	उ०	साधिक २½ प०					सा. एक करोड वर्ष
पूर्ण	द०	२ पल्योपम					एक लाख वर्ष
वशिष्ठ	उ०	साधिक २ पल्य					सा. एक लाख वर्ष
जलप्रभादि छह	द०	१½ पल्य					एक लाख वर्ष
जलकान्त आदि छह	उ०	साधिक १½ पल्य					साधिक एक लाख वर्ष

आयुके प्रमाणका विवरण				गाथा–१४४-१६० तक
पारिषद			अनीक देवोंकी	वाहन देवोंकी
आदि	मध्य	बाह्य		
२$\frac{१}{२}$ पल्योपम	२ पल्योपम	१$\frac{१}{२}$ पल्योपम	१ पल्य	$\frac{१}{२}$ पल्य
३ पल्योपम	२$\frac{१}{२}$ पल्योपम	२ पल्योपम	साधिक १ पल्य	साधिक $\frac{१}{२}$ पल्य
पल्य का $\frac{१}{८}$ भाग	पल्य का $\frac{१}{१६}$ भाग	पल्य का $\frac{१}{३२}$ भाग	१ पूर्वकोटि	१ करोड वर्ष
सा.पल्य का $\frac{१}{८}$ भाग	सा पल्यका $\frac{१}{१६}$ भाग	सा पल्यका $\frac{१}{३२}$ भाग	साधिक १ पूर्वकोटि	साधिक १ करोड वर्ष
३ पूर्व कोटि	२ पूर्व कोटि	१ पूर्व कोटि	१ करोड वर्ष	१ लाख वर्ष
सा. ३ पूर्व कोटि	सा २ पूर्व कोटि	साधिक १ पूर्वकोटि	साधिक १ करोड वर्ष	साधिक १ लाख वर्ष
३ करोड वर्ष	२ करोड वर्ष	एक करोड वर्ष	१ लाख वर्ष	$\frac{१}{२}$ लाख वर्ष
सा ३ करोड वर्ष	सा. २ करोड वर्ष	सा एक करोड वर्ष	साधिक १ लाख वर्ष	साधिक $\frac{१}{२}$ लाख वर्ष
३ करोड वर्ष	२ करोड वर्ष	एक करोड वर्ष	१ लाख वर्ष	$\frac{१}{२}$ लाख वर्ष
साधिक ३ करोड वर्ष	सा २ करोड वर्ष	सा एक करोड वर्ष	सा० एक लाख वर्ष	साधिक $\frac{१}{२}$ लाख वर्ष

आयुकी अपेक्षा भवनवासियोका सामर्थ्य

दस-वास-सहस्साऊ जो देवो[1] माणुसाण सयमेक्कं ।
मारिदुमह-पोसेदुं सो सक्कदि अप्प-सत्तीए ।।१६३।।

खेत्तं दिवड्ढ-सय-धणु-पमाण-आयाम-वास-बहलत्तं ।
बाहाहि [2]वेढेदुं [3]उप्पाडेदुं पि सो सक्को ।।१६४।।

द १५० ।

अर्थ —जो देव दस हजार वर्षकी आयुवाला है, वह अपनी शक्तिसे एकसौ मनुष्योको मारने अथवा पोसनेके लिए समर्थ है, तथा वह देव डेढसौ धनुष प्रमाण लम्बे, चौडे और मोटे क्षेत्रको बाहुओसे वेष्टित करने और उखाडनेमे भी समर्थ है ।।१६३-१६४।।

एक्क-पलिदोवमाऊ उप्पाडेदुं महीए छक्खंडं ।
तग्गद-णर-तिरियाणं मारेदुं पोसिदुं सक्को ।।१६५।।

अर्थ .—एक पल्योपम आयु वाला देव पृथिवीके छह खण्डोको उखाड़ने तथा वहाँ रहने वाले मनुष्य एव तिर्यंचोको मारने अथवा पोसनेके लिए समर्थ है ।।१६५।।

उवहि-उवमाण-जीवी जंबूदीवं [4]समग्गमुक्खलिदुं ।
तग्गद-णर-तिरियाणं मारेदुं पोसिदुं सक्को ।।१६६।।

अर्थ —एक सगरोपम काल तक जीवित रहनेवाला देव समग्र जम्बूद्वीपको उखाड फेकने अर्थात् तहस-नहस करने और उसमे स्थित मनुष्य एव तिर्यंचोको मारने अथवा पोसनेके लिए समर्थ है ।।१६६।।

आयुकी अपेक्षा भवनवासियोमे विक्रिया

दस-वास-सहस्साऊ सद-रूवाणि विगुव्वणं कुणदि ।
उक्कस्सम्मि जहण्णे सग-रूवा मज्झिमे विविहा ।।१६७।।

---

१ ब. देवाउ । २ द. ज ठ वेदेदु । ३. द ब ज ठ उप्पादेदु । ४. द ब क ज. ठ. जबूदीवस्स उग्गमे ।

अर्थ :—दस हजार वर्षकी आयुवाला देव उत्कृष्ट रूपसे सौ, जघन्य रूपसे सात और मध्यम रूपसे विविध रूपोंकी विक्रिया करता है ॥१६७॥

अवसेस-सुरा सव्वे णिय-णिय-ओही[1] पमाण-खेत्ताणि ।
[2]जेत्तियमेत्ताणि पुढं पूरंति [3]विकुव्वणाए एदाइं ॥१६८॥

अर्थ :—अपने-अपने अवधिज्ञानके क्षेत्रोंका जितना प्रमाण है, उतने क्षेत्रोंको शेष सब देव पृथक्-पृथक् विक्रियासे पूरित करते हैं ॥१६८॥

आयुकी अपेक्षा गमनागमन-शक्ति

संखेज्जाऊ जस्स य सो संखेज्जाणि जोयणाणि सुरो[4] ।
गच्छेदि एक्क-समए आगच्छदि तेत्तियाणि पि ॥१६९॥

अर्थ :—जिस देवकी संख्यात वर्षकी आयु है, वह एक समयमें संख्यात योजन जाता है और इतने ही योजन आता है ॥१६९॥

जस्स असंखेज्जाऊ सो वि असंखेज्ज-जोयणाणि पुढं ।
गच्छेदि एक्क-समए आगच्छदि तेत्तियाणि पि ॥१७०॥

अर्थ :—तथा जिस देवकी आयु असंख्यात वर्षकी है, वह एक समयमे असंख्यात योजन जाता है और इतने ही योजन आता है ॥१७०॥

भवनवासिनी-देवियोंकी आयु

अड्ढाइज्जं पल्लं आऊ देवीण होदि चमरम्मि ।
वइरोयणम्मि तिण्णि य भूदाणंदम्मि पल्ल-अट्ठंसो ॥१७१॥

प $\frac{5}{2}$ । प ३ । प $\frac{1}{8}$ ।

अर्थ :—चमरेन्द्रकी देवियोंकी आयु ढाई पल्योपम, वैरोचनकी देवियोंकी तीन पल्योपम और भूतानन्दकी देवियोंकी आयु पल्योपमके आठवें भागमात्र होती है ॥१७१॥

---

१. द. ब क. ज. ठ उहइपमाण । २ ब क. ज. ठ ज्जित्तिय । ३. ब विउव्वणाए । ४. द. ब क ज. ठ सुरा ।

धरणाणंदे अहियं वेणुम्मि हवेदि पुव्वकोडि-तियं ।
देवीण[1] आउसंखा अदिरित्तं वेणुधारिस्स ।।१७२।।

प $\frac{1}{8}$ । पु को ३ ।

अर्थ :—धरणानन्दकी देवियोकी आयु पल्यके आठवें-भागसे अधिक, वेणुकी देवियोकी तीन पर्वकोटि और वेणुधारीकी देवियोकी आयु तीन पूर्व कोटियोसे अधिक है ।।१७२।।

पत्तेक्कमाउसंखा देवीणं तिण्णि वरिस-कोडीओ ।
सेसम्मि दक्खिणिदे अदिरित्तं उत्तरिंदम्मि ।।१७३।।

व को ३ ।

अर्थ :—अवशिष्ट दक्षिण इन्द्रोमेसे प्रत्येककी तीन करोड वर्ष और उत्तर इन्द्रोमेसे प्रत्येक की देवियोकी आयु इससे अधिक है ।।१७३।।

[2]पडिइंदादि-चउण्हं आऊ देवीण होदि पत्तेक्कं ।
णिय-णिय इंद-पविण्णद-देवी आउस्स सारिच्छो ।।१७४।।

अर्थ :—प्रतीन्द्रादिक चार देवोकी देवियोमेसे प्रत्येककी अपने अपने इन्द्रोकी देवियोकी कही गई आयुके सदृश होती है ।।१७४।।

जेत्तियमेत्ता आऊ सरीररक्खादियाण देवीणं ।
तस्स पमाण-णिरूवम-उवदेसो णत्थि काल-वसा ।।१७५।।

अर्थ :—अगरक्षक आदिक देवोकी देवियोकी जितनी आयु होती है, उसके प्रमाणके कथनका उपदेश कालके वशसे इस समय नही है ।।१७५।।

भवनवासियोकी जघन्य-आयु

असुरादि-दस-कुलेसु सव्व-णिगिट्ठाण[3] होदि देवाणं ।
दस-वास-सहस्साणि जहण्ण-आउस्स परिमाणं ।।१७६।।

।। आउ-परिमाण समत्तं[4] ।।

---

१. द व क. ज ठ अदेवीण । २ द ब. क ज. पडिइदादि । ३ ब. क. ज ठ. णिरिट्ठाण । ४. द ब क ज ठ. सम्मत्ता ।

अर्थ :—असुरकुमारादिक दस निकायोमे सर्व निकृष्ट देवोंकी जघन्य आयुका प्रमाण दस हजार वर्ष है ।।१७६।।

।। आयुका प्रमाण समाप्त हुआ ।।

भवनवासी देवोके शरीरका उत्सेध

असुराण पंचवीसं सेस-सुराणं हवंति दस-दंडा ।
एस सहाउच्छेहो विक्किरियंगेसु बहुभेया ।।१७७।।

द २५ । द १० ।

।। उच्छेहो गदो[1] ।।

अर्थ :—असुरकुमारोकी पच्चीस धनुष और शेष देवोकी ऊँचाई दस धनुष मात्र होती है, शरीरकी यह ऊँचाई स्वाभाविक है किन्तु विक्रिया निर्मित शरीरोकी ऊँचाई अनेक प्रकारकी होती है ।।१७७।।

।। उत्सेधका कथन समाप्त हुआ ।।

ऊर्ध्वदिशामे उत्कृष्ट रूपसे अवधिक्षेत्रका प्रमाण

णिय-णिय-भवण-ठिदाणं उक्कस्से भवणवासि-देवाणं ।
उड्ढेण होदि णाणं कंचरणगिरि-सिहर-परियंतं ।।१७८।।

अर्थ :—अपने-अपने भवनमे स्थित भवनवासी देवोका अवधिज्ञान ऊर्ध्वदिशामे उत्कृष्ट-रूपसे मेरुपर्वतके शिखरपर्यन्त क्षेत्रको विषय करता है ।।१७८।।

अध. एवं तिर्यग् क्षेत्रमे अवधिज्ञानका प्रमाण

[2]तट्ठाणादोधोधो थोवत्थोवं पयट्टदे ओही ।
तिरिय-सरूवेण पुणो बहुतर-खेत्तेसु अक्खलिदं ।।१७९।।

---

१ द. ठ गदा । २ द तट्ठाणादो दोद्दो, ब तट्ठाणादोद्दो, क. तट्ठाणादो दो धो, ज. ठ. तट्ठाणादो द्दो धो ।

अर्थ :—भवनवासी देवोका अवधिज्ञान अपने-अपने भवनोके नीचे-नीचे थोडे-थोडे क्षेत्रमे प्रवृत्ति करता है परन्तु वही तिरछेरूपसे बहुत अधिक क्षेत्रमे अबाधित प्रवृत्ति करता है ।।१७९।।

क्षेत्र एव कालापेक्षा जघन्य अवधिज्ञान

पणुवीस जोयणाणि होंदि जहण्णेण ओहि-परिमाणं ।
भावणवासि-सुराणं एक्क-दिणब्भंतरे काले ।।१८०।।

यो २५ । का दि १ ।

अर्थ —भवनवासी देवोके अवधिज्ञानका प्रमाण जघन्यरूपमे पच्चीस योजन है । पुनः कालकी अपेक्षा एक दिनके भीतरकी वस्तुको विषय करता है ।।१८०।।

असुरकुमार-देवोके अवधिज्ञानका प्रमाण

असुराणामसंखेज्जा जोयण-कोडीउ ओहि-परिमाणं ।
खेत्ते कालम्मि पुणो होंति असंखेज्ज-वासाणि ।।१८१।।

रि । क । जो । रि । व ।

अर्थ —असुरकुमार देवोके अवधिज्ञानका प्रमाण क्षेत्रकी अपेक्षा असख्यात करोड योजन और कालकी अपेक्षा असख्यात वर्षमात्र है ।।१८१।।

शेष देवोके अवधिज्ञानका प्रमाण

संखातीद-सहस्सा उक्कस्से जोयणाणि सेसाणं ।
असुराणं कालादो संखेज्ज-गुणेण हीणा य ।।१८२।।

अर्थ —शेष देवोके अवधिज्ञानका प्रमाण उत्कृष्ट रूपसे क्षेत्रकी अपेक्षा असख्यात हजार योजन और कालकी अपेक्षा असुरकुमारोके अवधिज्ञानके कालसे सख्यातगुणा कम है ।।१८२।।

अवधिक्षेत्र-प्रमाण विक्रिया

णिय-णिय-ओहीक्खेत्तं णाणा-रूवाणि तह [1]विकुव्वंता ।
पूरंति असुर-पहुदी भावण-देवा दस-वियप्पा ।।१८३।।

।। ओही गदा ।।

---

१ द क. वकुव्वता, ज. ठ वकुव्वती ।

अर्थ :—असुरकुमारादि दस-प्रकारके भवनवासी देव अनेक रूपोकी विक्रिया करते हुए अपने-अपने अवधिज्ञानके क्षेत्रको पूरित करते है ।।१८३।।

।। अवधिज्ञानका कथन समाप्त हुआ ।।

भवनवासी-देवोमे गुणस्थानादिका वर्णन

गुण-जीवा पज्जत्ती पाणा सण्णा य मग्गणा कमसो ।
उवजोगा कहिदव्वा एदाण कुमार-देवाणं ।।१८४।।

अर्थ :—अब इन कुमार-देवोके क्रमश गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा आदि चौदह मार्गणा और उपयोगका कथन करना चाहिए ।।१८४।।

भवण-सुराणं अवरे दो [1]गुणठाणं च तम्मि चउसंखा ।
मिच्छाइट्ठी सासण-सम्मो मिस्सो विरदसम्मा ।।१८५।।

अर्थ :—भवनवासी देवोके अपर्याप्त अवस्थामे मिथ्यात्व और सासादन ये दो तथा पर्याप्त अवस्थामे मिथ्यादृष्टि, सासादन-सम्यक्त्व, मिश्र और अविरत सम्यग्दृष्टि ये चार गुणस्थान होते है ।।१८५।।

उपरितन गुणस्थानोकी विशुद्धि-विनाशके फलसे भवनवासियोमे उत्पत्ति

ताण अपच्चक्खाणावरणोदय-सहिद भवण-जीवाणं ।
विसयाणंद-जुदाणं णाणाविह राग-पाराणं ।।१८६।।

देसविरदादि उवरिम दसगुणठाणाण-हेदु भूदाओ ।
जाओ विसोहियाओ कइया वि-ण-ताओ जायंते ।।१८७।।

अर्थ :—अप्रत्याख्यानावरण कषायके उदय सहित, विषयोके आनन्दसे युक्त, नानाप्रकारकी राग-क्रियाओमे निपुण उन भवनवासी जीवोके देशविरत-आदिक उपरितन दस गुणस्थानोके हेतुभूत जो विशुद्ध परिणाम है, वे कदापि नही होते है ।।१८६-१८७।।

---

१. ब. गुणट्ठाण चउ ।

जीवसमासा दो च्चिय णिव्वित्तियपुण्ण-पुण्ण भेदेण ।
पज्जत्ती छच्चेव य तेत्तियमेत्ता अपज्जत्ती ।।१८८।।

अर्थ —इन देवोके निर्वृत्त्यपर्याप्त और पर्याप्तके भेदसे दो जीवसमास, छह पर्याप्तियाँ और इतने मात्र ही अपर्याप्तियाँ होती है ।।१८८।।

पंच य इंदिय-पाणा मण-वय-कायाणि आउ-आणपाणाइं ।
पज्जत्ते दस पाणा इदरे मण-वयण-आणपाणूणा ।।१८९।।

अर्थ —पर्याप्त अवस्थामे पाँचो इन्द्रियप्राण, मन, वचन और काय, आयु एव आनप्राण ये दस प्राण तथा अपर्याप्त अवस्थामे मन, वचन और श्वासोच्छ्वाससे रहित शेप सात प्राण होते है ।।१८९।।

चउ सण्णा ताओ भय-मेहुण-आहार-गंथ-णामाणि ।
देवगदी पंचक्खा तस-काया एक्करस-जोगा ।।१९०।।

चउ-मण-चउ-वयणाइं वेगुव्व-दुगं तहेव कम्म-इयं ।
पुरिसित्थी [1]वेद-जुदा सयल-कसाएहि परिपुण्णा ।।१९१।।

सव्वे छण्णाण-जुदा मदि-सुद-णाणाणि ओहि-णाण च ।
मदि-अण्णाणं तुरिमं सुद-अण्णाण विभंग-णाणं पि ।।१९२।।

सव्वे असंजदा[2] ति-दंसण-जुत्ता अचक्खु-चक्खोही ।
लेस्सा किण्हा णीला कउया पीता य [3]मज्झिमंस-जुदा ।।१९३।।

भव्वाभव्वा, [4]पंच हि सम्मत्तेहिं समण्णिदा सव्वे ।
उवसम-वेदग-मिच्छा-सासण[5]-मिच्छाणि ते होंति ।।१९४।।

अर्थ :—वे देव भय, मैथुन, आहार और परिग्रह नामवाली चारो सज्ञाओसे, देवगति, पचेन्द्रिय जाति और त्रसकायसे चारो मनोयोग, चारो वचनयोग, दो वैक्रियिक (वैक्रियिक, वैक्रियिक-

---

१ द व सहूणा, ज सडूणा, ठ. सदूणा । २ द व क ज. ठ असजदाइ -दसण-जुत्ता य चक्खु-अचक्खोही । ३. द क मज्झिमस्स-जुदा, व मज्झिमस-जुदा । ज ठ. जिमस्सजुदा । ४ व. क. ज ठ एव्व हि । ५. व सासासण ।

मिश्र) तथा कार्मण इन ग्यारह योगोसे, पुरुष और स्त्री वेदोसे, सम्पूर्ण कषायोसे परिपूर्ण, मति, श्रुत, अवधि, मतिअज्ञान, श्रुताज्ञान और विभग, इन सभी छह ज्ञानोसे, सब असयम, अचक्षु, चक्षु एवं अवधि इन तीन दर्शनोसे, कृष्ण, नील, कापोत और पीतके मध्यम अशोसे, भव्य एवं अभव्य तथा औपशमिक, वेदक, मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र इन पाचो सम्यक्त्वोसे समन्वित होते है ।।१९०-१९४।।

सण्णी[1] य भवणदेवा हवंति आहारिणो अणाहारा ।
सायार-अणायारा उवजोगा होंति सव्वाणं ।।१९५।।

अर्थ :—भवनवासी देव सज्ञी तथा आहारक और अनाहारक होते है, इन सब देवोके साकार (ज्ञान) और निराकार (दर्शन) ये दोनो ही उपयोग होते है ।।१९५।।

मज्झिम-विसोहि-सहिदा उदयागद-सत्थ-[2]पगिदि-सत्तिगदा ।
एवं [3]गुणठाणादी जुत्ता देवा व होंति देवीओ ।।१९६।।

।। गुणठाणादी समत्ता ।।

अर्थ :—वे देव मध्यम विशुद्धिसे सहित है और उदयमे आई हुई प्रशस्त प्रकृतियोकी अनुभाग-शक्तिको प्राप्त है । इसप्रकार गुणस्थानादिसे सयुक्त देवोके सदृश देवियाँ भी होती है ।।१९६।।

गुणस्थानादिका वर्णन समाप्त हुआ ।

एक समयमे उत्पत्ति एव मरणका प्रमाण

सेढी-असंखभागो विंदंगुल-पढम-वग्गमूल-हदो ।
भवणेसु एक्क-समए जायंति मरंति तम्मेत्ता ।।१९७।।

।। जम्मण-मरण-जीवाण सखा समत्ता ।।

अर्थ :—घनागुलके प्रथम वर्गमूलसे गुणित जगच्छ्रेणीके असख्यातवे-भाग प्रमाण जीव भवनवासियोमे एक समयमे उत्पन्न होते है और इतने ही मरते है । १९७।।

।। उत्पन्न होने वाले एवं मरने वाले जीवोकी सख्या समाप्त हुई ।।

---

१. द. ब क ज ठ सव्वे। २ द ब क ज ठ परिदि। ३. द. ब क एव गुणठाणजुत्ता देवं वा होइ देवीओ। ज ठ. एव गुणगणजुत्ता देवा वा होइ देवीओ।

भवनवासियोंकी आगति निर्देश

णिक्कंता भवणादो गब्भे [1]सम्मुच्छि कम्म-भूमीसुं ।
पज्जत्ते उप्पज्जदि णरेसु तिरिएसु मिच्छभाव-जुदा ।।१९८।।

अर्थ :—मिथ्यात्वभावसे युक्त भवनवासी देव भवनोंसे निकल (चय) कर कर्मभूमियोंमें गर्भज या सम्मूर्च्छनज तथा पर्याप्त मनुष्यों अथवा तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होते हैं ।।१९८।।

सम्माइट्ठी देवा णरेसु जम्मंति कम्म-भूमीए ।
गब्भे पज्जत्तेसुं सलाग-पुरिसा ण होंति कइयाइं ।।१९९।।

अर्थ :—सम्यग्दृष्टि भवनवासी देव (वहाँसे चयकर) कर्मभूमियोंके गर्भज और पर्याप्त मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं, किन्तु वे शलाका-पुरुष कदापि नहीं होते ।।१९९।।

तेसिमणंतर-जम्मे णिव्वुदि-गमणं हवेदि केसिं पि ।
संजम-देसवदाइं गेण्हंते केइ भव-भीरू ।।२००।।

।। आगमण गदं ।।

अर्थ :—उनमेंसे किन्हींके आगामी भवमें मोक्षकी भी प्राप्ति हो जाती है और कितने ही संसारसे भयभीत होकर सकल संयम अथवा देशव्रतोंको ग्रहण कर लेते हैं ।।२००।।

।। आगमनका कथन समाप्त हुआ ।।

भवनवासी-देवोंकी आयुके बन्ध-योग्य परिणाम

[2]अचलिद-संका केई णाण-चरित्ते किलिट्ठ-भाव-जुदा ।
भवणामरेसु आउं बंधंति हु मिच्छ-भाव-जुदा ।।२०१।।

अर्थ :—ज्ञान और चारित्रमें दृढ शंका सहित, संक्लेश परिणामों वाले तथा मिथ्यात्व भावसे युक्त कोई (जीव) भवनवासी देवों सम्बन्धी आयुको बांधते हैं ।।२०१।।

सबल-चरित्ता केई उम्मग्गंथा णिदाणगद-भावा ।
पावग-पहुदिम्हि मया भावणवासीसु जम्मंते ।।२०२।।

---

१ द. ब. क. ज. ठ. सम्मुच्छ । २ द. ब. क. आवलिदसखा ।

अर्थ :—शबल (दोष पूर्ण) चारित्र वाले, उन्मार्ग-गामी, निदान-भावोसे युक्त तथा पापोकी प्रमुखतासे सहित जीव भवनवासियोमे उत्पन्न होते है ।।२०२।।

अविणय-सत्ता केई कामिणि-विरहज्जरेण जज्जरिदा ।
कलहपिया पाविट्ठा जायंते [1]भवण-देवेसु ।।२०३।।

अर्थ —कामिनीके विरहरूपी ज्वरसे जर्जरित, कलहप्रिय और पापिष्ठ कितने ही अविनयी जीव भवनवासी देवोमे उत्पन्न होते है ।।२०३।।

सण्णि-असण्णी जीवा मिच्छा-भावेण संजुदा केई ।
[2]जायंति भावणेसुं दंसण-सुद्धा ण कइया वि ।।२०४।।

अर्थ :—मिथ्यात्व भावसे संयुक्त कितने ही सञ्ज्ञी और असञ्ज्ञी जीव भवनवासियोमे उत्पन्न होते है, परन्तु विशुद्ध सम्यग्दृष्टि (जीव) इन देवोमे कदापि उत्पन्न नही होते ।।२०४।।

देव-दुर्गतियोमे उत्पत्तिके कारण

मरणे विराहिदम्हि य केई कंदप्प-किब्बिसा देवा ।
अभियोगा संमोह-प्पहुदी-सुर-दुग्गदीसु जायंते ।।२०५।।

अर्थ :—(समाधि) मरणके विराधित करनेपर कितने ही जीव कन्दर्प, किल्विष, आभियोग्य और सम्मोह आदि देव-दुर्गतियोमे उत्पन्न होते है ।।२०५।।

कन्दर्प-देवोमे उत्पत्तिके कारण

जे सच्च-वयण-हीणा [3]हस्सं कुव्वंति बहुजणे णियमा ।
कंदप्प-रत्त-हिदया ते कंदप्पेसु जायंति ।।२०६।।

अर्थ :—जो सत्य वचनसे रहित है, बहुजनमे हसी करते है और जिनका हृदय कामासक्त रहता है, वे निश्चयसे कन्दर्प देवोमे उत्पन्न होते है ।।२०६।।

वाहन-देवोमे उत्पत्तिके कारण

जे भूदि-कम्म-मंताभिजोग-कोदूहलाइ-संजुत्ता ।
जण-वंचणे पयट्टा वाहण-देवेसु ते होंति ।।२०७।।

---

१ द. भवणादिवेसु । २. द. जायते । ३ द ब क. ज ठ हिंस ।

अर्थ :– जो भूतिकर्म, मन्त्राभियोग और कौतूहलादिसे सयुक्त है, तथा लोगोकी वचना करनेमे प्रवृत्त रहते है, वे वाहन देवोमे उत्पन्न होते है ।।२०७।।

किल्विषिक-देवोमे उत्पत्तिके कारण

तित्थयर-संघ-पडिमा-आगम-गंथादिएसु पडिकूला ।
दुव्विणया णिगदिल्ला जायंते किब्बिस-सुरेसुं ।।२०८।।

अर्थ :—तर्थकर, सघ-प्रतिमा एव आगम-ग्रन्थादिकके विषयमे प्रतिकूल, दुर्विनयी तथा प्रलाप करनेवाले (जीव) किल्विषिक देवोमे उत्पन्न होते है ।।२०८।।

सम्मोह-देवोमे उत्पत्तिके कारण

उप्पह-उवएसयरा विप्पडिवण्णा जिणिंद-मग्गम्मि ।
मोहेणं संमूढा सम्मोह-सुरेसु जायंते ।।२०९।।

अर्थ :—उत्पथ-कुमार्गका उपदेश करनेवाले, जिनेन्द्रोपदिष्ट मार्गके विरोधी और मोहसे मुग्ध जीव सम्मोह जातिके देवोमे उत्पन्न होते है ।।२०९।।

असुरोमे उत्पन्न होनेके कारण

जे कोह-माण-माया-लोहासत्ता किलिट्ठ-चारित्ता ।
वइराणुबद्ध-रुचिणो ते उप्पज्जंति असुरेसुं ।।२१०।।

अर्थ :—जो क्रोध, मान, माया और लोभमे आसक्त है, दुश्चारित्रवाले (क्रूराचारी) है तथा वैर-भावमे रुचि रखते है । वे असुरोमे उत्पन्न होते है ।।२१०।।

उत्पत्ति एव पर्याप्ति वर्णन

उप्पज्जते भवणे उववादपुरे महारिहे सयणे ।
पावंति छ-पज्जत्तिं जादा अंतो-मुहुत्तेण ।।२११।।

अर्थ :–(उक्त जीव) भवनवासियोके भवनके भीतर उपपादशालामे बहुमूल्य शय्यापर उत्पन्न होते है और अन्तर्मुहूर्तमे ही छह पर्याप्तियाँ प्राप्त कर लेते है ।।२११।।

सप्तादि-धातुओका एव रोगादिका निषेध

अट्ठि-सिरा-रुहिर-वसा-मुत्त-पुरीसाणि केस-लोमाइं ।
[1]चम्म-णह-मंस-पहुदी ण होंति देवाण संघडणे ॥२१२॥

अर्थ :—देवोकी शरीर रचनामे हड्डी, नस, रुधिर, चर्बी, मूत्र, मल, केश, रोम, चमडा, नख और मास आदि नही होते है ॥२१२॥

वण्ण-रस-गंध-फासे[2] अइसय-वेकुव्व-दिव्व-खंदा हि ।
णेदेसु[3] रोयवादि-उवठिदी कम्माणुभावेण ॥२१३॥

अर्थ :—उन देवोके वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्शके विषयमे अतिशयताको प्राप्त वैक्रियिक दिव्य-स्कन्ध होते है, अत: कर्मके प्रभावसे रोग आदिकी उत्पत्ति नही होती है ॥२१३॥

भवणवासियोमे उत्पत्ति समारोह

[4]उप्पण्णे सुर-भवणे पुव्वमणुग्घाडिदं कवाण-जुगं ।
उग्घडदि तम्मि समए पसरदि आणंद-भेरि-रवो ॥२१४॥

आयण्णिय भेरि-रवं ताणं वासम्हि कय-जयंकारा ।
एंति परिवार-देवा देवीओ पमोद-भरिदाओ ॥२१५॥

वायंता जयघंटा-पडह-पडा-किब्बिसा य गायंति ।
संगीय-णट्ट-मागध-देवा एदाण देवीओ ॥२१६॥

अर्थ :—सुरभवनमे उत्पन्न होनेपर पहिले अनुद्घाटित दोनो कपाट खुलते है और फिर उसी समय आनन्द भेरीका शब्द फैलता है। भेरीके शब्दको सुनकर पारिवारिक देव और देवियाँ हर्षसे परिपूर्ण हो जयकार करते हुए उन देवोके पास आते है। उस समय किल्विषिक देव जयघण्टा, पटह और पट बजाते है तथा सगीत एवं नाट्यमे चतुर मागध देव-देवियाँ गाते है ॥२१४-२१६॥

---

१. द. ब. क चम्मह, ज ठ पंचमह। २. द क. ज ठ. पासे। ३. गेण्हेसु रोयवादि-उवठिदि, क ज. ठ. गेण्हेसु रोयवादि उवविदि। ४ द. ब. क. ज. ठ. उप्पण्ण-सुर-विमाणे।

विभंगज्ञान उत्पत्ति

देवी-देव-समूहं दट्ठूणं तस्स विम्हओ होदि ।
तक्काले उप्पज्जदि विब्भंगं थोव-पच्चक्खं ॥२१७॥

अर्थ :—उन देव-देवियोंके समूहको देखकर उस नवजात देवको आश्चर्य होता है, तथा उसी समय उसे प्रत्यक्षरूप अल्प-विभंग-ज्ञान उत्पन्न हो जाता है ॥२१७॥

नवजात देवकृत पश्चाताप

माणुस्स-तेरिच्छ-भवम्हि पुव्वे लद्धो ण सम्मत्त-मणी[1] पुरूवं ।
तिलप्पमाणस्स सुहस्स कज्जे चत्तं मए काम-विमोहिदेण ॥२१८॥

अर्थ :—मैंने पूर्वकालमें मनुष्य एवं तिर्यंच भवमें सम्यक्त्वरूपी मणिको प्राप्त नहीं किया और यदि प्राप्त भी किया तो उसे कामसे विमोहित होकर तिल प्रमाण अर्थात् किंचित् सुखके लिये छोड़ दिया ॥२१८॥

जिणोवदिट्ठागम-भासणिज्जं देसव्वदं [2]गेण्हिय सोक्ख-हेदुं ।
मुक्कं मए दुव्विसयत्थमप्पस्सोक्खाणु-रत्तेण विचेदणेण ॥२१९॥

अर्थ :—जिनोपदिष्ट आगममें कथित वास्तविक सुखके निमित्तभूत देशचारित्रको ग्रहण करके मेरे जैसे मूर्खने अल्प सुखमें अनुरक्त होकर दुष्ट विषयोंके लिये उसे छोड़ दिया ॥२१९॥

अणंत-[3]णाणादि-चउक्क-हेदुं णिव्वाण-बीजं जिणणाह-लिंगं ।
पभूद-कालं धरिदूण चत्तं मए मयंधेण वहू-णिमित्तं ॥२२०॥

अर्थ :—अनन्तज्ञानादि-चतुष्टयके कारणभूत और मुक्तिके बीजभूत जिनेन्द्रनाथके लिंग (सकलचारित्र) को बहुत कालतक धारण करके मैंने मदान्ध होकर कामिनीके निमित्त छोड़ दिया ॥२२०॥

---

१ द ब क ज ठ मण। २ द ब क ज ठ गेण्हय। ३ द ब क. ज ठ णाणाणि।

कोहेण लोहेण भयंकरेण माया-पवंचेण[1] समच्छरेण ।
माणेण [2]वड्ढंत-महाविमोहो मेल्लाविदोहं जिणणाह-लिग्गं ।।२२१।।

अर्थ :—भयकर क्रोध, लोभ और मात्सर्यभावसहित माया-प्रपच एव मानसे वृद्धिगत अज्ञानभावको प्राप्त हुआ मै जिनेन्द्र-लिग्गको छोडे रहा ।।२२१।।

एदेहि दोसेहि सयंकिलेर्हि कादूणणिव्वाण-फलम्हि विग्घं ।
तुच्छं फलं संपइ जादमेदं एवं मणे वड्ढिद तिव्व-दुक्खं ।।२२२।।

अर्थ :—ऐसे दोषो तथा सक्लेशोके कारण, निर्वाणके फलमे विघ्न डालकर मैने यह तुच्छफल (देव पर्याय) प्राप्त कर तीव्र दु खोको बढा लिया है, मै ऐसा मानता हू ।।२२२।।

दुरंत-संसार-विणास-हेदुं णिव्वाण-मग्गम्मि परं पदीवं ।
गेण्हंति सम्मत्तमणंत-सोक्खं संपादिणं छंडिय-मिच्छ-भावं ।।२२३।।

अर्थ :—(वे देव उसी समय) मिथ्यात्वभावको छोडकर, दुरन्त ससारके विनाशके कारणभूत, निर्वाण मार्गमे परम प्रदीप, अनन्त सौख्यके सम्पादन करने वाले सम्यक्त्वको ग्रहण करते है ।।२२३।।

तादो देवी-णिवहो आणंदेणं महाविभूदीए ।
सेसं भरंति ताणं सम्मत्तग्गहण-तुट्ठाणं ।।२२४।।

अर्थ :—तब महाविभूतिरूप आनन्दके द्वारा देवियोके समूह और शेष देव, उन देवोके सम्यक्त्व ग्रहणसे सतुष्टिको प्राप्त होते है ।।२२४।।

जिणपूजा-उज्जोगं कुणंति केई महाविसोहीए ।
केई पुव्विल्लाणं देवाण पबोहण-वसेण ।।२२५।।

अर्थ —कोई पहलेसे वहाँ उपस्थित देवोके प्रबोधनके वशीभूत हुए (परिणामो की) महाविशुद्धि पूर्वक जिन-पूजाका उद्योग करते है ।।२२५।।

---

१ द पवत्तेण। २. द व क ज. ठ. वंदत।

पढमं दहण्हदाणं तत्तो अभिसेय-मंडव-गदाणं ।
सिहासणट्ठिदाणं एदाण सुरा कुणंति अभिसेयं ।।२२६।।

अर्थ :—सर्व प्रथम स्नान करके फिर अभिषेक-मण्डपके लिए जाते हुए (सद्योत्पन्न) देवको सिहासन पर बैठाकर ये (अन्य) देव अभिषेक करते है ।।२२६।।

भूसणसालं पविसिय मउडादि विभूसणाणि दिव्वाइं ।
गेण्हिय विचित्त-वत्थं देवा कुव्वंति णेपत्थं ।।२२७।।

अर्थ :—फिर आभूषणशालामे प्रविष्ट होकर मुकुटादि दिव्य आभूषण ग्रहण करके अन्य देवगण अत्यन्त विचित्र (सुन्दर) वस्त्र लेकर उसका वस्त्र-विन्यास करते है ।।२२७।।

नवजात देव द्वारा जिनाभिषेक एव पूजन आदि

तत्तो ववसायपुरं[1] पविसिय पूजाभिसेय-जोग्गाइं ।
गहिदूणं दव्वाइं देवा-देवीहि[2] संजुत्ता ।।२२८।।

णच्चिद-विचित्त-केदण-माला-वर-चमर-छत्त-सोहिल्ला ।
णिब्भर-भत्ति-पसण्णा वच्चंते कूड-जिण-भवणं ।।२२९।।

अर्थ :—पश्चात् स्नान आदि करके व्यवसायपुरमे प्रवेश कर पूजा और अभिषेकके योग्य द्रव्य लेकर देव-देवियो सहित झूलती हुई अद्भुत पताकाओ, मालाओ, उत्कृष्ट चमर और छत्रोसे शोभायमान होकर प्रगाढ भक्तिसे प्रसन्न होते हुए वे नवजात देव कूटपर स्थित जिन-भवनको जाते है ।।२२८-२२९।।

पाविय जिण-पासादं वर-मंगल-तूर रइदहलबोला ।
देवा देवी-सहिदा कुव्वंति पदाहिणं णमिदा ।।२३०।।

अर्थ —उत्कृष्ट माङ्गलिक वाद्योके रवसे परिपूर्ण जिन-भवनको प्राप्तकर वे देव, देवियोके साथ नमस्कार पूर्वक प्रदक्षिणा करते है ।।२३०।।

---

१ द क तत्तो वसाय । २ द ब क ज ठ देवेहिं ।

सीहासण-छत्त-तय-भामंडल-चामरादि-चारूग्रो ।
दट्ठूण जिणप्पडिमा जय-जय-सद्दा पकुव्वंति ।।२३१।।

थोदूण थुदि-सएहिं विचित्त-चित्तावली णिबद्धेहिं ।
तत्तो जिणाभिसेए भत्तीए कुणंति उज्जोगं ।।२३२।।

खीरोवहि जल-पूरिद मणिमय-कुंभेहि ग्रड-सहस्सेहिं ।
मंतुग्घोसणमुहला जिणाभिसेयं पकुव्वंति ।।२३३।।

ग्रर्थ :—(जिनमन्दिरमे) सिहासन, तीन छत्र, भामण्डल ग्रौर चमर ग्रादि (ग्राठ प्रातिहार्यो) से सुशोभित जिनेन्द्र मूर्तियोका दर्शनकर जय-जय शब्द करते है, फिर विचित्र ग्रर्थात् सुन्दर मनमोहक शब्दावलीमे निबद्ध ग्रनेक स्तोत्रोसे स्तुति करके भक्ति सहित जिनेन्द्र भगवानका ग्रभिषेक करनेका उद्योग करते है । क्षीरोदधिके जलसे परिपूर्ण १००८ मणिमय घटोसे मन्त्रोच्चारण पूर्वक जिनेन्द्र भगवानका ग्रभिषेक करते है ।।२३१-२३३।।

पडु-पडह-संख-मद्दल-जयघंटा काहलादि वज्जेहिं ।
वाइज्जंते हि सुरा जिणिंद-पूजा पकुव्वंति ।।२३४।।

ग्रर्थ :—(पश्चात्) वे देव उत्तम पटह, शङ्ख, मृदङ्ग, जयघण्टा एव काहलादि बाजोको बजाते हुए जिनेन्द्र भगवानकी पूजा करते है ।।२३४।।

भिंगार-कलस-दप्पण-छत्तत्तय-चमर-पहुदि-दिव्वेहिं ।
पूजंति [1]फलिय-दंडोवमाण-वर-वारि-धारेहिं ।।२३५।।

गोसीस-मलय-चंदण-कुंकुम-पंकेहि परिमलिल्लेहिं ।
मुत्ताफलुज्जलेहिं सालीए तंदुलेहिं [2]सयलेहिं ।।२३६।।

वर-विविह-कुसुम-माला-सएहिं दूरंग-मत्त-गंधेहिं ।
ग्रमियादो महुरेहिं णाणाविह-दिव्व-भक्खेहिं ।।२३७।।

---

१. द ब. क. ज. ठ. पलिह । २ द सालेहिं ।

रयणुज्जल-दीवेहिं सुगंध-धूवेहि मणहिरामेहिं ।
पक्केहि फणस-कदली-दाडिम-दक्खादि य फलेहिं ।।२३८।।

अर्थ :—वे देव दिव्य भारी, कलश, दर्पण, तीन छत्र और चामरादिसे, स्फटिक मणिमय दण्डके तुल्य उत्तम जलधाराओसे, सुगन्धित गोशीर मलय-चन्दन और केशरके पङ्कोसे; मोतियोके समान उज्ज्वल शालिधान्यके अखण्डित तन्दुलोसे, दूर-दूर तक फैलनेवाली मत्त गन्धसे युक्त उत्तमोत्तम विविध प्रकारकी सैकडो फूल मालाओसे; अमृतसे भी मधुर नानाप्रकारके दिव्य नैवेद्योसे, मनको अत्यन्त प्रिय लगनेवाले रत्नमयी उज्ज्वल दीपकोसे, सुगन्धित धूपसे और पके हुए कटहल, केला, दाडिम एव दाख आदि फलोसे (जिनेन्द्र देवकी) पूजा करते है ।।२३५-२३८।।

पूजनके बाद नाटक

पूजाए अवसाणे कुव्वते णाडयाइ विविहाइं ।
पवरच्छराप-जुत्ता-बहुरस-भावाभिणेयाइं ।।२३९।।

अर्थ :—(वे देव) पूजाके अन्तमे उत्तम अप्सराओ सहित बहुत प्रकारके रस, भाव एव अभिनयसे युक्त विविध-प्रकारके नाटक करते हैं ।।२३९।।

सम्यग्दृष्टि एव मिथ्यादृष्टि देवके पूजन-परिणाममे अन्तर

णिस्सेस-कम्मक्खवणेक्क[1]-हेदुं मण्णंतया तत्थ जिणिंद-पूजं ।
[2]सम्मत्त-जुत्ता विरयंति णिच्चं, देवा महाणंद-विसोहि-पुव्वं ।।२४०।।

[3]कुलाहिदेवा इव मण्णमाणा पुराण-देवाण पबोहणेण ।
मिच्छा-जुदा ते य जिणिंद-पूजं [4]भत्तीए णिच्चं णियमा कुणंति ।।२४१।।

अर्थ —अविरत-सम्यग्दृष्टि देव, समस्त कर्मोके क्षय करनेमे एक अद्वितीय कारण समझकर नित्य ही महान् अनन्तगुणी विशुद्धिपूर्वक जिनेन्द्र देवकी पूजा करते है किन्तु मिथ्यादृष्टि देव पुराने

१. द. ब क. ज ठ क्खवणकहेदु । २ द ब क ज ठ. सम्मत्तविरय। ३. द. ब कुलाइदेवा। क ज. ठ. कुलाइँ देवाइ । ४ द क ज ठ भत्तीय ।

देवोके उपदेशसे जिनप्रतिमाओको कुलाधि देवता मानकर नित्य ही नियमसे भक्तिपूर्वक जिनेन्द्रार्चन करते है ।।२४०-२४१।।

जिनपूजाके पश्चात्

कादूण दिव्व-पूजं आगच्छिय णिय-णियम्मि पासादे ।
सिंहासणाहिरूढा [1]ओलग्गं देंति देवा णं ।।२४२।।

अर्थ :—वे देव, दिव्य जिनपूजा करनेके पश्चात् अपने-अपने भवनमे आकर ओलगशाला (परिचर्यागृह) मे सिहासनपर विराजमान हो जाते हैं ।।२४२।।

भवनवासी देवोके सुखानुभव

विविह-रतिकरण-भाविद-विसुद्ध-बुद्धीहि दिव्व-रूवेंहि ।
णाणा-विकुव्वणं बहुविलास-संपत्ति-जुत्तांहि ।।२४३।।

मायाचार-विवज्जिद-पयदि-पसण्णाहि अच्छराहि समं ।
णिय-णिय-विभूदि-जोग्गं संकप्प-वसंगदं सोक्खं ।।२४४।।

पडु-पडह-प्पहुदीहिं सत्त-सराभरण-महुर-गीदेंहि ।
वर-ललिद-णच्चणेहिं देवा भुंजंति उवभोगं ।।२४५।।

अर्थ :—(पश्चात् वे देव) विविध रूपसे रतिके प्रकटी-करणमे चतुर, दिव्य रूपोसे युक्त, नाना प्रकारकी विक्रिया एव बहुत विलास-सम्पत्तिसे सहित तथा मायाचारसे रहित होकर स्वभावसे ही प्रसन्न रहने वाली अप्सराओके साथ अपनी-अपनी विभूतिके योग्य एव सकल्पमात्रसे प्राप्त होने वाले सुख तथा उत्तम पटह आदि वादित्र, सप्त स्वरोसे शोभायमान मधुर गीत तथा उत्कृष्ट सुन्दर नृत्यका उपभोग करते हैं ।।२४३-२४५।।

---

१. [ओलगसालम्मि]

ओहिं पि विजाणंतो अण्णोण्णुप्पण्ण-पेम्म-मूढ-मणा ।
कामंधा ते सव्वे गदं पि कालं ण जाणंति ।।२४६।।

अर्थ —अवधिज्ञानसे जानते हुए भी परस्पर उत्पन्न प्रेमसे मूढमनवाले मानसिक विचारोसे युक्त वे सब देव कामान्ध होकर बीते हुए समयको भी नही जानते है ।।२४६।।

वर-रयण-कंचणमये विचित्त-सयलुज्जलम्मि पासादे ।
कालागरु-गंधड्ढे राग-णिहाणे रमंति सुरा ।।२४७।।

अर्थ —वे देव उत्तम रत्न और स्वर्णसे विचित्र एव सर्वत्र उज्ज्वल, कालागरुकी सुगन्धसे व्याप्त तथा रागके स्थानभूत प्रासादमे रमण करते है ।।२४७।।

सयणाणि आसणाणि मउवाणि विचित्त-रूव-रइदाणि ।
तणु-मण-णयणाणंदण-जणणाणि होंति देवाणं ।।२४८।।

अर्थ :—देवोके शयन और आसन मृदुल, विचित्र रूपसे रचित तथा शरीर, मन एव नेत्रोके लिए आनन्दोत्पादक होते है ।।२४८।।

पास-रस-रूव[1]-सद्धुणि-गंधेहिं वड्ढियाणि [2]सोक्खाणि ।
उवभुंजंता[3] देवा तित्ति ण लहंति णिमिसं पि ।।२४९।।

अर्थ :—(वे देव) स्पर्श, रस, रूप, सुन्दर शब्द और गन्धसे वृद्धिको प्राप्त हुए सुखोका अनुभव करते हुए क्षणमात्रके लिए भी तृप्तिको प्राप्त नही होते है ।।२४९।।

---

१ द क ज ठ. रूववज्जूणि गधेहि, ब रूवचक्खूणि गधेहि । २. द. ब. क ज ठ सोज्जाणि ।
३ द. ब. क उवयजुत्ता । ज ठ उववयजुत्ता ।

दीवेसु णगिंदेसुं भोग-खिदीए वि णंदण-वणेसुं ।
वर-पोक्खरिणी-पुलिणत्थलेसु कीडंति राएण ॥२५०॥

॥ एवं [1]सुहप्परूवणा समत्ता ॥

अर्थ :—(वे कुमार देव) रागसे-द्वीप, कुलाचल, भोगभूमि, नन्दनवन एवं उत्तम बावडी अथवा नदियोके तट स्थानोमे भी क्रीडा करते है ॥२५०॥

इस प्रकार देवोकी सुख-प्ररूपणाका कथन समाप्त हुआ ।

सम्यक्त्वग्रहणके कारण

भवणेसु समुप्पण्णा पज्जत्तिं पाविदूण छब्भेयं ।
जिण-महिम-दंसणेणं केई [2]देविद्धि-दंसणदो ॥२५१॥

जादीए सुमरणेणं वर-धम्मप्पबोहणावलद्धीए ।
गेण्हंते सम्मत्तं दुरंत-संसार-णासयरं ॥२५२॥

॥ सम्मत्त-गहणं गदं ॥

अर्थ :—भवनोमे उत्पन्न होकर छह प्रकारकी पर्याप्तियोको प्राप्त करनेके पश्चात् कोई जिन-महिमा (पचकल्याणकादि) के दर्शनसे, कोई देवोकी ऋद्धिके देखनेसे, कोई जातिस्मरणसे और कितने ही देव उत्तम धर्मोपदेशकी प्राप्तिसे दुरन्त ससारको नष्ट करनेवाले सम्यग्दर्शनको ग्रहण करते है ॥२५१-२५२॥

॥ सम्यक्त्वका ग्रहण समाप्त हुआ ॥

---

१. द. ब. क ज ठ. सरूवप्पं । २. द ब. क ज ठ. देविंदं ।

भवनवासियोमे उत्पत्तिके कारण

जे केइ अण्णाण-तवेहि जुत्ता, णाणाविहुप्पाडिद-देह-दुक्खा ।
घेत्तूण सण्णाण-तवं पि पावा डज्झंति जे दुव्विसयापसत्ता ॥२५३॥

विसुद्ध-लेस्साहि सुराउ-बंधं [1]काऊण कोहादिसु घादिदाऊ ।
सम्मत्त-संपत्ति-विमुक्क-बुद्धी जायंति एदे भवणेसु सव्वे ॥२५४॥

अर्थ :—जो कोई अज्ञान-तपसे युक्त होकर शरीरमे नानाप्रकारके कष्ट उत्पन्न करते है, *तथा जो पापी सम्यग्ज्ञानसे युक्त तपको ग्रहण करके भी दुष्ट विषयोमे आसक्त होकर जला करते है,* वे सब विशुद्ध लेश्याओसे पूर्वमे देवायु बाँधकर पश्चात् क्रोधादि कषायो द्वारा उस आयुका घात करते हुए सम्यक्त्वरूप सम्पत्तिसे मनको हटा कर भवनवासियोमे उत्पन्न होते है ॥२५३-२५४॥



१ द ब कोऊण ।

महाधिकारान्त मगलाचरण

सण्णाण-रयण-दीवं लोयालोयप्पयासण-समत्थं ।
पणमामि सुमइ-सामि सुमइकरं भव्व-संघस्स ।।२५५।।

एवमाइरिय-परंपरागय-तिलोयपण्णत्तीए भवणवासिय-लोय-सरूव-णिरूवणं पण्णत्ती णाम—

।। तदियो महाहियारो समत्तो ।।

अर्थ:—जिनका सम्यग्ज्ञानरूपी रत्नदीपक लोकालोकके प्रकाशनमे समर्थ है एव जो (चतुर्विध) भव्य सघको सुमति देने वाले है, उन सुमतिनाथ स्वामीको मै नमस्कार करता हू ।।२५५।।

इसप्रकार आचार्य-परम्परागत-त्रिलोक-प्रज्ञप्तिमे भवनवासी-लोकस्वरूप-निरूपण-प्रज्ञप्ति नामक **तीसरा महाधिकार समाप्त हुआ ।**



तिलोयपण्णत्ती : प्रथम खण्ड (प्रथम तीन महाधिकार)

गाथानुक्रमणिका

छ

प

स



शुद्धि-पत्र

पृष्ठ सं०	पंक्ति सं०	अशुद्ध	शुद्ध
११	१४	अभ्युदय	अब्भुदय
१३	१७	वाण	बाण
१४	४	यिसय	विसय
१६	६	भव्य	भव्व
२१	२१	किरण	किर ण
२३	२०	आठ-आठ गुणित रथरेणु	आठ-आठ गुणित क्रमश रथरेणु
२४	१५	उस्सेहस्य	उस्सेहस्स
२६	७	चौथे भाग से अर्थात् अर्द्धव्यास के वर्ग से परिधि को	चौथे भाग से परिधि को
२७	११	कर्मभूमि के वालाग्र, मध्यम भोगभूमि के बालाग्र	कर्मभूमि के बालाग्र, जघन्य भोगभूमि के वालाग्र, मध्यम भोग-भूमि के वालाग्र
५७	६	झ झ``	झ झ` झ``
५८	५	च च``	च च` च``
५९	१३	३$\frac{५}{६}$८	३$\frac{७}{६}$८
८४	गाथा २३४	संदृष्टि गाथा के वीच मे दी गई है, उमे गाथा के वाद पढना चाहिए।	

पृष्ठ सं०	पंक्ति सं०	अशुद्ध	शुद्ध
८६	२	गिरिगडरा	गिरिगडए
८७	१२	ऊर्द्धायित	ऊध्वयित
९०	३	४	विशेषार्थ ४
९३	१६	२८१	२८१
९५	७	९२	९२/१
१०९	११	१५/६ घनराजू घनफल	१५/९ घनराजू घनफल
११४	११	ब्रह्मलोक के	ब्रह्मलोक से
१२१	१	रज्जुस्सेधेण	रज्जूस्सेधेण
१२२	७	रज्जुस्सेधेण	रज्जूस्सेधेण
१२५	२	वह्मस्वर्ग	ब्रह्मस्वर्ग
१२८	९	वाहल्ल	बाहल्ल
१४८	७	पर्यन्त के बिल	पयन्त के सम्पूर्ण बिल
१४८	१०-११	पृथिवी के शेष विलो के एक बटे चार भाग से	पृथिवी के शेप एक बटे चार भाग विलो से
१८२	१०	इन्द्रकको का	इन्द्रको का
१८५	गाथा १३१	टिप्पण २ द पुस्तक एव के स्थान पर	'ब्र प्रतौ नास्ति' पढना चाहिए।
२१३	सदृष्टि का अन्तिम कॉलम	प्रस्थान	परस्थान
२१५	१८	३।	२।
२२०	१६	विलो की भी आयु	विलो मे भी आयु
२४२	१०	सयुक्त हैं।	सयुक्त होते हैं।

पृष्ठ सं०	पंक्ति सं०	अशुद्ध	शुद्ध
२४५	गाथा २८९ की सद्दष्टि का शुद्ध मुद्रित रूप इस प्रकार है—		

—२+ १ रि^१२ | १२ रि | १० रि | ८ रि | ६ रि | ३ रि | २ रि

पृष्ठ सं०	पंक्ति सं०	अशुद्ध	शुद्ध
२४६	१७	आगम का वर्णन	आगमन का वर्णन
२४८	१३	समझता,	समझता है,
२४९	३	मुगलिका, मुद्द्गर	मुद्गलिका, मुद्गर
२५०	गाथा ३११ की सद्दष्टि	२००००	२०००
२५१	१	(४००० × ५) = २०००० कोस अथवा ५००० योजन	(४०० × ५) = २००० कोस अथवा ५०० योजन
२५६	३	फल-पू जा	फल-पु जा
२६५	२	भव्य	भव्व
२६५	१३	प्रमाण	पमाण
२७६	४	१९०८ और २१५९ मे तथा पाँचवे अधिकार की	१९३२ और २१८३ मे तथा छठे अधिकार की
२८०	१५	कुडाण	कूडाण
२८२	गाथा स० ६३ के वाद गाथा क्रम सख्या ६४ लगना छूट गया है और ६५ से २५५ तक की सख्याये लग गई हैं। अत. गाथा सं० ६३ को ही ६३-६४ समझे ताकि अन्य सन्दर्भ सही समझे जा सके।		
२९६	१७	पारिषादिक	पारिषद्दादिक

पृष्ठ सं०	पंक्ति स०	अशुद्ध	शुद्ध
३१०	२	भूदाणदस्य	भूदाणदस्स
३२४	६	तर्थंकर	तीर्थंकर
३२६	१	विभगज्ञान	विभगज्ञान
३२७	४	लिंग्ग	लिग
३३१	६	दिव्य	दिव्व
	-	केर्इ	केई



भारतीय श्रुति-दर्शन केन्द्र
जयपुर